



भगवान बुद्ध और उनका धर्म

48177

लेखक

डॉ० भीमराव रामजी आंबेडकर

एम. ए., पी-एच.डी., डी.एस्.सी., एल्-एल्.डी., डी.लिट्., बार-गेट-ला

अनुवादक

भदन्त आनन्द कोसल्यायन



१९७४

भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद

ध्यावस्ती

प्रकाशक

भिक्षु ग० प्रज्ञानानन्द

भंडारी,

भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद

जेतवन महाविहार

थावस्ती, बलरामपुर,

उत्तर प्रदेश ।

LIBRARY, NEW DELHI.

Acc. No. _____

48177

Date _____

8-3-1970

Call No

294.31

4. 0. 17

सर्वाधिकार सुरक्षित

सुख

द्वितीय संस्करण स० १५-००

मुद्रापक

अधिकार प्रेश,

२२, कैलशबाग, लखनऊ।

फोन २२८५४

Received for MRS. Apurba Das Maudslayi, Calcutta, on 21/2/30 Rs. 15/2

प्रस्तावना

आधुनिक युग के बौद्ध धर्म के प्रवर्तक डा० बाबासाहेब आम्बेडकर के अन्तिम महत्वपूर्ण ग्रन्थ का यह हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करते हुए हमें अतीव आनन्द हुआ है। डाक्टर साहब ने यह मूल ग्रन्थ अंग्रेजी में लिखा था। आप अनेक वर्षों तक अदभ्युत साहस एवं अनवरत परिश्रमपूर्वक इस ग्रन्थ के निर्माण में जुटे रहे, और अनेक संशोधनों एवं परिवर्धनों के पश्चात् उन्होंने इस ग्रन्थ को अन्तिम स्वरूप प्रदान किया था। उस ग्रन्थ का कागज, टाइट एवं कवर रेखा आदि सम्पूर्ण स्वरूप डा० साहब की सम्मति तथा उनके इच्छानुसार ही निर्धारित किया गया था। किन्तु अत्यन्त खेद है कि उक्त ग्रन्थ का प्रकाशन डा० साहब के जीवनकाल में न हो सका। तथापि डा० साहब ने उसका प्रथम देखकर अत्यन्त संतोष प्रकट किया था।

उस ग्रन्थ के निर्माण में सम्भावित व्यय को ध्यान में रख कर उसका मुख्य पचीस रुपये निर्धारित किया गया था। यह मुख्य ग्रन्थ की दृष्टि से उचित होने पर भी सामान्य पाठक के लिए अधिक था। इसके अतिरिक्त उस ग्रन्थ की भाषा सरल एवं सीधी-सादी होने पर भी बहुसंख्यक गवर्दीक्षित बौद्ध, जो अपने परमपूज्य नेता के विचार जानने के लिए व्ययन्त उत्सुक थे उसे समझ पाने में स्वयं को असमर्थ पाते थे।

इन सभी कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए पीपुल्स एज्युकेशन सोसायटी ने उस महान ग्रन्थ को अनेक प्रांतीय भाषाओं में अनुवादित करके कम से कम मूल्य रख कर प्रकाशित कराने का संकल्प किया है। हमारे लिए यह महान गौरव की बात है कि उस ग्रन्थ का यह हिन्दी अनुवाद राष्ट्र भाषा के साथ साथ बौद्ध धर्म के भी प्रकाश विद्वान भद्रन्त आनन्द कौसल्यान ने किया है। स्पेष्टता से ही इस भार को बहन करते हुए आप ने इसे सफलतापूर्वक पूर्ण भी कर दिया। इसी प्रकार हमारी सोसायटी द्वारा अन्य भाषाओं में भी उक्त ग्रंथ के अनुवाद बौद्ध ही प्रकाशित होंगे।

जिस बीड़ धर्म को हा० माह्व ने स्वयं स्वीकार किया था केवल उस धर्म की उत्त्वप्रणाली को ही ने आज को विपन्नता पूर्ण स्थिति को बदलने के लिए एक प्रभावशाली मार्ग समझते थे । उनकी यह प्रवण धारणा थी कि भारतीय जनता इस तरह प्रणाली का अध्ययन करे एवं तदनुसार आचरण करे ।

यह अनुवाद प्रकाशित करके डा० साहब की इस महान आकांक्षा को कुछ अंशों में पूर्ति कर पाने का एक अत्यल्प प्रयास किया गया है। भदन्त आनन्द कौसल्यायन जी अकथ परिश्रम कर-कर अपना अमूल्य समय प्रदान करते हुए जिस विद्वत्पूर्ण ढंग से उस ग्रन्थ का यह हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है उसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। इसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। सम्मेलन प्रेस के व्यवस्थापक श्री गुप्ते तथा उनके अन्य सहकारियों के भी हम आभारी हैं, जिनके हार्दिक सहयोग से इस ग्रन्थ का प्रकाशन इतने अल्पकाल में ही पूर्ण हो सका।

कृ० मि० तथा घनश्याम तलवटकर

मन्त्री

पीपल्स एज्युकेशन सोसायटी, बम्बई



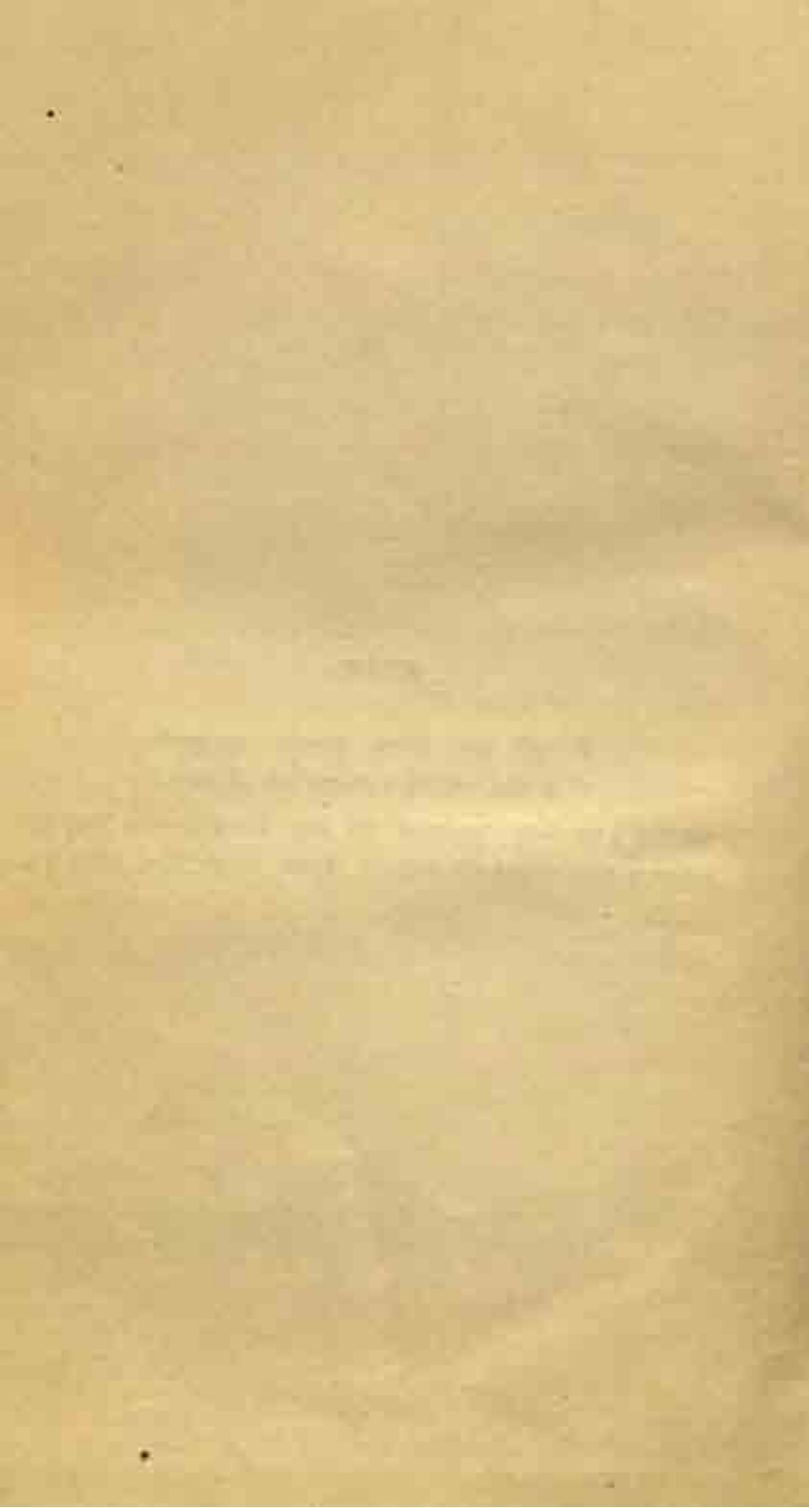
भगवान बुद्ध

THE CHINESE

समर्पण

यो ह्ये वहरो भिष्वु युञ्जति बुद्धसासने
सो मं लोकं पञ्चासेति अन्धावुत्तो व चन्द्रिमा ।।

अब कोई तरण भिक्षु बुद्ध-सासन की सेवा में रत हो जाता है तो वह
आदलों से मुक्त चन्द्रिमा की तरह इस संसार को प्रकाशित करता है ।



तत्र निवेदन

जिस प्रकार डा० भीमराव आम्बेडकर का क्रान्तिकारी जीवन अनेक असमंजस और अविकसित मस्तिष्कों के लिये दुबोध और चर्चा का विषय रहा है, उसी प्रकार उनकी अनेक कृतियों में से यह उसकी अन्तिम, अनुपम तथा सर्वश्रेष्ठ हितकारी कृति भी काफी लोगों के लिये दुबोध और 'किन्तु परन्तु' का विषय बन गई है। इस प्रकार के कार्य के लिये कितने सतत परिश्रम, कितनी सूझ-बूझ, कितनी पैनी दृष्टि की आवश्यकता हो सकती है, इसका अनुभव यही कर सकता है कि जिसने इस प्रकार का कार्य करने का कभी विचार भी किया हो। आप कल्पना कीजिये—

(१) आपके सम्मुख सारा त्रिपिटक है। त्रिपिटक का मतलब है सुत्त पिटक, विनय पिटक तथा अबिधम्म पिटक। सुत्तपिटक में पाँच निकाय हैं— (१) दीघनिकाय, (२) मज्झिम निकाय, (३) संयुक्त निकाय, (४) अंगुत्तर निकाय तथा (५) खुदक निकाय। अकेले खुदक निकाय में ही धम्मपद, सुत्त-निपात जैसे पन्द्रह पुस्तकें हैं। विनय पिटक में भी महावग्ग, खुल्लवग्ग आदि पाँच ग्रन्थों से कम नहीं हैं और अबिधम्म पिटक में तो पूरे सात ग्रन्थ हैं।

इन सभी ग्रन्थों पर पृथक पृथक अर्थ कथायें हैं जो अपने अपने मूलग्रन्थ से प्रायः कई गुणी हैं।

त्रिपिटक-बाह्य किन्तु त्रिपिटक के ही समान आदृत भिन्न-प्रश्न तथा विमुद्ध मग्गो सद्दुज ग्रन्थ हैं।

बुद्ध-चरित तथा दूसरा अवदान साहित्य है।

अनेक समानतायें रहने पर भी, विषय प्रतीत होने वाले कथनों को भी कमी नहीं है।

आप इस विशालता-मय में से एक ऐसा कथन तैयार करना चाहते हैं जिसमें जो कुछ भी हो यथा संभव बुद्धि सम्म हो, जिसमें 'भगवान् बुद्ध और उनकी सिद्धांतों' की एक पूरी क्ल-रेखा जा जाय, जिसमें यथा संभव पुनरुक्ति भी कम से कम हो और जो न केवल बुद्धि-प्रधान मस्तिष्कों को बल्कि भाषणा-प्रधान प्रवृत्तियों को भी कल्याण भागी बना सकने में समर्थ हो सके—यथा यह कार्य सहज कार्य है?

यह कार्य डाक्टर आम्बेडकर के लिये भी सहज कार्य नहीं हो रहा होगा। इस कठिनाई की प्रति अबिध उनके इस कथन में स्पष्ट है—

बौद्ध विधिगत और उसकी अटूट कथायें समुद्र की तरह विनाश है। उन्हें कण्ठस्थ कर सकना सम्भव एक बड़ी असाधारण बात थी।

एक से अधिक बार ऐसा हुआ है कि भगवान् बुद्ध ने जो कुछ कहा है, उसकी रिपोर्टें ठीक ठीक नहीं हुईं।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में ही कई बार उनके वचनों की 'गलत रिपोर्टें' उत तक पहुंची थीं। उदाहरण के तौर पर ऐसे पाँच अवसरों का उल्लेख किया जा सकता है।.....

...प्रायः इस तरह के और भी अनेक अवसर आये हों जब तथ्यागत के वचनों की ठीक 'रिपोर्टें' न हुईं हो क्योंकि हम देखते हैं कि निधु भी भगवान् बुद्ध के पास गये हैं और प्रश्न किया है कि ऐसी परिस्थिति में उन्हें क्या करना चाहिये ?

'कर्म' और 'पुनर्जन्म' (तक) के बारे में जब जब 'गलत रिपोर्टें' हुईं हैं उसके अनेक अवसर हैं।

इसलिये विधिगत में भी जो, 'बुद्ध-वचन' करके माना गया है उसे भी 'बुद्ध वचन' स्वीकार करने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। (पृ० २७८)

परिस्थिति सम्भव विवादास्पद है। किन्तु डा० आम्बेडकर के ही शब्दों में, सौभाग्य से, विधिगत में ही एक कसौटी विद्यमान है जिससे किसी भी वचन के सम्बन्ध में यथायथ निर्णय पर पहुंचने में सहायता ली जा सकती है वह कसौटी है—

'भगवान् बुद्ध के बारे में एक बात बड़े ही विश्वास के साथ कही जा सकती है; वे कुछ नहीं थे यदि उनका कथन बुद्धि-संगत तर्क-संगत नहीं होता था। दूसरी बातों का यथा योग्य मूल्यांकन करते हुए यह बात कही जा सकती है कि जो बात बुद्धि-संगत है, जो बात तर्क-संगत है, वही बुद्ध-वचन' है।

'दूसरी बात यह है कि भगवान् बुद्ध ने कभी ऐसी बेकार की वार्ता से नहीं पड़ना चाहा जिसका आदमी के कल्याण से कोई सम्बन्ध न हो। इस लिये कोई भी ऐसी बात जिसका आदमी के कल्याण से कोई सम्बन्ध नहीं, यदि भगवान् बुद्ध के सिर मड़ी जाती है, तो उसे 'बुद्ध वचन' स्वीकार नहीं करना चाहिये। (पृ० २७८-२७९)

इसी कसौटी पर परख परख कर, भगता कि है डा० आम्बेडकर ने परम्परागत 'बुद्ध-वचन' को 'बुद्ध-वचन' स्वीकार करने या स्वीकार न करने का रास्ता मानाया है।

पहली ही बात जो उन्होंने अपने इस ग्रन्थ में परम्परागत मान्यता के विरुद्ध जगता उससे भिन्न लिखी है वह है तथ्यागत की 'प्रवृत्ति' अर्थात् उनके 'अभि-निष्क्रमण' के कथानक को ही लेकर सिद्धार्थ कुमार प्रभावित हुए थे, यह सत्य है किन्तु प्रश्न है वह क्यों प्रभावित हुए थे? परम्परागत मान्यता है कि एक बूढ़े एक रोगी, एक मृत तथा एक साधु को देखकर यदि इन्हें संसार के दुःखमय जीवन का प्रतीक मानकर इस कथानक को एक अंतर्कारिक रूपक मान स्वीकार कर

लिखा जाय, तब तो बात दूसरी है किन्तु यदि २६ वर्ष की आयु होने तक भी सिद्धार्थ द्वारा एक बूढ़े, एक रोगी और एक मृत व्यक्ति को न देखे रहने की बात को 'ऐतिहासिक-सत्य' माना जाय तो वह 'ऐतिहासिक-सत्य' ऐसा ही 'सत्य' होगा जिस पर हर विचारवान् का प्रश्न निम्न लगेगा और अवश्य लगेगा। आखिर इस 'ऐतिहासिक सत्य' की प्राचीनतम साहित्यिक साक्षी क्या है? इसकी साहित्यिक साक्षी केवल वे अट्ठकथायें हैं जिन्हें बुद्धबोध तथा अन्य आचार्यों ने भगवान् बुद्ध के एक हजार वर्ष बाद परम्परागत सिंहल अट्ठकथाओं का आश्रय ग्रहण कर पालि भाषा में लिखा। क्या लिपिपट्ट के अन्तर्गत गिने जाने वाले ग्रंथों में से किसी भी ग्रंथ में इस 'बूढ़े-रोगी-मृत-साधु' की देख कर अभिनिष्क्रमण किये जाने वाले कथामक का कहीं उल्लेख नहीं है? हमारी सीमित जानकारी में कहीं भी नहीं है। बौद्धकनिकाय के सुत्तनिपात के अट्ठकवाग में अस्तदण्डमुत्त है। उसमें प्रब्रज्या का ठीक कारण व्यक्त हुआ प्रतीत होता है। उस सुत्त में है—

अस्तदण्डा भयं जातं, ज्ञं पस्तव मेघकं ।

संवेगं कित्तिपिस्सामि यथा संविजितं मया ॥१॥

फण्डमानं पजं विस्वा मच्छे अप्पोदके यथा ।

आज्जामज्जाहि व्याकट्ठे विस्वा मं भयमाबिसि ॥२॥

समन्तसरो लोको, विता सत्त्वा समेरिता ।

इच्छं भवनमस्तनो नाहसासि अनोसितं ।

ओसाने त्वेव व्याकट्ठे विस्वा मे जरति जट्ट ॥३॥

(अर्थ—शस्त्र धारण भयावह लगा। (उससे) यह जनता कैसे समझती है देखो। मुझमें संवेग (वैराग्य) कैसे उत्पन्न हुआ, यह मैं बताता हूँ। (२) अपमोक्ष पानी में जैसे मछलियां छटपटाती हैं वैसे एक-दूसरे से विरोध करके छटपटाने वाली प्रजा को देख कर मेरे अन्तःकरण में भय उत्पन्न हुआ। (३) चारों ओर का जगत् असार दिखाई देने लगा, दत्त दिशायें काँप रही हैं ऐसा लगा और उसमें आश्रय का स्थान खोजने पर निर्भय स्थान नहीं मिला, क्योंकि अन्त तक सारी जनता को परस्पर विरुद्ध हुए देखकर मेरा भी डब गया।)

किर 'सुत्तनिपात' के पञ्चज्जा सुत्त के प्रारम्भ में ही निम्नलिखित पाचार्य हैं:—

पञ्चज्जं कित्तिपिस्सामि यथा पञ्चजि भत्तुमा ।

यथाबोमंसमानो सो पञ्चज्जं समरोक्षमि ॥१॥

संवाघोस्यं घरावात्तो रजस्तापतनं इति ।

अप्पोकासो च पञ्चज्जा इति विस्वान पञ्चजि ॥२॥

[अर्थ—वधुष्मन्त ने प्रव्रज्या क्यों ली और उसे वह किस विचार से प्रिय लगी यह बतलाकर उसकी प्रव्रज्या का मैं वर्णन करता हूँ। (२) गृहस्थाश्रम तो अड़चनों और कूड़े-कचड़े की जगह है तथा प्रव्रज्या खुली हवा है यह जानकर वह परिव्राजक बन गया।]

प्रो० धम्मपानन्द कोसम्बी की ही मान्यता का समर्थन करते हुए डा० आम्बेकर ने सिद्धार्थ की प्रव्रज्या या अभिनिष्क्रमण का जो मन-मोहक रूपक चित्रित किया है, हम नहीं जानते कि यह भी यथार्थ इतिहास के कितना समीप वा दूर है ? किन्तु हम इतना जरूर अनुभव करते हैं कि विपिटक में उनके प्रव्रजित होने के कारणों की ओर जो भी छूट-पुट संकेत हैं वह 'खड़े-रोगी-मृत-साधु' कथानक की अपेक्षा इस 'एक दूसरे से विरोध करके छटपटाने वाली प्रजा' को देखकर 'कथानक से मेल खाते हैं। इस प्रकार इसकी कम सम्भावना नहीं है कि सिद्धार्थ कुमार के अभिनिष्क्रमण के मूल में इस 'छटपटाने वाली प्रजा' के दुःख के मूल कारण को पता लगाने की आकांक्षा ही प्रधान रही हो। क्या इसमें कुछ भी आश्चर्य हो सकता है कि लोग उसे यह कहकर बाद करते रहे हों कि "यह उच्च-कुलोत्पन्न था, श्रेष्ठ माता-पिता की संतान था, सम्पन्न था, तारुण्य के मध्य में था, सुन्दर शरीर और बुद्धि से युक्त था, सुख-भोग में पला था और वही अपने संबंधियों से इसलिए लड़ा कि पृथ्वी पर शान्ति बनी रहे और जनता का कल्याण हो।" (पृ० ३३) लोगों का कहना था कि यह "इसका स्वेच्छा से किया हुआ महान् त्याग है। यह वही ही वीरता और साहस का कार्य है। संसार के इतिहास में इसकी उपाय नहीं। यह शाक्य-मुनि अपना शाक्य-सिंह कहलाने का अधिकारी है।" (पृ० ३३)

जिस प्रकार जंजीर की एक कड़ी से दूसरी कड़ी जुड़ी रहती है उसी प्रकार भगवान् बुद्ध के इस गृह-त्याग के उद्देश्य और उसकी पूर्ति को पुण्य-यात्रा का ही नाम 'भगवान् बुद्ध का धर्म होना ही चाहिये। यह मान्य ही है कि भगवान् बुद्ध ने जनता के दुःख के कारणों की गहराई में जाकर उन कारणों को नाश करने का उपाय जान कर, जनता को उसकी जानकारी करा कर दुःख का मूलोच्छेद करने के उद्देश्य से ही गृह-त्याग किया। अब यह दुःख दो तरह का हो सकता है—(१) सम्प्रापिक दुःख; (२) सांविदिक दुःख। (१) वह दुःख जो किसी को तरक या अवाप में जन्म ग्रहण करने पर भोगना पड़ता है तथा वह दुःख जो किसी को बार बार जन्म ग्रहण करने से भोगना पड़ता है तथा वह दुःख भी जो जन्म लेने मात्र का ही अवश्यम्भावी परिणाम है अर्थात् जो दुःख जन्म ग्रहण करने का ही दूसरा पत्राण है। (२) वह दुःख जो राग, द्वेष तथा मोह के कारण उत्पन्न होता है और राग द्वेष तथा मोह का नाश करने से यही इसी छः श्रुत के शरीर में ही जिसका अन्त किया जा सकता है।

बौद्ध वाङ्मय में दोनों प्रकार के दुःखों की चर्चा है। मान लेने की बात दूसरी है किन्तु सम्परायिक दुःखों की उलझन में उलझने के बाद आदमी को मरक के अस्तित्व को—भले ही वह सिद्ध हो चाहे असिद्ध हो—स्वीकार करना ही पड़ता है; मरणान्तर जन्म ग्रहण को—भले ही वह भी सिद्ध हो चाहे असिद्ध हो—स्वीकार करना ही पड़ता है तथा जीवन को ही स्वभाव से दुःख रूप मान लेना होता है। यह सभी मान्यतायें किसी के गले उतर सकती हैं और किसी के गले नहीं भी उतर सकती हैं। किन्तु सांदिष्टिक दुःख का जो का है उसको जो अनुभूति है और उसके क्षम की भी जो पूरी सम्भावना है उसके लिए उक्त किन्हीं भी मान्यताओं का आश्रय लेने की अपेक्षा नहीं। भगवान् बुद्ध ने अपने धर्म को "सांदिष्टिक धर्म" ही कहा है। हमारा नित्य प्रति का धर्मानुस्मरण इसी प्रकार का है—

"स्वास्वता भगवताधम्मो संदिट्ठको, अकालिको, एहिपस्सिको, ओपन-पिको, पत्तत्त वेदितवोञ्जु वि हिति"

[भिक्षुओ ! यह धर्म अच्छी तरह समझा कर कहा गया है, यह सांदिष्टिक है, यह अकालिक है, इसके बारे में कहा जा सकता है कि वाञ्छा और स्वयं देख तो, यह ऊपर उठाने वाला है और हर बिना (पुरुष) इसका स्वयं साक्षात् कर सकता है।]

हमारी दृष्टि में डा० आम्बेडकर के इस धन्य की यह बड़ी विशेषता है कि उन्होंने बौद्ध वाङ्मय में धर्म का जो सांदिष्टिक-अंग है उसी को अपने धन्य में प्रधानता दी है।

प्रत्येक धार्मिक साम्प्रदाय की साम्प्रदायिक सिद्धांतों की यही विशेषता है कि यदि कोई उन्हें सिद्ध नहीं कर सकता तो उन्हें कोई असिद्ध भी नहीं कर सकता। पक्षपाती एक तरह के तर्क देते रहते हैं, विरोधी दूसरी तरह के। न उनके तर्कों से कुछ सिद्ध होता है और न इनके तर्कों से कुछ खण्डित। साम इतना है कि जबान लपलपती अवज्ञा शास्त्र-चर्चा घुग-घुगान्त तक चली रहती है।

हमें किसी भी साम्प्रदायिक मान्यताओं का खंडन करते फिरने की आवश्यकता नहीं, किन्तु यदि वे हमारे सांदिष्टिक धर्म-पालन के मार्ग में बाधा बन कर खड़ी होती है तो उन्हें भी कदाचित् आगे हाथों लेना हो पड़ सकता है।

जिन्हे भारतीय विचार-धारा और यहाँ की साम्प्रदायिक मान्यताओं का उतना परिचय नहीं, वे वहाँ भी पुनर्जन्म, कर्म, मोक्ष आदि भारतीय संस्कृति में सुपरिचित शब्दों को देखते हैं वहाँ उनके समझने अर्थ करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि सभी धार्मिक परम्पराओं में इन शब्दों का अपना अपना अर्थ-वैरोध्य सुरक्षित रहते हुए भी शब्द साम्य ही वह रज्जु है जो उन्हें एकरूपता के सूत्र में बांधे हुए है। डा० आम्बेडकर ने अपने इस धन्य के द्वारा पुनर्जन्म, कर्म, मोक्ष आदि सर्वजन परिचित शब्दों के बौद्ध अर्थों की

जिज्ञेप्सता को प्रकट करने का प्रयास किया है। कोई उनके अर्थों से असहमति प्रकट कर सकता है, किन्तु डा० आम्बेडकर का यह प्रयास हर तरह से प्रशंस्य माना जायगा।

इतना तो हम भी कहता ही चाहेंगे कि यदि बौद्ध पुनर्जन्म तथा अबौद्ध पुनर्जन्म में कोई अन्तर नहीं, यदि बौद्ध कर्म तथा अबौद्ध कर्म में कोई अन्तर नहीं और यदि बौद्ध मोक्ष या निर्वाण तथा अबौद्ध मोक्ष में कोई अन्तर नहीं तो फिर बौद्ध-धर्म की अपनी कुछ भी जिज्ञेप्सता है ही नहीं। इन विषयों में सद्-साम्य भले ही कितना ही हो, अर्ध-साम्य हो ही नहीं सकता। बौद्ध परम्परा सम्पूर्णतया अनात्मवादी है और अबौद्ध 'समय' प्रायः सभी आत्मवादी।

अनीश्वरवाद तथा अनात्मवाद बौद्ध-धर्म के दो ऐसे कुल्हाड़े हैं कि बिना उनकी सहायता के अबौद्ध मान्यताओं के शाह-अखाड़े को साफ़ किये, बौद्ध धर्म के भवन की आधार-शिला रखी ही नहीं जा सकती।

यूँ हम सभी मानते हैं कि आदमी सामाजिक प्राणी है और यह भी मानते हैं कि मनुष्योत्तर प्राणियों के भी अपने समाज हैं, किन्तु पता नहीं जब हम किसी आदमी का उसके धार्मिक रूप में अध्ययन करना चाहते हैं तो उसे क्यों इतना एकाकी मान बैठते हैं? हर आदमी में एक 'आत्मा' मान ली जाती है और सब आदमियों के ऊपर एक 'परमात्मा' मान लिया जाता है। उस 'आत्मा' का उस 'आत्मा' में लीन कर सकना जीवन का 'परउद्देश्य' घोषित कर दिया जाता है। आदमी जितना ही 'परमात्मा' के समीप सरकता जाता है उतना ही अपने निकट सम्बन्धियों तक से दूर होता चला जाता है। ऐसा क्यों न हो, जब मुदती के साथ ही यह शिक्षा दी जाती है—

जाके हृदय न राम-वेदेही

तजो ताहि कीटि बैरी सम यद्यपि परम सनेहो

तजो पिता प्रह्लाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी

किन्तु भगवान् बुद्ध के धर्म की आधार-शिला आदमी आदमी का परस्पर का योग्य सम्बन्ध ही है।

यह सचमुच खेद की बात है कि इस विषय में बौद्ध धर्म तक के बारे में लोगों के मन में सर्वथा गलत धारणायें भर किये हुए हैं। पहले तो केवल इसलिये कि बुद्ध ने जो कहा वह प्रायः 'मिथुओं' को ही सम्बोधित करके कहा, दूसरे तत्त्व इसलिये भी कि संगीतकारक मिथु ही थे और उन्होंने स्वभावतः उन्हीं बातों को अधिक महत्व दिया होगा जो उनसे संबंधित थीं, लोगों ने बुद्ध-धर्म को मिथुओं का ही धर्म समझ लिया।

मिथुओं की संख्या कितनी भी अधिक रही हो। भगवान् बुद्ध के गृहस्थ उपासकों की संख्या उन से अधिक ही रही होगी। इसलिये बौद्ध-धर्म जितना मिथुओं का

धर्म था, उतना ही गृहस्थों का धर्म। फिर उन भिक्षुओं की चीवर, पिण्डपात, गयनासन तथा रोमी होने पर दवाई आदि देने वाले गृहस्थ लोग ही थे। यह ठीक है कि भिक्षु गृहस्थों की मित्रा देते थे, किन्तु भिक्षुओं को मित्रा देने वाले तो गृहस्थ ही रहे होंगे। इसलिये बुद्ध-शासन जितनी मात्रा में भिक्षुओं पर निर्भर करता था उससे कम मात्रा में गृहस्थों पर नहीं।

डा० आम्बेडकर का यह कथन कि बौद्धों का एक पृथक् समाज न होना बौद्ध धर्म के भारत में मूल्य होने के कारणों में से एक कारण है (पृ० ३४६) किसी हद तक सचमुच विचारणीय है; किन्तु यह वर्तमान युग की ऐसी अवागमन-कता नहीं दी है कि देश में जितने धर्म हों उतने ही पृथक्-पृथक् समाज हों।

प्राचीन काल से बौद्ध-समाज की ये कुछ विशेषतायें रही हैं—

(१) बौद्ध समाज के सभी सदस्य परस्पर एक-दूसरे को समान मानते रहे हैं।

(२) बौद्ध समाज के सभी सदस्यों की मित्रा प्राप्त करने की समान स्वतन्त्रता रही है।

(३) बौद्ध समाज के सभी सदस्यों को कोई भी ऐसा कर सकने की स्वतन्त्रता रही है।

(४) बौद्ध समाज की स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार रहे हैं। संक्षेप में कहना हो तो यही कह सकते हैं कि बौद्ध समाज वर्णाश्रम धर्म की बंधियों से सर्वथा स्वतन्त्र रहा है।

डा० आम्बेडकर ने अपने इस ग्रन्थ बौद्ध-धर्म के जनतांत्रिक रूप को स्पष्ट करने के लिये एक 'भिक्षु' और एक 'गृहस्थ' के भेद को तथा एक 'भिक्षु' और एक 'उपासक' के भेद को जिस स्पष्टता के साथ दर्शाया है, वह अगम्य दुर्लभ है। (देखी पृ० ३४४-३४६)।

प्रश्न है और महत्वपूर्ण प्रश्न है कि एक भिक्षु का जीवन-कार्य क्या है? क्या भिक्षु जीवन व्यक्तिगत साधना के लिये ही है जबकि उसे लोगों की सेवा तथा उनका मार्ग दर्शन भी करना है? उत्तर है—'ये दोनों ही उसके जीवन-कार्य हैं। बिना व्यक्तिगत साधना के वह नेतृत्व कर नहीं सकता। इसलिये उसे अपने में एक सम्पूर्ण सर्वश्रेष्ठ, धार्मिक और ज्ञान-सम्पन्न व्यक्ति बनना ही होगा। इसके लिये उसे व्यक्तिगत साधना करना ही होगी। (पृ० ३४७)

"एक भिक्षु गृहस्थाग करता है। वह संसार त्याग नहीं करता। वह अपने घर को इसलिये छोड़ता है ताकि उसे उन लोगों की सेवा करने का अवसर मिल सके जो अपने अपने घर में बुरी तरह आसक्त हैं और जो दुःख में पड़े हैं, जो चिन्ता में पड़े हैं, जिन्हें चैन नहीं है और जिन्हें सहायता की अपेक्षा है।" (पृ० ३४७)

यदि भिक्षु संघ में ऐसे ही बहुसंख्यक भिक्षु नहीं थे तो यह कह सकना कठिन है कि तब भिक्षु-संघ की क्या सामाजिक उपयोगिता बनी रहेगी? और

यदि सामाजिक उपयोगिता बनी नहीं रहेगी तो यह भी कह सकता कठिन है कि वह स्वयं भी बना रहेगा या नहीं ?

इस पुस्तक का जिस रूप में संकलन किया गया है उससे पाठकों के मनमें अम हो सकता है। हमें यह स्पष्ट जान लेना चाहिये कि पुस्तक में जिन ऐतिहासिक घटनाओं का जिस क्रम से उल्लेख किया गया है, वही उनका पूर्वा पर नहीं है। आरम्भिक अंश के बाद का संकलन तो एक प्रकार से ऐतिहासिक संकलन न होकर विषय वार संकलन ही है।

जब से इस ग्रन्थ का मूल अंग्रेजी प्रकाशित हुआ है, इसकी कुछ आलोचना भी पढ़ने-सुनने को मिली है। रंगून में प्रकाशित होने वाले 'Light of the Dhamma' नामक पत्र में एक आस्ट्रेलियन सज्जन द्वारा की गई आलोचना देखने में आई और अंग्रेजी Mahabodhi में एक अंग्रेज सज्जन द्वारा की गई आलोचना भी। इन आलोचनाओं को पढ़कर ग्यूटन के बारे में सुनी या पढ़ी एक घटना याद आ गई। बड़े परिधम से उसने गणित का एक प्रश्न हल करके रखा था। पास बैठे पिल्ले ने स्याही की दवात लुढ़का दी ग्यूटन ने इतना ही कहा—'तू क्या जाने तूने कितनी बड़ी हानि की है।'

इस ग्रन्थ की जिस मानने योग्य कमी की ओर अनेक मित्रों ने ध्यान आकषिप्त किया है वह यह है कि यदि मूल ग्रन्थ में उन सभी स्थलों के संकेत या प्रतीक भी दे दिये गये होते जिनसे यह सारी सामग्री चयन की गई है तो यह अच्छा होता। डा० आम्बेडकर ने अपने अन्य ग्रन्थों में अपने हर कथन के समर्थन में इतनी पादटिप्पणियाँ दी हैं उन्होंने अपने इस ग्रन्थ को किसी एक भी पादटिप्पणी या संकेत द्वारा बोझिल नहीं बनाया। ऐसा स्पष्ट है कि उन्होंने यह जानबूझ कर ही किया है।

पादटिप्पणियों का भी अपना मुख्य है किन्तु जिन पाठकों को ध्यान में रख कर यह पुस्तक लिखी गई है उनके लिये डा० आम्बेडकर लेखन ही इतना बड़ा प्रमाण है कि फिर किसी अन्य प्रमाण की अपेक्षा रह ही नहीं जाती।

यदि तुलसी दास का 'रामचरित मानस' बिना किसी एक भी प्रमाण या पादटिप्पणी के उत्तर-भारत के घर-घर में बाँबा जा सकता है तो डा० आम्बेडकर द्वारा लिखित इस 'महान् बुद्ध और उनका धर्म' को कौन भारतीय-बौद्धों का एक सम्मानित ग्रन्थ होने से रोक सकता है ?

तो भी अधिक विज्ञानु पाठकों के लिये ग्रन्थ की उपादेयता बढ़ाने की दृष्टि से अनुवादक ने अपने इस अनुवाद में बौद्ध वाङ्मय के उन सब सूत्रों के प्रतीक दे दिये हैं जहाँ-जहाँ डा० आम्बेडकर ने स्पष्ट ही अपनी सामग्री जुटायी है।

पुस्तक को सुगठ्य बनाने के लिये उन्होंने 'मक्खी पर मक्खी' मार अनुवादों को नहीं अपनाया है। ऐसा करते तो पुस्तक की भाषा कभी भी उतनी प्राञ्जल और सजीव हो ही न पाती, जितनी वह इस समय बन पड़ी है।

कहीं कहीं उन्होंने विषय को स्पष्ट करने के लिये अपनी ओर से भी कोई बात जोड़ दी है, किन्तु कहीं एक भी जगह ऐसी बात नहीं जहाँ धर्म का अपघात हुआ हो। ऐसे स्थलों की भी कमी नहीं जहाँ डा० आम्बेडकर ने अपना स्वतंत्रमत व्यक्त किया है। वे सभी कथन मान्य हों या न हों, किन्तु एक भी ऐसा नहीं जो गम्भीरतापूर्वक विचार करने योग्य न हो।

अपने लाखों अनुयायियों सहित बोधिसत्व-चरित डा० भीमराव आम्बेडकर ने जब नागपुर में धर्म-दीक्षा ग्रहण की तो महापंडित राहुल सांकृत्यामन ने कहा था कि आम्बेडकर ने भारत में नये सिरे से बौद्ध धर्म का एक ऐसा खम्भागाह दिया है कि जिसे कोई नहीं हिला सकता।

बौद्ध धर्म और बौद्ध समाज के पक्ष में जितना महान् कार्य नागपुर की यह दीक्षा थी, उतना ही बलिक उससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य डा० भीमराव की पुण्य लेखनी ने इस ग्रन्थ-रत्न की रचना करके किया है।

कोई भी ग्रन्थ अपनी पृष्ठ संख्या से बड़ा या छोटा नहीं माना जा सकता। प्रज्ञा के अनुवीक्षण ग्रंथ से देखने पर और जन-हित के माप-दण्ड से मापने पर ओ ग्रन्थ जितना ही खरा उतरे, वह उतना ही महान् या छोटा बड़ा होता है।

इस ग्रन्थ की मूल अंग्रेजी प्रति मुझे People's Education Society के वर्तमान अध्यक्ष की ही कृपा से बम्बई से वाइलिंग्ड जाते समय बम्बई स्टेशन पर ही प्राप्त हो गयी थी। मैंने रास्ते में ही उसे अधिकांश पढ़ डाला और कसकते पहुँचते पहुँचते अनुवाद आरम्भ कर दिया।

विश्व बौद्ध सम्मेलन के उत्सव के अनन्तर मैं वाइलिंग्ड में दो महीने तक इस ग्रंथ का अनुवाद समाप्त कर डालने की कामना से ही रूका रहा। बट महा-घातु, बंकाक के उन सब स्नेही भिक्षुओं तथा सद्गृहस्थों का कुतस हूँ जिन्होंने बंकाक में रहते समय मेरे निवास तथा भोजन आदि की समुचित व्यवस्था कर इस ग्रन्थ के अनुवाद कार्य में हर तरह से सहायता पहुँचाई।

वाइलिंग्ड से ही मेरे बर्मा, जापान और फिर सिंहल द्वीप चले जाने के कारण ग्रन्थ का मुद्रण तथा प्रकाशन कुछ विलम्ब से ही हो रहा है।

इसकी प्रेस-कापी की तैयारी के समय भिक्षु सुमेध, भिक्षु प्रज्ञानन्द तथा भिक्षु मेघंकर की भी जनक्य सहायता रही। यूँ अपनी को ग्रन्थवाद देना न जाने कैसा सा लगता है!

People's Education Society का मैं विशेष आभारी हूँ कि उसने मूल अंग्रेजी ग्रन्थ की तरह उसके हिन्दी अनुवाद को प्रकाशित करने की उदारता तथा सदृश्यता का परिचय दिया।

भगवान बुद्ध
और
उनका धर्म

THE FIFTH

WIT

THE FIFTH

प्रकाशकीय

दुःख और आनन्द की मिश्रित भावनाओं के साथ ही मैं अपनी सोसाइटी के सम्पादक तथा अध्यक्ष स्वर्गीय डा० आम्बेडकर की अविस्मरणीय, किन्तु बरीरान्त के अनन्तर अपनी सोसाइटी द्वारा प्रकाशित होने वाली कृति "भगवान् बुद्ध और उनका धर्म" के प्रकाशन के साथ संबंधित हो रहा हूँ। डा० आम्बेडकर का यह ग्रन्थ उनकी अनुपम मायगार तो है ही साथ ही यह उनका ऐसा कीर्ति-स्तम्भ है कि जिसने उनकी महान् प्रतिभा के श्रेष्ठतम परिणाम संगृहीत हैं। यह ग्रन्थ उनके असाधारण परिचय तथा सतत की गई छवियों का प्रतिफल है। यह उनकी सिद्धार्थ के चरणों में समर्पित की गई असूत्र्य भेंट है। इस ग्रन्थ का लेखन डा० आम्बेडकर के लिये एक प्रकार से यथार्थ "पूजा" कार्य ही था, क्योंकि उन्हें बुद्धिवाद के अवतार सिद्धार्थ ने अपने बसीभूत कर रखा था। इसलिए यह कहा जा सकता है कि इस भूमि पर रहते समय डा० आम्बेडकर ने जो और जितना परिश्रम किया, वह कृति ही उसकी पराकाष्ठा की द्योतक है।

डा० आम्बेडकर का नालन-पालन एक आदर्श धार्मिक वातावरण में हुआ था कबीर के अनुयायी उनके पिता अपने पन्थ की शिक्षाओं का अन्तर्गत पालन करने वाले थे। पिता का आग्रह था कि उसकी सन्तान प्रति दिन किसी न किसी ऐसे सद्ग्रन्थ का वाचन अवश्य करे जो कि पढ़ने वाले के मन में उंची प्रेरणाएँ पैदा करने वाला हो। इसलिये डा० आम्बेडकर और उनके बड़े भाई को सोने वाले से पहले महाभारत का कुछ न कुछ भाग ऊँचे स्वर से अवश्य पढ़ना होता था। जब पूछा जाता कि महाभारत का पाठ क्यों किया जाय तो पिता का उत्तर होता कि महाभारत में वर्णित 'द्रोण' तथा 'कर्ण' के चरित्र श्रद्धा की भावना को दूर कर देंगे क्योंकि 'द्रोण' तथा 'कर्ण' भी 'उत्पन्नकुलोत्पन्न' नहीं थे। आम्बेडकर को रामायण के लेखक वाल्मीकी की कथामें भी सुनने को मिलतीं। इन पुस्तकों के दैनिक पाठ ने आम्बेडकर को हिनू-पुराण-नाथाओं से सुपरिचित करा दिया और उनके मन में धार्मिक भावनाओं की जड़ जमा दी। मिडिल स्कूल की अन्तिम परीक्षा उत्तीर्ण हो चुकने पर लड़के का परिचय दादा केलुस्कर से हुआ। दादा केलुस्कर आम्बेडकर के पिता के मित्र थे। श्री केलुस्कर ने आम्बेडकर को स्व-लिखित 'बुद्ध-चरित' की प्रति दी। इस पुस्तक में जो बातें लिखी थी उन में से अधिकांश का रामायण तथा महाभारत में वर्णित बातों से मेल नहीं बैठता था।

सौभाग्य से जब यह पुस्तक आम्बेडकर के हाथ लगी, उस समय उनका अपना दिमाग सर्वथा विचार-शून्य नहीं था। वे पग पग पर परस्पर विरोधी कथनों को तोलते हुए पढ़ रहे थे। वास्तव में वहाँ से 'भगवान् बुद्ध और उनके धर्म' के प्रति आम्बेडकर की दिलचस्पी का आरम्भ होता है।

इस अविस्मरणीय ग्रन्थ का लेखन आरम्भ करने से पहले डा० आम्बेडकर ने न जाने कितने प्रकार के विचारों तथा कार्यों से अपने को संबंधित रखा उन्होंने संसार के नाना धर्मों के विविध स्वरूपों को भली प्रकार समझा वृत्ता। जितना ही उन्होंने इन तरह-तरह के स्वरूपों की अच्छी तरह जाँच-पड़ताल की उतना ही उनका यह निश्चय बढ़ता गया कि हमारे वर्तमान समाज की आदर्श आधार-शिखा बौद्ध-धर्म की नींव पर ही रखी जा सकती है। सबसे पहले डा० आम्बेडकर को इस ग्रन्थ के लिखने की बात उस समय सूझी, जब १९५१ में कलकत्ते की महा-बोधि सभा ने उनसे पत्रिका के वैशाखांक के लिये एक लेख लिखने की प्रार्थना की। उस लेख में उन्होंने अपना यह विचार प्रकट किया कि वर्तमान समाज यदि किसी भी धर्म को अंगीकार कर सकता है तो वह केवल बुद्ध का धर्म हो सकता है और यदि यह नहीं किया गया तो समाज को नष्ट हुआ ही समझो। उनका कहना था कि किसी विचारवान् को, किसी विज्ञान-परक बुद्धि को, किसी भी आधुनिक आदमी को 'बुद्ध के धर्म' की अपेक्षा कोई दूसरा धर्म आकर्षित कर ही नहीं सकता। यदि आधुनिक समय में बुद्ध-धर्म की ओर लोगों का उतना ध्यान नहीं है जितना होना चाहिये तो डा० आम्बेडकर की समझ में उसका एकमात्र कारण यही था कि बुद्ध-धर्म का साहित्य विराल है और यह यत्न-तप बिखरा है, और इसलिये इस धर्म की ग्यारह और अच्छी जानकारी प्राप्त करना कठिन है। इसलिए उनका कहना था कि आवश्यकता इस बात की है कि मुख्य मुख्य बौद्ध मान्यताओं को सीधे, सरल, स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित किया जाय। उनका यह बौद्ध-ग्रन्थ धर्म का ऐसा ही प्रतिपादन है। डा० आम्बेडकर स्वयं अपने इस ग्रन्थ में बुद्ध-चरित का चित्रण बड़े ही सरल, स्पष्ट तथा ओजस्वी ढंग पर करते हैं।

अपने जीवनकाल में डा० आम्बेडकर ने नाना विषयों पर लिखा है। कभी वे विवादास्पद रहे हैं, कभी अविवादास्पद। लेकिन उन्होंने जो कुछ भी लिखा उसमें सामाजिक समानता पर जोर देने की उनकी पुष्ट दृढ़ता, अपने देश के कल्याण की भावना तथा जो नीचे गिरें हुए जनसाधारण हैं उन्हें ऊपर उठाने की भावना सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। यह पुस्तक इस दृष्टि से अनुपम है। अपने अमूल्य जीवन के अन्तिम भाग में उन्होंने एक प्रकार से अपनी सारी शक्ति और सारा समय इसी ग्रन्थ के लेखन कार्य को ही समर्पित कर दिया था। इस ग्रन्थ का पूरा हो जाना एक उद्देश्य की पूर्ति थी। इस प्रकार यह ग्रन्थ एक अविस्मरणीय रचना है, जिसे डा० आम्बेडकर स्वयं अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति मानते थे।

हमारे स्वर्गीय अध्यक्ष की कामना थी कि हमारी People's Education Society के प्रकाशनों में इस ग्रन्थ का प्रथम स्थान रहे। उनको यह भी इच्छा थी कि इसके बाद सोसाइटी दूसरे ग्रन्थों का भी प्रकाशन करे जिन्हें सोसाइटी द्वारा संचालित कालेजों के योग्य अधिकारी विद्वानों ने लिखा हो। हमें विश्वास है कि इस कृति से प्रेरणा पाकर विद्वज्जन इसका अनुकरण करेंगे।

मुझे उन सब सम्मानों के प्रति भी आभार प्रदर्शित करना चाहिये, जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में इतनी विलसस्पी दिखाई, विशेष रूप से श्री० नानकचन्द्र रत्न तथा श्री० प्रकाशचन्द्र का आभारी होना ही होगा, जिन्होंने केवल हमारे अध्यक्ष के प्रति भक्ति-भावना से प्रेरित होकर इस ग्रन्थ की प्रेस-कापी तैयार करने में इतना अधिक परिश्रम किया।

आर्० आर्० भोले

अहमद नगर

अध्यक्ष

१६ नवम्बर, १९५७

पीपल्स एजुकेशन सोसायटी

दूसरा संस्करण

१८ अप्रैल १९५८ को मैंने प्रथम बार बाबा साहब डाक्टर आम्बेडकर को देखा। तब वे केन्द्रीय सरकार के विधि मन्त्री थे। लखनऊ में एक सम्मेलन को सम्बोधित करने के लिये आये हुये थे। पूज्य गुरुवर भदन्त बोधानन्द महास्वविर के दर्शनार्थ वे अपराह्न लगभग १ बजे लखनऊ के रिहालवार पार्क में स्थित बुद्ध विहार में आये थे। उनके साथ श्री शिवदयाल सिंह चौरसिया एडवोकेट भी थे। जिन दिनों भारत में बौद्ध धर्म के मानने वाले जंगलियों पर गिने जा सकते थे उन दिनों भावी बौद्ध भारत के स्वप्न इष्टा एवं उनके लिये "बौद्ध-धर्म पद्धति" "भगवान गौतम बुद्ध" तथा "मूल भारतवासी और आर्य" की रचना करने वाले पूज्य गुरुवर भदन्त बोधानन्द के साथ उनकी वार्तालाप प्रारम्भ हुई। बात-चीत के दौरान भन्ते ने बाबा साहब से कहा कि आप तो भिक्षु बनकर बौद्ध धर्म का प्रचार करने वाले थे आपने तो विवाह कर लिया। बाबा साहब ने गुरन्त कहा "यह भी भिक्षुणी हो जायगी।" इसी वार्ता के मध्य में बाबा साहब ने कहा कि मैं एक ऐसा ग्रन्थ तैयार करना चाहता हूँ जिसमें बौद्ध धर्म सम्बन्धी सभी कुछ हो और एक ही ग्रन्थ के रखने से इसाईयों को

बाइबिल की तरह साधारण जनता का काम चल सके। पूज्य भदन्त बोधानन्द को बौद्ध-धर्मा-पद्धति को उन्होंने बहुत पसन्द किया। भावी बौद्ध भारत का स्वप्न देखने वाले इन दो महान समान विचारकों की इस वार्ता को मैं सुनता रहा। काश ! पूज्य भन्ते, बाबा साहब को बौद्ध धर्म में बीक्षित होते एवं इस ग्रन्थ को प्रकाशित होते देखने के लिये जीवित रहते ! उक्त अवसर पर मैंने बाबा साहब को निकट से देखा ही नहीं, सुना भी। तभी से इस ग्रन्थ को भुजित देखने की मेरी बलवन्ती इच्छा थी।

पूज्य भदन्त आनन्द कौस्तुभ्यायन जब भगवान् 'बुद्ध और उनका धर्म' के हिन्दी अनुवाद तैयार करके प्रकाशन के पूर्व अनुमति लेने के लिये पीपुल्स एज्युकेशन सोसायटी, बम्बई के तत्कालीन अध्यक्ष श्री आर० आर० भोले महोदय से मिलने गये तब मैं भी उनके साथ था। उन दोनों में जो बातें हुईं उसे भी मैंने सुना। भन्ते आनन्द की बलवन्ती इच्छा थी कि यह हिन्दी संस्करण कम से कम मूल्य में साधारण जनता के हाथ में पहुँचे। अतः आज ६ वर्ष बाद पुनः प्रकाशित होने के अवसर पर भी मैंने उस बात का ध्यान रखा। पूज्य भन्ते आनन्द कौस्तुभ्यायन का प्रयत्न सफल रहा। सामान्य एवं विद्वद् जन की भावनाओं की पूर्ति में कहीं तक कर पाया हूँ, यह वे ही बतावेंगे। यदि इस दिशा में मेरा प्रयास सफल रहा और जन-भावना की इच्छा-पूर्ति हुई है तो मेरे लिये यह प्रसन्नता की बात होगी।

द्वितीय संस्करण के लिये मैं पीपुल्स एज्युकेशन सोसायटी के प्रति कृतज्ञ हूँ।

१८ दिसम्बर, १९६८

जेतवन महाविहार

श्रावस्ती,

बलरामपुर, उ० प्र०

भिक्षु प्रज्ञानन्द

मन्त्री

भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद्

श्रावस्ती

परिचय

भारतीय जनता के एक वर्ग की बौद्ध-धर्म में दिलचस्पी बढ़ती चली जा रही है—इसके लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इसके साथ-साथ एक और स्वाभाविक माँग भी उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है और वह है भगवान बुद्ध के चरित्र और उनकी शिक्षाओं के सम्बन्ध में एक स्पष्ट तथा संगत ग्रन्थ की।

किसी भी अबौद्ध के लिए यह कार्य अत्यन्त कठिन है कि वह भगवान बुद्ध के चरित्र और उनकी शिक्षाओं को एक ऐसे रूप में पेश कर सके कि उनमें सम्पूर्णता के साथ-साथ कुछ भी असंगति न रहे। जब हम दीपनिकाय आदि पालि ग्रन्थों के आधार पर भगवान बुद्ध का जीवन चरित्र लिखने का प्रयास करते हैं तो हमें यह कार्य सहज प्रतीत नहीं होता, और उनकी शिक्षाओं की सुसंगत अभिव्यक्ति तो और भी कठिन हो जाती है। यथार्थ बात है और ऐसा कहने में कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं कि संसार में जितने भी धर्मों के संस्थापक हुए हैं, उनमें भगवान बुद्ध की चर्चा का तेखा-बोखा हमारे सामने कई ऐसी समस्याएँ पैदा करता है जिनका निराकरण यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। क्या यह आवश्यक नहीं कि इन समस्याओं का निराकरण किया जाय और बौद्ध धर्म के समझने-समझाने के मार्ग को निष्कण्टक किया जाय? क्या अब वह समय नहीं आ गया है कि बौद्ध जन उन समस्याओं को लें, उन पर धुला-बिचार बिमर्श करें और उन पर जितना भी प्रकाश डाला जा सके डालने का प्रयास करें?

इन समस्याओं की ही चर्चा को उत्तेजित करने के लिए मैं उन (में से कुछ) का यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ।

पहली समस्या भगवान बुद्ध के जीवन की प्रधान घटना प्रव्रज्या के ही सम्बन्ध में है। बुद्ध ने प्रव्रज्या क्यों ग्रहण की? परम्परागत उत्तर है कि उन्होंने प्रव्रज्या इसलिए ग्रहण की क्योंकि उन्होंने एक बृद्ध पुरुष, एक रोगी व्यक्ति, तथा एक मुर्ख की साज को देखा था। स्पष्ट ही यह उत्तर गले के नीचे उतरने वाला नहीं। जिस समय सिद्धार्थ (बुद्ध) ने प्रव्रज्या ग्रहण की थी उस समय उनकी आयु २६ वर्ष की थी। यदि सिद्धार्थ ने इन्हीं तीन दृश्यों को देख कर प्रव्रज्या ग्रहण की तो वह कैसे हो सकता है कि २६ वर्ष की आयु तक सिद्धार्थ ने कभी किसी बृद्ध रोगी तथा मूल व्यक्ति को देखा ही न हो? यह जीवन की ऐसी घटनाएँ हैं जो रोज ही सैकड़ों हजारों घटती रहती हैं और सिद्धार्थ ने २६ वर्ष की आयु होने से पहले भी इन्हें

देखा ही होगा। इस परम्परागत मान्यता को स्वीकार करना असम्भव है कि २६ वर्ष की आयु होने तक सिद्धार्थ ने एक बूढ़े, रोगी और मृत व्यक्ति को देखा ही नहीं था और २६ वर्ष की आयु होने पर ही प्रथम बार देखा। यह व्याख्या तर्क की कसौटी पर कसने पर खरी उतरती प्रतीत नहीं होती। तब प्रश्न होता है कि यदि यह व्याख्या ठीक नहीं तो फिर इस प्रश्न का पदार्थ उत्तर क्या है ?

दूसरी समस्या चारों आर्य-सत्तों से ही उत्पन्न होती है। प्रथम सत्य है दुःख आर्य सत्य ? तो क्या यह चारों सत्य भगवान बुद्ध की मूल शिक्षाओं में समाविष्ट होते हैं ? जीवन स्वभावतः दुःख है, यह सिद्धान्त जैसे बुद्ध धर्म की जड़ पर ही कुठाराघात करता प्रतीत होता है। यदि जीवन ही दुःख है, मरण भी दुःख है, पुनरुत्पत्ति भी दुःख है, तब तो सभी कुछ समाप्त है। न धर्म ही किसी आदमी को इस संसार में सुखी बना सकता है और न दर्शन ही। यदि दुःख से मुक्ति ही नहीं है तो फिर धर्म भी क्या कर सकता है और बुद्ध भी किसी आदमी को दुःख से मुक्ति दिलाने के लिए क्या कर सकते हैं क्योंकि जन्म ही स्वभावतः दुःख मय है। यह चारों आर्य सत्य—जिनमें प्रथम आर्य सत्य ही दुःख सत्य है—अबोधों द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण किये जाने के मार्ग में बड़ी बाध है। ये उनके गले आसानी से नहीं उतरते। ऐसा लगता है कि ये सत्य मनुष्य को निराशावाद के गढ़ में डकेल देते हैं। ये, 'सत्य' भगवान बुद्ध के धर्म को एक निराशावादी धर्म के रूप में उपस्थित करते हैं। प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या यह चारों आर्य सत्य भगवान बुद्ध की मूल शिक्षाएँ ही हैं अथवा ये बाद का भिक्षुओं द्वारा किया गया प्रतिष्ठांक है ?

एक तीसरी समस्या आत्मा, कर्म तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त को लेकर है। भगवान बुद्ध ने 'आत्मा' के अस्तित्व से इनकार किया। लेकिन साथ ही कहा जाता है कि उन्होंने 'कर्म' तथा 'पुनर्जन्म' के सिद्धांत का भी समर्थन किया है। प्रश्न पैदा हो सकता है, 'आत्मा' ही नहीं तो कर्म कैसा ? 'आत्मा' ही नहीं तो पुनर्जन्म कैसा ? ये सबमुच टेढ़े प्रश्न हैं। भगवान बुद्ध ने 'कर्म' तथा 'पुनर्जन्म' शब्दों का प्रयोग किन विशिष्ट अर्थों में किया है ? क्या भगवान बुद्ध ने इन शब्दों का किन्हीं ऐसे विशिष्ट अर्थों में प्रयोग किया, जो अर्थ उन अर्थों से सर्वथा भिन्न थे, जिन अर्थों में भगवान बुद्ध के समकालीन ब्राह्मण इन शब्दों का प्रयोग करते थे ? यदि हाँ तो वह अर्थ-भेद क्या था ? अथवा उन्होंने उन्हीं अर्थों में इन शब्दों का प्रयोग किया जिन अर्थों में ब्राह्मण जन इनका प्रयोग करते थे ? यदि हाँ तो क्या 'आत्मा' के अस्तित्व को स्वीकार करने तथा 'कर्म' और 'पुनर्जन्म' के सिद्धांत को मान्य करने में भगवानक असंगति नहीं है।

एक चौथी समस्या भिक्षु को ही लेकर है। भगवान बुद्ध ने किस उद्देश्य से भिक्षु-संघ की स्थापना की ? क्या उनका उद्देश्य एक (समाज-निरपेक्ष) आदर्श मनुष्य का निर्माण मात्र था ? अथवा उनका उद्देश्य आदर्श समाज-सेवकों की रचना था

जो जनसहायक के मित्र, मार्ग-दर्शक तथा दार्शनिक एक साथ हों। यह एक अत्यन्त महत्व का प्रश्न है। इस पर बौद्ध-धर्म का भविष्य तक निर्भर करता है। यदि भिक्षु एक "संपूर्णमनुष्य" माना बना रहेगा तो उसका धर्मप्रचार कार्य में कोई उपबोध नहीं, क्योंकि वह एक "संपूर्णमनुष्य" होने के बावजूद एक "स्वाधीन" आदमी ही बना रहेगा। दूसरी ओर, यदि वह समाज-सेवक भी है तो उससे बौद्ध-धर्म भी कुछ आधारा ले सकता है। इस प्रश्न पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया ही जाना चाहिए; सैद्धान्तिक संगति बँटाने के लिए ही नहीं, भावी बौद्ध-धर्म के हिताहित की दृष्टि से भी।

यदि मुझे अनुमति हो तो मैं यह कहना चाहूँगा कि 'महाबोधि' पत्रिका के पृष्ठ—कम से कम मेरी दृष्टि में—उतने विचारोत्तेजक नहीं होते। यह इसलिए नहीं कि उसमें जो कुछ छपता है वह दिलचस्प और शिक्षाप्रद नहीं होता। ऐसा लगता है कि इसमें जो कुछ भी छपता है मानों वह ऐसे पाठकों द्वारा पढ़ा जाता है जिनके कानों पर झूल ही रहेगी। किसी भी पत्र-पत्रिका में कोई निष्पत्ति के बाद स्वाभाविक इच्छा यह जानने की होती है कि दूसरे पाठक उस लेख के बारे में क्या सोचते हैं? किन्तु पाठक कभी अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त ही नहीं करते। पाठक का यह मौन लेखक के उत्साह को ठण्डा कर देता है।

मैं समझता हूँ कि मेरे द्वारा उठाये गये ये प्रश्न (जिनका उत्तर आप इस पुस्तक में पायेंगे—अनु०) पाठकों को कुछ सोचने विचारने पर मजबूर करते और वे भी यथासमय अपना मत व्यक्त करेंगे ही।

विषय-सूची

| | |
|---|---------|
| प्रस्तावना | ३ |
| नमः निवेदन | ७ |
| प्रकाशकीय | १८ |
| परिचय | २३ |
| प्रथम काण्ड—सिद्धार्थ गौतम—बोधिसत्त्व किन प्रकार बूढ़ बने ? | १-८८ |
| द्वितीय काण्ड—धर्म दीक्षात्रों का आन्दोलन | ८८-१६६ |
| तृतीय काण्ड—बूढ़ ने क्या सिखाया ? | १६७-२४८ |
| चतुर्थ काण्ड—संन्यस्त और धर्म | २४८-३३० |
| पंचम काण्ड—संघ | ३३१-३७० |
| षष्ठ काण्ड—भगवान् बूढ़ और उनके समकालीन | ३७१-४१४ |
| सप्तम काण्ड—महान् परिश्रान्तक की अंतिम चारिका | ४१५-४४० |
| अष्टम काण्ड—महामानव सिद्धार्थ गौतम | ४४१-४६२ |
| समाप्ति | ४६३ |

प्रथम काण्ड

सिद्धार्थ गौतम—बोधिसत्त्व किस प्रकार बुद्ध बने ?

पहला भाग

जन्म से प्रव्रज्या

| | |
|--|----|
| १. कुल | ३ |
| २. पूर्वज | ४ |
| ३. जन्म | ४ |
| ४. अमिता का आगमन | ७ |
| ५. महामाया की मृत्यु | ८ |
| ६. बचपन तथा शिक्षा | १० |
| ७. आरम्भिक प्रवृत्तियाँ | ११ |
| ८. विवाह | १४ |
| ८. पुत्र के संरक्षण के लिए पिता की योजना | १५ |
| १०. त्रिवर्षी राजकुमार को अपने वश में न ला सकी | १७ |
| ११. प्रधान मंत्री का कुमार को समझाना | १८ |
| १२. राजकुमार का प्रधान मंत्री को उत्तर | २० |
| १३. शाक्य संघ में दीक्षा | २१ |
| १४. संघ से संघर्ष | २३ |
| १५. देश छोड़ जाने का मुझाव | २५ |
| १६. प्रव्रज्या—अभिनियुक्तमण | २७ |
| १७. विदाई के शब्द | २८ |
| १८. गृहत्याग | ३१ |
| १९. राजकुमार और उनका सेवक | ३३ |
| २०. छद्म की भाषणी | ३७ |
| २१. परिवार का विलाप | ३७ |

दूसरा भाग

सदा के लिये अभिनिर्दिष्टमण

| | |
|-----------------------------------|----|
| १. कपिलवस्तु से राजगृह | ४१ |
| २. राजा बिम्बिसार और उसका परामर्श | ४२ |
| ३. बिम्बिसार की गौतम का उत्तर | ४४ |
| ४. गौतम का उत्तर (समाप्त) | ४६ |
| ५. शान्ति का समाचार | ५० |
| ६. समस्या की नई पृष्ठभूमि | ५६ |

तीसरा भाग

नये प्रकाश की खोज में

| | |
|----------------------------|----|
| १. जगु आयम पर दकता | ५४ |
| २. मौख्य-परम्परा का अध्ययन | ५६ |
| ३. समाधि-मार्ग का अभ्यास | ५६ |
| ४. तपस्या का परीक्षण | ५८ |
| ५. तपश्चर्या का त्याग | ६० |

चौथा भाग

ज्ञान-लाभ और नवीन-मार्ग का दर्शन

| | |
|---|----|
| १. नये प्रकाश के निमित्त ज्ञान-साधना | ६२ |
| २. ज्ञान-लाभ | ६३ |
| ३. नये-धर्म का आविष्कार | ६४ |
| ४. सम्यक्-सम्बोधि प्राप्य करके बोधिसत्त्व गौतम सम्यक्-सम्बुद्ध हो गये | ६५ |

पाँचवाँ भाग

बुद्ध और उनके पूर्वज

| | |
|----------------------------|----|
| १. बुद्ध और वैदिक ऋषि | ६८ |
| २. कपिल-दार्शनिक | ७० |
| ३. ब्राह्मण-ग्रन्थ | ७३ |
| ४. उपनिषद् तथा उनकी शिक्षा | ७८ |

छठा भाग

बुद्ध तथा उनके समकालीन

- | | |
|-------------------------------------|----|
| १. उनके समकालीन | ८० |
| २. अपने समकालीनों के प्रति उनका भाव | ८१ |

सातवाँ भाग

समानता तथा विषमता

- | | |
|--|----|
| १. वे बातें जिनका बुद्ध ने सर्वथा त्याग किया | ८३ |
| २. वे बातें जिनमें बुद्ध ने परिशर्तन किया | ८४ |
| ३. वे बातें जिनमें बुद्ध ने स्वीकार किया | ८५ |

द्वितीय काण्ड

धर्म दीक्षाओं का आन्दोलन

पहला भाग

बुद्ध और उनका विशद मार्ग

| | |
|--|----|
| १. उपदेश देना अच्छा नहीं देना | ८६ |
| २. ब्रह्मा सहस्रपति द्वारा बुद्ध-वोषणा | ८९ |
| ३. दो तरह की धर्म-दीक्षा | ९२ |

दूसरा भाग

परिव्राजकों की दीक्षा

| | |
|---|-----|
| १. सारनाथ आगमन | ९३ |
| २. धर्मचक्र प्रवर्तन | ९४ |
| ३. धर्मचक्र प्रवर्तन | ९६ |
| ४. धर्म चक्र प्रवर्तन—अष्टांगिक-मार्ग या सम्यक् मार्ग | ९७ |
| ५. धर्मचक्र प्रवर्तन—शील का मार्ग | १०० |
| ६. धर्मचक्र प्रवर्तन | १०६ |
| ७. परिव्राजकों की धर्म-दीक्षा | १०४ |

तीसरा भाग

कुलीनों तथा धार्मिकों की धर्म-दीक्षा

| | |
|--|-----|
| १. वस कुल पुत्र की धर्म-दीक्षा | १०६ |
| २. काश्यप-बन्धुओं की धर्म-दीक्षा | १०८ |
| ३. मालिन्धन तथा मीरुगल्यायन की धर्म-दीक्षा | १११ |
| ४. राजा बिम्बिसार की धर्म-दीक्षा | ११३ |
| ५. अनावपिण्डिक की धर्म-दीक्षा | ११५ |

| | |
|-----------------------------------|-----|
| ६. राजा प्रमेलजित् की धर्म-दीक्षा | ११८ |
| ७. जीवक की धर्म-दीक्षा | १२१ |
| ८. रट्ठपाल की धर्म-दीक्षा | १२२ |

चौथा भाग

जन्म-भूमि का आवाहन

| | |
|---|-----|
| १. सुद्धोदन से (अन्तिम) भेंट | १२८ |
| २. यशोधरा और राहुल से भेंट | १३० |
| ३. शाक्यों द्वारा स्वागत | १३२ |
| ४. सिद्धार्थ को गृहस्थ बनाने का अन्तिम प्रयाग | १३४ |
| ५. भगवान् बुद्ध का उत्तर | १३६ |
| ६. मग्घी का उत्तर | १३७ |
| ७. भगवान् बुद्ध की दृष्टता | १३८ |

पाँचवाँ भाग

धर्म-दीक्षा का पुनरारम्भ

| | |
|--|-----|
| १. मैगार ब्राह्मणों की धर्म-दीक्षा | १४१ |
| २. उत्तरवती के ब्राह्मणों की धर्म-दीक्षा | १४३ |

छठा भाग

निम्नस्तर के लोगों की धर्म-दीक्षा

| | |
|--|-----|
| १. नाई उपासि की धर्म-दीक्षा | १४५ |
| २. भंगी सुणीत की धर्म-दीक्षा | १४६ |
| ३. सोपाक तथा सुप्पिय अङ्गूतों की धर्म-दीक्षा | १४६ |
| ४. सुमंगल तथा अन्य 'नीच' जाति वालों की धर्म-दीक्षा | १४७ |
| ५. कुष्ठ-रोगी सुप्रबुद्ध की धर्म-दीक्षा | १४८ |

सातवाँ भाग

स्त्रीयों की धर्म-दीक्षा

| | |
|--|-----|
| १. महाप्रजापति गौतमी, यशोधरा तथा अन्य स्त्रियों की धर्म-दीक्षा | १५० |
| २. प्रकृति नामक चण्डालिका की धर्म-दीक्षा | १५३ |

आठवाँ भाग

पतितों तथा अपराधियों को धर्म-दीक्षा

| | |
|-----------------------------------|-----|
| १. एक आचारे को धर्म-दीक्षा | १५७ |
| २. डाकू अंगुलिमाल की धर्म-दीक्षा | १५८ |
| ३. दूसरे अपराधियों को धर्म-दीक्षा | १६१ |
| ४. धर्म-दीक्षा में सतारा | १६२ |

तृतीय काण्ड

बुद्ध ने क्या सिखाया

पहला भाग

‘धर्म’ में भगवान् बुद्ध का अपना स्थान

१. भगवान् बुद्ध ने अपने धर्म में, अपने लिये कुछ भी विशेष स्थान नहीं रखा १६७
२. भगवान् बुद्ध ने कभी किसी को मुक्त करने का आश्वासन नहीं दिया। उन्होंने कहा कि वे मार्ग-दाता हैं, मोक्ष-दाता नहीं १६८
३. बुद्ध ने अपने या अपने शासन के लिए, किसी प्रकार की ‘अपीक्ष्यता’ का दावा नहीं किया। उनका धर्म मनुष्यों के लिए, एक मनुष्य द्वारा आविष्कृत धर्म था। यह ‘अपीक्ष्य’ नहीं था १७३

दूसरा भाग

भगवान् बुद्ध के धर्म के बारे में विविध मत

१. दूसरों ने उनके धर्म को किस तरह समझा? १७५
२. भगवान् बुद्ध का अपना वर्गीकरण १७६

तीसरा भाग

धर्म क्या है?

१. जीवन की पवित्रता बनाये रखना धर्म है १७७
२. जीवन में पूर्णता प्राप्त करना धर्म है १७८
३. निर्वाण प्राप्त करके धर्म है १८०
४. तृष्णा का त्याग धर्म है १८५
५. यह मानना कि सभी संस्कार अनित्य हैं धर्म है १८७
६. ‘कर्म’ को मानवजीवन के नैतिक संस्थान का आधार मानना धर्म है १८८

चौथा भाग

अ-धर्म क्या है ?

१. परा-प्राकृतिक में विश्वास अ-धर्म है १८३
२. ईश्वर में विश्वास अ-धर्म है १८४
३. ब्रह्म-नाम्न पर आधारित धर्म मिथ्या-धर्म है १८६
४. आत्मा में विश्वास अ-धर्म है २०२
५. यज्ञ (= बलि-कर्म) में विश्वास अ-धर्म है २०७
६. कल्पनाश्रित विश्वास अ-धर्म है २१२
७. धर्म की पुस्तकों का वाचन मान अ-धर्म है २१४
८. "धर्म" की पुस्तकों की मूल्य की सम्भावना से परे मानना अ-धर्म है २१७

पाँचवाँ भाग

सद्धर्म क्या है ?

(क) सद्धर्म के कार्य

१. मन के मैल को दूर कर उसे निर्मल बनाना २२१
२. संसार को 'धर्म-राज्य' बनाना २२२

(ख) धर्म तभी सद्धर्म कहला सकता है, जब वह प्रज्ञा की वृद्धि करे

१. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह सभी के लिये ज्ञान का द्वार खोल दे २२६
२. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह यह भी शिक्षा देता है कि केवल 'विद्वान्' होना पर्याप्त नहीं, इससे आदमी 'पण्डितारूपन' की ओर अग्रसर हो सकता है २२६
३. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह सिखाता है कि जिस चीज की आवश्यकता है वह 'प्रज्ञा' है २३०

(ग) धर्म तो तभी सद्धर्म कहला सकता है, जब वह सभी की वृद्धि करे

१. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह यह शिक्षा देता है कि केवल 'प्रज्ञा' भी अपर्याप्त है : इसके साथ जील अनिवार्य है २३२
२. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह यह शिक्षा देता है कि प्रज्ञा और जील के साथ-साथ करुणा का होना भी अनिवार्य है २३३

३. धर्म तभी सद्धर्म हो सकता है, जब यह शिक्षा दे कि करुणा से भी अधिक मैत्री की आवश्यकता है

धर्म तभी सद्धर्म कहला सकता है, जब वह तमाम सामाजिक भेद-भावों को मिटा दे

१. धर्म तभी सद्धर्म हो सकता है, जब एक आदमी और दूसरे आदमी के बीच की तमाम दीवारों को मिटा दे २३७

२. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह यह शिक्षा दे कि किसी आदमी के 'जन्म' से नहीं, बल्कि उसके 'कर्म' से ही उसका मूल्यांकन किया जाना चाहिए २४२

३. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह आदमी और आदमी के बीच समानता के भाव की अभिवृद्धि करे २४४

चतुर्थ काण्ड
मज्झिम और धर्म
पहला भाग
मज्झिम और धर्म

| | |
|--|-----|
| १. 'मज्झिम' क्या है ? | २४६ |
| २. 'धर्म' 'मज्झिम' से कैसे मिले हैं ? | २४७ |
| ३. 'मज्झिम' का उद्देश्य और 'धर्म' का उद्देश्य | २४८ |
| ४. मज्झिम और नैतिकता | २४९ |
| ५. धर्म और नैतिकता | २५० |
| ६. केवल सदाचार भी पर्याप्त नहीं है, यह पवित्र और व्यापक होना चाहिए । | २५१ |

दूसरा भाग

किस प्रकार शाब्दिक समानता तात्त्विक भेद को छिपाये रखती है

पुनर्जन्म

| | |
|---------------------------------|-----|
| १. प्रास्ताविक | २६० |
| २. पुनर्जन्म किस (बीज) का ? | २६१ |
| ३. पुनर्जन्म किस (व्यक्ति) का ? | २६४ |

कर्म

| | |
|--|-----|
| १. क्या 'बुद्ध' का 'कर्म' का सिद्धान्त ब्राह्मणी 'कर्म' के सिद्धान्त के समान ही है ? | २६७ |
| २. क्या भगवान् बुद्ध यह मानते थे कि पूर्व-कर्म का भविष्य-जन्म पर प्रभाव पड़ता है ? | २६८ |
| ३. क्या भगवान् बुद्ध यह मानते थे कि पूर्व कर्मों का भविष्य-जन्मों पर प्रभाव पड़ता है ? | २७२ |

अहिंसा

- | | |
|-----------------------------------|-----|
| १. अहिंसा के नाना अर्थ और व्यवहार | २७४ |
| २. 'अहिंसा' का अर्थ | २७५ |

संस्तरण

- | | |
|--|-----|
| १. आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना | २७६ |
| २. मलत-कहमी के कारण | २७८ |

तीसरा भाग

बौद्ध जीवन-मार्ग

- | | |
|--|-----|
| १. शूभ-कर्म, अशूभ-कर्म तथा पाप | २८० |
| २. लोभ और तृष्णा | २८२ |
| ३. क्रोध और द्वेष | २८३ |
| ४. क्रोध और शत्रुता | २८३ |
| ५. मान मन, और मन के मैल | २८४ |
| ६. अपना-आप और आत्म-विजय | २८६ |
| ७. बुद्धि, ग्याय और संगति | २८७ |
| ८. चित्त की जागरूकता और एकाग्रता | २८७ |
| ९. अप्रमाद और धीर्य | २८९ |
| १०. दुःख और सुख, दान तथा दया | २९२ |
| ११. ब्रह्म | २९३ |
| १२. सम्यक् मार्ग का अनुसरण | २९३ |
| १३. सद्धर्म के साथ मिथ्या धर्म को मत मिलाओ | २९४ |

चौथा भाग

बुद्ध-प्रवचन

गृहस्थों के लिये प्रवचन

- | | |
|-------------------------------------|-----|
| १. सुखी-गृहस्थ | २९८ |
| २. पुत्री पुत्र से अच्छी हो सकती है | २९९ |
| ३. पति और पत्नी | २९९ |

सुचरित्र बने रहने के लिये प्रवचन

१. आदमी का पतन कैसे होता है ? ३००
२. बुरा आदमी ३०२
३. सर्वश्रेष्ठ आदमी ३०२
४. ज्ञानी आदमी ३०३
५. मनुष्य-न्यायी तथा सज्जन ३०४
६. शुभ-कर्म करने की आवश्यकता ३०५
७. शुभ संकल्प करने की आवश्यकता ३०६

सदाचरण सम्बन्धी प्रवचन

१. सदाचरण क्या है ? ३०६
२. सदाचरण की आवश्यकता ३०६
३. सदाचरण और दुनिया की जिम्मेदारियाँ ३१०
४. सदाचरण में सम्पूर्णता कैसे प्राप्त की जाय ? ३१२
५. सन्मार्ग पर चलने के लिए साथी की प्रतीक्षा अनावश्यक ३१३

निर्वाण-सम्बन्धी प्रवचन

१. निर्वाण क्या है ? ३१५
२. निर्वाण का मूल ३१६

संन्यास सम्बन्धी प्रवचन

१. सम्पत्-दृष्टि का पहला स्थान क्यों है ? ३१७
२. मृत्यु के बाद के जीवन की चिन्ता व्यर्थ ३१८
३. 'ईश्वर' से प्रार्थनायें और याचनायें करना बेकार ३१८
४. आदमी का भोजन उसे 'पवित्र' नहीं बनाता ३१८
५. भोजन नहीं, 'पवित्र कर्मों' का महत्त्व है ३२०
६. बाह्य शुद्धि अपर्याप्त है ३२१
७. पवित्र जीवन क्या है ? ३२३

सामाजिक-राजनीतिक प्रश्नों पर प्रवचन

१. राजाओं की कृपा के भरोसे मत रही ३२३
२. राजा धार्मिक होगा, तो प्रजा भी धार्मिक होगी ३२४
३. राजनीतिक तथा सामरिक शक्ति सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर करती है ३२४
४. युद्ध निषिद्ध है ३२६
५. युद्ध-विजेता के कर्तव्य ३२७

पञ्चम काण्ड

संघ

पहला भाग

संघ

| | |
|--------------------------------|-----|
| १. संघ का संगठन | ३३१ |
| २. संघ में प्रवेश | ३३१ |
| ३. भिक्षु के व्रत | ३३३ |
| ४. सांघिक नियमों सम्बन्धी दोष | ३३४ |
| ५. भिक्षु और प्रतिबन्ध | ३३५ |
| ६. भिक्षु और शिष्टाचार के नियम | ३३५ |
| ७. भिक्षु और अपराधों का विचार | ३३५ |
| ८. भिक्षु और अपराध-स्वीकृति | ३३६ |

दूसरा भाग

भिक्षु भगवान बुद्ध की कल्पना

| | |
|--|-----|
| १. भगवान बुद्ध की आदर्श भिक्षु की कल्पना | ३३८ |
| २. भिक्षु और 'तपस्वी' | ३४० |
| ३. भिक्षु तथा ब्राह्मण | ३४४ |
| ४. भिक्षु और उपासक | ३४६ |

तीसरा भाग

भिक्षु के कर्तव्य

| | |
|---|-----|
| १. दूसरों को धर्म-दीक्षा देना भिक्षु का कर्तव्य है | ३४८ |
| २. चमत्कारों (= प्राप्ति-हार्थों) द्वारा धर्म-दीक्षा नहीं | ३४८ |
| ३. जोर-जबर्दस्ती से धर्म-परिवर्तन नहीं | ३४८ |
| ४. भिक्षु को धर्म-प्रचार के लिये संघर्ष करना चाहिये | ३४५ |

चौथा भाग

भिक्षु और गृहस्थ

| | |
|---|-----|
| १. भिक्षा का वन्दन | ३५६ |
| २. परस्पर-प्रभाव | ३५६ |
| ३. भिक्षु का 'धर्म' तथा उपासक का 'धर्म' | ३५७ |

पाँचवाँ भाग

गृहस्थों के जीवन-नियम (विनय)

| | |
|-----------------------------------|-----|
| १. धर्मियों के लिये जीवन-नियम | ३६१ |
| २. गृहस्थ के जीवन के लिये नियम | ३६२ |
| ३. बालकों के लिये जीवन-नियम | ३६५ |
| ४. शिष्य के लिये जीवन-नियम | ३६६ |
| ५. पति-पत्नि के लिये जीवन-नियम | ३६६ |
| ६. मालिक और नौकर के लिए जीवन-नियम | ३६६ |
| ७. उपसंहार | ३६७ |
| ८. कुमारियों के लिये जीवन-नियम | ३६७ |

षष्ठ काण्ड

भगवान् बुद्ध और उनके समकालीन

पहला भाग

उनके समर्पक

| | |
|----------------------------|-----|
| १. राजा बिम्बिसार का 'दान' | ३७१ |
| २. अनाथमिष्टिक का 'दान' | ३७२ |
| ३. वीषक का 'दान' | ३७३ |
| ४. आसपासी का 'दान' | ३७३ |
| ५. विशाखा की दान-शीलता | ३७५ |

दूसरा भाग

भगवान् बुद्ध के विरोधी

| | |
|---|-----|
| १. जादू-टोना करके लोगों को धर्म-दीक्षा देने का दोषारोपण | ३७६ |
| २. समाज पर धर्म का मार होने का दोषारोपण | ३८० |
| ३. मुली गृहस्थियों को उजाड़ने का दोषारोपण | ३८२ |
| ४. तैषिकों द्वारा हत्या का मिथ्यारोप | ३८२ |
| ५. तैषिकों द्वारा अनेतिकता का मिथ्यारोप | ३८३ |
| ६. देवदत्त—धर्मरा भाई तथा सख् | ३८५ |
| ७. ब्राह्मण तथा भगवान् बुद्ध | ३८७ |

तीसरा भाग

उनके धर्म के आलोचक

| | |
|--|-----|
| १. सभी के लिए संघ का सदस्य बन सकने की आलोचना | ३८४ |
| २. व्रत-ग्रहण करने की आलोचना | ३८५ |
| ३. अहिंसा के सिद्धान्त की आलोचना | ३८५ |

| | |
|--|-----|
| ४. शील का प्रचार संसार को अन्धकारावृत करने का दोषारोपण | ३८८ |
| (२) | |
| 'अनिरुधता' को अन्धकार का कारण बताना | ३८८ |
| (३) | |
| क्या बौद्ध धर्म निराशावादी है ? | ४०० |
| ५. 'आत्मा' तथा 'पुनर्जन्म' सम्बन्धी आलोचना | ४०१ |
| ६. 'उच्छेद-वादी' होने का दोषारोपण | ४०१ |

चौथा भाग

समर्थक और प्रशंसक

| | |
|--|-----|
| १. घानंजानी ब्राह्मणी की श्रद्धा | ४०३ |
| २. विशाला की दुःख श्रद्धा | ४०५ |
| ३. मल्लिका की श्रद्धा | ४०७ |
| ४. एक मन्थिणी की तीव्र अभिलाषा | ४१० |
| ५. केनिय द्वारा किया गया स्वागत | ४११ |
| ६. तथ्यागत की राजा प्रसेनजित द्वारा की गई स्तुति | ४१२ |

सप्तम काण्ड

महान् परिव्राजक की अन्तिम चारिका

पहला भाग

निकटस्थ जनों से भेंट

| | |
|--|-----|
| १. धर्म-प्रचार के केन्द्र | ४१७ |
| २. भगवान् बुद्ध कहाँ-कहाँ पधारे ? | ४१७ |
| ३. माता और पुत्र तथा पति और पत्नि की अन्तिम भेंट | ४१८ |
| ४. पिता और पुत्र में अन्तिम भेंट | ४१८ |
| ५. भगवान् बुद्ध और सारिपुत्र की अन्तिम भेंट | ४२० |

दूसरा भाग

वैशाली से विदाई

| | |
|----------------------|-----|
| १. वैशाली को नमस्कार | ४२३ |
| २. पावा में पड़ाव | ४२४ |
| ३. कुसीनारा पहुँचना | ४२४ |

तीसरा भाग

महा-परिनिर्वाण

| | |
|--|-----|
| १. उत्तराधिकारी की नियुक्ति | ४२७ |
| २. अन्तिम धर्म-दीक्षा | ४२८ |
| ३. अन्तिम वचन | ४३० |
| ४. आनन्द का शोक | ४३२ |
| ५. मत्तियों का विलाप, एक भिक्षु की प्रसन्नता | ४३४ |
| ६. अन्तिम संस्कार | ४३५ |
| ७. भगवान् बुद्ध के 'फूलों' के लिए कहना | ४३६ |
| ८. बुद्ध-मक्ति | ४३७ |

अष्टम काण्ड

महामानव सिद्धार्थ गौतम

पहला भाग

उनका व्यक्तित्व

- | | |
|---------------------------------|-----|
| १. उनकी व्यक्तिगत आकृति इत्यादि | ४४३ |
| २. अख से देखने वालों की साक्षी | ४४४ |
| ३. उनकी नेतृत्व की सामर्थ्य | ४४५ |

दूसरा भाग

उनकी मानवता

- | | |
|---|-----|
| १. उनकी कृपा—महाकारुणिक | ४४७ |
| २. दुखियों का दुःख दूर करने वाले मानसिक दुखों के महान् चिकित्सक | ४४८ |

(१)

- | | |
|---------------------------|-----|
| विशाला को दी गई सान्त्वना | ४४८ |
|---------------------------|-----|

(२)

- | | |
|--------------------------------------|-----|
| किसा-गौतमी को संतोष | ४४९ |
| ३. रोगी सुश्रूषक तथागत | ४५० |
| ४. असहनशीलों के प्रति सहनशीलता | ४५४ |
| ५. समानता तथा समान व्यवहार के समर्थक | ४५६ |

तीसरा भाग

उन्हें क्या नापसन्द था और क्या पसन्द ?

- | | |
|------------------------------------|-----|
| १. उन्हें बहिष्कृत नापसन्द थी | ४५८ |
| २. उन्हें संग्रह-वृत्ति नापसन्द थी | ४५९ |

| | |
|--------------------------------|-----|
| ३. उन्हें सुसंगति पसन्द थी | ४६० |
| ४. वे सुसंगति से प्रेम करते थे | ४६१ |

समाप्ति

| | |
|---|-----|
| १. भगवान् बुद्ध की प्रशस्ति | ४६३ |
| २. उनके धर्म के प्रचार की शपथ | ४६६ |
| ३. भगवान् बुद्ध के पुनः स्वर्ग लौट आने की प्रार्थना | ४६७ |

डा० भीमराव रामजी आम्बेडकर



जन्मतिथि

१४ एप्रिल, १८८९

परिनिर्वाणतिथि

६ डिसेंबर, १९५६

बौद्धधर्मावलम्बन की तिथि

१४ अक्टूबर, १९५६ (वित्तव दलमी)



प्रथम काण्ड

सिद्धार्थ गौतम—बोधिसत्त्व किस प्रकार बुद्ध बने ?

| | | |
|------------|---|------------------------|
| पहला भाग | — | जन्म से प्रजन्मा |
| दूसरा भाग | — | सदा के लिये अभिनिष्कमण |
| तीसरा भाग | — | नये प्रकाश की खोज |
| चौथा भाग | — | बुद्धत्व तथा तथा-मार्ग |
| पाँचवा भाग | — | बुद्ध तथा उनके पूर्वज |
| छठा भाग | — | बुद्ध तथा उनके समकालीन |
| सातवा भाग | — | समानता तथा विषमता । |

प्रथम भाग

भगवान बुद्ध और उनका धर्म

१. कुल

१. ईसा पूर्व छठी शताब्दी में उत्तर भारत सर्व-प्रमुख सम्राट एक राज्य न था।

२. देश अनेक छोटे बड़े राज्यों में बँटा हुआ था। इनमें से किसी-किसी राज्य पर एक राजा का अधिकार था, किसी-किसी पर किसी एक राजा का अधिकार न था।

३. जो राज्य किसी एक राजा के अधीन थे उनकी संख्या सौतह थी। उनके नाम थे अंग, मगध, काशी, कोसल, वज्जि (वृज्जि), मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पञ्चाल, मत्स्य, सौरसेन, अण्मक, अवन्ति, मगधर तथा कम्बोज।^१

४. जिन राज्यों में किसी एक 'राजा' का आधिपत्य न था, वे थे कपिलवस्तु के शाक्य, पावा तथा कुसीनारा के मल्ल, वैशाली के लिच्छवि, मिथिला के विदेह, रामगाम के कोलिय, अल्लकण के वुलि, केसपुत के कालाम, कलिंग, पिप्पलवन के मौर्य, तथा भग्न (भग्न) जिनकी राजधानी सिन्धुमारगिरि थी।

५. जिन राज्यों पर किसी एक 'राजा' का अधिकार था वे जनपद कहलाते थे और जिन राज्यों पर किसी एक 'राजा' का अधिकार न था वे 'सभ' या 'गण' कहलाते थे।

६. कपिलवस्तु के शाक्यों की शासन-व्यवस्था के बारे में हम विशेष जानकारी नहीं है। हम नहीं जानते कि वहाँ प्रजातन्त्र था अथवा कुछ लोगों का शासन था।

७. इतनी बात हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि शाक्यों के जनतन्त्र में कोई राज-परिवार थे और वे एक दूसरे के बाद क्रमशः शासन करते थे।

८. राज परिवार का मुखिया राजा कहलाता था।

९. सिद्धार्थ गौतम के जन्म के समय शुद्धोदन की 'राजा' बनने की वारी थी।

१०. शाक्य राज्य भारत के उत्तर-पूर्व कोने में था। यह एक स्वतन्त्र राज्य

था। लेकिन आने चलकर कोशल-नरेश ने इसे अपने शासन-क्षेत्र में शामिल कर लिया था।

११. इस 'अधिराजिक-प्रभाव-क्षेत्र' में रहने का परिणाम यह था कि कोशल-नरेश को स्वीकृत के बिना शाक्य-राज्य स्वतन्त्र रीति से अपने कुछ राजकीय अधिकारों का उपयोग न कर सकता था।

१२. उस समय के राज्यों में कोशल एक शक्तिशाली राज्य था। मगध-राज्य भी ऐसा ही था। कोशल-नरेश प्रसन्नचित्त और मगध-नरेश बिम्बसार सिद्धार्थ गौतम के समकालीन थे।

२. पूर्वज

१. शान्धियों की राजधानी का नाम कपिलवस्तु था। हो सकता है कि इस नगर का यह नाम महान बुद्धिवादी मुनि कपिल के ही नाम पर पड़ा हो।

२. कपिलवस्तु में जयसेन नाम का एक शाक्य रहता था। सिंह-हनु उनका पुत्र था। सिंह-हनु का विवाह हुआ था कल्चाना से। उसके पांच पुत्र थे। शुद्धोदन, भीतोदन, शुक्लोदन, शाक्योदन, तथा अमितीदन^१। पांच पुत्रों के अतिरिक्त सिंह-हनु की दो लड़कियाँ भी—अमिता तथा प्रमिता।

३. परिवार का मोक्ष आश्रित्य था।

४. शुद्धोदन का विवाह महामाया से हुआ था। उसके पिता का नाम अञ्जन था और माँ का मुलक्षणा। अञ्जन कोलिय था और देवदह नाम की बस्ती में रहता था।

५. शुद्धोदन बड़ा पौधा था। जब शुद्धोदन ने अपनी वीरता का परिचय दिया तो उसे एक और विवाह करने की भी अनुमति मिल गई। उसने महाप्रजापति को चुना। महाप्रजापति महामाया की बड़ी बहन थी।

६. शुद्धोदन बड़ा धनी आदमी था। उसके पास बहुत बड़े-बड़े खेत थे और भौकर-चाकर भी अनगिनत थे। कहा जाता है कि अपने खेतों को जोतने के लिये उसे एक हजार हल चलवाने पड़ते थे।

७. वह बड़े अमन-चैन की जिन्दगी बसर करता था। उसके कई महल थे।

३. जन्म

१. सिद्धार्थ गौतम ने शुद्धोदन के घर में जन्म ग्रहण किया था। उसके जन्म की कथा इस प्रकार है।

२. शाक्य-राज्य के लोग अथाढ़ के महीने में एक महोत्सव मनाया करते थे। इस उत्सव में क्या राजा, क्या प्रजा सभी सम्मिलित होते थे।

३. सामान्यरूप से यह महोत्सव सात दिन तक मनाया जाता था ।

४. एक बार महामाया ने इस उत्सव को बड़े ही आमोद-प्रमोद के साथ, बड़ी ही कान-नोकत के साथ, फूलों के साथ और सुगन्धियों के साथ मनाने का निश्चय किया । हाँ उसमें मुरारिण्य आदि नशीली वस्तुओं का संबंधा परित्याग था ।

५. सातवें दिन वह प्रातःकाल उठी । सुगन्धित जल से स्नान किया । बार सात काशीपथों का दान दिया । अच्छे से अच्छे गहने-कपड़े पहने । अच्छे से अच्छे खाने खाये । बरत रखे । तदनन्तर वह नूब सजे-सजाये मयनागर में सोने के लिये चली गई ।

६. उस रात शुद्धोदन और महामाया निकट हुए और महामाया ने गर्भ धारण किया राजकीय शय्या पर पड़े-पड़े उसे नींद आ गई । निद्रा-प्रसूत महामाया ने एक स्वप्न देखा ।

७. उसे दिखाई दिया कि चतुर्विध महाराजिक देवता उसकी शय्या को उठा ले गये हैं और उन्होंने उसे हिसवल्ल प्रदेश में एक शाल-वृक्ष के नीचे रख दिया है । वे देवता पास खड़े हैं ।

८. तब चतुर्विध महाराजिक देवताओं की देविणी वहाँ आई और उसे उठाकर मानसरोवर ले गई ।

९. उन्होंने उसे स्नान कराया, स्वच्छ वस्त्र पहनाये, सुगन्धियों का लेप किया और फूलों से ऐसा और इतना सजाया कि वह किसी दिव्यात्मा का स्वागत कर सके ।

१०. तब मुमेश नाम का एक बौधिसत्त्व उसके पास आया और प्रश्न किया, "मैंने अपना अन्तिम जन्म पृथ्वी पर धारण करने का निश्चय किया है, क्या तुम मेरी माता बनना स्वीकार करोगी ?" उसका उत्तर था—“बड़ी प्रसन्नता से ।” उसी समय महामाया देवी की आँख खुल गई ।

११. दूसरे दिन महामाया ने शुद्धोदन से अपने स्वप्न की चर्चा की । इस स्वप्न की व्याख्या करने में असमर्थ राजा ने स्वप्न-विद्या में प्रसिद्ध आठ ब्राह्मणों को बुला जेवा ।

१२. उनके नाम थे राम, स्वत, लक्ष्मण, मन्वी, कोटञ्ज, भोज, सुगम और गुह्य । राजा ने उनके योग्य स्वागत की तैयारी की ।

१३. उसने जमीन पर पुष्पवर्षा कराई और उनके लिये सम्मानित आसन बिछवाये ।

१४. उसने ब्राह्मणों के पाप चांदी-सोने से भर दिये और उन्हें धी, मधु, शक्कर, बढ़िया चावल तथा दूध से पके पकवानों से संतर्पित किया ।

१५. जब ब्राह्मण ला-पीकर प्रसन्न हो गये, शुद्धोदन ने उन्हें महामाया का स्वप्न कह सुनाया और पूछा—“मुझे इसका अर्थ बताओ ।”

१६. ब्राह्मणों का उत्तर था, 'महाराज ! निश्चिन्त रहें । आपके यहाँ एक पुत्र होगा । यदि वह पर में रहेगा तो वह अक्षयर्षी राजा होगा ; यदि गृह-त्याग कर संन्यासी होगा तो वह बुद्ध बनेगा—संसार के अन्धकार का नाश करने वाला ।'

१७. पात्र में तेल धारण किये रहने की तरह महामाया बोधिसत्व को इस महीने तक अपने गर्भ में धारण किये रही । समय-समीप आया जान उसने अपने माइके जाने की इच्छा प्रकट की । अपने पति को सम्बोधित करके उसने कहा—'मैं अपने मायके देवदह जाना चाहती हूँ ।'

१८. सुद्धोदन का उत्तर था—'तुम जानती हो कि मुम्हारी इच्छा की पूर्ति होगी ।' कट्टारों के कन्धों पर डोई जाने वाली मुगहरी पालकी में ब्रिट्वा कर अनेक सेवक-सेविकाओं के साथ सुद्धोदन ने महामाया को उसके मायके भिजवा दिया ।

१९. देवदह के मार्ग में महामाया को शाल-वृक्षों के एक उद्यान-वन में से गुजरना था, जिसके कुछ वृक्ष पुष्पित थे कुछ अपुष्पित । यह लुम्बिनी-वन कहलाता था ।

२०. जिस समय पालकी लुम्बिनी-वन में से गुजर रही थी, सारा लुम्बिनी-वन दिव्य चित्र-लता की तरह अथवा किसी प्रतापी राजा के सुसज्जित बाजार जैसा प्रतीत होता था ।

२१. वृक्षों की शाखाओं के छोर तक पेड़ फलों और फूलों से लदे थे । नाना रंग के भ्रमर-यण गुञ्जार कर रहे थे । पक्षी चहचहा रहे थे ।

२२. यह मनोरम दृश्य देखकर महामाया के मन में इच्छा उत्पन्न हुई कि वही कुछ समय वहाँ रहे और कौड़ा करे । उसने पालकी डोने वालों को आज्ञा दी कि वह उसकी पालकी को शा-ल-उद्यान में ले चले और वहाँ प्रतीक्षा करें ।

२३. महामाया पालकी से उतरी और एक सुन्दर शाल-वृक्ष की ओर बढ़ी । मन्द पवन वह रहा था, जिससे वृक्ष की शाखाएँ ऊपर-नीचे हिल डोल रही थी । महामाया ने उनमें से एक को पकड़ना चाहा ।

२४. भाग्यवश एक शाखा काफी नीचे झुक गई । महामाया ने पंजों के बल खड़ी होकर उसे पकड़ लिया । तुरन्त शाखा ऊपर की ओर उठी और उसका हलका सा छटका लगते से महामाया को प्रसव-वेदना आरम्भ हुई । उस शाल-वृक्ष की शाखा पकड़े, खड़े ही खड़े महामाया ने एक पुत्र को जन्म दिया ।^१

२५. ५६३ ई० पूर्वे० में वैशाख पूर्णिमा के दिन बालकने अम्भ ग्रहण किया ।

२६. सुद्धोदन और महामाया का विवाह हुए बहुत समय बीत गया था ।

लेकिन उन्हें कोई सन्तान न हुई थी। अन्तिम जब पुनः लाभ हुआ तो न केवल सुदोदन और उसके परिवार द्वारा बल्कि सभी शाक्यों द्वारा पुनः जन्मोत्सव बड़ी ही शान-बान और बड़े ही ठाट-बाट के साथ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मनाया गया।

२७. बालक के जन्म के समय अपनी बारी से, सुदोदन पर कपिलवस्तु का शासन करने की जिम्मेदारी थी। यह 'राजा' कहलाया, और इसीलिसे स्वामाधिक तौर पर बालक भी राजकुमार।

४. असित का आगमन

१. जिस समय बालक का जन्म हुआ, उस समय हिमालय में असित नाम के एक बड़े ऋषि रहते थे।

२. असित ने सुना कि आकाश-स्थित देवता 'बुद्ध' शब्द की घोषणा कर रहे हैं। उसने देखा कि वह अपने बस्त्रों को ऊपर उछाल-उछाल प्रसन्नता के मारे इधर-उधर घूम रहे हैं। वह सोचने लगा कि मैं वहाँ क्यों न जाऊँ, जहाँ 'बुद्ध' ने जन्म ग्रहण किया है।

३. जब असित ऋषि ने समस्त जम्बुद्वीप पर अपनी दिव्यदृष्टि डाली, तो देखा कि सुदोदन के घर में एक दिव्य बालक ने जन्म ग्रहण किया और देवताओं की भी इतनी अधिक प्रसन्नता का यही कारण है।

४. इसलिये वह महान ऋषि असित अपने भानजे नात्तिक के साथ राजा सुदोदन के घर आये और उसके महल के द्वार पर खड़े हुए।

५. अब असित ऋषि ने देखा कि सुदोदन के द्वार पर लाखों आदिमियों की भीड़ एकत्रित है। वह द्वारपाल के पास गये और कहा—“अरे ! आकर राजा से कहो कि दरबाजे पर एक ऋषि खड़े हैं।”

६. द्वारपाल राजा के पास गया और हाथ जोड़कर विनती की—“राजन् ! द्वार पर एक बुद्ध ऋषि पधारे हैं और आप से भेंट करना चाहते हैं।”

७. राजा ने असित ऋषि के बैठने के लिये आसन की व्यवस्था की और द्वारपाल को कहा—“ऋषि की जाने दो।” महल के बाहर आकर द्वारपाल ने असित से कहा—“कृपया भीतर पधारें।”

८. असित ऋषि राजा के सामने उपस्थित हुए और उसे सड़े-खड़े आशीर्वाद दिया—“राजन् ! आपकी जय हो। राजन् ! आपकी जय हो। आप चिरकाल तक जिसे और अपने राज्य पर भर्मानुसार शासन करें।”

९. तब सुदोदन ने असित ऋषि को साष्टांग दण्डवत् किया और उन्हें बैठने के लिये आसन दिया। जब उसने देखा कि असित ऋषि सुगन्धक आसीन हैं तो सुदोदन ने कहा—“ऋषिवर ! मुझे स्मरण नहीं है कि इसके पूर्व आपके दर्शन हुए हों। आपके यहाँ आगमन का क्या उद्देश्य है ? आपके यहाँ पधारने का क्या कारण है ?”

१०. अब असित ऋषि ने राजा शुद्धोदन से कहा, "राजन् ! तुम्हें पुत्र-लाभ हुआ है । मैं उसे देखने के लिये आया हूँ ।"

११. शुद्धोदन बोला, "ऋषिवर ! बालक सोया है । क्या आप थोड़ी देर प्रतीक्षा करने की कृपा करेंगे ?" ऋषि का उत्तर था, "राजन् ! इस तरह की दिव्य विभूतियाँ देर तक सोती नहीं रहती । वे स्वभाव से ही जागसक होती हैं ।"

१२. तब बालक ने ऋषि पर अनुकम्पा करके अपने जागते रहने का संकेत किया ।

१३. यह देख कि बालक जाग उठा है, शुद्धोदन ने उसे दृढ़तापूर्वक दोनों हाथों में लिया और असित ऋषि के सामने ले आया ।

१४. असित ने देखा कि बालक बत्तीस महापुरुष लक्षणों तथा अस्सी अनु-व्यञ्जनों से युक्त है । उसने देखा कि उसका शरीर शुक्ल और ब्रह्मा के शरीर से भी अधिक दीप्त है और उसका तेजोमण्डल उनके तेजोमण्डल से लाख गुणा अधिक प्रदीप्त है । उसके मूढ़ से तुरन्त यह वाक्य निकला—“निस्सन्देह यह अद्भुत पुरुष है ।” वे अपने आसन से उठे, दोनों हाथ जोड़े और उसके पैरों पर भिर पड़े । उन्होंने बालक की परिक्षा की और उसे अपने हाथों में लेकर विचार-मग्न हो गये ।

१५. असित ऋषि पुरानी भविष्यद्वाणी से परिचित थे कि जिसके शरीर में गौतम की ही तरह के बत्तीस महापुरुष-लक्षण होंगे, वह इन दो गतियों में से एक को निश्चित रूप से प्राप्त होगा, तीसरी को नहीं । “यदि वह गृहस्थ रहेगा, तो वह नक्षत्रों नरेज होगा । लेकिन यदि वह गृह त्याग कर प्रव्रजित हो जायगा तो वह सम्यक् सम्बुद्ध होगा ।”

१६. असित ऋषि को निश्चय था कि यह बालक गृहस्थ नहीं बनेगा ।

१७. बालक की ओर देखकर, वह सिसकियाँ भर-भर कर रोने लगा ।

१८. शुद्धोदन ने देखा कि असित ऋषि सिसकियाँ भर-भर कर रो रहा है ।

१९. उसे इस प्रकार रोता देखकर, शुद्धोदन के रोंगटे खड़े हो गये । उसने असित ऋषि से निवेदन किया—“ऋषिवर ! आप इस प्रकार रो क्यों रहे हैं ? आनू क्यों बहा रहे हैं ? ठंडी साँस क्यों ले रहे हैं ? मैं समझता हूँ कि बालक का भविष्य तो निश्चित ही है ?”

२०. असित ऋषि ने राजा को उत्तर दिया—“राजन् ! मैं बच्चे के लिये नहीं रो रहा हूँ । इसका तो भविष्य निश्चित है । मैं अपने लिये रो रहा हूँ ।”

२१. “ऐसा क्यों ?” शुद्धोदन ने पूछा । असित ऋषि का उत्तर था, “मैं जराजीर्ण हूँ, वयःप्राप्त हूँ और यह बालक निश्चयात्मक रूप से ‘बोधि’ प्राप्त करेगा, सम्यक्सम्बुद्ध होगा । तदन्तर वह लोक-कल्याण के लिये अपना धर्म-चक्र प्रवर्तित करेगा, जो इससे पहले इस संसार में कभी प्रवर्तित नहीं हुआ है ।

२२. “जिस श्रेष्ठ जीवन की, जिस सद्गति की वह घोषणा करेगा वह आदि में कल्याणकारक होगा, मध्य में कल्याणकारक होगा और अन्त में कल्याणकारक होगा। वह अर्थ तथा व्यञ्जन की दृष्टि से निदीध होगा। वह परिशुद्ध होगा। वह परिपूर्ण होगा।

२३. “जिस प्रकार राजन् ! कभी कभी इस संसार में उदुम्बर (गूलर) पुष्पित होता है, उसी प्रकार अन्त युगों के अनन्तर इस संसार में काही सुखोत्पाद होता है। राजन् ! इसी प्रकार निश्चय से वह बालक ‘बौधि’ नाम करेगा, सम्यक् सम्बुद्ध होगा और तदनन्तर अनन्त प्राणियों को इस दुःखमय-सागर के तार से जाकर मुक्ति करेगा।

२४. “लेकिन राजन् ! मैं उस बुद्ध को नहीं देख सकूंगा। इसलिये राजन् ! मैं इस दुःख से दुखी हूँ और रो रहा हूँ। मेरे भाग्य में उस ‘बुद्ध’ की पूजा करना नहीं बचा है।”

२५. तब राजा ने अस्ति ऋषि और उसके भानजे नाळक (= नरदत्त) को श्रेष्ठ भोजन से संतपित किया और वरुण दान से उनकी परिक्रमा कर वन्दना की।

२६. तब अस्ति ने अपने भानजे नाळक को कहा, “नरदत्त ! जब कभी तुम्हें यह सुनने को मिले कि यह बालक ‘बुद्ध’ हो गया है तो जाकर शरण ग्रहण करना। यह तेरे मुक्त, कल्याण और प्रसन्नता के लिये होगा।” इतना कह कर अस्ति ने राजा से निदा ली और अपने आश्रम चला गया।^४

५. महामाया की मृत्यु

१. चौबे दिन नामकरण संस्कार किया गया। बालक का नाम सिद्धार्थ रखा गया। उसका गोत्र गौतम था। इसीलिये जनसाधारण में वह सिद्धार्थ गौतम नाम से प्रसिद्ध हुआ।

२. बालक के जन्म की खुशियाँ और उसके नामकरण की विधियाँ अभी समाप्त नहीं हुई थी कि महामाया अर्थात् बालक बीमार पड़ी और उसके रोग में गम्भीर रूप धारण कर लिया।

३. अपना अन्त समय निकट आया जान उसने सुद्धोदन और प्रजापति को अपनी शय्या के समीप बुलाया और कहा—“मुझे विश्वास है कि अस्ति ने मेरे बच्चे के बारे में जो भविष्यवाणी की है, वह सच्ची निकलेगी। मुझे यही अफसोस है कि मैं इस वाणी को पूरा हुआ न देख सकूँगी।

४. “प्रजापति ! मैं अपना बच्चा तुम्हें सौंप जाती हूँ। मुझे विश्वास है कि उसके लिये तुम उसकी माँ से भी बढ़कर होगी।

५. “मेरा बालक शीघ्र ही मातृ-हीन बालक हो जायगा। लेकिन मुझे इसकी

तनिक चिन्ता नहीं है कि मेरे बाद यथायोग्य विधि से उसका चालन-पालन नहीं होगा ।

६. "अब दुखी न हों । मुझे मरने दें । मेरा अन्त समय आ पहुँचा है । यम-दूत मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।" इतना कहते-कहते महामाया ने अन्तिम सांस ले ली । शुद्धोदन और प्रजापति दोनों को ही बड़ा दुःख हुआ । दोनों फूट-फूट कर रोने लगे ।

७. जब सिद्धार्थ की माता का देहान्त हुआ तो उसकी आयु केवल सात दिन की थी ।^{१५}

८. सिद्धार्थ का एक छोटा भाई भी था । उसका नाम था सन्द । वह शुद्धोदन का महाप्रजापति से उत्पन्न पुत्र था ।^{१६}

९. उसके नाया-बाबा की भी कई संतानें थीं । महानाम और अनुसुद्ध शुद्धोदन के पुत्र थे तथा आनन्द अमितोदन के । देवदत्त उसकी बुआ अमिता का पुत्र था । महानाम सिद्धार्थ की अपेक्षा बड़ा था और आनन्द छोटा ।^{१७}

१०. सिद्धार्थ उनके साथ खेलता-खाता बड़ा हुआ ।

६. बचपन तथा शिक्षा

१. जब सिद्धार्थ बड़ा चलने-फिरने योग्य हो गया, शाक्य जनपद के मुखिया इकट्ठे हुए और उन्होंने शुद्धोदन से कहा कि बालक को ग्राम-देवी अम्बया के मन्दिर में ले चलना होगा ।

२. शुद्धोदन ने स्वीकार किया और बालक को कपड़े पहना देने के लिये महाप्रजापति से कहा ।

३. जब वह उसे वस्त्र पहना रही थी सिद्धार्थ ने अत्यन्त मधुर वाणी में अपनी मौसी से पूछा कि उसे कहाँ ले जाया जा रहा है ? जब उसे पता लगा कि उसे मन्दिर ले जाया जा रहा है तो वह मुस्कराया । लेकिन शाक्यों के रीति-रिवाज का ध्यान कर वह चला गया ।

४. आठ वर्ष की आयु होने पर सिद्धार्थ ने अपनी शिक्षा आरम्भ की ।

५. जिन्हें शुद्धोदन ने महामाया के स्वप्न की व्याख्या करने के लिये बुलाया था और जिन्होंने सिद्धार्थ के बारे में भविष्यवाणी की थी वे ही आठ ब्राह्मण उसके प्रथम आचार्य हुए ।

६. जो कुछ वे जानते थे जब वे सब मिला वृत्ते तब शुद्धोदन ने उद्विष्ट देश के उच्च कुलोत्पन्न प्रथम कोटि के भाषा-विद् तथा वैयाकरण, वेद, वेदांग तथा उपनिषदों के पूरे ज्ञानकार सम्बन्धित को बुला लिया । उसके हाथ पर समर्पण का जल सिंचन कर शुद्धोदन ने सम्बन्धित को ही शिक्षण के निमित्त सिद्धार्थ को सौंप दिया । वह उसका दूसरा आचार्य था ।

७. उसकी अधीनता में सिद्धार्थ ने उस समय के सभी दर्शन-शास्त्रों पर अपना अधिकार कर लिया ।

८. इसके अतिरिक्त उसने भारद्वाज से चित्त को एकाग्र तथा समाधिस्थ करने का मार्ग सीखा लिया था । भारद्वाज आचार कात्यायन का शिष्य था । उसका अपना आश्रय कपिलवस्तु में ही था ।

७. आरम्भिक प्रवृत्तियाँ

१. जब कभी वह अपने पिता की जमींदारी में जाता और वहाँ कृषि-सम्बन्धी कोई काम न होता, वह किसी एकान्त कोने में जाकर ध्यानार्थ हो जाता ।

२. निस्सन्देह उसे सभी प्रकार की शिक्षा मिल रही थी, किन्तु साथ-साथ एक क्षणिक के शोण्य सैनिक शिक्षण की ओर से भी उदासीनता नहीं दिखाई जा रही थी ।

३. सुखोदन को इस बात का ध्यान था कि कहीं ऐसा न हो कि सिद्धार्थ में मानसिक गुणों का ही विकास हो और वह शाय-बल में पिछड़ जाय ।

४. सिद्धार्थ स्वभाव से कारुणिक था । उसे यह अच्छा नहीं लगता था कि आदमी, आदमी का शोषण करे ।

५. एक दिन अपने कुछ मित्रों सहित वह अपने पिता के खेत पर गया । वहाँ उसने देखा कि मछदूर खेत कोड़ रहे हैं, बाध बाध रहे हैं । किन्तु उनके तन पर पर्याप्त कण्ठा नहीं है । वे सूर्य के ताप में जल रहे हैं ।

६. उस दृश्य का उसके चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ा ।

७. उसने अपने एक मित्र से कहा—एक आदमी दूसरे का शोषण करे, क्या इसे ठीक कहा जायगा ? मछदूर मेहनत करे और मालिक उसकी मछदूरी पर मुलधर उड़ाये—यह कैसे ठीक हो सकता है ?

८. उसके मित्रों के पास उसके इस प्रश्न का कोई उत्तर न था, क्योंकि वे पुरानी विचार-परम्परा के मानने वाले थे कि किसान-मछदूर का जन्म अपने मालिकों की सेवा करने के लिये ही हुआ है और ऐसा करना ही उनका धर्म है ।

९. शाक्य लोग वज्रमङ्गल नाम का एक उत्सव मनाया करते थे । धान बोने के प्रथम दिन मनाया जाने वाला यह एक ग्रामीण उत्सव था । शाक्यों की प्रथा के अनुसार उस दिन हर शाक्य को अपने हाथ में हल जोतना पड़ता था ।

१०. सिद्धार्थ ने हमेशा इस प्रथा का पालन किया । वह अपने हाथ में हल चलाया करता था ।

११. यद्यपि वह विद्वान् था, किन्तु उसे शरीर-श्रम से घृणा न थी ।

१२. उसका ‘‘क्षत्रिय’’ कुल था, उसे धनुष चलाने तथा अन्य जत्थों का

प्रयोग करने की शिक्षा मिली थी। लेकिन वह किसी भी प्राणी को अनावश्यक काट देना नहीं चाहता था।

१३. वह शिकारियों के दल के साथ जाने से इतकार कर देता था। उसके मित्र कहते—“क्या तुम्हें डेर-बीतों से डर लगता है?” वह प्रत्युत्तर देता—“मैं जानता हूँ कि तुम डेर-बीतों को मारने वाले नहीं हो, तुम हिरणों तथा खर-गोशों जैसे निस्पृह जानवरों को ही मारने वाले हो।”

१४. “शिकार के निगे नहीं, तो अपने मित्रों का निजाना देखने के लिये ही आओ” उनके मित्र जाग्रह करते। सिद्धार्थ इस तरह के निमंत्रणों को भी अस्वीकार कर देता—“मैं निर्दोष प्राणियों के वध का साक्षी नहीं होना चाहता।”

१५. उसकी इस प्रवृत्ति से प्रजापति गौतमी बड़ी चिन्तित हो उठी।

१६. वह उससे तर्क करती—“तुम भूल गये हो कि तुम एक क्षत्रिय कुमार हो। सङ्केता तुम्हारा “धर्म” है। शिकार के माध्यम से ही पुत्र-विद्या में निष्णात हुआ जा सकता है, क्योंकि शिकार करके ही तुम ठीक-ठीक निजाना लगाना सीख सकते हो। शिकार-भूमि ही पुत्र-भूमि का अम्पास-बोव है।”

१७. लेकिन सिद्धार्थ बहुधा गौतमी से पूछ बैठते, “तो माँ! एक क्षत्रिय को क्यों लड़ना चाहिये?” और गौतमी का उत्तर होता, “क्योंकि यह उसका धर्म है।”

१८. सिद्धार्थ उसके उत्तर से संतुष्ट न होता। वह गौतमी से पूछता—“माँ! यह तो बता कि आदमी का आदमी को मारना एक आदमी का ही “धर्म” कैसे हो सकता है?” गौतमी उत्तर देती—“यह सब तर्क एक मन्गाली के योग्य है। लेकिन क्षत्रिय का तो ‘धर्म’ लड़ना ही है। यदि क्षत्रिय भी नहीं लड़ेगा तो राष्ट्र का संरक्षण कौन करेगा।”

१९. “लेकिन माँ! यदि सब क्षत्रिय परस्पर एक दूसरे को प्रेम करें तो क्या बिना कटे-मरे वे राष्ट्र का संरक्षण कर ही नहीं सकते?” गौतमी निरुत्तर हो जाती।

२०. वह अपने श्रावियों को अपने साथ बैठकर ध्यान लगाने की प्रेरणा करता। वह उन्हें बैठने का ठीक इंग सिखाता। वह उन्हें किसी एक विषय पर चिन्त एकाग्र करना सिखाता। वह उन्हें परामर्श देता कि ऐसी ही भावनाओं की भावना करनी चाहिये कि मैं सुखी रहूँ, मेरे सम्बन्धी सुखी रहें और सभी प्राणी सुखी रहें।

२१. उसके मित्र उसकी बातों को महत्व न देते थे। वे उस पर हँसते थे।

२२. वे आँखें बन्द करते तो उनका चिन्त उनके ध्यान के विषय पर एकाग्र न होता। इसकी वजह उनकी आँखों के सामने नाचते वे हिरन जिनका वे शिकार करना चाहते थे, अथवा वे मिठाइयाँ जिन्हें वे खाना चाहते थे।

२३. उसके माता-पिता की उसका यह ध्यानाभिमुख होना अच्छा नहीं लगता था। उन्हें लगता था कि यह क्षत्रिय जीवन के सर्वथा प्रतिकूल है।

२४. सिद्धार्थ का विश्वास था कि योग्य भावनाओं पर चित्त एकाग्र करने से हम अपनी सर्वो-भावना को बहुत व्यापक बना सकते हैं। उसका कहना था कि सामान्यरूप से जब भी कभी हम प्राणियों के बारे में कुछ भी विचार करते हैं, हमारे मन में भेद-विभेद घर कर जाते हैं। हम मित्रों को शत्रुओं से भिन्न कर लेते हैं। हम अपने पालतू पशुओं को मनुष्यों से भिन्न कर लेते हैं। हम अपने मित्रों से प्रेम करते हैं और प्रेम करते हैं अपने पालतू पशुओं से। हम अपने शत्रुओं से घृणा करते हैं और घृणा करते हैं सामान्य जन्तुओं से।

२५. "हमें इस विमलक रेखा की सीमा के उस पार जाना चाहिये। हम यह कार्य अभी कर सकते हैं जब हम अपने ध्यान में इस स्वबह्वार-जगत की सीमाओं को साथ-साथ लें।"

२६. उसका बचपन कष्टनामक था।

२७. एक बार वह अपने पिता के खेतों पर गया। विश्राम के समय वह एक वृक्ष के नीचे लेटा हुआ प्राकृतिक शान्ति और सौन्दर्य का आनन्द लूट रहा था। उसी समय आकाश से एक पक्षी ठीक उसी के सामने आ गिरा।

२८. पक्षी को एक तीर लगा था, जिसने उसे बीच दिया था और जिसके कारण वह तड़फड़ा रहा था।

२९. सिद्धार्थ पक्षी की सहायता के लिये उठ बैठा। उसने उसका तीर निकाला, जकम पर पट्टी बांधी और पीने के लिये पानी दिया। उसने पक्षी को गोद में लिया और अपनी छादर के भीतर छिपाकर उसे अपनी छाती की गरमी पहुँचाने लगा।

३०. सिद्धार्थ को आश्चर्य था कि इस असहाय पक्षी को किसने बीधा होगा? सीधे ही उसका समेरा भाई देवदत्त वहाँ आ पहुँचा। वह शिकार के सभी आगुधों से सज्ज था। उसने सिद्धार्थ से कहा कि उसने उड़ते हुए एक पक्षी पर तीर चलाया था। पक्षी घायल हो गया था। कुछ दूर उड़कर वहीं कहीं आस-पास ही गिरा था। उसने सिद्धार्थ से पूछा—'क्या तुमने उसे देखा है?'

३१. सिद्धार्थ ने 'हाँ' कहकर स्वीकार किया और वह पक्षी भी उसे दिखाया जो अब बहुत कुछ स्वस्थ हो चला था।

३२. देवदत्त ने मांग की कि उसका पक्षी उसे दे दिया जाए। सिद्धार्थ ने इनकार किया। दोनों में घोर विवाद हुआ।

३३. देवदत्त का कहना था कि शिकार के नियमों के अनुसार जो पक्षी को मारता है वही उसका मालिक होता है। इसलिये वही उसका मालिक है।

३४. सिद्धार्थ का कहना था कि वह आधार ही सर्वथा गलत है। जो किसी की रक्षा करता है, वही उसका स्वामी हो सकता है। हत्यारा कैसे किसी का स्वामी हो सकता है?

३४. दोनों में से एक भी पक्ष मुक्तने के लिये तैयार न था। मामला न्यायालय तक जा पहुँचा। न्यायालय ने सिद्धार्थ के पक्ष में निर्णय दिया।

३६. देवदत्त सिद्धार्थ का ब्रह्म-वैरी बन गया। लेकिन सिद्धार्थ की करुणा ऐसी ही अनुगम थी कि वे हमारे भाई को प्रसन्न बनाये रखने की बजाय एक पक्षी की जान बचला अधिक धन्यस्कर समझते थे।

३७. सिद्धार्थ गौतम का आरम्भिक जीवन कुछ-कुछ ऐसा ही था।

८. विवाह

१. दण्डपाणि नाम का एक शाक्य था। यशोधरा उसकी लड़की थी।^{*} अपने सौन्दर्य और 'शील' के लिये वह प्रसिद्ध थी।

२. यशोधरा अपने सोलहवें वर्ष में पहुँच गई थी और दण्डपाणि को उसके विवाह की चिन्ता ने आ घेरा था।

३. प्रथा के अनुसार दण्डपाणि ने अपने सभी पड़ोसी 'देशों' के तरुणों को अपनी लड़की के 'स्वयंवर' में सम्मिलित होने का निमन्त्रण भेजा।

४. सिद्धार्थ गौतम के नाम भी एक निमन्त्रण भेजा गया था।

५. सिद्धार्थ गौतम का भी सोलहवाँ वर्ष पूरा हो चुका था। उसके माता-पिता भी उसकी शादी के लिये बैसे ही चिन्तित थे।

६. उन्होंने उसे 'स्वयंवर' में जाने को और यशोधरा का 'वाणि-ग्रहण' करने को कहा। उसने अपने माता-पिता का कहना माना।

७. आगत तरुणों में से यशोधरा ने सिद्धार्थ-गौतम को ही चुना।

८. दण्डपाणि बहुत प्रसन्न नहीं था। उसे उन दोनों के 'शाम्पत्य' जीवन की सफलता में सन्देह था।

९. उसे लगता था कि सिद्धार्थ को तो साधु-सन्तों की संगति ही अच्छी लगती है। उसे तो एकान्त प्रिय है। वह एक अच्छा सद्गृहस्थ कैसे बन सकेगा?

१०. यशोधरा सिद्धार्थ गौतम के अतिरिक्त और किसी दूसरे से विवाह न करना चाहती थी। उसने अपने पिता से पूछा क्या साधु-सन्तों की संगति को अच्छा समझना कोई अपराध है? यशोधरा का ऐसा क्वाल नहीं था।

११. यशोधरा की माँ को जब मालूम हुआ कि यशोधरा सिद्धार्थ गौतम के अतिरिक्त और किसी दूसरे से विवाह करना ही नहीं चाहती, उसने दण्डपाणि से कहा कि उसे राजी हो जाना चाहिये। दण्डपाणि राजी हो गया।

१२. गौतम के प्रतिद्वन्दी निराम ही नहीं हुए बल्कि उन्हें मनता था कि उनका अपमान हो गया है।

१३. उन्हें लगता था कि कम से कम उनके प्रति 'ग्याव' करने के लिये ही

यशोधरा को चाहिये था कि 'चुनाव' करने से पहले किसी न किसी तरह से सबकी 'परीक्षा' लेती।

१४. कुछ समय तो वह चुन रहे। उनका विश्वास था कि दण्डपाणि यशोधरा को गौतम का चुनाव ही न करने देगा। उनका उद्देश्य वही ही पूरा हो जायगा।

१५. लेकिन जब उन्होंने देखा कि दण्डपाणि असफल रहा है, उन्होंने हिम्मत से काम लिया और इस बात की मांग की कि 'लक्ष्म-वेध' की एक 'परीक्षा' होनी ही चाहिये। 'दण्डपाणि' को स्वीकार करना पड़ा।

१६. पहले तो सिद्धार्थ इसके लिये तैयार न था। लेकिन, उसके सारथी, छन्दक ने उसे समझाया कि यदि वह अस्वीकार करेगा तो वह उसके लिये, उसके परिवार के लिये तथा सबसे बढ़कर यशोधरा के लिये ही बड़ी सज्जा की बात होगी।

१७. सिद्धार्थ-गौतम के मन पर इस तर्क का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने उस 'परीक्षण' में सम्मिलित होना स्वीकार किया।

१८. 'परीक्षण' आरम्भ हुआ। प्रत्येक प्रतिद्वन्दी ने अपना-अपना कौशल दिखाया।

१९. सबके अन्त में गौतम की भारी थी। किन्तु उसी का 'लक्ष्य-वेध' सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुआ।

२०. इसके बाद विवाह हुआ। शुद्धोदन और दण्डपाणि दोनों को बड़ी प्रसन्नता थी। इसी प्रकार यशोधरा और महाप्रजापति भी बड़ी प्रसन्न थीं।

२१. विवाह हो चुकने के काफी समय बाद यशोधरा ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम राहुल रखा गया।

६. पुत्र के संरक्षण के लिये पिता की योजना

१. राजा प्रसन्न था कि पुत्र का विवाह हो गया और वह गृहस्थ बन गया, किन्तु साथ ही असित ऋषि की भविष्यवाणी भूत की तरह उसका पीछा कर रही थी।

२. उस भविष्यवाणी को पूरा न होने देने के लिये उसने सोचा कि सिद्धार्थ गौतम को 'काम-भोगों' के बंधन से अच्छी तरह से बांध दिया जाय।

३. इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये शुद्धोदन ने अपने पुत्र के लिये तीन महल बनवाये—एक क्षीण ऋतु में रहने के लिये, दूसरा वर्षा ऋतु में रहने के लिये और एक तीसरा ग्रीष्म ऋतु में रहने के लिये। उसने इन महलों को हर तरह के भोगविलास के साधनों से सुसज्जित किया।

४. हर महल के गिर्द एक-एक सुन्दर बाग था जिसमें नाना तरह के फलों से लदे हुए पेड़ थे।

५. अपने पुरोहित उदायी के परामर्श से उसने निश्चय किया कि कुमार के लिये एक 'अन्तःपुर' की व्यवस्था करनी चाहिये, जहाँ मुन्दरियों की कमी न हो।

६. सुदोदन ने तब उदायी को कहा कि वह उन योद्धाओं को संकेत कर दे कि वे कुमार का चित्त जीतने का प्रयास करें।

७. उदायी ने मुन्दरियों को इकट्ठा कर कुमार का चित्त लुभाने का संकेत ही नहीं किया, बिधि भी बताई।

८. उन्हें सम्बोधित करके उसने कहा—“आप सब इस तरह की कला में दक्ष हैं, आप सबको समर्पित चित्त की भाषा का अच्छा परिचय है। आप सब सुन्दर हैं, आकर्षक हैं। आप सब अपने कौशल में कुशल हैं।

९. “आप अपने चातुर्य से उन ऋषि-मुनियों को भी जीत सकती हैं जो कामजित् माने जाते हैं। आप उन देवताओं को भी जीत सकती हैं, जिन्हें किन्नर दिग्भूलोक की अप्सरारण्य ही लुभा सकती हैं।

१०. “अपनी कला, अपनी चतुराई, अपने आकर्षण से पुरुषों की तो बात ही क्या, आप स्त्रियों तक को मोह ले सकती हैं।

११. “अपने-अपने क्षेत्र में आप सब इतनी कुशल हैं कि आप सबके लिये कुमार को कामरूपी रज्जु में बांध कर अपने वश में कर लेना किसी भी तरह कठिन नहीं हो सकता।

१२. “नवागत बभ्रुओं को—जिनकी आँखों पर लाज-शर्म का पर्दा पड़ा रहता है—तो यह शोभा देता है कि वे संकोच से काम लें। आप सबकी नहीं।

१३. निस्सन्देह, यह बीर भी महान् है। लेकिन इससे तुम्हें क्या। स्त्री का बल भी तो महान् होता है। यही तुम्हारा दुःख संकल्प होना चाहिये।

१४. “पुरातन समय में काशी की एक बैया ने एक ऋषि को पथ-भ्रष्ट कर दिया था और उसे अपने पैरों में लिटाया था।

१५. “और उस महान् व्याप्तो प्रसिद्ध विश्वामित्र की घृताची नाम की अप्सरा ने दस वर्ष तक जंगल में बन्दी बनाकर रखा था।

१६. “इस प्रकार के अनेक ऋषि-मुनियों की स्थितियाँ रास्ते पर ले भाई हैं। इस कुमार ने तो अभी ताण्ड्य के प्रथम-ग्रहर में पैर ही रखा है। इसका तो कहना ही क्या?

१७. “जब यह ऐसा है तो तुम निषङ्ग होकर प्रयास करो ताकि राज्य-परिवार की परम्परा बनी रहे।

१८. “सामान्य स्त्रियाँ सामान्य आर्षभियों को वशीभूत करती हैं, किन्तु धन्य हैं वे जो असाधारण मनुष्यों को वशीभूत करती हैं।”

१०. स्त्रियाँ राजकुमार को अपने वश में न ला सकीं ।

१. उदासी के ये शब्द स्त्रियों के हृदय को छू गये । उन्होंने कुमार को बसीभूत करने के लिये अपनी सारी शक्ति लगा देने का निश्चय किया ।

२. लेकिन अपनी भ्रू-नयिमाओं, अपने अक्षि-कटावों, अपनी मुस्कराहटों, अपने कोमल अंग-संचालनों के बावजूद उन पौष्टियों को यह विश्वास न था कि उनका जादू कुमार पर चल सकेगा ।

३. लेकिन पुरोहित उदासी की प्रेरणा के कारण, कुमार के कोमल स्वभाव के कारण तथा मुरा और प्रेम-मद के कारण उनका आत्म-विश्वास भी अही स्थिर हो गया ।

४. तब स्त्रियाँ अपने काम में लग गईं । कुमार की स्थिति वैसी ही थी वैसी हीमिनी-समूह ने घिरे हुए हिमालय के जंगल में बिचरते हुए हस्ति-राज की हो ।

५. उन स्त्रियों से घिरा हुआ वह राजकुमार ऐसे ही सुखोभित होता था जैसे सूर्य-देवता अपने दिव्यभवन में अप्सराओं से घिरा हो ।

६. उनमें से कुछ ने रागातिरेक से उसे अपनी छातियों से दबाया ।

७. कुछ दूसरियों ने लज्जलङ्घने का बहाना बना उसे बड़ी जोर से अपनी छातियों से जमाया । उसके बाद उन्होंने अपने लताओं से कोमल करों को उसके कंधों पर डीठा जोह अपना भार भी उस पर डाल दिया ।

८. कुछ दूसरियों ने अपने मुरा-बंध, रत्नजर्ण होठों वाले मुख से उसके कान में कुसुमावा—मेरी रहस्यपूर्ण बातें सुनीं ।

९. कुछ दूसरियों ने—जिनके वस्त्र दूसरों से भीम थे—उसे आज्ञा देने की तरह कहा—“हमारी पूजा यहाँ करो ।”

१०. दूसरी नीलाम्बरा मुरा से मत होने का बहाना बनाते हुए अपनी जीभ को बाहर करके खड़ी हो गई जैसे रात के समय बिल्ली कौंध रही हो ।

११. कुछ दूसरी वृषभों का निनाद करती हुई इधर-उधर घूमती थी और अपने अर्ध-आच्छादित शरीर का प्रदर्शन भी कर रही थी ।

१२. कुछ दूसरी एक आज्ञा-वाक्ता को पकड़े खड़ी थी और अपनी कलश-सदृश छातियों का प्रदर्शन कर रही थी ।

१३. कुछ किसी पद्म-सरोवर से आई थी, हाथों में पद्म थे, जिनमें भी पद्मों के ही समान थी, वे पद्म-पाणि की तरह उस पद्म-मुख राजकुमार के पास खड़ी थी ।

१४. एक दूसरी ने उन्नत हाव-भाव के साथ एक गीत गाया ताकि वह संगत भी उत्तेजित हो सके । उसकी दृष्टि कह रही थी—अरे ! तुम किस भ्रम में पड़े हो !

१५. दूसरी ने अपने प्रकाशपूर्ण चेहरे पर अपनी झुकती कमान को पूरा खोल कर उसकी मुख-मुद्रा की मजाल बनाई ।

१६. एक दूसरी जिसकी छापी पूरी डबरी थी और जिसके कानों की बालियाँ हवा में झूम रही थीं जोर से हँसी और बोली—“यदि सबों तो मुझे पकड़ें।”

१७. कुछ दूसरियों ने उसे फूल-मालाओं के बंधन में बाँधने की कोशिश की। कुछ दूसरियों ने उस पर मधुर किन्तु अंकुश के समान सुनने वाले शब्दों का प्रहार किया।

१८. एक दूसरी ने उसे बुलाने के लिये, एक आस-बृक्ष की शाखा को हाथ में लेकर एक फूल दिखाया और प्रश्न किया—“वह किसका फूल है?”

१९. एक दूसरी ने आदमी की-सी चाल-ढाल बनाकर कहा—“हे स्त्री-जित् जा इस पृथ्वी को जीत।”

२०. एक दूसरी ने एक नील-पद्म की पंख लेते हुए और अपनी गोल-गोल आँखें भटकाते हुए कुछ अस्मर्य शब्दों में राजकुमार को सम्बोधित किया—

२१. “स्वामी ! मधु-मन्थी पुष्पों से आच्छादित इस आस-वृक्ष को देखें। स्वर्ण-पिञ्जर में बन्द की तरह कोकिल यहाँ गाती है।

२२. “यहाँ आये और इस अशोक-वृक्ष को देखें जो प्रेमियों का प्रोवचक है और जहाँ मधु-मन्थियाँ ऐसे भूज्जार करती हैं मानों वे अग्नि-दग्ध हों।

२३. “यहाँ आये और आस-वृक्षिका लिपटे इस तिलक वृक्ष को देखें मानों कोई पीतवस्त्रधारिणी किसी श्वेत वस्त्र आच्छादित पुरुष से लिपटी हो।

२४. अंगूरी-रत्न की तरह प्रकाशमान् पुरिष कुरवक वृक्ष को देखें जो कि इस प्रकार झुका हुआ है, मानों स्त्रियों के नखों की खाली से आहत हुआ हो।

२५. “इस तरुण अशोक को आकर देखें, जिसकी नई-नई शाखायें चारों ओर फैली हुई हैं। ऐसा लगता है मानों वह हमारे हाथों के सौन्दर्य को देखकर ही लज्जा से गड़ा जाता हो।

२६. “इस नील को ही देखें, जिसके तट पर सिन्दवार उमी है, मानों श्वेत वस्त्र पर एक सुन्दर रमणी लिटी हुई है।

२७. “स्त्री जाति को सामर्थ्य देनी। पानी में वह पकवी आगे-आगे जाती है और उसका पति पीछे-पीछे मानो वह उसका दास हो।

२८. “मत्त कोकिल का समीप सुनो, और दूसरे का भी उसका अक्षरशः अनुकरण करते हुए।

२९. “अच्छा होता यदि वपन्त ऋतु में पक्षियों में पैदा होने वाले उन्माद का कुछ अंश आप में भी होता और वह अपने आपको सदा बुद्धिमान् समझते रहने वाले पक्षियों के विचार न होते।”

३०. इस प्रकार इन प्रेमासक्त स्त्रियों ने राजकुमार के विरह हर तरह की बुद्ध-नीति बरती।

३१- इतने आक्रमण किये जाने पर भी वह संयतेन्द्रिय न प्रसन्न हुआ, न मुत्कराया ।

३२- उनकी वास्तविक अवस्था से परिचय प्राप्त होने के कारण राजकुमार स्थिर एकाग्रचित्त से विचार करता रहा ।

३३- "इन स्थियों में किन बात की ऐसी कमी है कि ये इतना भी नहीं देख सकती कि पीछन चञ्चल है । वार्धक्य समस्त सौन्दर्य का नाश कर देगा ।" ११

३४- इस प्रकार वह बे-मेल-मेल-सही-सही चलता रहा । किन्तु इसका कुछ फल न हुआ ।

११. प्रधान मंत्रों का कुमार को समझाना

१. उदायी समझ गया कि तर्कनिर्णय असफल रही है और राजकुमार ने उनमें कोई दिलचस्पी नहीं ली ।

२. नीतिकुशल उदायी ने राजकुमार से स्वयं बातचीत करने की सोची ।

३. राजकुमार से एकान्त में उदायी ने कहा—“क्योंकि मुझे राजा ने आपके सुहृद्-पद पर नियुक्त किया है । इसलिये मैं एक मित्र की हैसियत से ही आपसे दो बातें करना चाहता हूँ ।

४. “किसी अहित-काम से बचना, हितकर काम में लगाना, विपत्ति में साव न छोड़ना—मित्र के लिये तीन सज्जन हैं ।

५. “यदि मैं अपनी सौंदर्य की घोषणा करने के अनन्तर भी पुरुषार्थ से विमुक्त आपको न समझाऊँ तो मैं अपने सर्वोत्थम से च्युत होता हूँ ।

६. “ऊपरी मन से भी स्त्रियों से सम्बन्ध जोड़ना अच्छा है । इससे आदमी का संकोच जाता रहता है और मन का रंजन भी होता ही है ।

७. “निरादर न करना और उनका कहना मानना—इन दो बातों से ही स्त्रियाँ प्रेम के बन्धन में बंध जाती हैं । निस्सन्देह सद्गुण भी प्रेम का कारण होते हैं । स्त्रियाँ आवर चाहती हैं ।

८. “हे विशाखा ! क्या आप ऊपरी मन से भी, उनके सौन्दर्य के अनुरूप शालीनता दिखाने के लिये, उन्हें प्रसन्न रखने का कुछ प्रयास न करेंगे ?

९. “दाक्षिण्य ही स्त्रियों की जीवण है । दाक्षिण्य ही उनका अलंकार है । बिना दाक्षिण्य का सौन्दर्य पुष्प-विहोत उद्यान के समान है ।

१०. “लेकिन अकेले दाक्षिण्य से भी क्या ! उसके साथ हृदय की भावना का भी मेल होना चाहिये । इतनी कठिनाई से हस्तगत हो सकने वाले कामभोग जब आपकी मुट्ठी में हैं तो निश्चय से आप उनका निरस्कार न करेंगे ।

११. “काम की ही सर्वप्रथम पुरुषार्थ मान कर, प्राचीन काल में, इन्द्र तक ने गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या का आलिषण किया ।

१२. "इसी प्रकार अमरस्य ऋषि ने भी सोमभावाँ रोहिणी के साथ रमण किया और धृति के अनुसार लोभमुद्रा के साथ भी यही बीती।

१३. "जीवन्मृत्यु मरुत की पुत्री ममता के साथ ऋषि बृहस्पति ने सहभोग किया और भरद्वाज को जन्म दिया।

१४. "अर्घ्य अर्पण करती हुई बृहस्पति की पत्नी को चन्द्रमा ने ग्रहण किया और दिव्य युध को जन्म दिया।

१५. "इसी प्रकार पुरातन समय में रागातिरेक से पराजित ऋषि ने वसुता तट पर वसन्त-युध की पुत्री काली के साथ सहवास किया।

१६. "वसिष्ठ ऋषि ने अक्षमाता नाम की एक मीन जाति की स्त्री से सहवास किया और कपिलनाद नाम के पुत्र को जन्म दिया।

१७. "और बड़ी आमु हो जाने पर भी राजर्षि ययाति ने चैत्ररथ वन में अप्सरा विश्वाची के साथ संभोग किया।

१८. "यद्यपि वह जानता था कि पत्नी के साथ सहवास उसकी मृत्यु का कारण होगा तो भी कौरव-नरेश पाण्डु मारु के रूप और गुणों पर मुग्ध हो, प्रेम के बशीभूत हो गया।

१९. "इस प्रकार के महान् पुरुषों तक ने जिगृप्सित काम-भोगों का सेवन किया है। तब प्रशंसनीय काम-भोगों के सेवन में तो दोष ही क्या है ?

२०. "यह सब होने पर भी, आश्चर्य है कि शक्ति, तारुण्य और सौन्दर्य से सम्पन्न आप उस काम-भोगों की उपेक्षा कर रहे हैं जिन पर न्यायतः आपका अधिकार है और जिनमें सारा जगत आसक्त है।" १२

१२. राजकुमार का प्रधान मन्त्री को उत्तर

१. पवित्र परम्परा से समर्पित, उचित ही प्रतीत होने वाले इन वचनों को सुनकर मेघ-गर्जन सदृश स्वर में राजकुमार ने उत्तर दिया—

२. "आपकी स्नेह-सिक्त भाषा तो आपके योग्य ही है, लेकिन मैं आपकी बताऊँगा कि आप कहीं गलती पर हैं।

३. "मैं संसार के विषयों की अवज्ञा नहीं करता। मैं जानता हूँ कि सारा जगत इन्हीं में आसक्त है। लेकिन क्योंकि मैं जानता हूँ कि सारा संसार अनित्य है, इसलिये मेरा मन उसमें रमण नहीं करता।

४. "यदि यह स्त्री-सौन्दर्य स्थायी भी रहे, तो भी यह किसी बुद्धिमान् आवामी के योग्य नहीं कि उसका मन विषयों में रमण करे।

५. "और जहाँ तक तुम कहते हो कि वे बड़े-बड़े महात्मा भी विषयों के बशीभूत हुए हैं तो वे इस विषय में प्रमाण नहीं हैं, क्योंकि अन्त में वे भी क्षय को प्राप्त हुए हैं।

६. "जहाँ क्षम है वहाँ वास्तविक महानता नहीं है, जहाँ विषयासक्ति है वहाँ वास्तविक महानता नहीं है, जहाँ असंयम है वहाँ वास्तविक महानता नहीं है।

७. "और यह जो आपका कहना है कि ऊपरी मन से हो स्त्रियों से स्नेह करना चाहिये तो चाहे यह दक्षता से भी हो तो भी मुझे यह शकिकर नहीं है।

८. "यदि यह पदार्थ नहीं है तो मुझे स्त्रियों की इच्छा के अनुसार अनुवर्तन भी प्रिय नहीं। यदि आदमी का मन उसमें नहीं है तो ऐसे अनुवर्तन पर भी शिक्कार है।

९. "जहाँ राग का अतिशय है, जहाँ मिथ्यात्व में विश्वास है, जहाँ असीम आसक्ति है और जहाँ विषयों की सदोपला का पदार्थ दर्शन नहीं—ऐसी वज्जना में भी क्या परा है ?

१०. "और यदि राग के वशीभूत हुए प्राणी परस्पर एक दूसरे को ठगते हैं तो क्या ऐसे पुरुष भी इस योग्य नहीं कि स्त्रियाँ उनकी ओर देखें तक नहीं और क्या स्त्रियाँ भी इस योग्य नहीं कि पुरुष उनकी ओर देखें तक नहीं ?

११. "क्योंकि यह सब ऐसा ही है, इसलिये मुझे विश्वास है कि तुम मुझे विषयभोग के अशोभन कुपम पर नहीं ले जाओगे।" १२

१२. राजकुमार के मुनिचित्त दृष्ट संकल्प ने उदायी को निरुत्तर कर दिया। उसने राजा को सारा वृत्तान्त जा सुनाया।

१३. जब सुहोदन को यह मालूम हुआ कि उसके पुत्र का चित्त किस प्रकार विषयों से संबंधा विमुक्त है तो उसे सारी रात नींद नहीं आई। उसके दिल में वैसा ही दर्द था जैसा किसी हाथी को छाती में जिसे तीर लगा हो।

१४. अपने मंत्रियों के साथ उसने बहुत-सा समय यह विचार करने पर लक्ष्य किया कि वह किस उपाय से सिद्धार्थ को संसार के विषयों की ओर अभिमुख कर सके और उस जीवन से विमुक्त कर सके जिसकी ओर अपसर होने की उसकी पूरी संभावना थी। लेकिन उन उपायों के अतिरिक्त जिन्हें करके वे मात खा चुके थे, उन्हें कोई दूसरा उपाय नहीं मिला।

१५. जिनकी पुष्पमालायें और अलंकार स्वयं सिद्ध ही चुके थे, जिनके हावभाव और आकर्षण-कौशल निरप्रयोजन सिद्ध ही चुके थे, जिसके हृदय में निगूढ़ प्रेम था, उन तरणियों की सारी मण्डली बिदा कर दी गई।

१३. शाक्य संघ में दीक्षा

१. शाक्यों का अपना संघ था। बीस वर्ष की आयु होने पर हर शाक्य तरुण को शाक्य संघ में दीक्षित होना पड़ता था और संघ का सदस्य होना होता था।

२. सिद्धार्थ भी बीस वर्ष का हो चुका था। अब यह समय था कि वह संघ में दीक्षित हो और उसका सदस्य बने।

३. शाक्यों का अपना एक संघ-भवन था, जिसे वह संघागार कहते थे। वह कवितवस्तु में ही था। संघ-सभायें संघागार में ही होती थीं।

४. सिद्धार्थ को संघ में दीक्षित कराने के लिये बुद्धोदन ने शाक्य-पुरोहित को संघ की एक सभा बुलाने के लिये कहा।

५. तदनुसार कवितवस्तु में शाक्यों के संघागार में संघ एकत्रित हुआ।

६. सभा में पुरोहित ने प्रस्ताव किया कि सिद्धार्थ को संघ का सदस्य बनाया जाय।

७. शाक्य-सेनापति अपने स्थान पर खड़ा हुआ और उसने संघ को सम्बोधित किया—“शाक्य कुल के बुद्धोदित के परिवार में उत्पन्न मौर्यम संघ का सदस्य बनना चाहता है। उसकी आयु पूरे बीस वर्ष की है और वह हर तरह से संघ का सदस्य बनने के योग्य है। इसलिये मेरा प्रस्ताव है कि उसे शाक्य-संघ का सदस्य बनाया जाय। यदि कोई इस प्रस्ताव के विरुद्ध हो तो बोलें।”

८. किसी ने प्रस्ताव का विरोध नहीं किया। सेनापति बोला—“मैं दूसरी बार भी पूछता हूँ कि यदि कोई प्रस्ताव के विरुद्ध हो तो बोलें।”

९. प्रस्ताव के विरुद्ध बोलने के लिये कोई खड़ा नहीं हुआ। सेनापति ने फिर कहा—“मैं तीसरी बार भी पूछता हूँ कि यदि कोई प्रस्ताव के विरुद्ध हो तो बोलें।”

१०. तीसरी बार भी कोई प्रस्ताव के विरुद्ध नहीं बोला।

११. शाक्यों में यह नियम था कि बिना प्रस्ताव के कोई कार्यवाई न हो सकती थी और जब तक कोई प्रस्ताव तीन बार पास न हो तब तक वह कार्य रूप में परिणत नहीं किया जा सकता था।

१२. क्योंकि सेनापति का प्रस्ताव तीन बार निर्विरोध पास हो गया था, इसलिये सिद्धार्थ के विधिवत् शाक्य-संघ का सदस्य बन जाने की घोषणा कर दी गई।

१३. तब शाक्यों के पुरोहित ने खड़े होकर सिद्धार्थ की अपने स्थान पर खड़े होने के लिये कहा।

१४. सिद्धार्थ को सम्बोधन करके उसने पूछा—“क्या आप इसका अनुभव करते हैं कि संघ ने आपको अपना सदस्य बनाकर सम्मानित किया है?” सिद्धार्थ का उत्तर था—“मैं अनुभव करता हूँ।”

१५. “क्या आप संघ के सदस्यों के कर्तव्य जानते हैं?” “मुझे खेद है कि मैं उनसे अपरिचित हूँ, किन्तु उन्हें जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।”

१६. पुरोहित बोला—“मैं सर्वप्रथम आपको बताऊँगा कि संघ के सदस्य की दैवियत में आपके क्या कर्तव्य हैं?” उसने उन्हें एक एक करके कथनाः गिनाया—

“(१) आपको अपने तन, मन और धन में शाक्यों के स्वार्थ की रक्षा करनी होगी।
 (२) आपको संघ की सभाओं में उपस्थित रहना होगा। (३) आपको बिना

किसी भी भय या गलतफाहमी के किसी भी शक्य का दोष झुलकर कह देना होगा।
(४) यदि आप पर कभी कोई दोषारोपण किया जाय तो आप को कोषित नहीं होना होगा, दोष होने पर अपना दोष स्वीकार कर लेना होगा, निर्दोष होने पर वैसा कहना होगा।”

१७. इसके आगे पुरोहित ने कहा—“मैं आपको बताना चाहता हूँ कि क्या करने से आप संघ के सदस्य न रह सकेंगे—(१) व्यभिचार करने पर आप संघ के सदस्य न रह सकेंगे, (२) किसी को हत्या करने पर आप संघ के सदस्य न रह सकेंगे, (३) चोरी करने पर आप संघ के सदस्य न रह सकेंगे, (४) झूठी साक्षी देने पर आप संघ के सदस्य न रह सकेंगे।”

१८. सिद्धार्थ का उत्तर था—“मान्यवर ! मैं आपका कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझे संघ के नियमों से परिचित कराया। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं उनके अर्थ और व्यवजन सहित उन्हें पालन करने का प्रयास करूँगा।”

१४. संघ से संघर्ष

१. सिद्धार्थ को ज्ञान-संघ का सदस्य बने आठ वर्ष बीत चुके थे।

२. वह संघ का बड़ा ही गढ़ादार और दृढ़ सदस्य था। जितनी दिलचस्पी उसे निजी मामलों में थी, उतनी ही दिलचस्पी उसे संघ के मामलों में भी थी। संघ के सदस्य की हेमियत से उसका आचरण आदर्श था। वह सबका प्रिय-भावजन बन गया था।

३. उसकी सदस्यता के आठवें वर्ष में एक ऐसी घटना घटी जो सिद्धार्थ के परिवार के लिये दुर्घटना बन गई और उसके अपने लिये जीवन-मरण का प्रश्न।

४. इस दुःखान्त प्रकरण का आरम्भ इस प्रकार हुआ।

५. शाक्यों के राज्य से सटा हुआ कोलियों का राज्य था। रोहिणी नदी दोनों राज्यों की विभाजक-रेखा थी।

६. शाक्य और कोलिय दोनों ही रोहिणी नदी के पानी से अपने अपने सेत सींचते थे। हर फसल पर उनका आपस में विवाद होता था कि रोहिणी के जल का पहले और कितना उपभोग कौन करेगा ? यह विवाद कभी-कभी झगड़ों में परिणत हो जाते और झगड़े गड़ाइयों में।

७. जिस वर्ष सिद्धार्थ की आयु २० वर्ष की हुई उस वर्ष रोहिणी के पानी को लेकर शाक्यों के नौकरों में और कोलियों के नौकरों में बड़ा झगड़ा हो गया। दोनों पक्षों ने चोट खाई।

८. जब शाक्यों और कोलियों को इसका पता लगा तो उन्होंने सोचा कि इस प्रश्न का युद्ध के द्वारा हमेशा के लिये निर्णय कर लिया जाय।

९. आकाशों के सेनापति ने कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ देने की बात पर विचार करने के लिये संघ का एक अधिवेशन बुलाया ।

१०. संघ के सदस्यों को सम्बोधित करके सेनापति ने कहा—“कोलियों ने हमारे लोगों पर आक्रमण किया । हमारे लोगों को पीछे हट जाना पड़ा । कोलियों ने पहले भी अनेक बार ऐसी आक्रमणात्मक कार्रवाइयाँ की हैं । हमने आज तक उन्हें सहन किया । लेकिन यह इसी तरह नहीं चल सकता । यह रकना चाहिये और इसे रोकने का एक ही तरीका है कि कोलियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जाय । मेरा प्रस्ताव है कि कोलियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जाय । जो विरोध करना चाहें वे शोलें ।”

११. सिद्धार्थ गौतम अपने स्थान पर खड़ा हुआ और बोला—“मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूँ । युद्ध से कभी किसी समस्या का हल नहीं होता । युद्ध छेड़ देने से हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी । इसने एक दूसरे युद्ध का बीजारोपण हो जायगा । जो किसी को हत्या करता है, उसे कोई दूसरा हत्या करने वाला मिल जाता है; जो किसी को जीतता है उसे कोई दूसरा जीतने वाला मिल जाता है; जो किसी को मृतता है उसे कोई दूसरा मृतने वाला मिल जाता है ।”

१२. सिद्धार्थ गौतम ने अपनी बात जारी रखी—“मुझे ऐसा लगता है कि आकाशों की कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने में अलदबाबी से काम नहीं लेना चाहिये । पहले सावधानी से इस बात की जाँच करनी चाहिये कि वास्तव में दोषी पक्ष कौनसा है ? मैंने सुना है कि हमारे आदिमियों ने भी ज्यादती की है । यदि ऐसा है तो हम भी निदोष नहीं हैं ।”

१३. सेनापति ने उत्तर दिया—“यह ठीक है कि हमारे आदिमियों ने ही पहल की थी । लेकिन यह नाद रहता चाहिये कि पहले पापी लेने की भी यह हमारी ही बारी थी ।”

१४. सिद्धार्थ गौतम ने कहा—“इससे स्पष्ट है कि हम भी सर्वथा निदोष नहीं हैं । इसलिये मेरा प्रस्ताव है कि हम अपने में से दो आदमी चुनें और कोलियों से भी कहा जाय कि वे भी अपने में से दो आदमी चुनें और फिर यह चारों मिलकर एक पाँचवाँ आदमी चुनें । ये पाँचों आदमी मिलकर झगड़े का निपटारा कर दें ।”

१५. सिद्धार्थ गौतम ने प्रस्ताव में जो परिवर्तन सुझाया था उनका विधिक समर्थन हो गया । किन्तु सेनापति ने विरोध किया । कहा—“मुझे विश्वास है कि जब तक कोलियों को कड़ा दण्ड नहीं दिया जाता तब तक उनका यह दृष्टा समाप्त नहीं होगा ।”

१६. प्रस्ताव और उसमें सुझाये हुए परिवर्तन पर मत लेने आवश्यक हो गये । पहले सिद्धार्थ के सुझाये परिवर्तन पर ही मत लिये गये । बहुत बड़े बहुमत से सिद्धार्थ का सुझाव अमान्य हो गया ।

१७. इसके बाद सेनापति ने स्वयं अपने प्रस्ताव पर मत मणि। सिद्धार्थ गौतम ने फिर खड़े होकर विरोध किया। उसने कहा—“मेरी प्रार्थना है कि संघ इस प्रस्ताव को स्वीकार न करे। शाक्य और कोलिय निकट-सम्बन्धी हैं। परस्पर एक दूसरे का नाश करने में बुद्धिमानों नहीं है।”

१८. सेनापति ने सिद्धार्थ गौतम की स्थापना का सर्वथा विरोध किया। उसने इस बात पर जोर दिया कि युद्ध में शत्रुओं के लिये कोई अपना-भराया नहीं होता। राज्य के लिये उन्हें अपने सगे भाइयों से भी लड़ना ही चाहिये।

१९. ब्राह्मणों का धर्म है यज्ञ करना, क्षत्रियों का धर्म है युद्ध करना, वैश्यों का धर्म है व्यापार करना और शूद्रों का धर्म है सेवा करना। हर किसी को अपना-अपना धर्म निभाने में ही पुण्य है। यही शास्त्रों की आज्ञा है।

२०. सिद्धार्थ का उत्तर था—“जहाँ तक मैं समझता हूँ, धर्म तो इस बात के हृदयगम करने में है कि बैर से बैर कभी शान्त नहीं होता। यह केवल ज़बर से ही शान्त हो सकता है।

२१. सेनापति बेसब्र हो उठा। बोला—“इस दार्शनिक शास्त्रार्थ में पड़ना बेकार है। स्पष्ट बात यह है कि सिद्धार्थ को मेरा प्रस्ताव अमान्य है। हम सब का मत लेकर इसका निश्चय करें कि संघ का क्या विचार है?”

२२. तदनुसार सेनापति ने अपने प्रस्ताव पर लोगों के मत मणि। बड़े भारी बहुमत से प्रस्ताव पास हो गया।

१५. देश छोड़ जाने का सुझाव

१. दूसरे दिन सेनापति ने शाक्य संघ की दूसरी सभा बुलाई। इसका उद्देश्य था कि उसके अनिवार्य सैनिक-भर्ती के प्रस्ताव पर विचार हो।

२. जब संघ एकत्र हुआ उसने प्रस्ताव किया कि उसे आज्ञा दी जाय कि वह बीस वर्ष और पचास वर्ष के बीच के प्रत्येक शाक्य के लिये कोलियों के विरुद्ध लड़ने के निमित्त सेना में भर्ती होता अनिवार्य होते की घोषणा कर दे।

३. सभा में दोनों पक्ष उपस्थित थे—वे भी जिन्होंने संघ की पहली सभा में युद्ध-घोषणा के पक्ष में मत दिया था और वे भी जिन्होंने इसके विरुद्ध मत दिया था।

४. जिन्होंने इसके पक्ष में मत दिया था, उनके लिये सेनापति का प्रस्ताव स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं थी। यह उनके पूर्व निश्चय का स्वाभाविक परिणाम था।

५. लेकिन जिस अल्पमत ने उक्त निर्णय के विरुद्ध मत दिया था, उसके सामने एक कठिनाई थी। उसकी समस्या थी—बहुमत के आगे सर झुकाता अथवा नहीं झुकाता ?

६. अल्पमत का निश्चय था कि बहुमत के आगे सिर न झुकाया जाय।

इसीलिये उन्होंने उस सभा में उपस्थित रहने का भी निर्णय किया था। दुर्भाग्य से किसी में यह साहस नहीं था कि यही बात सुन कर कह सके। कदाचित् वे बहुमत का विरोध करने के परिणामों से परिचित थे।

७. जब सिद्धार्थ ने देखा कि उसके समर्थक मौन हैं तो वह उठ खड़ा हुआ। और उसने सभ को सम्बोधित करके कहा—“मित्रो! आप जो चाहें कर सकते हैं। आपके साथ बहुमत है। लेकिन मुझे सभ के साथ यह कहना पड़ता है कि मैं अनिवार्य सैनिक भर्तों का विरोध करूँगा। मैं आपकी सेना में सम्मिलित नहीं होऊँगा। मैं युद्ध में भाग नहीं लूँगा।”

८. सिद्धार्थ गोतम को उत्तर देते हुए सेनापति ने कहा—“उस जगह की याद करो जो तुमने सभ का सदस्य बनते समय ग्रहण की थी। यदि तुम अपने दिये गये वचनों में से किसी एक का भी पालन न करोगे तो तुम सार्वजनिक निन्दा के भाजन बनोगे।”

९. सिद्धार्थ का उत्तर था—“निरसन्देह मैंने अपने तन, मन, धन से शाक्यों के हितों की रक्षा करने का वचन दिया है। लेकिन मैं नहीं समझता कि यह युद्ध शाक्यों के हित में है। शाक्यों के हित के मुकाबले में सार्वजनिक निन्दा का मेरे लिये कोई मूल्य नहीं।”

१०. सिद्धार्थ ने सभ को इस बात की याद दिलाई और सावधान किया कि कोलियों से निरन्तर झगड़ते रहने के कारण शाक्य-सभ बहुत कुछ कोशल-नरेश के हाथ का घिलौना बन गया है। इसकी कल्पना करना आसान है कि यह युद्ध शाक्य-सभ को और भी अधिक दुर्बल बना देगा और इससे कोशल-नरेश को एक और ऐसा अवसर मिल जायगा कि वह शाक्य-सभ के स्वातन्त्र्य को और भी अधिक पटा दे।

११. सेनापति को क्रोध आ गया। वह बोला—“तुम्हारा यह भाषण कोशल तुम्हारे किसी काम न आयेगा। तुम्हें सभ के बहुमत के सामने सिर झुकाना होगा। आपद तुम्हें इस बात का बहुत भरोसा है कि कोशल-नरेश की अनुमति के बिना सभ अपनी आजादी अवहेलना करने वाले को फाँसी या देश से निकल जाने की सजा नहीं दे सकता और यदि इनमें से कोई भी एक दण्ड तुम्हें दिया जाय तो कोशल-नरेश इसकी अनुमति नहीं देगा।

१२. “लेकिन याद रखो। सभ तुम्हें दूसरे अनेक तरीकों से दण्डित कर सकता है। सभ तुम्हारे परिवार के सामाजिक बहिष्कार का निर्णय कर सकता है और सभ तुम्हारे परिवार के सदस्यों को बन्ध कर सकता है। इसके लिये सभ को कोशल-नरेश की अनुमति की आवश्यकता नहीं।”

१३. सिद्धार्थ ने समझ लिया कि यदि उसने कोलियों के विरुद्ध युद्ध-धीपणा करने के प्रस्ताव का अपना विरोध जारी रखा तो उसके क्या क्या दुष्परिणाम हो

सकते हैं। इसलिये वह तीन बातों में से एक का चुनाव कर सकता था—(१) सेना में भर्ती होकर युद्ध में भाग ले सकता था, (२) फाँसी पर लटकना या देश से निकाल दिया जाना स्वीकार कर सकता था, (३) अपने परिवार के लोगों का सामाजिक बहिष्कार और उनके खेतों की बक्यों के लिये राजी हो सकता था।

१४. पहली बात वह किसी भी हालत में स्वीकार नहीं कर सकता था। वह इस विषय में दृढ़ था। तीसरी बात पर तो वह विचार तक न कर सकता था। इस परिस्थिति में उसने सोचा कि उसके लिये दूसरी बात ही सर्वाधिक मान्य हो सकती है।

१५. तदनुसार सिद्धार्थ ने संध को सम्बोधित किया—“कृपया मेरे परिवार को दण्डित न करें। सामाजिक बहिष्कार द्वारा उन्हें कष्ट न दें। उनके खेत जब्त करके उन्हें जीविकाविहीन न करें। वे निर्धन हैं। अपराधी मैं ही हूँ। मुझे अकेले ही अपने अपराध का दण्ड भोगने दें। चाहे आप मुझे फाँसी पर लटका दें और चाहे देश से निकाल दें—आप जो चाहें दण्ड दें। मैं खुशी से इसे स्वीकार कर लूँगा। और मैं इस बात का वचन देता हूँ कि मैं इस भी शिकायत को जल-नरेश से न कहूँगा।

१६. प्रव्रज्या—अभिनिष्क्रमण

१. सेनापति बोला—“तुम्हारी बात मानना कठिन है। क्योंकि यदि तुम स्वेच्छा से भी ‘मृत्यु’ अथवा ‘देश-निकास’ का वरण करो, तो भी जल-नरेश को इसका पता लग ही जायगा। वह निश्चयपूर्वक इसी परिणाम पर पहुँचेगा कि शाप-संध ने ही यह दण्ड दिया होगा और वह शाप-संध के विकृत कार्यवाई करेगा।”

२. “यदि यह कठिनाई है, तो मैं आगामी से एक उपाय सुझा सकता हूँ”, सिद्धार्थ-नीलम का उत्तर था। “मैं परित्राजक बन सकता हूँ और देश के बाहर चला जा सकता हूँ। यह भी एक प्रकार का ‘देश-निकास’ ही है।”

३. सेनापति ने सोचा कि यह एक अच्छा सुझाव है। किन्तु उसे इसके कार्यकण में परिणत होने में सन्देह था।

४. इसलिये सेनापति ने सिद्धार्थ से पूछा—“बिना अपने माता-पिता और पत्नी की अनुज्ञा के तुम परित्राजक कैसे बन सकते हो?”

५. सिद्धार्थ ने उसे विश्वास दिलाया कि वह भरसक अनुमति प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा और कहा, “मैं वचन देता हूँ कि चाहे अनुमति मिले और चाहे न मिले, मैं तुरन्त देश छोड़ दूँगा।”

६. संध को लगा कि सिद्धार्थ का मुझाव ही इस विकट समस्या का सर्व-श्रेष्ठ हल है। संध ने इसे स्वीकार कर लिया।

७. सभा के सम्मुख जो कार्य-कर्म या उसे समाप्त कर संघ विसर्जित होने की ही था कि एक शाक्य आक्षेप ने अपने स्थान पर खड़े होकर कहा—“कृपया मेरी बात सुने। मैं कुछ महत्व की सूचना देना चाहता हूँ।”

८. उसे बोलने की अनुमति मिली तो उसने कहा—“मुझे इसमें तनिक सन्देह नहीं कि सिद्धार्थ गौतम अपने वन्य का पालन करेगा और तुरन्त देश के बाहर चला जाएगा। लेकिन एक बात है, जिससे मैं थोड़ा चिन्तित हूँ।

९. अब जब कि सिद्धार्थ आँखों से अदृश्य हो जाएगा तो क्या संघ का यही इरादा है कि कोतियों के विरुद्ध तुरन्त युद्ध की घोषणा कर दी जाए।

१०. मैं चाहता हूँ कि संघ पुनः इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार करे। कुछ भी हो कोशल-नरेज को सिद्धार्थ-गौतम के देश-निकाले का तो पता ही लग जाएगा। यदि शाक्य तुरन्त कोतियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दें तो कोशल-नरेज समझ जाएगा कि सिद्धार्थ गौतम ने इसलिए देश का त्याग किया होगा क्योंकि वह कोतियों के विरुद्ध युद्ध छेड़-देने का विरोधी था। वह हमारे लिये अच्छा न होगा।

११. इसलिये मेरा प्रस्ताव है कि हमें सिद्धार्थ-गौतम के गृह-त्याग और कोतियों के विरुद्ध वास्तविक युद्ध छेड़ देने के बीच कुछ समय की रूँ ही गुजार देना चाहिये। अगला कोशल-नरेज इन दोनों घटनाओं में सम्बन्ध स्थापित कर लेगा।”

१२. संघ को लगा कि निश्चय से यह बात महत्वपूर्ण है। नीति की दृष्टि से यह मान ली गई।

१३. इस प्रकार शाक्य-संघ की यह दुःशान्त सभा समाप्त हुई और उस अवसर ने भी जो युद्ध का विरोधी था किन्तु जिसमें अपनी बात साफ-साफ कहने का साहस न था संतोष की साँस ली कि एक अत्यन्त भवानक स्थिति से किसी न किसी तरह पार हो गये।

१७. बिदाई के शब्द

१. शाक्य संघ की सभा में जो कुछ हुआ उसकी सूचना सिद्धार्थ गौतम के वापिस लौटने से बहुत पहले राजा के महल में पहुँच गई थी।

२. घर पहुँचने पर सिद्धार्थ गौतम ने देखा कि उसके माता-पिता बहुत दुःखी हैं और रो रहे हैं।

३. मुञ्जोदन ने कहा—“हम युद्ध के दुष्परिणामों की चर्चा किया करते थे। लेकिन मैं नहीं जानता था कि तुम इस सीमा तक चले आओगे।”

४. सिद्धार्थ का उत्तर था—“मैं भी नहीं सोचता था कि ऐसी स्थिति आ पहुँचेगी। मैं समझता था कि समझाने से शाक्य शान्ति के समर्थक बन आँगे।

५. "किन्तु दुर्भाग्य से, सैनिक अधिकारियों ने लोगों को इतना उत्तेजित कर दिया था कि मेरी बातों का उन पर कोई प्रभाव न पड़ा।

६. "लेकिन मैं आशा करता हूँ कि इतना तीव्र आप समझते ही होंगे कि मैंने कैसे परिस्थिति को अधिक बिगड़ने से बचा लिया। मैं सत्य और न्याय के पथ से विचलित नहीं हुआ और सत्य और न्याय का आग्रह करने का जो भी दण्ड या मीन मैंने अपने ही सिर पर ले लिया।"

७. लेकिन शुद्धोदन इससे संतुष्ट नहीं था। बोला—“तुमने यह नहीं सोचा कि इससे हमारे सिर पर क्या बीतेगी?” लेकिन इसी कारण तो मैंने प्रव्रज्या लेना स्वीकार किया है। जरा सोचो तो सही यदि शाक्यों ने सारे खेत जपत करने की आज्ञा दे दी होती तो इसका क्या दुष्परिणाम हुआ होता।"

८. "लेकिन, तुम्हारे बिना हम इन लोगों को रखकर क्या करेंगे?" शुद्धोदन बोला। "सारा परिवार ही शाक्य जनपद का परित्याग कर देश से बाहर नहीं न चल दे?"

९. रीती दुर्दै प्रजापति गौतमी भी सहमत थी। बोली—“तुम हम सब को इस प्रकार छोड़ कर अकेले कैसे जा सकते हो?"

१०. सिद्धार्थ ने सान्त्वना दी—“माँ! क्या तुमने हमेशा आशा की होने का दावा नहीं किया? क्या यह ऐसा ही नहीं है? तुम्हें बीरता का त्याग नहीं करना चाहिये। इस प्रकार दुर्लभ होना तुम्हारे लिये अशोभनीय है। यदि मैं युद्ध-भूमि में गया होता और वहाँ जाकर मर गया होता तो तुम क्या करती? क्या तब भी तुम इसी प्रकार दुःखी हुई होती।"

११. गौतमी बोली—“नहीं, यह तो एक क्षत्रिय के योग्य होता। लेकिन अब तुम लोगों से दूर जंगल में जंगली जानवरों के साथ रहने जा रहे हो। हम यहाँ शांत कैसे रह सकते हैं? मैं यही कहती हूँ कि तुम हमें भी साथ ले चलो।"

१२. सिद्धार्थ ने प्रश्न किया—“मैं तुम सबको कैसे साथ ले चल सकता हूँ? मन्द केवल एक बच्चा है। मेरे पुत्र राहुल का अभी जन्म ही हुआ है। क्या तुम इन्हीं छोड़कर मेरे साथ जा सकती हो?"

१३. गौतमी को संतोष न हुआ। उसका कहना था : “हम सब शाक्यों का देश छोड़कर कौशल-नरेय का अधीनता में रहने के लिये कौशल जनपद में जा सकते हैं।"

१४. सिद्धार्थ से आपत्ति की—“लेकिन माँ! शाक्य क्या कहेंगे? क्या वे इसे देश-प्रीति न समझेंगे? फिर मैंने वचन दिया है कि मैं वचन या कर्म से कोई ऐसी बात न कहूँगा, न करूँगा कि जिससे कौशल नरेय को मेरी प्रव्रज्या का पक्षार्थ कारण ज्ञात हो सके?"

१५. "यह सही है कि मुझे अकेले जंगल में रहना होगा। लेकिन कौशिकों के

विरुद्ध लड़ाई में हिस्सा लेने और जंगल में रहने—इन दोनों में से अधिक बेपरकार क्या है ?”

१६. इस बीच मुंडोदन ने प्रश्न किया—“लेकिन इसकी जल्दी किस लिये शाक्य-संघ ने अभी कुछ समय के लिये लड़ाई की स्थिति कर दिया है।”

१७. “हो सकता है कि युद्ध कभी छिड़े ही नहीं। तुम अपनी प्रव्रज्या की क्यों स्थिति नहीं करते ? हो सकता है कि शाक्य-संघ तुम्हें वहाँ बसे रहने की ही अनुमति दे दे।”

१८. सिद्धार्थ को यह विचार संवेदा तपस्वन्द था। उसलिये उसने कहा—“क्योंकि मैंने प्रव्रजित हो जाने का वचन दिया इसीलिये शाक्य संघ ने अभी कोतियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ना स्थगित किया है।

१९. “यह भी संभव है कि मेरे प्रव्रज्या ग्रहण कर लेने पर शाक्य-संघ अपनी युद्ध की घोषणा को वापिस ले ले। किन्तु यह सब कुछ मेरे पहले प्रव्रज्या ले लेने पर ही निर्भर करता है।

२०. “मैंने वचन दिया है और मुझे उसे अवश्य पूरा करना चाहिये। वचन-भंग का बड़ा बुरा परिणाम हो सकता है—हमारे लिये भी और शान्ति-पथ के लिये भी।

२१. “मां, अब मेरे मार्ग में बाधक न बनो। मुझे जाना दो और अपना आजीर्णार्थ। जो कुछ हो रहा है, अच्छे के लिये ही हो रहा है।”

२२. सोलमी और मुंडोदन मूक थे।

२३. तब सिद्धार्थ यशोधरा के कमरे में पहुँचे। उसे देख कर सिद्धार्थ के मुँह से वचन नहीं निकला। वह नहीं जानता था कि क्या कहे और कैसे कहे ? यशोधरा ने ही मौन भंग किया। बोली—“कपिलवस्तु में शाक्य-संघ की सभा में जो कुछ हुआ वह सब मैं सुन चुकी हूँ।”

२४. सिद्धार्थ ने पुछा—“यशोधरा ! मुझे बता कि तुझे मेरा प्रव्रजित होने का निश्चय कैसा लगा है ?”

२५. सिद्धार्थ समझता था कि शायद यशोधरा बेहोश हो जायगी। किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ।

२६. अपनी भावनाओं की अच्छी तरह अपने वश में रख कर उसने उत्तर दिया—“यदि मैं ही तुम्हारी स्थिति में होती तो और दूसरा मैं कर ही क्या सकती थी ? निश्चय से मैं कोतियों के विरुद्ध छेड़े जाने वाले युद्ध में हिस्सा नहीं ले सकती थी।

२७. “तुम्हारा निश्चय ठीक है। तुम्हें मेरी अनुमति और समर्थन प्राप्त है। मैं भी तुम्हारे साथ प्रव्रजित हो जाती। यदि मैं नहीं हो रही हूँ तो इसका शाक्य-संघ ही कारण है कि मुझे राहुल का पालन-पोषण करना है।

२८. "अच्छा होता यदि ऐसा न हुआ होता। लेकिन हमें बीरतापूर्वक स्थिति का मुकाबला करना चाहिये। अपने माता-पिता तथा पुत्र की चिन्ता न करना। मैं जब तक जीऊँगी उनको देख-भाल करूँगी।"

२९. "अब मैं इतना ही चाहती हूँ कि अपने प्रिय सम्बन्धियों को खोह-खाई कर जो तुम प्रव्रजित होने जा रहे हो, तुम किसी ऐसे नये पथ का आविष्कार कर सको जो मानवता के लिये कल्याणकारी हो।"

३०. सिद्धार्थ इससे बड़ा प्रभावित हुआ। इससे पहले उसने कभी नहीं जाना था कि यशोधरा इतनी दृढ़ थी, इतने बीर-भाव से समन्वित थी और इतनी अधिक उदारवादी थी। आज ही उसे पता लगा कि वह कितना भाम्यवान् था कि उसे यशोधरा जैसी पत्नी मिली थी। आज भाम्य ने दोनों को पृथक्-पृथक् कर दिया था। उसने उसे राहुल को लाने को कहा। एक पिता की वात्सल्यपूर्ण दृष्टि देख कर वह वहाँ से बिदा हो गया।

१७. गृह-त्याग

१. सिद्धार्थ ने सोचा कि वह भारद्वाज के पास जाकर प्रव्रजित हो जायगा। भारद्वाज का आश्रम कपिलवस्तु में ही था। तदनुसार वह अपने सारथी श्वन् की साथ लेकर और अपने प्रिय अन्न कन्धक धर खटकर आश्रम की ओर चला।

२. उसी ही वह आश्रम के समीप पहुँचा, द्वार पर ही एकजुट हुए पुरुषों और स्त्रियों ने उसे घेर लिया मानो वह एक नयी-नवेसी श्वन् का स्वागत कर रहे हों।

३. अब वे उसके सामने आये, उसकी आँखें आश्चर्य से सूजी रह गईं। उन्होंने बन्ध कमल की तरह हाथ जोड़कर उसे नमस्कार किया।

४. वे उसे घेरे खड़े थे। उनके हृदय भावाविष्ट थे। वे ऐसे खड़े थे कि मानो वे अपने अर्ध-खिले नेत्रों से उसका पाव ही कर रहे हों।

५. कुछ स्त्रियों ने तो यही समझा कि वह कामदेव का साकार-रूप है। क्योंकि वह अपने लक्षणों तथा अलंकारों से ऐसा ही अलंकृत था।

६. कुछ दूसरी स्त्रियों ने उसकी कोमलता और ऐश्वर्य की ओर ध्यान देकर सोचा कि अपनी अमृतमयी किरणों के साथ बग्नमा ही पृथ्वी पर उतर आया है।

७. कुछ दूसरी स्त्रियाँ उसके सौन्दर्य से इतनी पराभूत थी कि वह मूँह बाँधे खड़ी थी, मानो वे उसे निमल ही आयेंगी। वे तन्मे आश्वास ले रही थी।

८. इस प्रकार स्त्रियाँ केवल उसकी ओर देस ही रही थीं। न उनके मूँह में शब्द था, न चेहरे पर मुस्कन्हाहट। वे उसे घेरे खड़ी थीं और उसके प्रव्रजित होने के निश्चय पर आश्चर्य से विचार कर रही थीं।

९. बड़ी कठिनाई से उसने उस प्रीति में से अपने लिये रास्ता निकाला और आश्रम के द्वार में प्रवेश किया।

१०. सिद्धार्थ को यह अच्छा नहीं लगता था कि शुद्धोदन और प्रजापति गौतमी उसके प्रव्रजित होने के समय उपस्थित रहें। क्योंकि वह जानता था कि ऐसे समय वे अपने को संभाले न रख सकेंगे। लेकिन उसकी जानकारी के बिना ही वे पहले से आश्रम आ पहुँचे थे।

११. ज्योंही उसने आश्रम में प्रवेश किया उसने देखा कि उपस्थित मण्डली में उसके माता-पिता भी हैं।

१२. अपने माता-पिता को वहाँ उपस्थित देखकर वह सर्वप्रथम उनके पास गया और उनका आशीर्वाद चाहा। वे भावना से इतने अधिक अभिभूत थे कि उनके मुँह से एक शब्द नहीं निकल रहा था। वे लगातार रोते रहे। उन्होंने उसे छाती से लगाया और आँसुओं से उनका अभिषेक किया।

१३. छत्र ने कन्धक को एक पेड़ से बाँध दिया था और पास खड़ा था। जब उसने देखा कि शुद्धोदन और प्रजापति आँसू बहा रहे हैं तो वह भी भावना-वश अपने आँसुओं को न रोक सका।

१४. बड़ी कठिनाई से अपने माता-पिता से पृथक् हो सिद्धार्थ वहाँ गया जहाँ छत्र खड़ा था। उसने वापिस घर ले जाने के लिये उसे अपने वस्त्र और गहने-कपड़े दे दिये।

१५. तब उसने अपना गिर मुण्डवाया। ऐसा करना परिव्राजक के लिये आवश्यक था। उसका जेबेरा भाई महानाम परिव्राजक के योग्य वस्त्र और शिक्षापात्र ले आया था। सिद्धार्थ ने उन्हें पहन लिया।

१६. इस प्रकार परिव्राजक का जीवन व्यतीत करने की पूरी तैयारी करके वह भारद्वाज के पास गया कि वह उसे विधिबन्त प्रव्रजित कर दे।

१७. अपने शिष्यों की सहायता से भारद्वाज ने आवश्यक संस्कार किये और सिद्धार्थ गौतम के परिव्राजक बनने की घोषणा कर दी।

१८. यह वाद करके कि उसने शाक्य संघ के सम्मुख दोहरी प्रतिज्ञा की थी, एक तो प्रव्रज्या लेने की और दूसरे अविलम्ब ही शाक्य जनपद की सीमा से बाहर हो जाने की; सिद्धार्थ गौतम ने प्रव्रज्या का संस्कार समाप्त होते ही अपनी यात्रा आरम्भ कर दी।

१९. जो जनसमूह आश्रम में इकट्ठा हो गया था वह असामान्य था। सिद्धार्थ गौतम की प्रव्रज्या की परिस्थिति भी असामान्य ही थी। जब राजकुमार आश्रम से बाहर निकला, जनता भी उसके पीछे-पीछे हो ली।

२०. उसने कपिलवस्तु से बिदा ली और अनोमा नदी की ओर आगे बढ़ा। पीछे मुड़कर देखा तो जनता अभी भी पीछे-पीछे चली आ रही थी।

२१. उसने उन्हें रोका और कहा—“बहनो और भाइयो! मेरे पीछे-पीछे चले आने से क्या लाभ है? मैं शाक्यों और कोलियों के बीच का अगड़ा न तिपटा

संता। लेकिन यदि तुम समझोते के पक्ष में जनमत तैयार कर लो, तो तुम सकल हो सकते हो इसलिये कृपा करके वापिस लौट जाओ।" उसकी अपील सुनी तो लोग पीछे लौटने लगे।

२२. सुडौघन और गौतमी भी महल को वापस चले गये।

२३. सिद्धार्थ के त्यागि वस्त्रों और गहतों को देखना गौतमी के लिये असह्य था। उसने उन्हें एक कैंबल के तालाब में फिकका दिया।

२४. प्रज्जया ग्रहण करने के समय सिद्धार्थ गौतम की आयु केवल २९ वर्ष की थी।

२५. लोग उसे वाद करते थे और यह कह-कह कर प्रशंसा करते थे कि "यह उच्च कुलोत्पन्न है, यह श्रेष्ठ माता-पिता की संतान है, यह सम्पन्न है यह तारुण्य के मध्य में है, यह सुन्दर शरीर और बुद्धि से युक्त है, सुख-भोग में पला है और वही अपने सम्बन्धियों से इसलिये लड़ा कि पृथ्वी पर शान्ति बनी रहे और जनता का कल्याण हो।

२६. "यह एक शाक्य वरुण था जिसने बहुमत के आगे झुकने के बजाय स्वेच्छा से दण्ड स्वीकार किया जिसका मतलब था ऐश्वर्य के स्थान पर दरिद्रता, सुख-समृद्धि के स्थान पर भिलाटन, गृह-निवास के स्थान पर गृह-त्याग। और वह जा रहा है अब कोई इसकी चिन्ता करने वाला नहीं, और यह जा रहा है बिना किसी भी ऐसी एक चीज को साथ लिये जिसे वह अपनी कह सके।

२७. "इसका यह स्वेच्छा से किया हुआ महान् त्याग है। यह बड़ी ही बीरता और साहस का कार्य है। संसार के इतिहास में इसकी उपमा नहीं। यह शाक्य-मुनि अथवा शाक्य-सिंह कहलाने का अधिकारी है।"

२८. शाक्य-कुमारी कृपा गौतमी का कबन कितना सहो था। सिद्धार्थ गौतम के ही सम्बन्ध में उसने कहा था। "धन्य है वे माता-पिता जिन्होंने ऐसे पुत्र को जन्म दिया और श्रम्य है वह नारी जिसका ऐसा पति है।" १४

१६. राजकुमार और उनका सेवक

१. छत्र को भी कन्यक के साथ वापस लौट जाना चाहिये था। लेकिन उसने वापस जाना अस्वीकार किया। उसने आपह किया कि कन्यक को लिए लिए वह कम से कम अनोमा नदी के तट तक अवश्य साथ चलेगा। छत्र का यह आपह इतना अधिक था कि सिद्धार्थ गौतम को उसकी बात माननी पड़ी।

२. अन्त में वे अनोमा नदी के तट पर पहुँचे।

३. तब छत्र को सम्बोधित करके सिद्धार्थ बोला—"मित्र! इस प्रकार यहाँ तक साथ-साथ आने से मेरे प्रति तुम्हारा स्नेह प्रमाणित हो गया। तुम्हारी भक्ति ने मेरे हृदय को सर्वथा जीत लिया है।

४. "तुम्हारा मेरे प्रति जो भाव है उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। श्रेष्ठ है कि मैं इस समय ऐसी स्थिति में हूँ कि तुम्हारे लिये कुछ कर नहीं सकता।

५. "जिससे उपकार की आशा हो उसके प्रति कौन अनुरक्त नहीं होगा? लेकिन विपत्ति के समय आदमी के अपने सगे-सम्बन्धी तक पराये बन जाते हैं।

६. "परिवार के लिये पुत्र का पालन-पोषण किया जाता है, अपने भावी-सुख के लिये पुत्र पिता को मानता है, किसी न किसी आशा से ही संसार के लोग बंधे रहते हैं; बिना आशा का निस्वार्थ भाव कहीं नहीं है।

७. "केवल एक तुम्ही इसके अपवाद हो। इस छोटे को लो और वापस ही जाओ।"

८. "राजा के स्नेह में अभी भी किसी तरह की कमी नहीं आई होगी। उसे किसी न किसी तरह इस दुःख को सह लेने में सहायता करनी होगी।

९. "उसे कहना कि मैं जो उसे छोड़कर चला आया हूँ वह न किसी स्वर्ग की कामना से, न स्नेह की कमी से और न कोप की अधिकता से।

१०. "इस प्रकार घर छोड़कर चले आये मेरे लिये उसे अनुताप नहीं करता बाहिये, संयोग कितना भी दीर्घकालीन हो एक न एक दिन विमोग में परिणत होता ही है।

११. "जब विमोग अनिवार्य हो है तो यह कैसे हो सकता है कि सम्बन्धियों से विमोग न हो।

१२. "आदमी के मरने पर उसकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी तो बहुत होते हैं; किन्तु उसके पुत्र का उत्तराधिकारी मिलना कठिन है शायद होता ही नहीं।

१३. "राजा—मेरे पिता की देख-भाल रखनी होगी। हो सकता है कि वह कहे कि मैंने अनुपयुक्त समय पर गृह-त्याग किया है; किन्तु धर्म करने के लिये कोई भी समय अनुपयुक्त समय है ही नहीं।

१४. "मित्र ! मेरे पिता को इन ओर ऐसे ही शब्दों से समझाना। ऐसा प्रयास करना कि उसे मेरी याद भी बनी न रहे।"

१५. "हाँ, मेरी माँ से भी कहना कि मैं उसके स्नेह के अवोप्य सिद्ध हुआ। उसका वात्सल्य बचनातीत था।"

१६. इन शब्दों को सुना तो अज्ञ ने भावावेश से रुंधे कंठ से हाथ जोड़कर कहा—

१७. "स्वामी ! यह देखकर कि आप अपने सम्बन्धियों को विमोग-दुःख देकर जा रहे हैं मेरा हृदय ऐसे बँटा जा रहा है जैसे दलदल में फँसा हुआ हाथी।

१८. "आपका ऐसा निर्णय किसकी आँखों से अश्रु-धारा न बहायेगा, चाहे उसका हृदय सोह-निर्मित भी क्यों न हो, स्नेह-सिक्त हृदय का तो कहना ही क्या ?

१९. "कहाँ तो यह प्रसाद में ही रहने योग्य कोमलाङ्ग और कहाँ वह तीक्ष्ण कुसाग्रस से डकी हुई पृथ्वी ?

२०. "हे कुमार ! आप का ऐसा निर्णय जानकर मैं अब कपिलवस्तु के लोगों के लिये दुःखदायक इस कन्यक छोड़े को वापस कैसे ले आ सकता हूँ।

२१. "निश्चय से आप इस स्नेह-सिक्त बृद्ध राजा को ऐसे ही छोड़कर नहीं जायेंगे जैसे कोई नास्तिक सद्धर्म को।

२२. "और अपनी उस मौसी को—जिसने पाल-पोसकर इतना बड़ा किया—आप उसी तरह नहीं ही भूलेंगे जैसे कोई कुत्तन अपने उपकारी को भूल जाता है।

२३. "और अपनी उस भार्या को तो आप छोड़ेंगे ही नहीं, जो गुणवती है, जो श्रेष्ठ कुलोत्पन्न है, जो पतिव्रता है और जो एक बालक की माँ है।"

२४. और हे धर्म तथा यश की सर्वाधिक चिन्ता करनेवाले ! आप यशोधरा के उस पुत्र को तो उसी प्रकार छोड़ेंगे ही नहीं, जैसे कोई जूआरी अपने यश को छोड़ देता है।"

२५. "स्वामिन ! यदि आपने अपने राज्य और सम्बन्धियों को त्याग देने का दृढ़ संकल्प ही कर लिया है तो आप मुझे तो छोड़ेंगे ही नहीं, क्योंकि आप ही मेरे शरण-स्थान हैं।

२६. "मैं आपको इस प्रकार जंगल में अकेला छोड़कर इस दग्ध-हृदय के साथ नगर को वापस नहीं लौट सकता।

२७. "जब मैं अकेला वहाँ जाऊँगा तो राजा मुझे क्या कहेगा और मैं आपकी सहधर्मिणी को क्या शुभसंवाद सुनाऊँगा ?

२८. "और आपका जो यह कहना है कि मैं राजा को आपके अयगुण सुनाऊँ ताकि उसका स्नेह कम हो जाय, तो यदि मैं तालु से सटी जित्ता से निर्लज्ज बनकर आपके अयगुण कहने का प्रयास भी करूँ तो उन पर कौन विश्वास करेगा ?

२९. "जो दया-मूर्ति है और जिसने सदा करुणा दिखाई है, वह उसके योग्य नहीं कि अपने स्नेह का परित्याग कर दे। मुझ पर दया करे। लौट चले।" १०

३०. छत्र के दन दुःखभरे शब्दों को सुनकर सिद्धार्थ गौतम ने अत्यन्त कोमलता से उत्तर दिया—

३१. "छत्र ! मेरे विमोग से उत्पन्न होने वाले दुःख का परित्याग करो। नाना जन्म सहण करने वाले प्राणिनों के लिये परस्पर का विमोग अनिवार्य है।

३२. "यदि मैं स्नेह के कारण आज अपने सम्बन्धियों का परित्याग न भी करूँ, तो भी एक न एक दिन मृत्यु हमें एक दूसरे से अनिवार्य तौर पर पृथक् कर ही देगी।

३३. "जिस मेरी माँ ने, मुझे इतना कष्ट सहन करके जन्म दिया था, अब वह कहाँ है ? और मैं कहाँ हूँ ?

३४. "जैसे पक्षी अपने विश्राम-गृह पर इकट्ठे होते हैं, किन्तु फिर नाना दिशाओं में उड़ जाते हैं, वही प्राणियों की दशा है। उनका भी वियोग अवश्यम्भावी है।

३५. "जैसे बादल एकत्र होकर फिर पृथक् पृथक् नाना दिशाओं में चले जाते हैं, वही प्राणियों की दशा है। उनका भी वियोग अवश्यम्भावी है।

३६. "और क्योंकि यह संसार इसी प्रकार परस्पर एक-दूसरे को बन्धना करता हुआ गतिमान है। इसलिये संयोग के समय किसी भी चीज को अपना समझ बैठना भयावह है।

३७. क्योंकि यह ऐसा ही है, इसलिये मित्र ! शोक मत करो। वापिस लौट जाओ। यदि मन नहीं ही माने तो जाकर फिर वापस चले आना।" ३८

३८. "बिना मुझे कुछ और कहे, कपिलवस्तु के लोगों से जाकर कहना कि उसके लिये जो सुम्हारा स्नेह है, उसे छोड़ दे, क्योंकि उसका निश्चय दृढ़ है।"

३९. जब स्वामी और सेवक के बीच की यह बातचीत कल्पक ने सुनी तो उस खेपट अश्व ने अपनी जिज्ञा से स्वामी के चरण चाटे और आँखों से गरम-गरम आँसू गिराये।

४०. उस हाथ से जिसकी अँगुलियाँ जूझी हुई थी, उस हाथ से जिसमें मंगल स्वस्ति अंकित था, उस हाथ से जिसकी हथेली अन्दर की थी, गौतम ने उसे क्षणचपाया और एक मित्र की तरह सम्बोधित करके कहा—

४१. "कन्धक ! सहन कर। अथु मत बहा। तेरा परिश्रम शीघ्र ही सफल होगा।" ४२

४२. जब छत्र ने देखा कि अब शीघ्र विदा होना ही होगा, तो उसने गौतम के उस परिश्राजक रूप को नमस्कार किया।

४३. कन्धक और छत्र ने विदा लेकर गौतम भी अपने मार्ग पर चल दिये।

४४. छत्र ने जब देखा कि उसका स्वामी राज्य त्याग कर, परिश्राजक का केव धारण किये चला जा रहा है, उससे न रहा गया। वह अपने हाथ उठाकर जोर से चिल्लाया और उमीन पर गिर पड़ा।

४५. जब उसने पीछे मुड़कर देखा वह एक बार फिर जोर से चिल्लाया। उसने अपने कन्धक के गले में हाथ डाले। वह निराश और भग्न-हृदय फिर अपने मार्ग पर आगे बढ़ा।

४६. रास्ते में कभी वह चिन्तित हो उठता, कभी परचाताप करता, कभी लडखड़ाता, कभी गिर पड़ता। इस प्रकार स्नेह-विदीर्ण हृदय से उसने रास्ते भर नाना तरह की बातें की। वह स्वयं नहीं जानता था कि वह क्या कर रहा है।

२०. छन्न की वापसी

१. स्वामी के वनगमन के बाद वापस लौटते समय छन्न ने अपने दुखी मन का भार हलका करने का भद्दक प्रयास किया।

२. उसका दिल इतना भारी था कि जिस दूरी को वह पहले एक दिन में पूरा कर लेता था अब अपने स्वामी के वियोग की विन्ता करते-करते उसी दूरी को पूरा करने में उसे आठ दिन लगे।

३. कन्यक, यद्यपि वह अभी भी धैर्यपूर्वक सता जा रहा था, किन्तु वह अत्यन्त क्लान्त और थान्त हो गया था। निस्सन्देह वह अभी भी अलंकारों से अलंकृत था, तो भी स्वामी-विहीन होने के कारण सर्वथा तेज-विहीन हो गया था।

४. और जिस दिशा में उसका स्वामी गया था उधर घूम-घूम कर बड़े ही शोक-संतप्त स्वर में वह बार-बार हिनहिताया। यद्यपि वह शूचा से परेशान था तो भी उसने पहले की तरह न रास्ते भर घास चरो और न पानी पिया।

५. अन्त में दोनों उस कपिलवस्तु पहुँचे जो सिद्धार्थ के चले जाने के कारण एकदम सूना हो गया था। वे दोनों भी प्राण-विहीन शरीर की तरह ही वहाँ पहुँचे।

६. पद्म-भुषित जलाशय में, फूलों से लदे हुए वृक्ष में; किन्तु नागरिकों के हृदय प्रसन्नता से शून्य थे।

७. तेज-विहीन आँखों में अध्र लिये हुए जब उन दोनों ने कपिलवस्तु में प्रवेश किया तो उन्हें सारा नगर अन्धकारावृत प्रतीत हुआ।

८. जब लोगों ने सुना कि जाकन-जाति के उस अभिमान को बिना साथ लाये ही वे दोनों अकेले लौटे हैं, तो लोगों की आँखें आँसू बरसाने लगीं।

९. आवेश से उन्मत्त हुए लोग छन्न का पीछा कर रहे थे और आँसू बहाते हुए चिल्ला रहे थे—“जाति और राज्य का गौरव राजकुमार कहाँ है?”

१०. वहाँ वह नहीं है वह नगर हमारे लिये जंगल है, और जिस जंगल में वह है वह जंगल ही हमारे लिये नगर है। सिद्धार्थ-विहीन नगर का हमारे लिये कोई आकर्षण नहीं।”

११. निचुरी खिड़कियों पर आकर जुट गईं। वे एक दूसरे को कह रही थीं—“राजकुमार लौट आया है।” लेकिन जब उन्होंने देखा कि घोड़े की पीठ तंगी है, उन्होंने खिड़कियाँ बन्द कर लीं और और-और से विलाप करने लगीं।

२१. परिवार का विलाप

१. शुद्धोदन के परिवार के लोग वही उत्सुकतापूर्वक इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि सम्भव है छन्न सिद्धार्थ को समझा-बुझा कर वापस लाने में सफल हो जाए।

२. राजकीय अस्तव्यस्त में प्रवेश करते ही कन्धक बड़े जोर से हिनहिनाया । इस प्रकार उसने महल के लोगों को अपना दुःख व्यक्त कर दिया ।

३. जो लोग राज-महल के भीतरी भाग में थे, उन्होंने सोचा—“क्योंकि कन्धक हिनहिना रहा है, इसलिये राजकुमार वापस आ गया होगा ।”

४. और वे स्त्रियाँ जो दुःख के मारे होम-हवास भूनाये बैठी थीं, अब प्रसन्नता से पागल हो गईं । वे राजकुमार को देखने की आशा में बड़ी तेजी से महल से बाहर आईं । वे विराज हुईं । वहाँ कन्धक था । राजकुमार न था ।

५. सारा आत्म-संयम भूल कर गौतमी किल्ला उठी । वह नेहोम हो गई । बार-बार रोती हुई वह कहने लगी :—

६. “जिसके बैसे लम्बे-लम्बे बाहु हों, जिसकी सिंह समान चाल हो, जिसकी वृषभ जैसी आँखें हों, जो स्वर्ण समान सुन्दर हो, जिसका वक्षस्वत लूब चौड़ा हो, जिसका स्वर मेघ-गर्जन के समान गम्भीर हो—क्या ऐसे भीरु को किसी आश्रम में रहना चाहिये ?

७. “यह वसुधारा ही रहने योग्य नहीं है, क्योंकि वह अनुपम श्रेष्ठ कहीं हमें छोड़ कर चला गया है ।

८. “उसके वे दो पवि—जिसके चरणों की अंगुलियों के बीच में सुन्दर जाली है, जिनके मिट्टे नील कँवल की तरह कोमल और आच्छादित है, जिनके बीच चक्र-चिन्ह अंकित है, वन की कठोर-भूमि पर कैसे चल सकेंगे ?

९. “वह शरीर—जो महलों में रहने या लेटने के योग्य है, जो मूल्यवान् मेघ-भूषा तथा नन्दन आदि के लेप से अलंकृत रहता है—उन जंगलों में कैसे रहेगा, वहाँ भीत, उष्णता और वर्षा से बचने का कोई उपाय नहीं ।

१०. “जिसे अपना कुल, नील, लीले, बल, विद्या, सोन्दर्य और तारुण्य का अभिमान था; जिसे हमेशा देने का ही अभ्यास रहा, लेने का नहीं; वह दूसरों से मित्रा कैसे माँग सकेगा ?

११. “जो स्वच्छ सुनहरी शैया पर सोता था और जिसे मधुर वाद्य के संगीत से उठाया जाता था; वह मेरा तपस्वी अब केवल एक वस्त्र बिछाकर कठोर पृथ्वी पर कैसे सोवेगा ?” १२

१२. “इस प्रकार के करुण विलाप को सुनकर स्त्रियाँ परस्पर एक दूसरे का आलिङ्गन कर आँसू बहाने लगीं । उनकी आँखों ने आँसू का बरस रहे थे, हिलाई गई जटाओं के कूनों से मधु बरस रहा था ।

१३. “यह भूलकर कि उसने उसे सह्य जाने की अनुमति दे दी थी विवोधा-हृत यशोधरा भी एक बार ही भूमि पर गिर पड़ी ।

१४. “अपनी धर्मपत्नी को—मुझे—वह कैसे छोड़ गया ? वह मुझे विधवा बन गया । वह अपनी धर्मपत्नी को अपने नये-जीवन का संगी-साथी बना सकता था ।

१५. "मुझे स्वर्ग की कामना नहीं है। मेरी एक ही इच्छा रही है कि मेरा पति मुझे इस लोक वा परलोक में कभी न छोड़े।

१६. "यदि मैं उसके विशालाश तेजस्वी मुख की ओर देखने की अधिकारिणी नहीं हूँ तो क्या वह विचारा राहुत भी अपने पिता की गोद में लेटने का अधिकारी नहीं है।

१७. "खेद है कि उस वीर के कोमल सौन्दर्य के भीतर उसका हृदय अत्यन्त कठोर है, अत्यन्त निर्दय है। कौन ऐसा है जो शत्रु को भी मुग्ध कर लेने वाले, तोतली बोली बोलने वाले इस प्रकार के बच्चे तक को छोड़कर चला जाय ?

१८. "निश्चय से मेरा हृदय भी अत्यन्त दारुण है—तापद पत्थर का ब्रता हुआ अथवा लोह-निर्मित है जो अपने स्वामी के वनगमन पर, जनाघवत् छोड़कर चले जाने पर भी विदीर्ण नहीं होता। लेकिन मैं करूँ क्या ? मेरा दुःख असह्य है।" २२

१९. इस प्रकार अपने दुःख में अपने होश-हवास गँवाये हुए यशोधरा रोई और जोर-जोर से रोई। यद्यपि वह स्वभाव से बड़ी धैर्यवान् थी, लेकिन इस समय दुःख में वह अपना धैर्य गँवा बैठी थी।

२०. इस प्रकार जमीन पर पड़ी यशोधरा को, दुःख के मारे अपने होश-हवास गँवाये देखकर और उसका करुण विलाप सुनकर सारी स्त्रियाँ भी चिल्लाने लगीं। आँसुओं के मारे उनके चेहरे ऐसे हो गये थे जैसे वर्षा से प्रताड़ित कमल हों।

२१. छद्म और कन्यक दोनों के वापस लौट आने की बात सुनकर और अपने पुत्र के इस निश्चय की बात सुनकर, शुद्धोदन के चित्त को बड़ी चोट पहुँची।

२२. अपने पुत्र के वियोग से अत्यन्त दुःखी शुद्धोदन ने नौकर-चाकरों से सँभाले जाकर जरा देर के लिये थोड़े की ओर देखा। उस समय उसकी आँखें आँसुओं से भरी थीं। इसके बाद वह जमीन पर गिर पड़ा और जोर-जोर से चिल्लाने लगा।

२३. तब शुद्धोदन अपने मन्दिर में गया, प्रार्थना की और कई माङ्गलिक क्रियाएँ की। उसने अपने पुत्र के सकुशल लौट आने के लिये कई मिश्रतें मानीं।

२४. इस प्रकार शुद्धोदन, गौतमी और यशोधरा यही मनाते-मनाते अपने दिन गिनने लगे कि हे देव ! हम उसे जल्दी-से-जल्दी फिर कब देखेंगे ?

१. अंगुत्तर निकाय ।
२. मज्झिमनिकाय के चूलदुक्खसंख्य सुत्त की अट्ठकथा ।
३. जातक-निदान अट्ठकथा ।
४. बुद्धचरित (अश्वघोष) सर्ग १—४९ से ८९ तक ।
५. जातक-निदान अट्ठकथा ।
६. अंगुत्तर निकाय १ : २ : १—७ ।
७. मज्झिमनिकाय के चूलदुक्खसंख्य सुत्त की अट्ठकथा ।
८. पालि-परम्परा के अनुसार भट्टकप्याना—पशोधरा—सुद्धबुद्ध साधव की कथा थी ।

९. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ४, श्लोक संख्या ९ से २२ तक ।
१०. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ४, श्लोक संख्या २३ से ५२ तक ।
११. बुद्धचरित सर्ग ४ के ही श्लोक ५६, ५७ ।
१२. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ४ के श्लोक ६५ से ८२ तक ।
१३. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ४ के श्लोक ८४ से ९६ तक ।
१४. जातकट्ठकथा (निदान) ।
१५. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ६ के श्लोक ७ से ११ तक ।
१६. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ६ के श्लोक १५ से २३ तक ।
१७. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ६ के श्लोक २६ से ४१ तक ।
१८. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ३ के श्लोक ४३ से ५० तक ।
१९. अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग ६ के श्लोक ५४, ५५ ।
२०. बुद्धचरित सर्ग ८, श्लोक १३ ।
२१. बुद्धचरित सर्ग ८ के श्लोक ५३ से ५८ तक ।
२२. बुद्धचरित सर्ग ८ के श्लोक ६१ से ६९ तक ।

दूसरा भाग

सदा के लिये अभिनिष्क्रमण

१. कपिलवस्तु से राजगृह

१. कपिलवस्तु से निकलकर सिद्धार्थ गौतम ने मगध राज्य की राजधानी राजगृह जाने का विचार किया।

२. उस समय राजा बिम्बिसार का राज्य था। यह एक ऐसा स्थान था जहाँ बड़े-बड़े दार्शनिक और पण्डित रहते थे।

३. इस विचार से उसने गंगा पार की। उसने गंगा की तेज धारा तक की परवाह नहीं की।

४. रास्ते में वह एक ब्राह्मण स्त्री सकी के आश्रम पर रुका, इसके बाद पद्मा नाम की एक दूसरी ब्राह्मण स्त्री के आश्रम पर रुका और तब रैवत नाम के ब्राह्मण ऋषि के आश्रम पर। सभी ने उसका आतिथ्य किया।

५. उसका व्यक्तित्व, उसकी तेजस्विता और उसका अनुपम सौन्दर्य ऐसा था कि उस प्रदेश के सभी लोगों की आश्चर्य हो रहा था कि उसने संन्यासी के वस्त्र कैसे धारण किये हैं?

६. उसे देखकर, अन्यत्र जाता हुआ कोई-कोई वहीं खड़ा रह गया, वहीं खड़ा-खड़ा कोई शीघ्रता से उसके पीछे हो लिया, जो धीरे-धीरे चल रहा था वह तेजी से दौड़ने लगा और जो बैठा था वह गुरन्त खड़ा हो गया।^१

७. कुछ ने उसे हाथ जोड़कर नमस्कार किया, कुछ ने सिर झुकाकर आदर प्रदर्शित किया, कुछ ने उसे प्रिय-वचनों से सम्बोधित किया; कोई एक भी ऐसा नहीं था जिसने उसके प्रति अपना आदर का भाव न दिखाया हो।^२

८. जो रंग-विरंगे कपड़े पहने थे उन्हें उसे देखकर संकोच हुआ, जो व्यर्थ प्रताप कर रहे थे वे चुप हो गये; कोई भी ऐसा न था जो व्यर्थ के संकल्प-विकल्पों में लगा रहा हो।^३

९. उसकी भीष्टे, उसका माया, उसका मूँह, उसका शरीर, उसका हाव, उसके पाँव, उसकी चाल—उसके शरीर का किसी ने कोई भी अंग देखा—वह भव-मुग्ध की तरह खड़ा रह गया।^४

१०. बड़ी लम्बी ओर कठिन यात्रा के बाद गौतम राजगृह पहुँचे, जो कि पाँच पहाड़ियों से घिरी हुई थी, जो कि पर्वतों से सम्पन्न सुरक्षित और अलंकृत थी और जहाँ चारों ओर मंगलकारी पवित्र स्थान थे।

११. राजगृह पहुँच कर उसने वहाँ पाण्डव पर्वत के नीचे एक जगह चुनी और वहाँ अपने रहने के लिये पत्तों की एक छोटी-सी झोपड़ी बना ली।

१२. कपिलवस्तु से राजगृह पैदल चलकर कोई ४०० मील की दूरी पर है।

१३. सिद्धार्थ गौतम ने यह सारी यात्रा पैदल की।

२. राजा बिम्बिसार और उसका परामर्श

१. दूसरे दिन वह उठा और भिक्षापात्र हाथ में ले भिक्षाटन के लिये नगर में जाने की तैयारी की। उसके इदं-गिदं बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई।

२. मगध-नरेश श्रेणिय बिम्बिसार ने अपने महल के बाहर लोगों का जमघट देखा। उसने कारण जानना चाहा। एक दरबारी ने उसे इस प्रकार कारण बताया।

३. "जिसके बारे में ब्राह्मणों ने भविष्यवाणी की थी कि 'या तो यह बुद्ध होगा या चक्रवर्ती राजा होगा'—यह वही शाक्य-पुत्र है जो अब संन्यासी हो गया है। उसी पर लोग नजर गड़ाये हैं।"

४. राजा ने यह बात सुनी और इसके अर्थ पर विचार किया तो उसने मुरन्त दरबारी को कहा—"पता लगाओ, यह विचार जा रहा है?" दरबारी बाधा पाकर राजकुमार के पीछे-पीछे चला।

५. स्थिर-वृष्टि, माधव दो मज ही आगे देखते हुए, शान्त-स्वर, मपे-तुल्य कदम वाला वह श्रेष्ठ परित्राजक भिक्षाटन के लिये चला तो उसकी इन्द्रियाँ तथा चित्त पूर्णरूप से संगत थे।^१

६. जैसी भी कुछ भिक्षा मिली उसे ग्रहण कर वह पर्वत के एक एकान्त कोने में बैठा और भिक्षात्र का चुक्ने के बाद पाण्डव-पहाड़ी पर चढ़ गया।^२

७. लोभ वृक्षों से भरे जंगल में, जहाँ मयूरों का स्वर गूँज रहा था, वह कोपाम-वस्त्रधारों, मानवता का सूर्य ऐसे चमक रहा था जैसे पूर्व-दिशा के पर्वतों पर प्रातःकालीन सूर्य।^३

८. उस राज-दरबारी ने यह सब देखकर, जाकर राजा को सारा वृत्तान्त सुनाया। राजा ने जब यह सुना तो अपने साथ कुछ सोड़े-से अनुयायी ले वह गौरवपूर्ण भाव सहित उसी ओर चला।

९. पर्वत के समान व्यक्तित्व वाले उस राजा ने पर्वतारोहण किया।^४

१०. वहाँ उसने जितेन्द्रिय गौतम की पर्यंकुसन लगाये बैठे देखा। वह ऐसा प्रतीत होता था मानों चत्तायमान पर्वत का शिखर हो।^५

११. उसके पास जो सौन्दर्य और शान्त-भाव में विलेप था, आश्चर्य और स्नेह की भावना से पूर्ण राजा गया ।^१

१२. विनम्रतापूर्वक उसके समीप पहुँचकर बिम्बिसार ने उसका कुशल-क्षेम पूछा और गौतम ने भी वही ही जालीनता के साथ अपने सकुशल होने की बात कही ।^२

१३. तब राजा एक स्वच्छ चट्टान पर बैठ गया और अपना मनोभाव व्यक्त करने के लिये इस प्रकार बोला—

१४. “तुम्हारे कुल से मेरी बंधानुगत प्रगाढ़ मैत्री है । इसी से मेरे मन में तुम्हें दो शब्द कहने की इच्छा उत्पन्न हुई है । मेरी बात ध्यान से सुनें ।”

१५. “जब मैं तुम्हारे सूर्य-वंश का विचार करता हूँ, तुम्हारे तारुण्य का विचार करता हूँ, तुम्हारे अनुपम सौन्दर्य का विचार करता हूँ तो मैं सोचता हूँ कि तुम्हारे मन में संन्यासी का जीवन व्यतीत करने का यह सर्वथा बेमेल संकल्प कहाँ से घर कर गया ?”

१६. “तुम्हारे अंग रक्त चन्दन से चर्चित होने के योग्य हैं, रत्नाम्बर के नहीं; तुम्हारा यह हाथ प्रजा-रक्षण के योग्य है, भिक्षापात्र ग्रहण करने के योग्य नहीं ।”

१७. “हे तरुण ! यदि तू अपना पैतृक राज्य नहीं ही चाहता तो मैं तुझे अपना आग्रा राज्य देता हूँ । इसे ग्रहण करने की कृपा कर ।”^३

१८. “यदि तू ऐसा करेगा तो इससे तेरे स्वजनों को किसी प्रकार का दुःख न होगा । समय बीतने पर अन्त में लक्ष्मी स्थिर-चित्तों की ही शरण ग्रहण करती है । इसलिये कृपया मेरी बात मान ले । सत्पुरुषों की सहायता पाकर सत्पुरुषों की भी बहुत बलवती हो जाती है ।”^४

१९. “यदि अपने कुलाभिमान से मेरा कहना अमान्य हो तो अनन्त सेना के साथ धनुष-बाण का उपयोग कर, मेरी सहायता से अपने विरोधियों पर विजय प्राप्त कर लो ।”

२०. “इसलिये इन तीन पुरुषार्थों में से एक चुन लो । धामनिस्तार अर्थ और काम की प्राप्ति की कामना करो । काम और मोक्ष की उल्टे क्रम से अर्थात् पहले काम की जोर फिर मोक्ष की इच्छा करो । जीवन के धर्म, अर्थ, काम—यही तीन उद्देश्य हैं । आदमी मरता है तो जहाँ तक इस संसार का सम्बन्ध है सभी कुछ निरोध को प्राप्त हो जाता है ।”

२१. “इसलिये इन तीनों पुरुषार्थों की प्राप्ति का प्रयास करके जीवन को सफल करो । कहा है कि धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति में ही जीवन की सफलता है ।”^५

२२. “इन धनुष-बाणधारण करने में समर्थ बाहुओं को बेकार न रहने दो । इस पृथ्वी का तो कहना ही क्या इनमें तीनों लोगों की जीत लेने का सामर्थ्य है ।

२३. "मैं जो यह सब कह रहा हूँ, इसमें भाव मेरा स्नेह ही कारण है, न तो मैं यह राज्य-लोभ से ही कह रहा हूँ और न तुम्हारा यह तपस्वी भेष देखकर उत्पन्न हुई अभिमान-भावना से ही कह रहा हूँ। मेरे दिल में वया है और आँखों में लसू है।"

२४. "हे अपने कुल के अभिमान ! हे तपस्या के इच्छुक ! अभी समय है काम-भोगों का आनन्द ले। बाद में बुद्धि या जायमा और इस तेरे सौन्दर्य को म्लान कर देगा।"

२५. "कुछापे में आदमी 'पुण्य' करके भर्माजित कर सकता है ? कुछापे में आदमी विषय-भोग के आशोभ्य हो जाता है। इसीलिये कहा है कि तरुण के लिये विषय-भोग है, मध्य-वयस्क के लिये धन है और वृद्ध के लिये धर्म है।"

२६. "इस संसार में तरुण का धन और धर्म से विरोध है—क्योंकि काम-सुखों को कितना ही सुरक्षित रखा जाय, वे सुरक्षित रहे ही नहीं जा सकते। इसलिये जब और जहाँ भी मुख-भोगप्राप्त्य हों वहाँ उनका उपभोग कर लेना चाहिए।"

२७. "वार्धन्य विचार-प्रधान होता है। वह स्वभावतः सम्भीर और शान्त रहता है। बिना प्रयास के ही यह संयत-भाव को प्राप्त हो जाता है।"

२८. "इसलिये बन्धक, अस्विर, बाह्य-विषयों में अनुरक्त, असावधान, अर्धवैयान्, अदूरदर्शी तारुण्य के गुजर जाने पर लोगों को ऐसा लगता है कि मानों किसी भयानक जंगल में से सुरक्षित निकल आये।"

२९. "इसलिये इस विमिराच्छन्न तारुण्य को गुजर जाने दो। हमारा आरम्भिक जीवन मुख-भोग के लिये ही है। इस समय इन्द्रियों को काबू में रखा ही नहीं जा सकता।"

३०. और यदि धर्म में ही तेरी विशेष रुचि है तो अपने कुल-धर्म के अनुसार यज्ञ कर, क्योंकि यज्ञ करने से ऊँचे-से-ऊँचा स्वर्ग प्राप्त किया जा सकता है।"

३१. "बाहुओं पर स्वर्ण-निमित्त बाजू-बन्द बाँधे हुए और नाना वर्ण के आभापूर्ण रत्न लङ्घित मुकुट धारण किये हुए राजनि-गण यज्ञों द्वारा उसी पद को प्राप्त कर सके हैं जिसे अनेक महर्षियों ने तपस्या द्वारा प्राप्त किया है।"

३. बिम्बिसार को गीतम का उत्तर

१. इन्द्र की तरह स्पष्टता और दृढ़ता से जब मगध-नरेश ने यह कहा, तो उसकी भी बात सुनकर कुमार अपने निश्चय से विचलित नहीं हुआ। वह पर्वत के समान अचल था।"

२. मगध-नरेश से इस तरह सम्बोधित किये जाने पर, संयत, स्थिर राज-कुमार ने मँची-पूर्ण हृदय से उत्तर दिया—

३. राजन् ! जो कुछ आप ने कहा है वह आपके योग्य है। आपका जन्म

उस महान् कुल में हुआ है, जिसका राज-चिन्ह सिंह है। आप मित्रों के हित-चिन्तक हैं। आपके लिये यह स्वाभाविक है कि आप अपने एक मित्र को इस तरह कहें।

४. "दुश्मनों की कुलामत मैत्री बीज ही नष्ट हो जाती है, सुधीन ही हैं जो नये-नये मैत्रीपूर्ण व्यवहार में पुरानी परम्परागत मैत्री को दीर्घकाल तक बनाये रखाते हैं।"

५. "प्रतिकूल परिस्थिति में ही जो मैत्री का त्याग नहीं करते वे ही सच्चे मित्र हैं। सुख-पूर्ण अवस्था में, वैभव की स्थिति में तो कौन मित्र नहीं होता।"

६. "सम्पत्ति प्राप्त होने पर अपने मित्रों के लिये तथा धर्म के निमित्त जो उसका उपयोग करते हैं, उन्हीं की सम्पत्ति सार्धक है; जब इसका वितरण भी होता है तब भी वह दुःखजनक नहीं सिद्ध होती।"

७. "हे राजन्! आपने जो कुछ भी मेरे बारे में कहा वह आपके औदार्य और मैत्री का ही परिणाम है। मैं भी मैत्री-पूर्ण ढंग से ही आपका समाधान करने का प्रयास करूँगा।"

८. "सुखे न-सौख्य से ही उतना भय लगता है और न आकाश से गिरने वाले खज से ही उतना भय लगता है, न वायु के झोंके से प्रेरित आग के सोलों से ही इतना भय लगता है, जितना भय इन इन्द्रियों के विषयों से लगता है।"

९. "यह अस्तिपर विषय—हमारे मुख और सम्पत्ति के विनाशक, जो संसार में अन्तःक्षुब्ध और माया के सृष्टन हैं—आकाश में ही आदमी के चित्त को बचल कर देते हैं, जब वे उसे प्रथम लेते हैं तब तो इतना कहना ही क्या?"

१०. "मर्त्य-लोक तो क्या, दिव्य-लोक में भी विषयानुरक्त को संतोष और सुख प्राप्त नहीं होता। जिस प्रकार ईंधन से वायु-प्रेरित आग की कभी तुष्टि नहीं होती वसी प्रकार विषयों की कामना रखने वाले की कभी श्वास नहीं बुझती।"

११. "विषयों से बढ़कर संसार में विपत्ति नहीं है, अविद्या में प्रवेष्ट रहने के ही कारण लोग उनमें अनुरक्त होते हैं। एक बार विषयों में भगवन् हो जाने पर कौन बुद्धिमान् फिर उनकी कामना करेगा?"

१२. "समुद्र से घिरी सारी पृथ्वी जीत लेने पर भी राजा लोग समुद्र के दूसरी ओर विजयी होने कामना करते हैं। जिस प्रकार अपने में गिरने वाली नदियों से समुद्र अतृप्त ही रहता है, उसी प्रकार आदमी की कभी भी विषयों से तृप्ति नहीं होती।"

१३. "आकाश से स्वर्ण-वर्षा हो चुकने पर भी, चारों समुद्रों को जीत लेने पर भी, शक का आघात राज्य हस्तगत हो जाने पर भी राजा माल्वाता विषयों में अतृप्त ही रहा।"

१४. जब इन्द्र ने वृत्र के भय के मारे अपने आपको जिता लिया था उस समय

नहुष स्वर्ग-लोक का मुक्त-भोग कर भी अहंकार के बन्दीभूत हो ऋषियों से अपनी पालकी उठवा कर भी विषयों में अतृप्त हो रहा था ।^१

१४. इन विषय-भोग नामवारी बाणुओं का कौन स्वागत करेगा, जिन्होंने ऐसे ऋषियों पर भी काबू पा लिया जो दूसरे ही पुरुषार्थ में लगे थे, जो बल्कल वस्त्र धारण करते थे, जो फल-मूल खाकर ही गुजारा करते थे और जिनकी साँपों जैसी लम्बी-लम्बी जटाएँ थीं ।^२

१५. "विषयासक्त मनुष्यों के दुःखों की जानकारी हो जाने पर जो संयत है उनके लिये यही योग्य है कि वे विषयों के पास न फटकें ।"^३

१७. विषयासक्त मनुष्य के लिये विषय-सम्बन्धी सफलता भी एक विपत्ति ही है, क्योंकि इच्छित विषय की प्राप्ति होने पर वह उससे मदमत्त हो जाने पर जो नहीं करना चाहिये वह करता है और जो करना चाहिये वह नहीं करता, और इससे आहत होकर वह भयानक दुःख को प्राप्त होता है ।^४

१८. "ये काम-विषय जो बड़े ही प्रवास से मुरझित रह जाते हैं, जो विषयों की बन्धना के अनन्तर जहाँ से आते हैं वहाँ लौट जाते हैं, जो थोड़ी देर के लिये क्षण लिये जैसे ही होते हैं, कौन बुद्धिमान् संयत आदमी इनमें आनन्द मनायेगा ?"^५

१९. ये काम-विषय उल्का के समान हैं, इनके पीछे पड़ने पर वे पिपासा में बुद्धि का कारण होते हैं, कौन बुद्धिमान् संयत आदमी इन्हें प्राप्त कर सन्तुष्ट होगा ।^६

२०. ये काम-विषय फेंके हुए मांस के समान हैं, जो राजाओं से लेकर सभी के दुःख का कारण होते हैं, कौन बुद्धिमान् संयत आदमी इन्हें प्राप्त कर सन्तुष्ट होगा ।

२१. "ये काम-विषय इन्द्रियों की ही तरह नाशवान् हैं, जो भी इनमें रमण करता है, वे उसके लिये विपत्तिजनक ही होते हैं, कौन बुद्धिमान् संयत आदमी इन्हें प्राप्त कर सन्तुष्ट होगा ?"

२२. "जो संयमी आदमी इन काम-विषयों से डसा जाता है वे उसका मुक्त हर लेते हैं और उसके विनाश का कारण होते हैं, ये एक क्रुद्ध निर्दय सर्प के समान हैं, कौन बुद्धिमान् संयत आदमी इन्हें प्राप्त कर सन्तुष्ट होगा ?"

२३. "जिन काम-विषयों को भोगने से भी जैसे ही तृप्ति नहीं होती जैसी एक कुत्ते की हड्डी चाटने से, जो सूखी हड्डियों के पंजर के समान है, कौन बुद्धिमान् संयत आदमी इन्हें प्राप्त कर सन्तुष्ट होगा ?"^७

२४. जो दरिद्र कामान्ध है, जो विषयात्मा का दास है, वह इसी संसार में मृत्यु-दुःख का अधिकारी है ।^८

२५. गीतों के कारण हिरण विनाश को प्राप्त होते हैं, दीपक की चमक के कारण पतंग आग में जल-भुन कर जान गँवाते हैं, मांस-तोभी मछली लोहे का काँटा निगल जाती है; इसलिये संसार के काम-भोग अन्त में विनाश का ही कारण होते हैं ।^९

२६. यह जो सामान्यतया कहा जाता है कि 'काम-भोग भोगने के लिये है' यदि विचार कर देखा जाय तो उनमें से कोई भी भोग्य-पदार्थ नहीं है; अच्छे-अच्छे कपड़े और दूसरी भी वैसे ही सभी चीजें अधिक-से-अधिक दुःख के मार्जन मात्र हैं।^१

२७. "पानी प्यास बुझाने के लिये होता है, भोजन भूख मिटाने के लिये, घर हवा-धूप और वर्षा से बचाने के लिये; और वस्त्र शीत से रक्षा करने के लिये तथा नम्रता ढकने के लिये।"^२

२८. "इस प्रकार शीघा तन्त्रा के विघात के लिये है, वाहन यात्रा की सकावट मिटाने के लिये है, आसन खड़े रहने की सकावट दूर करने के लिये है, इसी प्रकार स्नान शरीर-शुद्धि और स्वास्थ्य का साधन है।"^३

२९. "जितने भी बाह्य-पदार्थ हैं वे आदमियों के दुःख हरण के ही साधन हैं—वे अपने में भोग्य पदार्थ नहीं है; कौन बुद्धिमान् आदमी इन दुःख के दूर करने के साधनों को भोग्य-वस्तुएँ मान कर भोगेगा?"^४

३०. "जो आदमी सन्निपात ज्वर से ग्रस्त होने पर ठण्डी पट्टी आदि को भोग्य-वस्तुएँ माने—जो कि केवल वेदना को दूर करने के ही उपाय हैं—वही आदमी इन काम-विषयों को भोग्य-वस्तुओं का नाम दे सकता है?"^५

३१. क्योंकि सभी काम-विषय अनित्य हैं, इसलिये मैं उन्हें भोग्य-विषय मान ही नहीं सकता। जो स्थितियाँ सुख-दायक प्रतीत होती हैं वही दुःखकारक भी बन जाती हैं।^६

३२. गर्म-वस्त्र और सुगन्धित घूप शीत ऋतु में सुख पहुँचाते हैं; किन्तु ग्रीष्म ऋतु में वही अप्रिय बन जाते हैं; चन्द्रमा की किरणें और चन्दन का लेप गर्मों में सुखकारक होते हैं, किन्तु वही सरदी से अप्रिय बन जाते हैं।^७

३३. क्योंकि संसार की सभी वस्तुएँ—हानि-लाभ, पक्ष-अपक्ष, सुख-दुःख आदि—द्रव्यो के आधीन हैं। इसलिये कोई भी आदमी न नित्य सुखी रहता है और कोई भी आदमी न नित्य दुःखी।^८

३४. जब मैं इस सुख-दुःख के मिश्रण को देखता हूँ तो मैं राज्य और दासता को समान ही समझता हूँ। क्योंकि न तो राजा ही हमेशा हँसता रहता है और न दास ही हमेशा रोता रहता है।^९

३५. क्योंकि राजा के सिर पर बड़ी जिम्मेदारी होती है, इसलिये राजा की चिन्ताएँ भी अधिक होती हैं। क्योंकि राजा तो कपड़े टाँगने की झूटी के सघान होता है, उसे दूसरों के लिये ही कष्ट सहन करना पड़ता है।^{१०}

३६. जो राजा अपने 'राज्य' पर अत्यधिक निर्भर करता है वह अभाग्य है; है जो कि उसे एक-न-एक दिन त्याग देने वाला है और जिसे बकगति ही प्रिय है;

दूसरी ओर यदि राजा राज्याधीन नहीं है तो ऐसे कामर नरेश को मुख ही क्या हो सकता है ?^१

३७. "और क्योंकि सारी पृथ्वी का राज्य जीत लेने पर भी राजा एक ही नगरी में रह सकता है और उसमें भी केवल एक ही महल में तो सकता है; बाकी सब कुछ क्या दूसरों के ही लिये नहीं है ?^२

३८. "और राजा को भी एक जोड़ा कपड़ा ही लगता है और भूख मिटाने के लिये मोड़ा भोजन अपेक्षित होता है; इसी प्रकार एक शय्या और एक आसन की ही आवश्यकता होती है; शेष सब तो मद के लिये ही है।"^३

३९. "यदि इन सब वस्तुओं का उपयोग आदमी का सन्तोष ही है, तो मैं बिना राज्य के भी सन्तुष्ट हूँ। और यदि कोई इनके बिना ही सन्तुष्ट है तो क्या मैं सब बेकार नहीं हूँ ?"^४

४०. "जो मंगलकारी पथ का अधिक है, उसे काम-भोगों में का प्रलोभन देना योग्य नहीं। उस मैत्री का, जिसकी आपने शोषणा की है, ध्यान करके, मैं आपसे बार-बार पूछता हूँ कि आप मुझे बतायें कि क्या विषयों में कुछ भी सार है ?"^५

४१. मैंने रोष में आकर गृह-त्याग नहीं किया है और न इसलिये कि शत्रु के हाथों ने मेरे मुकुट को गिरा दिया है और न मेरी कोई दूसरी फल-आकांक्षा ही है, जिनके कारण मैं आपके प्रस्ताव का स्वागत नहीं कर रहा हूँ।"^६

४२. जो कोई किसी भयानक क्रुद्ध सर्प से एक बार बचकर फिर उसी को प्राप्त करने की इच्छा करे, तो तेज जलती हुई तुषामणि से एक बार बचकर फिर उसी में पड़ने की इच्छा करे, वही एक बार इन काम-विषयों से बचकर फिर इन्हीं में फँसने की इच्छा कर सकता है।"^७

४३. जो भली प्रकार देखता हुआ भी किसी शत्रु से ईर्ष्या करे, जो मुक्त होता हुआ भी किसी बंधे हुए से ईर्ष्या करे, जो धनी होकर भी किसी दरिद्र से ईर्ष्या करे, जो स्वस्थ-चित्त होकर भी किसी पागल से ईर्ष्या करे—मैं कहता हूँ कि केवल ऐसा ही कोई किसी विषयासक्त से ईर्ष्या कर सकता है।"^८

४४. "मित्र! जो मित्रावीवी है, वह दया का पाव नहीं है। उसे इस लोक में परं मुख प्राप्त है, शान्ति प्राप्त है और आगे के लिये भी उसके सब दुःखों का अन्त हो गया है।"^९

४५. "किन्तु वही दया का पाव है जो विशाल धन-राशि के बीच मंदा हुआ होने पर भी तुष्णा के बशीभूत है, जिसे न इस लोक में परं मुख प्राप्त है, न शान्ति प्राप्त है और न आगे के लिये भी उसके दुःखों का अन्त हुआ है।"^{१०}

४६. "जो कुछ तुमने मुझे कहा है वह तुम्हारे शील, तुम्हारी जीवन-वर्था और तुम्हारे कुल के अनुरूप है। किन्तु अपने निश्चय पर दृढ़ रहना मेरे भी शील, मेरी भी जीवन-वर्था और मेरे भी कुल के अनुरूप है।"^{११}

४. गौतम का उत्तर (समाप्त)

१. "मैं संसार के कलहों से आहत हूँ। मैं शान्ति की खोज में हूँ। मैं इस दुःख का अन्त करने के बदले में इस पृथ्वी का राज्य तो क्या दिव्य-लोक का राज्य भी न चाहूँगा।"

२. "और राजन् ! यह जो तुमने कहा है कि धर्म, अर्थ और काम ही मनुष्य के तीन पुरुषार्थ हैं, और तुम्हारा यह भी कहना है कि मैं दुःख के मार्ग पर हूँ तो तुम्हारे तीनों पुरुषार्थ अनित्य हैं और असन्तोषकारक हैं।"

३. "और जहाँ आपका यह कहना है कि 'वार्धक्य आने तक प्रतीक्षा करनी चाहिये, क्योंकि तरुणाई का ठिकाना नहीं', तो आपका यह कथन ही सुनिश्चित नहीं क्योंकि तरुणाई में भी दुःखता हो सकती है और वार्धक्य में भी नहीं हो सकती।"

४. "और जब मृत्यु किसी भी समय किसी को भी अपने वश में ले सकती है, तो कोई भी शान्ति का खोजी बुद्धिमान् किस प्रकार वार्धक्य की प्रतीक्षा कर सकता है जब वह यह जानता ही नहीं कि मृत्यु कब आ कर दबायेगी ?"

५. "जब वार्धक्यरूपी शस्त्र हाथ में लिये, रोगों के तीर चारों ओर बिखरे मृत्यु प्राणियों को निगल जाने के लिये तैयार खड़ी है और प्राणी भी उसके मुँह में ऐसे जाते हैं जैसे हिरण जंगल की ओर तो कोई भी दीर्घायु की भी क्या कामना कर सकता है ?"

६. "चाहे तरुण हो, चाहे बूढ़ हो और चाहे लड़का हो, हर किसी के लिये यही योग्य है कि वह कष्टों के भौतिक-पथ पर अग्रसर हो।"

७. "और जहाँ तक तुम्हारा यह कहना है कि मैं यज्ञ करने में अप्रमादी बनूँ, क्योंकि वे मेरे कुल के अनुकूल हैं और महान् फलदायी हैं, तो ऐसे यज्ञों को नमस्कार है जिनमें निरीह प्राणियों का वध होता है।"

८. "किसी भावी फल के लिये किसी भी निरीह प्राणी की हत्या करना किसी भी कारुणिक शील-सम्पन्न मनुष्य के योग्य नहीं, चाहे फिर वह यज्ञ का फल अनन्तकालीन ही क्यों न हो।"

९. "और यदि यह भी न स्वीकार किया जाय कि आत्म-संयम, सदाचार और कामचित् होना ही सद्धर्म का अनुकरण करना है, तो भी भौतिक होना ठीक नहीं, क्योंकि यज्ञ-धर्म के अनुसार ऊँचे-से-ऊँचा फल पशुओं की हत्या से ही मिल सकता है।"

१०. "दूसरों को दुःख देकर, इसी जन्म में, जो सुख आदमी को प्राप्त होता है वही जब कारुणिक बुद्धिमान् पुरुष के लिये काम्य नहीं तो फिर किसी अदृश्य दूसरे लोक में जो सुख मिलने की बात कही जाती है, उसके बारे में तो कहना ही क्या ?"

११. "मैं जन्मे जन्मे में मिलने वाले किसी फल की आशा से कोई काम करने में प्रेरित नहीं हो सकता, हे राजन् ! मेरे मन को भावों जन्मों की कल्पना में भुल नहीं मिलता, क्योंकि ऐसे कर्मों की दिशा उसी तरह अनिश्चित और अस्थिर है जैसे बादलों से गिरी वर्षा से प्रताड़ित किसी पोथे की दिशा।"

१२. राजा ने हाथ जोड़कर कहा—“बिना आशा के आपका उद्देश्य सफल हो। जब भी कभी आप का अविनाशेय पुरुष हो जाय तब फिर इस पर धारणा की कृपा करना।”

१३. गौतम को फिर अपने राज्य में आने के लिये वचन-बद्ध कर अपने दरबारियों सहित राजा अपने महल को चला गया।

५. शान्ति का समाचार

१. जब गौतम राजगृह में एक कुटी बनाकर ठहरे हुए थे, उसी समय पाँच दूसरे परित्राजक भी आये और उन्होंने भी उसके पास ही एक कुटी बना ली।

२. इन पाँच परित्राजकों के नाम थे कोण्डिन्य, अश्वजित् बाण्य, महानाम तथा भद्रिक।

३. वे भी गौतम के व्यक्तित्व से प्रभावित हुए और सोचने लगे कि इसकी प्रश्रया का क्या कारण रहा होगा ?

४. राजा बिम्बिसार की भ्राति ही उन्होंने भी इस विषय में प्रश्न किया।

५. जब उसने उन्हें यह सारी परिस्थिति समझाई जो कि उसके प्रव्रजित होने का कारण बनी थी, उन्होंने कहा—“हाँ, हमने यह सब सुना है, लेकिन क्या तुम जानते हो कि तुम्हारे चले आने के बाद क्या हुआ ?”

६. सिद्धार्थ का उत्तर था, “नहीं।” तब उन्होंने उसे बताया कि उसके चले आने के बाद कोलियों से मुझ ठातने के विरोध में शाक्यों में बड़ा आन्दोलन छिड़ा।

७. जायमियों, औरतों, सहकों, सहकियों ने प्रदर्शन किये और अलसुनिकाले। वे नारे लगा रहे थे कि ‘कोलिय और शाक्य भाई-भाई हैं’, ‘भाई का भाई के विरुद्ध शस्त्र उठाना अनुचित है’, ‘गौतम के जलावतन हो जाने की याद करो’ इत्यादि।”

८. आन्दोलन का यह परिणाम हुआ कि शाक्य-संघ को एक सभा बुलाकर पुनः अपने निर्णय पर विचार करना पड़ा। इस समय बहुमत कोलियों से समझौता कर लेने के पक्ष में था।

९. शाक्य-संघ ने पाँच जनों को अपना दूत चुना और उन्हें यह काम सौंपा गया कि वे कोलियों के साथ सन्धि-वार्ता चलायें।

१०. जब कोलियों को इसका पता लगा वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने भी अपने में से पाँच जने चुने जो शाक्यों के दूतों के साथ सन्धि-वार्ता चलायें।

११. दोनों ओर के दूत आपस में मिले और दोनों ने तय किया कि एक स्थायी

पंचायत की नियुक्ति की जाय और राहगी के बल को लेकर कभी भी यदि कोई समझा हो तो इस पंचायत के सामने ही रखा जाय और पंचायत का निर्णय मान्य किया जाय। इस प्रकार युद्ध का खतरा सदा के लिये शान्त हो गया।

१२. जो कुछ कापिलवस्तु में हुआ था उससे गौतम को सूचित करने के अनन्तर परिव्राजकों ने कहा—“अब तुम्हारे लिये परिव्राजक बने रहने की कोई आवश्यकता नहीं। अब तुम अपने परिवार के लोगों के पास वापस जा सकते हो।”

१३. सिद्धार्थ का उत्तर था—“इस शुभ समाचार से मुझे प्रसन्नता हुई है। यह मेरी विजय है। लेकिन मैं वापस घर नहीं जाऊँगा। मुझे नहीं जाना चाहिये। मुझे परिव्राजक ही बने रहना चाहिये।”

१४. गौतम ने उन पाँच परिव्राजकों से पूछा—“तुम्हारा क्या कार्यक्रम है?” उनका उत्तर था—“हमने तपस्या करने का निश्चय किया है। तुम भी क्यों हमारे साथ शामिल नहीं होते?” सिद्धार्थ ने कहा—“शनैः शनैः पहले मुझे दूसरे पथों की परीक्षा करनी है।”

१५. तब पाँचों परिव्राजक चले गये।

६. समस्या की नई पृष्ठ-भूमि

१. पाँच परिव्राजकों द्वारा ज्ञाते गये इस समाचार ने कि शाक्यों और कोलियों में युद्ध का होना रुक गया था, गौतम को बड़ा बेचैन बना दिया।

२. अकेला होने पर वह खड़ी गम्भीरता से सोचने लगा कि क्या अब भी परिव्राजक बने रहने का उसके लिये कोई उचित कारण रह गया है।

३. उसने अपने से प्रश्न किया—वह अपने बन्धु-बान्धवों को क्यों छोड़कर आया था?

४. उसने इसीलिये गृहत्याग किया था क्योंकि वह युद्ध का विरोधी था। “अब जब कि युद्ध समाप्त हो गया है, तब भी क्या मेरे लिये कोई समस्या शेष रह गई है। क्या युद्ध की समाप्ति के साथ-साथ मेरी समस्या भी समाप्त हो गई?”

५. गहराई से सोचने पर उसे उत्तर मिला—नहीं।

६. युद्ध की समस्या अनिवार्य तौर पर विरोध की समस्या है। यह एक बड़ी समस्या का एक अंग भाग है।

७. “यह विरोध न केवल जातियों और राजाओं में ही विद्यमान है; यह विरोध यह संघर्ष विद्यमान है शत्रुओं में, जादूगो में गृहस्थों में, माता और पुत्र में, पुत्र और माँ में, रिता और पुत्र में, बहन और भाई में तथा सखी और साथी में।”

८. जातियों में जो संघर्ष होता है वह तो कभी-कभी होता है लेकिन बगों के बीच में जो संघर्ष होता है वह स्थायी है और लगातार जारी है। संसार के कष्टों और दुःख के मूल में यह वर्ग-संघर्ष ही है।

९. यह सत्य है कि मैंने युद्ध के कारण ही गृहत्याग किया था। लेकिन शाक्यों और कोलियों का युद्ध समाप्त हो जाने पर भी मैं घर वापस नहीं लौट सकता। मैं देखता हूँ कि मेरी समस्या ने व्यापक रूप धारण कर लिया है। मुझे उस सामाजिक-संघर्ष की समस्या का हल खोज निकालना है।

१०. पुराने परम्परागत दर्शनों के पास इस सामाजिक संघर्ष की समस्या का हल है या नहीं और यदि है तो कहाँ तक ?

११. क्या हम इन सामाजिक दर्शनों में से किसी एक को भी सही मान सकते हैं ?

१२. उसने हर परम्परा का—हर मत का—स्वयं परीक्षण करने का निश्चय किया।

पृष्ठ ४१ : १, २, ३, ४ ; अश्वघोषकृत बुद्धचरित सर्ग १० : श्लोक ४, ५, ८।

पृष्ठ ४२ : १, २, ३, ४, ५ ; बुद्धचरित सर्ग १० : श्लोक १३, १४, १५, १६, १७।

पृष्ठ ४३ : १, २, ३, ४, ५, ६ ; ७, ८, ९, १० ; बुद्धचरित सर्ग १० : श्लोक १७, १८, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, ३०।

पृष्ठ ४४ : १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ ; बुद्धचरित सर्ग १० : श्लोक ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१।

पृष्ठ ४५ : १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० ; बुद्धचरित सर्ग ११ : श्लोक २, ३, ४, ५, ६, ८, ९, १०, ११, १२, १३।

पृष्ठ ४६ : १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ ; बुद्धचरित सर्ग ११ : श्लोक १४, १७, १८, २१, २२, २३, २४, २५, २६।

पृष्ठ ४७ : १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० ; मुद्राचरित सर्ग ११ :
श्लोक ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५ ।

पृष्ठ ४८ : १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११ ; मुद्राचरित सर्ग
११ : ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६ ।

पृष्ठ ४९ : १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० ; मुद्राचरित सर्ग ११ :
५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७ ।

पृष्ठ ५० : १, ३, मुद्राचरित सर्ग ११ : ६८, ७२ ।

तीसरा भाग

नये प्रकाश की खोज में

१. भृगु आश्रम पर रुकना

१. अर्य पक्षों का परीक्षण करने के उद्देश्य से सिद्धार्थ गौतम ने आसार काष्ठाम से भेंट करने के लिये राजगृह को छोड़ दिया ।

२. मार्ग में उसने भृगु ऋषि का आश्रम देखा और यँ ही जरा देखने के लिये उसमें प्रवेश किया ।

३. आश्रम के बाह्य निवासी जंगल से लकड़ी चुन कर लाये थे । उनके हाथ 'तपस्या' की अत्यावश्यक वस्तुएँ समिधा, पुष्प, तथा कुश से भरे थे । वे बुद्धिमान् अपनी-अपनी कुटियों में न जाकर सिद्धार्थ गौतम की ही ओर मुड़े ।

४. आश्रम निवासियों द्वारा समुचित रूप से सम्मानित होकर सिद्धार्थ गौतम ने भी आश्रम के बड़े-बूढ़ों के प्रति आदर प्रदर्शित किया ।

५. उस मोक्ष-कामी बुद्धिमान् ने उन स्वर्ग-कामी तपस्वियों की विचित्र-विचित्र तपस्याओं का निरीक्षण करते हुए उस आश्रम को देखा ।

६. उस सुकोतम संन्यासी ने उस पवित्र वन में उन तपस्वियों को वैसी नाना प्रकार की तपस्याएँ करते हुए प्रथम बार देखा ।

७. तपस्याओं के रहस्य के श्रेष्ठ ज्ञाता भृगु ब्राह्मण ने उसे सभी प्रकार की तपस्याएँ समझायी और प्रत्येक तपस्या का फल भी बताया ।

८. पानी से उत्पन्न, निरग्नि-भोजन, मूल और फल—यही धर्मशास्त्रों के अनुसार तपस्वियों का भोजन है, लेकिन तपस्या के भिन्न-भिन्न नाना रूप हैं ।

९. "कुछ पक्षियों की भाँति डाने चुग कर गुजारा करते हैं, दूसरे हिरणों की भाँति घास चुगते हैं और तीसरे साँपों की भाँति वायु-प्राप्ति करते हैं—मानों वे दीमक की बान्सी ही बन गये हों ।"

१०. "दूसरे बड़ी कठिनाई से पत्थरों से अपने शरीर के लिये पोषण प्राप्त करते हैं, दूसरे अपने दाँतों से ही पीस कर अन्न खाते हैं, और तीसरे दूसरों के लिये उखावते हैं और उनके लिये भाग्यवश ओ कुछ छोड़ा बच रहे उसी पर गुजारा करते हैं ।"

११. "कुछ दूसरे निरन्तर पानी में भीगी जटाओं से दो बार अग्नि-देवता को अर्घ्य अर्पण करते हैं, कुछ दूसरे मछलियों की तरह पानी में डूबे रहते हैं। उनके बदर्भों को कंछुए नीचेते रहते हैं।"

१२. "कुछ समय तक इस प्रकार के तपस्या के कष्ट सहने से—अधिक कष्ट सहने से स्वर्ग, मध्यम कष्ट सहने से मर्त्य-लोक—वे अन्त में सुख प्राप्त करते हैं। कहा गया है कि कष्ट सहन ही पुण्य का मूल है।"

१३. यह सब सुना तो सीतम ने उत्तर दिया—"किसी भी ऐसे आश्रम को देखने का यह मेरा पहला अवसर है। मेरी समझ में तुम्हारा यह तपस्या-धर्म नहीं आता।

१४. "अभी तो मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ। आप को यह निष्ठा स्वर्ग-लाभ के लिये है, किन्तु मेरी इच्छा तो यही है कि संसार के दुःख के मूल कारण का और उसके दूर करने का उपाय खोज निकाला जाय। क्या मैं अब आप से विदा ले सकता हूँ? मैं संकल्प-दर्शन का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ और योग-विधि का भी अभ्यास करना चाहता हूँ और देखना चाहता हूँ कि क्या यह दोनों पद्धतियाँ मेरी सम्पत्ता के हल में किसी प्रकार सहायक सिद्ध हो सकती हैं?"

१५. "जब मैं सोचता हूँ कि मुझे आप लोगों से—जो ऐसी निष्ठा से अपने पथ पर अग्रसर हो रहे हैं, जिन्होंने मेरे प्रति इतने सोहार्द्र का परिचय दिया है—विदा लेनी होगी, तो मुझे बड़ा दुःख होता है; वैसे ही दुःख जैसा मुझे अपने सम्बन्धियों को छोड़ते समय हुआ था।

१६. "मैं जो इस वन से विदा ले रहा हूँ कोई आपकी कृति के प्रति कृतज्ञता के कारण नहीं, क्योंकि आप तो अपने पूर्वज ऋषियों के पथ पर चलने वाले महान् ऋषि-गण हैं।

१७. "मैं मुनि आलार काष्ठाम के पास जाना चाहता हूँ जो सुविज्ञ माना जाता है।

१८. उसका यह संकल्प देखकर आश्रम-पति भृगु ने कहा—"राजकुमार! तुम्हारा संकल्प महान् है। तुमने तरुण होने के बावजूद स्वर्ग-सुख और मोक्ष के बारे में सम्भीरता से विचार कर लिया है और तुम स्वर्ग-सुख के स्थान पर मोक्ष लाभ करना चाहते हो। तुम निस्सन्देह वीर हो।

१९. "यदि जैसा तुम कहते हो, यही तुम्हारा दृढ़ निश्चय हो तो शीघ्र विन्य-प्रवेश को जाओ। वही वह मुनि आलार काष्ठाम रहता है जो निरपेक्ष सुख के रहस्य का ज्ञाता है।

२०. "उससे तुम मार्ग का ज्ञान प्राप्त करोगे। लेकिन वहाँ तक मैं देख सकता हूँ तुम वहाँ भी न रुकोगे। तुम उसके सिद्धान्त की भी जानकारी प्राप्त कर और आगे बढ़ जाओगे।"

२१. गौतम ने उसका घन्यवाद किया और ऋषि-मण्डली के प्रति आदर प्रदर्शित कर वहाँ से विदा हुआ। वे ऋषि-मण्डली भी उसके प्रति यथायोग्य सत्कार-सम्मान की भावना प्रदर्शित कर पुनः तपस्या करने के निमित्त वन में जा दाखिल हुए।

२. सांख्य-परम्परा का अध्ययन

१. भृगु के आश्रम से विदा ले चुकने पर गौतम आलार काळाम के आश्रम का पता लगाने के लिये निकल पड़ा।

२. आलार काळाम उस समय वैशाली में ठहरा हुआ था। गौतम उधर गया। वैशाली पहुँच कर वह उसके आश्रम पहुँचा।

३. आलार काळाम के पास पहुँच कर उसने कहा कि मैं आपके सिद्धान्त और अभ्यास में दीक्षित होना चाहता हूँ।

४. आलार काळाम ने उत्तर दिया—‘तुम्हारा स्वागत है। मेरा सिद्धान्त ऐसा है कि तुम्हारे जैसा बुद्धिमान् आदमी इसे अचिरकाल में ही स्वयं समझ ले सकता है, मेरे सिद्धान्त का साक्षात् कर सकता है और तदनुसार जीवन बिताने लग सकता है।

५. ‘निश्चय से, तुम ऊँची-से-ऊँची शिक्षा ग्रहण करने के पात्र हो।’

६. आलार काळाम के ये शब्द सुनकर राजकुमार बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उत्तर दिया—

७. ‘‘इस असीम करुणा के कारण जो आप मेरे प्रति दिखा रहे हैं, सदीय होने पर भी मुझे लगता है कि मैं निदोष हूँ।

८. ‘‘क्या आप कृपा कर मुझे अपना सिद्धान्त बतायेंगे?’’

९. आलार काळाम बोला—‘‘तुम्हारे शील, तुम्हारे चरित्र और तुम्हारे बुद्धि निश्चय का मेरे मन पर ऐसे प्रभाव पड़ा है कि मैं तुम्हारी पात्रता जाँचने के लिये तुम्हारी कोई परीक्षा नहीं लेना चाहता।

१०. ‘‘हे सुनने वालों में श्रेष्ठ ! हमारे सिद्धान्तों को सुनो।’’

११. तब सुनने गौतम को उन सिद्धान्तों से परिचित कराया जो उस समय सांख्य-दर्शन के नाम से ज्ञात थे।

१२. प्रवचन की समाप्ति पर आलार काळाम ने कहा—‘‘गौतम ! बस इतने ही हमारे सिद्धान्त हैं। मैंने सार रूप में सब बता दिये हैं।’’

१३. गौतम आलार काळाम की स्पष्ट व्याख्या से बड़ा प्रसन्न हुआ।

३. समाधि-मार्ग का अभ्यास

१. जिस समय गौतम अपनी समस्या का हल ढूँढ़ निकालने के लिये नाना तरह के परीक्षण करने में लगा हुआ था, उसे विचार आया कि वह समाधि लगाने का ढंग भी क्यों न सीख ले ?

२. ध्यान मार्ग की तीन पद्धतियाँ प्रचलित थी ।

३. तीनों पद्धतियों में एक बात समान थी । तीनों की मान्यता थी कि सांस पर काबू पा लेने से चित्त की एकाग्रता सिद्ध हो जाती है ।

४. सांस को बस में रखने (?) की एक पद्धति आनापानसति कहलाती थी ।

५. सांस को बल में रखने की एक दूसरी पद्धति प्रचलित थी जो प्राणायाम कहलाती थी । यह सांस लेने के तीन विभाग करती थी : (१) पूरक (अन्दर सांस खींचना), कुम्भक (सांस को अन्दर रोके रखना), रेचक (सांस को बाहर निकाल देना) । सांस को बल में करने का एक और तीसरा मार्ग समाधि-मार्ग कहलाता था ।

६. आलार काळाम ध्यान-मार्ग में निष्णात समझा जाता था । गौतम को लगा यह अच्छा होमा कि यदि आलार काळाम की देख-रेख में ध्यान-मार्ग का कुछ अभ्यास कर ले ।

७. इसलिये उसने आलार काळाम से बातचीत की और प्रार्थना की कि वह कृपया उसे ध्यान-मार्ग का अभ्यास करा दे ।

८. आलार काळाम का उत्तर था—“बड़ी खुशी से ।”

९. आलार काळाम ने उसे अपने ध्यान-मार्ग की विधि दिखाई । इसकी सात “सीढ़ियाँ” थी ।

१०. गौतम ने इस विधि का निवर्तित रूप से प्रतिदिन अभ्यास किया ।

११. इस विधि पर पुरा अधिकार कर चुकने के बाद गौतम ने पूछा—“क्या सीखने के लिये कुछ और शेष है ?”

१२. आलार काळाम का उत्तर था :—“मित्र ! नहीं इसके अतिरिक्त मेरे पास सिखाने के लिये और कुछ नहीं ।” गौतम ने आलार काळाम से बिदा ली ।

१३. गौतम ने उद्दक रामपुत्र नाम के एक दूसरे योगी के बारे में सुना जिसकी कथाति थी कि उसने एक ऐसी ध्यान-विधि का अविष्कार किया है कि उससे ध्यानी आलार-काळाम की ध्यान-विधि की ओर एक सीढ़ी ऊपर चढ़ जाता है ।

१४. गौतम ने सोचा कि यह विधि भी सीख कर योगी की अन्तिम अवस्था तक पहुँचना चाहिये । तदनुसार वह उद्दक रामपुत्र के आश्रम में पहुँचा और उसके कथनानुसार योगाभ्यास आरम्भ किया ।

१५. थोड़ी देर में ही गौतम ने उद्दक राम-पुत्र के आठवें दर्जे तक भी अधिकार प्राप्त कर लिया । उद्दक रामपुत्र की ध्यान विधि को पूर्णरूप से हस्तगत करने के अन्तर गौतम ने उससे भी बड़ी प्रश्न पूछा जो उसने आलार काळाम से पूछा था :—“क्या आगे कुछ और भी सीखना शेष है ?”

१६. उद्दक रामपुत्र का उत्तर भी पूर्ववत् ही था :—“मित्र ! इसके अतिरिक्त तुम्हें सिखाने के लिये और मेरे पास कुछ नहीं ।”

१७. आलार काताम और उरुक् रामपुत्त दोनों ध्यानाचार्यों के रूप में कोशल "जनपद" में प्रसिद्ध थे। लेकिन गौतम ने सुना था कि मगध जनपद में भी वैसे ही ध्यानाचार्य हैं। उसने सोचा कि उसे उसकी भी विधि सीख लेनी चाहिये।

१८. तदनुसार गौतम मगध गया।

१९. उसने देखा कि यद्यपि उनकी भी ध्यान-विधि का आधार सांस पर चाकु पाना ही था, तो भी जो ध्यान-विधि कोशल जनपद में प्रचलित थी, उससे यह सर्वथा भिन्न थी।

२०. इस ध्यान-विधि की विशेषता यह थी कि यह सांस का सर्वथा निरोध करके चित्त की एकाग्रता का सम्पादन करती थी।

२१. गौतम ने यह विधि सीखी। जब उसने सांस को रोक कर चित्त को एकाग्र करने का प्रयास किया तो उसने देखा कि उसके कानों में से बड़ी तीव्र आवाज आती है और अपना सिर उसे ऐसा प्रतीत होने लगा मानों कोई तेज चाकू से चीर रहा हो।

२२. यह बड़ी कष्टदायक विधि थी। लेकिन गौतम ने इस पर भी अधिकार प्राप्त कर ही लिया।

२३. इस प्रकार उसने समाधि-मार्ग का अभ्यास किया।

४. तपस्या का परीक्षण

१. गौतम ने सांख्य-मार्ग तथा समाधि-मार्ग का परीक्षण कर लिया था। लेकिन वह तपश्चर्या का परिणाम बिना किये ही भृगुओं के आश्रम में चला आया था।

२. उसे लगा कि इसके बारे में भी उसका स्वानुभव होता चाहिए ताकि वह अधिकार से इसकी चर्चा कर सके।

३. तदनुसार गौतम गया पहुंचा। वहाँ पहुंच कर सबसे पहले उसने घूम फिर कर आस पास का इलाका देखा। बाद में उसने तपश्चर्या के लिये गया के राजपि नैगरी के आश्रम में—जो कि उरुवेला में था—निवास करने का निश्चय किया। तपश्चर्या के लिये नेरञ्जरा नदी के तट पर यह एक एकान्त स्थान था।

४. उरुवेला में उसे वह पाँच परिव्राजक भी मिले जो उसे राजगृह में मिले थे और जिन्होंने उसे 'शान्ति का समाचार' लाकर सुनाया था। वे भी तपश्चर्या का अभ्यास कर रहे थे।

५. उन तपस्वियों ने उसे देखा और उसके पास आकर कहा कि वह उन्हें भी साथ ले ले। गौतम ने स्वीकार किया।

६. इसके बाद से वे उसकी सेवा करते हुए उसकी आज्ञा में रहने लगे। वे उसके प्रति बड़े विनम्र थे और जैसा वह कहे वैसा करते वाले थे।

७. गौतम की तपस्या तथा आत्म-क्लेश की प्रक्रिया अत्यन्त उग्र रूप की थी।

८. कभी कभी वह केवल दो तीन घंटों पर ही भिषाटन के लिए जाता, सात घंटों से अधिक पर कभी नहीं। और उन घंटों में वे भी एक एक घर से दो तीन कौर भोजन ही स्वीकार करता, सात और से अधिक किसी एक घर से नहीं।

९. वह दिन में एक दो कटोरी भर भोजन पर ही गुजारा करता; सात कटोरियों से अधिक किसी हावत में नहीं।

१०. कभी कभी वह सारे दिन में एक ही बार भोजन करता, कभी कभी दो दिनों में एक बार, इसी कम से—कभी कभी सात दिनों में एक बार, या पन्द्रह दिनों में भी एक बार और बड़ी ही नपी-तुली मात्रा में।

११. जब उसने तपश्चर्या में और प्रगति की तो उसका आहार जंगल से इकट्ठी की हुई हरी जड़ें मात्र रह गया था, या अपने से उगे हुए जौ या धान के दाने, या पेड़ों की छाल के टुकड़े, या काई, या चावल के गिरे भूसी के अन्दर के लाल कण, या उबले हुए चावल की पीछ, या सरसों आदि की खली।

१२. वह जड़ें और जंगली फल खाकर रहता था, या जो स्वयं हवा से अपने आप गिरे।

१३. उसके कण्डे या तीस के बने थे, या सन की रस्सी और कुड़े के डेरों पर पड़े हुए बीबड़ों के, या पेड़ की छाल के, या आधी या पूरी मूग-छाल के, या पास के छाल की लकड़ी की पट्टियों के, या आदमियों या पशुओं के बालों से बने कम्बलों के और या उल्लू के पंखों के।

१४. वह अपने सिर और दाढ़ी के बाल मोच-मोच कर उखाड़ता था, वह हमेशा सीधा और पालखी मार कर बैठता था तथा वह पालखी मारे मारे आगे सरकता था—वह खड़ा नहीं होता था।

१५. इस तरह से तथा और भी नाना प्रकार से वह अपने शरीर को कष्ट और पीड़ा पहुँचाता था—उस की तपश्चर्या इस सीमा तक पहुँच गई थी।

१६. अपने शरीर के प्रति उमेधा के भाव को वह इस सीमा तक ले गया कि वहाँ तक उसके शरीर पर मैन जमती रही जो कि बाद में अपने आप गिरने लगी।

१७. वह भयानक घनघोर जंगल में रहता था, ऐसे घनघोर जंगल में कि उसके बारे में कहा जाता था कि एक पागल के सिवा और कोई उस जंगल में प्रवेश करने का साहस नहीं कर सकता। यदि करेगा तो उसके रोंगटे खड़े हो जायेंगे।

१८. जीत ऋतु में जब रातें भयानक ठण्डी हो जाती तो कृष्ण-पक्ष के दिनों में रात को वह खुले में रहता और दिन के समय घुप जगहों में।

१९. और जब वर्षा के ठीक पहले ग्रीष्म ऋतु की भयानक गरमी पड़ने लगती तो दिन में वह सूर्य के नीचे रहते और रात को साँस थोढ़ देने वाली गरमी में भीतर जंगल में।

२०. वह श्मशान-भूमि में मृदों की हड्डियों का तकिया बनाकर लेटता ।

२१. इसके बाद गौतम एक दिन में एक ही कली खाकर दिन बिताने लगा—बाद में एक ही सरसों का दाना—बाद में एक ही चावल का दाना ।

२२. जब वह एक दिन में केवल एक ही दाना खाकर गुज़ारा करने लगा तो उसका शरीर बहुत क्षीण हो गया ।

२३. यदि वह अपने पेट को स्पर्श करता, तो उसका हाथ उसकी पीठ को जा लगता; यदि वह अपनी पीठ को स्पर्श करता तो उसका हाथ उसके पेट को जा लगता । उसका पेट और पीठ एक दूसरे के इतने नज़दीक सट गये थे ।^१ यह सब कुछ उसकी अत्यन्त अल्पाहारता के ही कारण हुआ था ।

५. तपश्चर्या का त्याग

१. गौतम की तपश्चर्या और आत्म-पीड़न बड़े ही उग्र रूप का था—इतना उग्र जितना उग्र वह हो सकता था । यह छः वर्ष के लम्बे असें तक जारी रहा ।

२. छः वर्ष बीतने पर उसका शरीर इतना दुर्बल हो गया था कि वह हिस-डोल तक न सकता था ।

३. तब भी उसे कोई नया-प्रकाश नहीं दिखाई दिया था, और संसार में जो दुःख की समस्या है और जिस पर उसका मन केन्द्रित था, उस समस्या का कोई हल उसे दिखाई नहीं दिया था ।

४. उसने अपने मन में सोचा—“यह न आत्म-विजय का मार्ग है, न पूर्ण-बोधि-प्राप्त करने का मार्ग है और न मोक्ष का मार्ग है ।”

५. “कुछ इस संसार के सुख-भोग के निमित्त कष्ट उठाते हैं, कुछ स्वर्ग-लाभ के निमित्त कष्ट सहन करते हैं; सभी प्राणी आशा के चक्कर में पड़कर अपने उद्देश्य को प्राप्त न हो, सुख को खोजते हैं, दुःख के गढ़े में जा गिरते हैं ।

६. “क्या मेरे साथ भी कुछ कुछ ऐसा ही नहीं हुआ है ?

७. “मैंने जो प्रयास किया है मैं उसे दोष नहीं दे रहा हूँ, किन्तु यह आधार को छोड़ कर आकाश में उड़ने का प्रयास !

८. “मैं पूछता हूँ, क्या शरीर का अधिक से अधिक उत्तापन ‘धर्म’ हो सकता है ?

९. “क्योंकि मन की प्रेरणा से ही शरीर या तो कार्य करता है अथवा कार्य करने से विरत रहता है, इसलिए मात्र मन की साधना ही योग्य है—बिना विचार के शरीर एक कुत्ते के सामान है ।

१०. “यदि केवल शरीर की ही बात होती, तो शायद भोजन की सुख से ही पवित्रता आ सकती; किन्तु जो कर्ता है, जो मन है—उसका भी तो प्रण है । लेकिन यह सब किस काम का ?

११. "जिसके शरीर का बल जाता रहा, जो भूख तथा प्यास से परेशान है जिसका मन थकावट के मारे एकाग्र और शान्त नहीं है—ऐसे आदमी को कभी नया-जान प्राप्त नहीं हो सकता।

१२. "जो पूर्ण रूप से शान्त नहीं है वह ऐसे उद्देश्य को जो चित्त द्वारा ही प्राप्य है कैसे प्राप्त कर सकता है ?

१३. "सच्ची शान्ति और चित्त की एकाग्रता शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति से ही ठीक-ठीक प्राप्त हो सकती है।"

१४. इस समय उरुवेला में सेनाती नाम का एक गृहपति रहता था। उसकी कन्या का नाम था मुजाता।

१५. मुजाता ने एक न्यग्रोध वृक्ष के प्रति मित्रता मान रखी थी और यदि उसे पुत्र-लाभ हो तो प्रति-वर्ष भेंट चढ़ाने का संकल्प किया था।

१६. क्योंकि उसकी इच्छा पूर्ण हुई थी, इसलिए उसने अपनी पुष्पा नाम की दासी को 'पूजा-स्थली' तैयार करने के लिये भेजा था।

१७. गौतम को न्यग्रोध वृक्ष के नीचे बैठा देख पुष्पा ने सोचा आज वृक्ष-देवता ही साकार हो गया है।

१८. मुजाता स्वयं आई और उसने अपनी बनाई हुई खीर स्वर्ण-पात्र में सिद्धार्थ गौतम को अर्पण की।

१९. उसने स्वर्ण-पात्रलिया और सुपतिट्ठ नाम के नदी-घाट पर स्नान करने के अनन्तर भोजन ग्रहण किया।

२०. इस प्रकार उसकी 'तपश्चर्या' का अन्त हुआ।

२१. जो पांच परिव्राजक सिद्धार्थ गौतम के साथ थे, वे उससे शष्ट हो गये। क्योंकि, उसने तपस्वी तथा आत्म-पीड़न के जीवन का परित्याग कर दिया था। वे सिद्धार्थ गौतम को छोड़ कर चले गये।

पृष्ठ ५४ : १, २; बुद्धचरित सर्ग ७ : श्लोक १५, १६।

पृष्ठ ५५ : १, २; बुद्धचरित सर्ग ७ : श्लोक १७, १८।

पृष्ठ ६० : १; महासत्त्वक सुत्त (मज्झिम निकाय)।

चौथा भाग

ज्ञान-लाभ और नवीन-मार्ग का दर्शन

१. नये प्रकाश के निमित्त ध्यान-साधना

१. अपने आपको उस भोजन से तरो-ताजा करके, गौतम अपने पूर्व-अनुभवों पर विचार करने के लिए बैठा। उसको यह स्पष्ट हो गया कि अभी तक के अपनाये सभी मार्ग विफल रहे।

२. विफलता इतनी अधिक थी कि वह किसी को भी सम्पूर्ण रूप से निराश कर सकती थी। अफसोस तो उसे भी था। किन्तु निराशा उसे छू तक न गई थी।

३. उसे विश्वास था कि उसे रास्ता मिल कर रहेगा। इतना अधिक कि जिस दिन उसने सुजाता की दी हुई खीर ग्रहण की उसने पाँच स्वप्न देखे। उसने अपने स्वप्नों की वही व्याख्या की कि उसे 'बोधि' प्राप्त होकर रहेगी।

४. उसने अपना भविष्य देखने की भी कोशिश की। जिस स्वप्न-पात्र में सुजाता की दासी उसके लिए खीर लाई थी उसने उस स्वप्न-पात्र की नेरजरा नदी में फेंक दिया और कहा—“यदि मुझे 'बोधि' प्राप्त होने वाली है तो यह पात्र धारा के ऊपर की ओर जाय, अन्यथा नीचे की ओर।” पात्र सबमुच धारा के बिरुद्ध ऊपर की ओर जाने लगा और तब काळ नाम के मांस-राजा के भवन के पास जाकर पानी में डूब गया।

५. आशा और दुःख संकल्प से सन्नद्ध होकर उसने उरुवेला छोड़ दिया और राज-पाथ पर आगे बढ़ कर गया जहाँ पहुँचा। वहाँ उसने एक पीपल का वृक्ष देखा। नये-प्रकाश की आशा में जिसने वह अपनी समस्या का हल निकाल सके उसने इस वृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर बैठने की ठानी।

६. अन्य सभी दिशाओं का विचार कर के उसने पूर्व-दिशा का चुनाव किया। वनेजो (=चित्तमलों) के क्षय के निमित्त ऋषियों ने प्रायः पूर्व दिशा को ही चुना है।

७. उस पीपल के वृक्ष के नीचे गौतम सीधा यद्मासन लगाकर बैठा। 'बोधि' प्राप्त करने का दुःख संकल्प करते हुए उसने निश्चय किया—‘वाहे मेरी त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही बाकी रह जायें, वाहे मेरा सारा मांस और रक्त

अरीर में ही मूख जाय, किन्तु बिना 'बोधि' प्राप्त किये मैं इस स्थान का परित्याग नहीं करूँगा।" ९

८. नाग-पति के समान तेजस्वी काष्ठ नाम का नाग-राज और उसकी स्वर्ण-प्रभा नाम की पत्नी पीपल के वृक्ष के नीचे आसनस्थ गौतम के दर्शन से जाग्रत हो उठे थे। इस विश्वास के साथ कि वह निश्चयात्मक रूप से 'बोधि' लाभ करेगा, उन्होंने इस प्रकार उसकी स्तुति की—

९. "हे मुनि ! क्योंकि तुम्हारे पांव के नीचे दधी पृथ्वी बार बार गुंजायमान होती है, और क्योंकि तुम सूर्य के समान तेजस्वी हो, इसलिए तुम निश्चय से 'बुद्ध' होगे।

१०. "क्योंकि आकाश में बिचरने वाले पक्षी भी तुम्हें तमस्कार कर रहे हैं और क्योंकि आकाश में मन्द-मन्द मलयानिल बहर रहा है, इसलिए भी हे कमलाक्ष ! तुम निश्चय से 'बुद्ध' होगे।"

११. जब वह ध्यान करने के लिये दृढ़ आसन लगाकर बैठा तो बुरे-बिचारों और बुरी-चेतनाओं के झुण्ड के झुण्ड ने—जिन्हें पौराणिक भाषा में मार-पुत्र कहा गया है—उस पर आक्रमण किया।

१२. गौतम को डर लगा कि कहीं ये उस पर काबू न पा जायें और उसकी साधना को विफल न कर दें।

१३. वह जानता था कि इस मार-पुत्र में बहुत से शूद्र-ब्राह्मण पराजित हो चुके हैं।

१४. इसलिए उसने अपना सारा साहस बटोर कर मार से कहा—"मुझमें भय है, मुझमें वीर्य है, मुझमें प्रज्ञा है। हे मार ! तू मुझे कैसे पराजित करसकता है ? चाहे वायु इस नदी के खेत को सुखाने में भी सफल हो जाय किन्तु तू मुझे मेरे निश्चय से नहीं हटा सकता। पराजित होकर जीते रहने की अपेक्षा संघाम में मर जाना मेरे लिए अधिक श्रेयस्कर है।"

१५. उस कोए की भांति जो बहुत सी तर्बो प्राप्त करने की आशा से किसी पत्थर पर जाकर ठोके मारता है कि यहां से कुछ मधुर-मधुर मेरे हाथ लगेगा, मार ने भी गौतम पर आक्रमण किया था।

१६. जबकोए को कहीं भी कुछ मधुर नहीं प्राप्त होता तो वह वहां से चल देता है। ठीक उसी कोए की तरह जब मार को भी कहीं कुछ गुंजायमान न दिखाई दी तो वह निराश होकर गौतम को छोड़ कर चल दिया।

२. ज्ञान-लाभ

१. ध्यान करने के समय के लिये गौतम ने इतना भोजन इकट्ठा करके पास रख लिया था कि चालीस दिन तक कमी न पड़े।

२. विघ्नकारी अकुशल विचारों का मूलोच्छेद कर सिद्धार्थ गौतम ने अब भोजन ग्रहण करके अपने आग को तरो-ताजा कर लिया था और सन्नत हो गया था। इस प्रकार उसने 'बोधि' प्राप्त करने के निमित्त ध्यान करने की अपनी तैयारी करली थी।

३. ज्ञान-प्राप्ति के लिए गौतम को चार सप्ताह तक लगातार ध्यान-मग्न रहना पड़ा। उसे अन्तिम अवस्था तक पहुँचने के लिए चार सीढ़ियाँ पार करनी पड़ी।

३. पहली अवस्था धितक और विचार प्रधान थी। एकान्त-वास के कारण वह इसे बड़ी सरलता से प्राप्त कर सका।

४. दूसरी अवस्था में इसमें एकाग्रता आ शामिल हुई।

५. तीसरी अवस्था में समचित्तता तथा जागरूकता का समावेश हो गया।

६. चौथी और अन्तिम अवस्था में समचित्तता तथा पवित्रता का संयोग हो गया और समचित्तता तथा जागरूकता का।

७. जब उसका चित्त एकाग्र हो गया था, जब वह पवित्र हो गया था, जब वह निर्दोष बन गया था, जब उसमें तनिक भी कलुष नहीं रह गया था, जब वह सुकोमल हो गया था, जब वह दक्ष हो गया था, जब उसमें दृढ़ता आ गई थी, जब वह सर्वथा राग-रहित हो गया था जब उसकी नजर एक-मात्र अपने उद्देश्य पर ही थी, तब गौतम ने अपना सारा ध्यान उस एक समस्या के हल करने में लगाया जो उसे हيران कर रही थी।

८. चौथे सप्ताह के अन्तिम दिन उसका पथ कुछ प्रकाशित हुआ। उसे स्पष्ट दिखाई दिया कि उसके सामने दो समस्याएँ हैं—पहली समस्या यही थी कि संसार में दुःख है और दूसरी समस्या यही थी कि किस प्रकार इस दुःख का अन्त किया जाए और मानव-जाति को सुखी बनाया जाए ?

९. इस तरह चार सप्ताह तक लगातार निस्तन करते रहने के बाद अन्धकार बिलीन हुआ, प्रकाश प्रकट हुआ, अविद्या का नाश हुआ, ज्ञान अस्तित्व में आया; उसे एक नया-पथ दिखाई दिया।

३. नये-धर्म का आविष्कार

१. जिस समय गौतम ध्यान लगाकर बैठा उस समय उस पर सांख्य-दर्शन का बड़ा प्रभाव था।

२. संसार में कष्ट और दुःख है—यह तो एक ऐसा पदार्थ सत्य था, जिससे इनकार नहीं किया जा सकता था।

३. लेकिन गौतम इस बात का पता लगाना चाहता था कि दुःख को दूर कैसे किया जाए ? सांख्य-दर्शन के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर न था।

४. इसलिए उसने अपना सारा ध्यान इसी एक प्रश्न के हल करने में लगाया कि संसार के कष्ट और दुःख को कैसे दूर किया जाय ?

५. स्वाभाविक तौर पर पहला प्रश्न जो उसने अपने आप से पूछा, वह यही था कि वे कौन से कारण हैं, वे कौन से हेतु हैं, जिनको ब्रह्म से एक व्यक्ति कष्ट उठाता और दुःख भोगता है ?

६. उसका दूसरा प्रश्न था—दुःख का नाश कैसे किया जाय ?

७. इन दोनों प्रश्नों का ही उसे सही-सही उत्तर मिल गया—यही सम्यक् सम्बोधि कहलाता है।

८. इसी कारण पीपल का वह वृक्ष भी—जिसके नीचे बैठ कर सिद्धार्थ गौतम ने ज्ञान प्राप्त किया था—बोधि-वृक्ष कहलाता है।

४. सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करके बोधिसत्व गौतम

सम्यक् सम्बुद्ध हो गये

१. ज्ञान-प्राप्ति के पूर्व गौतम केवल एक बोधिसत्व थे। ज्ञान-प्राप्ति के बाद ही वह बुद्ध बने।

२. बोधिसत्व कौन और क्या होता है ?

३. जो प्राणी बुद्ध बनने के लिए प्रयत्नशील रहता है उसे 'बोधिसत्व' कहते हैं।

४. एक बोधिसत्व 'बुद्ध' कैसे बनता है ?

५. बोधिसत्व को लगातार दस जन्मों तक 'बोधिसत्व' रहना पड़ता है।

'बुद्ध' बनने के लिए 'बोधिसत्व' को क्या करना होता है ?

६. एक जन्म में वह 'मुदिता' प्राप्त करता है। जैसे सुनार सोने-चांदी के मेल को दूर करता है। उसी प्रकार एक 'बोधिसत्व' अपने चित्त के मेल को दूर करके इस बात को स्पष्ट रूप से देखता है कि जो आदमी चाहे पहले प्रमादी रहा हो, लेकिन यदि वह प्रमाद का त्याग कर देता है तो वह बादल-मुक्त चन्द्रमा की तरह इस लोक को प्रकाशित करता है। जब उसे इस बात का बोध होता है तो उस के मन में मुदिता उत्पन्न होती है और उस के मन में सभी प्राणियों का कल्याण करने की उत्कट इच्छा उत्पन्न होती है।

७. अपने दूसरे जन्म में वह 'विमला-भूमि' को प्राप्त होता है। इस समय बोधिसत्व काम-चेतना से सर्वथा मुक्त हुआ रहता है। वह कारुणिक होता है, सब के प्रति कारुणिक। न वह किसी के अयुगुण को बढ़ावा देता है और न किसी के पुण को घटाता है।

८. अपने तीसरे जीवन में वह प्रणाकारी-भूमि प्राप्त करता है। इस समय

बोधिसत्त्व की प्रज्ञा दर्पण के समान स्वच्छ हो जाती है। वह अनात्म और अनित्यता के सिद्धान्त को पूरी तरह से समझ लेता है और हृदयज्जम कर लेता है। उसकी एक-मात्र आकांक्षा ऊँची से ऊँची प्रज्ञा प्राप्त करने की होती है और इसके लिये वह बड़े से बड़ा त्याग करने के लिये तैयार रहता है।

९. अपने चौथे जीवन में वह अभिष्मती-भूमि को प्राप्त करता है। इस जन्म में बोधिसत्त्व अपना सारा ध्यान अष्टांगिक मार्ग पर केन्द्रित करता है, चार सम्यक् ध्यानांशों पर केन्द्रित करता है, चार प्रयत्नों पर केन्द्रित करता है तथा चार प्रकार के श्रद्धि-बल पर केन्द्रित करता है और पाँच प्रकार के शील पर केन्द्रित करता है।

१०. पाँचवें जीवन में वह मुहुर्जवा भूमि को प्राप्त करता है। वह सापेक्ष तथा निरपेक्ष के बीच के सम्बन्ध को अच्छी तरह हृदयज्जम कर लेता है।

११. अपने छठे जीवन में वह अभिमुत्ती-भूमि प्राप्त होता है। अब इस अवस्था में जीवों के विकास, उनके कारण-कारह निदानों को हृदयज्जम करने की बोधिसत्त्व की पूरी पूरी तैयारी हो चुकी है, और वह 'अभिमुत्ती' नामक विद्या उसके मन में सभी अविद्या-वस्तु प्राणियों के लिये असीम कल्याण का संचार कर देती है।

१२. अपने सातवें जीवन में बोधिसत्त्व दूरज्जमा-भूमि प्राप्त करता है। अब बोधिसत्त्व देश, काल के बाधनों से परे है, वह अमर के साथ एक हो गया है, किन्तु अभी भी वह सभी प्राणियों के प्रति कल्याण का भाव रखने के कारण देह-धारी है। वह दूसरों से इसी बात में पृथक् है कि अब उसे भाव-तृष्णा उसी प्रकार स्पर्श नहीं करती जैसे पानी किसी कँवल को। वह तृष्णा-मुक्त होता है, वह दान-शील होता है, वह अमा-शील होता है, वह कुशल होता है, वह भीमबान् होता है, वह शान्त होता है, वह बुद्धिमान होता है तथा वह प्रज्ञावान् होता है।

१३. अपने दस जीवन में वह धर्म का ज्ञानकार होता है लेकिन लोगों के सामने वह उसे इसदंग से रखता है कि उनकी समझ में आ जाय। वह जानता है कि उसे कुशल तथा अमाशील होना चाहिये। दूसरे आदमी उसके साथ कुछ भी व्यवहार करें वह उद्विग्नता-रहित होकर उसे सह लेता है क्योंकि वह जानता है कि अज्ञान के कारण ही वह उसके मंता को ठीक-ठीक नहीं समझ पा रहे हैं। इसके साथ-साथ वह दूसरों का भला करने के अपने प्रयास में तनिक भी क्षिप्तता नहीं आने देता, और न वह अपने चित्त को प्रज्ञा से इधर-उधर भटकने देता है; इसलिये उस पर कितनी भी विपत्तियाँ आयें वे उसे सुपथ से कभी नहीं हटा सकती।

१४. अपने आठवें जीवन में वह 'अचल' हो जाता है। 'अचल' अवस्था में बोधिसत्त्व कोई प्रयास नहीं करता। वह इत-इत हो जाता है। उससे जो भी कुशल-कर्म होते हैं वे सब अनायास होते हैं। जो कुछ भी वह करता है उसमें सफल होता है।

१५. अपने नौवें जीवन में वह साधुमती-भूमि प्राप्त हो जाता है। जिसने

तमाम धर्मों को या पद्धतियों को जीत लिया है अथवा उनके भीतर प्रवेश पा लिया है, सब दिशाओं को जीत लिया है, समय की सीमाओं को लांघ गया है, वही 'साधुमती' अवस्था प्राप्त कहलाता है।

१६. अपने दसवें जीवन में बोधिसत्व 'धर्म-मेधा' बन जाता है। उसे 'बुद्ध' की दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो जाती है।

१७. बुद्ध होने की अवस्था के लिये आवश्यक इन दसों बलों (= भूमियों) को बोधिसत्व प्राप्त करता है।

१८. एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होने पर बोधिसत्व को न केवल इन दस भूमियों को प्राप्त करना होता है बल्कि उसे दस पारमिताओं को भी पूर्णता को पहुँचाना होता है।

१९. एक जन्म में एक पारमिता की पूर्ति करनी होती है। पारमिताओं की पूर्ति कमशः करनी होती है। एक जीवन में एक पारमिता की पूर्ति करनी होती है, ऐसा नहीं कि थोड़ी एक, थोड़ी दूसरी।

२०. जब दोनों तरह से वह समर्थ सिद्ध होता है तभी एक बोधिसत्व बुद्ध बनता है। बोधिसत्व के जीवन की पराकाष्ठा ही 'बुद्ध' बनना है।

२१. जातकों का सिद्धान्त अथवा बोधिसत्व के अनेक जन्मों का सिद्धान्त ब्राह्मणों के अवतारवाद के सिद्धान्त से सर्वथा प्रतिकूल है अर्थात् ईश्वर के अवतार धारण करने के सिद्धान्त से।

२२. जातक कथाओं का आधार है कि बुद्ध के व्रजिाल में गुणों की पराकाष्ठा का समावेश हुआ है।

२३. अवतार-वाद के अनुसार भगवान् को अपने अस्तित्व में निरन्तर होने की आवश्यकता नहीं। ब्राह्मणों अवतारवाद का ब्राह्मणों-सिद्धान्त यही कहता है कि ईश्वरावतार चाहे अपने धामरण में अपवित्र और अनैतिक ही क्यों न हो, किन्तु वह अपने अनुयायियों की—अपने भक्तों की—रक्षा करता है।

२४. बुद्ध बनने से पूर्व बोधिसत्व के लिये दस जन्मों तक श्रेष्ठतम जीवन की शर्तें और किसी धर्म में भी नहीं है। यह अनुपम है। कोई भी दूसरा धर्म अपने संस्मापक के लिये इस प्रकार की परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक नहीं दहराता।

पाँचवाँ भाग

बुद्ध और उनके पूर्वज

१. बुद्ध और वैदिक ऋषि

१. वेद, मंत्रों अर्थात् ऋचाओं या स्तुतियों का संग्रह है। इन ऋचाओं का उच्चारण करने वालों को 'ऋषि' कहते हैं।

२. मन्त्र देवताओं को सम्बोधन करके की गई प्रार्थनाओं के अतिरिक्त कुछ नहीं है जैसे, इन्द्र, वरुण, अग्नि, सोम, ईशान, प्रजापति, ब्रह्मा, महादेव, यम तथा अन्य।

३. प्रार्थनायें प्रायः जपुओं से रक्षा वा जपुओं के विरुद्ध सहायता प्राप्त करने के लिये हैं, धन प्राप्ति के लिये हैं, भक्तों से भोजन, मोस और मुरा को भेंट स्वीकार करने के लिये हैं।

४. वेदों में दर्शन की भाषा कुछ विशेष नहीं है। लेकिन कुछ वैदिक ऋषियों के गीत हैं जिनमें कुछ दार्शनिक दृष्टि की काल्पनिक उड़ान दिखाई देती है।

५. इन वैदिक ऋषियों के नाम हैं: (१) अश्वमर्षण, (२) प्रजापति परमेष्ठि, (३) ब्रह्मणस्पति वा बृहस्पति, (४) अनिल, (५) दीर्घतमा, (६) तारायण, (७) हिरण्यगर्भ तथा (८) विश्वकर्मा।

६. इन वैदिक दार्शनिकों की मुख्य समस्यायें थीं: यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ? अलग-अलग चीजें कैसे उत्पन्न की गईं? उनकी एकता और अस्तित्व क्यों है? किसने उत्पन्न की और किसने व्यवस्था की? यह संसार किसने से उत्पन्न हुआ और फिर किसमें विलीन हो जायगा?

७. अश्वमर्षण का कथन था कि संसार की उत्पत्ति तपस (ताप) से हुई है। तपस ही वह नित्य तत्व है जिससे नित्य धर्म और ऋतु (=सत्य) की उत्पत्ति हुई है। इन्हीं से तम (अंधकार, रात्रि) की उत्पत्ति है। तम से जल की उत्पत्ति हुई और जल से काल की। काल से ही सूर्य तथा चन्द्रमा पैदा हुए तथा सौ और पुष्पों ने जन्म धारण किया। काल ने ही अन्तरिक्ष की तथा प्रकाश की जन्म दिया तथा रात और दिन की व्यवस्था की।

८. ब्रह्मणस्पति की कल्पना थी कि सृष्टि असत् से सत् रूप में आई। असत्

से कदाचित् उसका आशय अनन्त से था। सत् मूल रूप से असत् से ही उत्पन्न हुआ। समस्त सत् का मूलाधार असत् ही था और उस समस्त भावी सत् का जो इस समय असत् है।

१. प्रजापति परमेष्ठी ने जिस समस्या को उठाया वह थी कि क्या सत् की उत्पत्ति असत् से हुई? उसका मत था कि इस प्रश्न का प्रस्तुत विषय से कोई सम्बन्ध नहीं। उसके मत के अनुसार समस्त जगत का मूलाधार जल है। उसकी दृष्टि से जो जगत का मूलाधार—जल है वह न सत् के अन्तर्गत आता है और न असत् के।

१०. परमेष्ठी ने जड़त्व और चेतन को लेकर कोई विभाजक रेखा नहीं खींची। उसके मत के अनुसार किसी निहित तत्व के ही कारण जल भिन्न-भिन्न वस्तुओं का आकार ग्रहण करता है। उसने इस निहित-तत्व को 'काम' कहा है—विश्व-व्यापी इच्छा-शक्ति।

११. एक दूसरे वैदिक दार्शनिक का नाम था अनिल। उसके लिये वायु ही मुख्य तत्व था। इसमें चलन अन्तर्निहित था। उसी में उत्पन्न करने की शक्ति है।

१२. दीर्घतमा का मत था कि अन्त में सभी चीजों का मूलाधार सूर्य है। सूर्य अपनी अन्तर्निहित शक्ति से ही आगे पीछे सरकता है।

१३. सूर्य किसी भूरी शक्ल के पदार्थ से निर्मित है और वैसे ही विद्युत तथा अग्नि।

१४. सूर्य, विद्युत और अग्नि में जल का बीजांकुर विद्यमान है और जल पौधी का बीजांकुर है। ऐसा ही कुछ दीर्घतमा का मत था।

१५. नारायण के मत के अनुसार पुरुष ही जगत का आदि कारण है। पुरुष से ही सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, आकाश, ओषध, वस्तु, वायु के जीव, सभी प्राणी, सभी वनों के वनस्पति तथा सभी मानवीय संस्थान उत्पन्न हुए हैं।

१६. हिरण्य-गर्भ सिद्धान्त की दृष्टि से हिरण्य-गर्भ परमेष्ठी और नारायण के बीच में था। हिरण्य-गर्भ का मतलब है स्वर्ण-गर्भ। यही विश्व की वह महान् शक्ति थी, जिसे तमाम दूसरी पार्थिव तथा दिव्य शक्तियों तथा अस्तित्व का मूल स्रोत माना जाता था।

१७. हिरण्य-गर्भ का अर्थ अग्नि भी है। यह अग्नि ही है जो सौर-मण्डल का उपादान-कारण है, विश्व की उत्पादक शक्ति।

१८. विश्वकर्मा की सृष्टि में यह मानना की जल ही हर वस्तु के मूल में है और जल ही ने समस्त संसार की उत्पत्ति हुई है ऐसा समझना और यह समझना कि संकरण उसका स्वभाव-धर्म ही है, योग्य नहीं था। यदि हम जल को ही मूल उपादान मानें तो पहले हमें यह बताना होगा कि जल की उत्पत्ति कैसे हुई और

जस में वह शक्ति, वह उत्पादक-शक्ति कहीं से आई और पृथ्वी, अग्नि, तेज, आदि को यह शक्तियाँ, अन्य नियम और योग सब कुछ कैसे अस्तित्व में आये ?

१९. विश्वकर्मा का कहना था कि 'पुरुष' ही है जो सब किसी का मूलोपाधार है। 'पुरुष' आदि में है, 'पुरुष' अन्त में है। वह इस दुःख ससार के पहलू से है, इन सभी विश्व-शक्तियों के अस्तित्व में आने से भी पहलू से उसका अस्तित्व है। अकेले पुरुष द्वारा ही यह विश्व उत्पन्न है और संचालित है। पुरुष एक और केवल एक है। वह अज है और उसीमें सभी उत्पन्न चीजों का निवास है। वही है जिसका चेतन भी महान् है और सामर्थ्य भी महान् है। वही उत्पन्न करने वाला है, वही विनाश करने वाला है। पिता की हेमियत से उसने हमें उत्पन्न किया और सम्राज की तरह वह हम सब के अन्त में परितः है।

२०. बुद्ध सभी वैदिक ऋषियों को आदरणीय नहीं मानते थे। वह उनमें से कोई दस ही ऋषियों को सर्वाधिक प्राचीन तथा मन्त्र रक्षिता मानते थे।

२१. लेकिन उन मन्त्रों में उन्हें ऐसा कुछ नहीं दिखाई दिया जो मानव के वैदिक उत्थान में सहायक हो सके।

२२. बुद्ध की दृष्टि में वेद बालू के काल्पार के समान निष्प्रयोजन थे।

२३. इसलिये बुद्ध ने वेदों को इस योग्य नहीं समझा कि उनसे कुछ सीखा जा सके या पहलू भी किया जा सके।

२४. इसी प्रकार बुद्ध को वैदिक ऋषियों के दर्शन में भी कुछ सार नहीं दिखाई देता था। गिम्सन्वेड उन (ऋषियों को) सत्य की खोज थी। वे उसे अन्धरे में टटोल रहे थे। किन्तु उन्हें सत्य मिला न था।

२५. उनके सिद्धान्त केवल मानसिक उद्धानों थीं, जिनका तर्क या संधान धार्मिक से कोई सम्बन्ध न था। दर्शन के क्षेत्र में उन्होंने किसी नये सामाजिक-चिन्तन की देल नहीं दी।

२६. इसलिये उसने वैदिक ऋषियों के दर्शन को बेकार जान उसकी सम्पूर्ण का से अवहेलना की।

२. कपिल—दार्शनिक

१. प्राचीन भारतीय दार्शनिकों में कपिल सर्वाधिक प्रधान है।

२. उसका दार्शनिक दृष्टिकोण अनुभव था। वह एक अकेला दार्शनिक नहीं था, वह अपने में मानो एक दार्शनिक बर्म ही था।

३. उसका दर्शन सांख्य-दर्शन कहा जाता था।

४. उस ही दार्शनिक मान्यताओं को का देने वाली थी।

५. सत्य के लिये प्रमाण आवश्यक है। सांख्य का यह प्रथम सिद्धान्त है। बिना प्रमाण के सत्य का अस्तित्व नहीं।

५. सत्य को सिद्ध करने के लिये कपिल ने केवल दो प्रमाण स्वीकार किये—

(१) प्रत्यक्ष और अनुमान ।*

६. प्रत्यक्ष से मतलब है (इन्द्रियों के माध्यम से) विद्यमान वस्तु की भित्त को जानकारी ।

७. अनुमान तीन प्रकार का है—(१) कारण से कार्य का अनुमान, जैसे बादलों के अस्तित्व से वर्षा का अनुमान लगाया जा सकता है; (२) कार्य से कारण का अनुमान, जैसे यदि नीचे नदी में बाढ़ दिखाई दे तो हम ऊपर पहाड़ पर वर्षा होने का अनुमान लगा सकते हैं; (३) सामान्यतोगुष्ट अनुमान जैसे हम आदमी के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने से यह समझते हैं कि वह स्थान-परिवर्तन करता है, उसी प्रकार हम तारों को भी भिन्न-भिन्न जगहों पर देखकर यह अनुमान लगाते हैं कि वे भी स्थान परिवर्तित होते हैं ।

८. उसका अगला सिद्धान्त सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में था । सृष्टि की उत्पत्ति और उसका कारण ।

९. कपिल को किसी सृष्टि-कर्त्ता का अस्तित्व स्वीकार न था । उनका मत था कि उत्पन्न वस्तु पहले से ही अपने कारण में विद्यमान रहती है जैसे मिट्टी से बरतन बनता है अथवा धागों से एक कपड़े का टुकड़ा बनता है ।

१०. यह एक तर्क था जिसकी वजह से कपिल को किसी सृष्टि-कर्त्ता का अस्तित्व साम्य न था ।

११. उसने अपने मत के समर्थन में और भी तर्क दिये हैं ।

१२. असत् कभी किसी कार्य का कारण नहीं हो सकता । वास्तव में नई उत्पत्ति कुछ होती ही नहीं । वस्तु उस सामग्री के अतिरिक्त और कुछ नहीं है जिससे वह निर्मित हुई है ; वस्तु अपने अस्तित्व में आने से पहले उस सामग्री के रूप में विद्यमान रहती है कि जिससे उसका निर्माण होता है । किसी एक निश्चित सामग्री से किसी एक निश्चित वस्तु का ही निर्माण हो सकता है । और केवल एक निश्चित सामग्री ही किसी निश्चित वस्तु के रूप में परिणति को प्राप्त हो सकती है ।

१३. तो इस वास्तविक संसार का मूल स्रोत क्या है ?

१४. कपिल का कहना था कि वास्तविक संसार के दो रूप हैं—(१) व्यक्त (= विकसित) तथा अव्यक्त (= अविकसित) ।

१५. व्यक्त वस्तु अव्यक्त वस्तुओं का स्रोत नहीं हो सकती ।

१६. व्यक्त वस्तुएँ ससीम होती हैं और यह सृष्टि के मूल स्रोत से बेमेल हैं ।

१७. तमाम व्यक्त वस्तुएँ परस्पर समान होती हैं । इसलिये कोई भी एक व्यक्त वस्तु किसी दूसरी व्यक्त वस्तु का स्रोत नहीं मानी जा सकती । और फिर क्योंकि वे स्वयं किसी एक ही मूल स्रोत से उत्पन्न होती हैं, इसलिये वे स्वयं वह मूल स्रोत नहीं हो सकती ।

१८. कपिल का दूसरा तर्क था कि एक कार्य को अपने कारण से भिन्न होना ही चाहिये—यद्यपि उस कार्य में कारण निहित रहता ही है। जब यह ऐसा है तो विश्व स्वयं ही अन्तिम कारण नहीं हो सकता। इसे किसी अन्तिम कारण का परिणाम होना चाहिये।

१९. जब पूछा गया कि अव्यक्त की अनुभूति क्यों नहीं होती, इसकी कोई भी किया इन्द्रिय-गोचर क्यों नहीं होती, तो कपिल का उत्तर था :—

२०. यह अनेक कारणों से हो सकता है। हो सकता है अनेक दूसरी अति-सूक्ष्म वस्तुओं की तरह जिनकी सीधी अनुभूति नहीं होती, इसकी भी अनुभूति न होती हो; अथवा अत्यधिक दूरी के कारण अनुभूति न होती हो; अथवा अनुभूति में कोई एक तीसरी वस्तु बाधक हो, अथवा किसी तादृश वस्तु की मिलावट हो; अथवा किसी तीव्रतर वेदना (= अनुभूति) के कारण अनुभूति न होती हो; अथवा अन्धेपन वा किसी अन्य इन्द्रिय-दोष के कारण अनुभूति न होती हो अथवा द्रष्टा के मस्तिष्क की विकलता के ही कारण अनुभूति न होती हो।

२१. जब पूछा गया तो विश्व का मूल स्रोत क्या है? विश्व के व्यक्त-रूप तथा अव्यक्त-रूप में क्या अन्तर है?

२२. कपिल का उत्तर था "व्यक्त-रूप का भी कारण होता है तथा अव्यक्त-रूप का भी कारण होता है। लेकिन दोनों के मूल स्रोत स्वतन्त्र हैं और उनका कोई कारण नहीं।"

२३. व्यक्त वस्तुओं की संख्या अनेक है। वे देश काल से सीमित हैं। उनका स्रोत एक ही है, वह नित्य है और सर्वव्यापक है। व्यक्त वस्तुएँ क्रियाशील होती हैं, उनके अंग व हिस्से होते हैं। सबका मूल-स्रोत सदा ही रहता है, लेकिन न वह क्रियाशील होता है और न उसके अंग व हिस्से होते हैं।

२४. कपिल ने तर्क था कि अव्यक्त की व्यक्त में परिणति उन तीन गुणों की क्रियाशीलता का परिणाम है जिनसे उसका निर्माण हुआ है। वे तीन गुण हैं, सत्व, राज, तम।

२५. इन तीन गुणों में प्रथम अर्थात् सत्व प्रकृति में प्रकाश के समान है जो प्रकट करता है, जो मनुष्यों को सुख देता है; दूसरा गुण राज है जो प्रेरित करता है, जो संचालित करता है, जो क्रियाशीलता का कारण होता है; तीसरा गुण तम है जो भारीपन का स्रोतक है, जो रोकता है, उपेक्षा वा निष्क्रियता को उत्पन्न करता है।

२६. तीनों गुण परस्पर सम्बद्ध होकर ही क्रियाशील होते हैं। वे एक दूसरे पर हावी हो जाते हैं। वे एक दूसरे के सहायक होते हैं। वे एक दूसरे से मिले रहते हैं। जिस प्रकार लो, तेल और बत्ती के परस्पर सहयोग से ही दीपक जलता है, उसी प्रकार यह तीनों गुण भी मिलकर ही क्रियाशील होते हैं।

२७. जब तीनों गुण एकदम बराबर भाषा में होते हैं, कोई भी एक गुण दूसरे पर हावी नहीं होता, उस समय यह विश्व अचेतन प्रतीत होता है, उसमें विकास नहीं होता ।

२८. जब तीनों गुण एकदम बराबर भाषा में नहीं होते, एक गुण दूसरे पर हावी हो जाता है, तब विश्व सचेतन हो जाता है, उसमें विकास होना आरम्भ हो जाता है ।

२९. यह पूछे जाने पर गुणों की भाषा में कभी-बेसी क्यों हो जाती है, कपिल का उत्तर था कि उसका कारण दुःख है ।^१

३०. कपिल के दर्शन के सिद्धान्त कुछ-कुछ ऐसे ही थे ।

३१. अन्य सभी दार्शनिकों की अपेक्षा बुद्ध कपिल के सिद्धान्तों से ही विशेष-रूप से प्रभावित थे ।

३२. कपिल ही एक ऐसा दार्शनिक था जिसकी शिक्षाएँ बुद्ध को तर्कसंगत और कुछ-कुछ यथार्थता पर आश्रित ज्ञान पड़ीं ।

३३. लेकिन बुद्ध ने कपिल की सभी शिक्षाओं को स्वीकार नहीं किया । कपिल को उन्हें केवल तीन ही बातें याद थीं ।

३४. उन्हें यह बात मान्य थी कि सत्यप्रमाणाश्रित होना चाहिये । यथार्थता का आधार बुद्धिवाद होना चाहिये ।

३५. उन्हें यह बात मान्य थी कि किसी ईश्वर के अस्तित्व व उस के सृष्टिकर्ता होने का कोई तर्कानुकूल या यथार्थताश्रित कारण विद्यमान नहीं है ।

३६. उन्हें यह बात मान्य थी कि संसार में दुःख है ।

३७. कपिल की शेष शिक्षाओं की उन्होंने अपेक्षा की क्योंकि उनका उनके लिये कोई उपयोग न था ।

३. ब्राह्मण-ग्रन्थ

१. वेदों के बाद उस धार्मिक-साहित्य का सम्बर आता है जो ब्राह्मण-ग्रंथों के नाम से प्रसिद्ध है । दोनों ही पवित्र ग्रन्थ माने जाते थे । वास्तव में ब्राह्मण भी वेदों का एक भाग ही है । दोनों साथ-साथ हैं और दोनों का एक सम्मिलित नाम 'धृति' है ।

२. ब्राह्मणों के दर्शन के चार स्तम्भ हैं ।

३. सब से पहला स्तम्भ है कि वेद न केवल पवित्र हैं, बल्कि अश्रुयेय हैं । उनके किसी एक भी शब्द पर प्रश्न-चिन्ह नहीं लग सकता ।

४. ब्राह्मणी-दर्शन का दूसरा स्तम्भ वा दूसरी आधार-शिक्षा थी कि आत्मा की मुक्ति जन्म-मरण के संबंध से वा संसरण से मुक्ति वैदिक यज्ञों तथा दूसरी धार्मिक क्रियाओं के उचित ढंग से पूरा करने और ब्राह्मणों को दान देने से ही हो सकती है ।

५. 'ब्राह्मणों' के पास न केवल एक आदर्श-वर्ग की ही कल्पना थी, बल्कि उन्होंने अपनी एक "आदर्श-समाज" की कल्पना भी गढ़ रखी थी।

६. इस "आदर्श-समाज" के डाने का उनका अपना नाम था चातुर्वर्ण्य। यह वेदों में अज्ञा हुआ है, और क्योंकि वेद तर्कातीत हैं और क्योंकि वेदों के किसी भी शब्द पर प्रश्न-निन्हा लग ही नहीं सकता, इसलिए एक आदर्श-समाज के नमूने के रूप में चातुर्वर्ण्य भी तर्कातीत है और उस पर भी अंगुली नहीं उठाई जा सकती।

७. समाज के इस नमूने के कुछ आधार-भूत नियम हैं।

८. पहला नियम था कि समाज चार वर्गों में विभक्त होना चाहिए।

(१) ब्राह्मण; (२) क्षत्रिय; (३) वैश्य, और (४) शूद्र।

९. दूसरा नियम था कि इन चारों वर्गों में सामाजिक समानता नहीं हो सकती। इन सबको कमिक असमानता के नियम से परस्पर बंधा रहना होगा।

१०. ब्राह्मण सर्वोपरि। ब्राह्मणों के नीचे क्षत्रिय, किन्तु वैश्यों से ऊपर। क्षत्रियों के नीचे वैश्य किन्तु शूद्रों से ऊपर। सब के नीचे शूद्र।

११. यह चारों वर्ग अधिकार और विशेष-सुविधाओं के मामले में एक-दूसरे से समानता का दावा नहीं कर सकते थे। अधिकारों और विशेष-सुविधाओं का उपयोग कमिक असमानता के नियम के अनुसार ही हो सकता था।

१२. ब्राह्मण को वह सभी अधिकार और विशेष-सुविधाएँ प्राप्त थीं जिन की वह इच्छा कर सकता था। लेकिन एक क्षत्रिय उन्हीं अधिकारों और विशेष-सुविधाओं की मांग नहीं कर सकता था जो एक ब्राह्मण को प्राप्त थी। एक वैश्य की अपेक्षा उसे अधिक अधिकार और विशेष-सुविधायें प्राप्त थीं। वैश्य को एक शूद्र की अपेक्षा अधिक अधिकार और सुविधायें प्राप्त थीं। लेकिन वह उन्हीं अधिकारों और विशेष-सुविधाओं की मांग नहीं कर सकता था जो एक क्षत्रिय को प्राप्त थी। और जहाँ तक शूद्र की बात है, उसे किसी विशेष-सुविधा का तो कहना ही क्या कोई अधिकार ही नहीं प्राप्त था। उसके लिए यही बहुत था कि वह ऊपर के तीनों वर्गों को बिना रुष्ट किये किसी न किसी तरह जीता रह सके।

१३. चातुर्वर्ण्य के तीसरे नियम का सम्बन्ध पेशों वा जीविका के साधनों से था। ब्राह्मण का पेशा था पढ़ना, पढ़ाना और धार्मिक-संस्कार कराना। क्षत्रिय का पेशा था लड़ना, मरना-भारना। वैश्य का पेशा था व्यापार। शूद्र का पेशा था ऊपर के तीनों वर्गों की सेवा करना। इन चारों वर्गों का यह विभाजन ऐसा न था कि एक वर्ग किसी दूसरे का पेशा कर सके। हर वर्ग केवल अपना-अपना ही पेशा कर सकता था। कोई भी एक वर्ग किसी दूसरे के पेशे में दखल न डे सकता था।

१४. चातुर्वर्ण्य का चौथा नियम शिष्टा के अधिकार से सम्बन्धित था। चातुर्वर्ण्य के नमूने के अनुसार केवल पहले तीन वर्ग—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—

ही शिखा के अधिकारी थे। शूद्रों के लिये शिक्षित होना निषिद्ध था। इस चातुर्वर्ण्य के नियम ने केवल शूद्रों के ही शिक्षित होने को बर्जित नहीं किया था, बल्कि सभी स्त्रियों के शिक्षित होने को बर्जित किया था, जिनमें ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों की भी स्त्रियाँ शामिल थीं।

१४. एक पाँचवाँ नियम भी था। इस के अनुसार आदमी के जीवन के चार हिस्से किये गये थे। पहली अवस्था ब्रह्मचर्याश्रम थी, दूसरी अवस्था गृहस्थाश्रम कहलाती थी, तीसरी वानप्रस्थाश्रम और चौथी सन्यासाश्रम।

१५. प्रथम आश्रम का उद्देश्य था अध्ययन और शिक्षा। दूसरे आश्रम का उद्देश्य था वैवाहिक जीवन व्यतीत कराना। तीसरे आश्रम का उद्देश्य था आदमी को वन-वास की जीवन से परिचित कराना—बिना गृह-त्याग किये पारिवारिक बन्धनों से मुक्त हो जाना। चौथे आश्रम का उद्देश्य था ईश्वर की खोज और उससे मिलने का प्रयास।

१७. इन आश्रमों से तीनों ऊँचे वर्गों के पुरुष-मात्र लाभान्वित हो सकते थे। शूद्रों और स्त्रियों के लिये पहला आश्रम बर्जित था। इसी प्रकार शूद्रों और स्त्रियों के लिए अन्तिम आश्रम भी बर्जित था।

१८. ऐसा था यह दिव्य 'आदर्श-समाज' का नमूना जिसे चातुर्वर्ण्य का नाम दिया गया था। ब्राह्मणों ने इस नियम को ऊँचे आदर्शवाद में परिणत कर दिया था और इस बात की पूरी सावधानी रखी थी कि इसमें कहीं कोई कोर-कसर न बाकी रह जाय।

१९. ब्राह्मणी-दर्शन का एक चौथा स्तम्भ था 'कर्म' का सिद्धान्त। यह आत्मा के संसरण के सिद्धान्त का एक भाग था। ब्राह्मणों का 'कर्म-वाद' इस एक प्रश्न का उनकी ओर से दिया गया उत्तर था—“जन्मान्तर होने पर नये शरीर को लेकर आत्मा कहाँ नया जन्म ग्रहण करती है?” ब्राह्मणी-दर्शन का उत्तर था कि “यह उसके पिछले जन्म के कर्मों पर निर्भर करता है।” दूसरे शब्दों में इसका यही मतलब है कि यह उसके कर्मों का परिणाम है।

२०. ब्राह्मणी-धर्म के प्रथम सिद्धान्त के कुछ कहे विरोधी थे। उन्होंने ब्राह्मणों के इस सिद्धान्त का खण्डन किया कि वेद अपौरुषेय हैं और उन पर प्रश्न बिन्दु नहीं लग सकता।

२१. उनकी सम्मति में कोई बात ऐसी हो ही नहीं सकती जो गलत होने की सम्भावना से परे हो। किसी भी विषय में कोई भी बात अन्तिम हो ही नहीं सकती। यथावश्यकता समय-समय पर हर बात का परीक्षण हो सकना चाहिये।

२२. आदमी को सत्य और यथार्थ सत्य जानना चाहिये। बुद्ध के लिए विचार-स्वातन्त्र्य सर्वाधिक महत्व की बात थी। और उन्हें इस बात का निश्चय था कि विचार-स्वातन्त्र्य ही सत्य की प्राप्ति करने का एकमात्र साधन है।

२३. वेदों की अपौरुषेयता को मान लेने का मतलब था विचार-स्वातन्त्र्य को सर्वथा अस्वीकार कर देना ।

२४. इन्हीं कारणों से ब्राह्मणी-दर्शन की उक्त स्थापना उन्हें सर्वाधिक अप्रिय थी ।

२५. बुद्ध की ब्राह्मणी-दर्शन की दूसरी स्थापना भी उतनी ही अप्रिय थी । बुद्ध ने यह तो स्वीकार किया कि "यज्ञ" करना भी उचित है, किन्तु उन्होंने 'सच्चे यज्ञ' और 'झूठे यज्ञ' में विभाजक रेखा खींच दी ।

२६. दूसरों के कल्याण के लिये 'आत्म-परित्याग' को ही बुद्ध ने 'सच्चा यज्ञ' माना । आत्म-स्वार्थ के लिये किसी देवता को प्रसन्न करने के उद्देश्य से किसी पशु की बलि देना बुद्ध ने 'झूठा यज्ञ' बताया ।

२७. अभिकांक्ष ब्राह्मणी 'यज्ञ' देवताओं को प्रसन्न करने के लिये दी जाने वाली पशुओं की बलियाँ ही थीं । बुद्ध ने इन्हें 'झूठे यज्ञ' कह कर इनकी निन्दा की । यज्ञ यदि 'आत्मा' के 'मोक्ष' लाभ के लिए ही किये जायें तो भी बुद्ध इसके करने के पक्ष में न थे ।

२८. यज्ञ-विरोधी लोग यह कह कर ब्राह्मणों का उपहास किया करते थे, 'यदि कोई एक पशु की बलि देने से 'स्वर्ग' जा सकता है, तो फिर भी अतः स्वर्ग जाने के लिये अपने पिता का ही बलिदान क्यों नहीं किया जाता ?'

२९. बुद्ध इस मत से सर्वथा सहमत थे ।

३०. "यज्ञ" का सिद्धान्त बुद्ध को जितना बुरा लगता था उतनी ही बुरी बुद्ध को यह चातुर्वर्ण्य की स्थापना लगती थी ।

३१. ब्राह्मणवाद ने चातुर्वर्ण्य के नाम पर जिस प्रकार के समाज-संगठन की कल्पना की, वह बुद्ध को सर्वथा अप्राकृतिक लगता था । इसका वर्गाश्रित स्वरूप अनिवार्य था और मनमाना था । यह किसी के हुक्म से रच दिये गये समाज के समान था । बुद्ध एक खुले और एक स्वतन्त्र-समाज के पक्षपाती थे ।

३२. ब्राह्मण-वाद का चातुर्वर्ण्य एक जड़ समाज-रचना थी, अपरिवर्तन-शील । एक बार ब्राह्मण के घर में जन्म ले लिया, हमेशा के लिये ब्राह्मण । एक बार क्षत्रिय के घर में जन्म ले लिया, हमेशा के लिये क्षत्रिय । एक बार वैश्य के घर में जन्म ले लिया, हमेशा के लिये वैश्य । और एक बार शूद्र के घर में जन्म ले लिया, हमेशा के लिये शूद्र । समाज-रचना का आधार व्यक्ति का वह पद था, वह दर्जा था जो उसे गृह-विशेष में जन्म ग्रहण कर लेने मात्र से प्राप्त था । कोई बड़े से बड़ा "पाप-कर्म" भी उसे उसके दर्जे से गिरा न सकता था, इसी प्रकार कोई बड़े से बड़ा "पुण्य-कर्म" भी किसी को ऊपर न उठा सकता था । न गुण की ही कहीं पूजा थी और न विकास की ही कहीं गुंजायन थी ।

३३. कोई भी समाज ऐसा नहीं है जिसमें असमानता न हो । लेकिन

ब्राह्मणवाद की बात ही दूसरी है। ब्राह्मण-वाद द्वारा जिस असमानता के सिद्धान्त का प्रचार किया गया है, वह उसका धार्मिक मान्य सिद्धान्त है। यह असमानता अपने आप यही प्रतिष्ठित नहीं हो गई है। ब्राह्मण-वाद समानता को मानता ही नहीं रहा। वास्तव में यह समानता के सिद्धान्त का शत्रु है।

३४. ब्राह्मण-वाद केवल असमानता से ही सन्तुष्ट नहीं रहा। ब्राह्मण-वाद का धारा कमिक-असमानता में ही बसा था।

३५. समन्वय तथा मेल-जोल की भावना को बजाय, बुद्ध ने सोचा कि यह कमिक-असमानता एक तो नीचे, उसके ऊपर, उसके और ऊपर, सब के ऊपर के वर्गों में कमिक-पुण्या की भावना पैदा कर देगी, दूसरी ओर उसी तरह सब के ऊपर, उसके नीचे, उससे और नीचे तथा सब के नीचे के वर्ग में कमिक-जिगृप्सा की भावना पैदा कर देगी और इससे समाज में स्थायी संघर्ष बना रह सकता है।

३६. चारों वर्गों के पैसे भी निश्चित थे। चुताव की स्वतन्त्रता नहीं थी। इतना ही नहीं, यह पैसे कमोवेश सामर्थ्य या हुनर के हिसाब से निश्चित नहीं किये गये थे, बल्कि जन्म के हिसाब से।

३७. चातुर्वर्ण्य के नियमों को ध्यानपूर्वक समझने-बुझने में बुद्ध इस परिणाम पर पहुँचे कि ब्राह्मण-वाद की समाजिक व्यवस्था का वास्तविक आधार यदि स्वार्थीभूत नहीं था, तो मूलतः अवश्य था।

३८. बुद्ध को स्पष्ट हो गया था कि इस व्यवस्था से सब के कल्याण की तो आशा की ही नहीं जा सकती, सब की स्वार्थपूर्ति भी नहीं हो सकती। निश्चय से जान बूझ कर इसकी कलना हो इस जन की गई है कि बहुत से लोग चन्द लोगों के स्वार्थों की पूर्ति में निरत रहें। इस व्यवस्था में जादमी की स्वयं अपने आप मानव-धनुर (= भू-धुर) बने हुए मानवों की सेवा में झोंक दिया गया था।

३९. इसका उद्देश्य कमजोरों की दबाना और उनका शोषण था और उनको सर्वथा गुलाम बनाये रखना।

४०. बुद्ध ने सोचा कि जिस "कर्म-वाद" की ब्राह्मण-वाद ने रचना की है वह भी विद्रोह की भावना को सर्वथा सोख जाने के लिए ही है। अपने दुःख के लिए स्वयं जादमी ही जिम्मेवार है। विद्रोह करने से भी काफ़ी दूर नहीं किया जा सकता। क्योंकि उसके पूर्व जन्म के कर्म ने यह पहले ही निश्चय कर दिया है कि वह इस जन्म में दुखी रहेगा।

४१. गुद और सिपाई—जिनकी मानवता को ब्राह्मण-वाद ने बुरी तरह द्विज-भिन्न कर दिया था—सर्वथा शक्तिहीन थी। वह इस पद्धति के विकट जरा सिर न उठा सकती थीं।

४२. उन्हें ज्ञान-प्राप्त करने तक का अधिकार न था। इस अवर्दस्ती के अज्ञान का ही यह दुष्परिणाम था कि वे यह कभी जान ही न सकते थे कि किसने उन्हें इस

दुरवस्था तक पहुँचाया है ? वे यह जान ही नहीं सकते थे कि ब्राह्मण-वाद ने उनका सारा जीवन-रस सोख लिया है । ब्राह्मण-वाद के विरुद्ध विद्रोह कर उठने की बजाये वे ब्राह्मण-वाद के भक्त और समर्थक बन गये ।

४३. स्वतंत्रता-प्राप्ति के निमित्त शस्त्र उठाने का अधिकार आदमी का अन्तिम अधिकार है । लेकिन शूद्रों से शस्त्र धारण करने का अधिकार भी छीन लिया गया था ।

४४. ब्राह्मण-वाद के अधीन बेचारे शूद्र स्वार्थी ब्राह्मणों, शक्तिशाली क्षत्रियों और धनी वैश्यों के एक भयानक गहमगह के शिकार-माच बन कर रह गये ।

४५. क्या उसमें सुधार हो सकता था ? कुछ जानते थे कि यह 'भगवान् की बनाई हुई' सामाजिक व्यवस्था बताई जाती है, इसलिये इसमें सुधार नहीं हो सकता है । इसे केवल समाप्त हो किया जा सकता है ।

४६. इन्हीं कारणों से कुछ ने ब्राह्मणवाद को सड़म का—जीवन के सच्चे धर्म का—परम विरोधी मान कर अस्वीकार कर दिया ।

४. उपनिषद् तथा उनकी शिक्षा

१. उपनिषद् भी वैदिक-वाङ्मय का एक हिस्सा माने जाते हैं । यह वेद का हिस्सा नहीं है । यह श्रुति-वाक्य से है ।

२. यह सब होने पर भी यह धार्मिक वाङ्मय का एक हिस्सा है ।

३. उपनिषदों की संख्या काफी बड़ी है । कुछ महत्त्व के, कुछ रूढ़िवादी ।

४. कुछ में वैदिक सिद्धान्तियों का—ब्राह्मण-पुरोहितों का काफी विरोध है ।

५. सभी एक बात में सहमत थे कि वैदिक अध्ययन 'अविद्या' का ही अध्ययन है ।

६. वेदों और वैदिक विज्ञान को सभी अपरा (नीचे दर्जे की) विद्या हो मनाते थे ।

७. वे सभी वेद को अपौरुषेय न मनाने के समर्थक थे ।

८. ब्राह्मणों-दर्शन की ऐसी प्रधान स्थापनाओं—जैसे यज्ञ और उनके फल, भेदा, और ब्राह्मण-पुरोहितों को दिये जाने वाले दानों के महात्म्य—को अस्वीकार करने में सभी एकमत थे ।

९. किन्तु यह कोई उपनिषदों का मुख्य विषयन था । उनकी चर्चा का मुख्य विषय है ब्रह्म और आत्मा ।

१०. ब्रह्म ही वह सर्वव्यापक सत्य है जो विश्व की बाँधे हुए है और आदमी की मुक्ति भी इसी बात में है कि उसके आत्मा को इस बात का बोध हो जाय कि वह भी 'ब्रह्म' है ।

११. उपनिषदों की मुख्य स्थापना यही थी कि 'ब्रह्म' ही सत्य है, तथा

‘आत्मा’ और ‘ब्रह्म’ एक ही हैं। उपाधि-वस्तु होने के कारण ही ‘आत्मा’ को इस बात का बोध नहीं होता कि वह ‘ब्रह्म’ है।

१२. प्रश्न पैदा हुआ : क्या ‘ब्रह्म’ एक वास्तविकता है ? उपनिषदों की सारी स्थापना इसी एक प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करती है।

१३. बुद्ध को ‘ब्रह्म’ की वास्तविकता का कोई प्रमाण नहीं मिला। इसलिए उन्होंने उपनिषदों की स्थापना को अस्वीकार कर दिया।

१४. ऐसा नहीं है कि स्वयं उपनिषदों के रचयिताओं से इस बारे में प्रश्न न पूछे गये हों। वे पूछे गये थे।

१५. इस तरह के प्रश्न याज्ञवल्क्य जैसे महान् ऋषि से भी पूछे गये थे, जिसका बृहदारण्यक उपनिषद् में उतना महत्वपूर्ण स्थान है।

१६. उससे पूछा गया था “ब्रह्म क्या है ? आत्मा क्या है ?” याज्ञवल्क्य इसका ही उत्तर दे सका था—“मै नहीं जानता, मैं नहीं जानता—नेति, नेति।”

१७. बुद्ध को संका थी कि जिसके विषय में कोई कुछ जानता ही नहीं, वह ‘वास्तविकता’ कैसे हो सकती है ? इसलिए उन्होंने उपनिषदों की स्थापना को भी बुद्ध कल्पना समझ अस्वीकार कर दिया।

१. वर्तमान ईश्वरकृष्णविरचित शांख्य-कारिका की ती तीन प्रमाण मान्य है—शब्द, प्रत्यक्ष तथा अनुमान। शब्द प्रमाण पीछे की सूत्र लगती है।

२. यह कारक चिन्त्य है।

छठा भाग

बुद्ध तथा उनके समकालीन

१. उनके समकालीन

१. जिस समय गौतम ने प्रव्रज्या ली, देश में बड़ी मानसिक उथल-पुथल मची हुई थी। ब्राह्मणो-दर्शन के अतिरिक्त कोई बासठ दार्शनिक मत और थे। ये सभी ब्राह्मणो-दर्शन के विरोधी थे। उनमें से कम से कम छः ध्यान देने के योग्य थे।

२. इन दार्शनिक-परम्पराओं में से एक के मुखिया का नाम पूर्ण-काश्यप था। उसका मत अक्रिया-वाद कहलाता था। उसकी स्थापना थी कि 'कर्म' का 'आत्मा' पर किसी भी तरह से कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चाहे कोई किसी काम को करे, चाहे कराये। चाहे कोई किसी को स्वयं मार डाले, चाहे मरवाये। चाहे कोई स्वयं चोरी करे और डाका डाले, चाहे किसी से चोरी कराये और डाका डलवाये। चाहे कोई स्वयं व्यभिचार करे, चाहे किसी से करवाये। चाहे कोई स्वयं झूठ बोलें, चाहे किसी से बुलवाये। 'आत्मा' पर किसी बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कोई कार्य कितना भी अशुभ हो 'आत्मा' को पाप से लिप्त नहीं करता। कोई कार्य कितना भी अच्छा हो 'आत्मा' को पुण्य से मुक्त नहीं करता। 'आत्मा' पर कोई 'क्रिया' ही नहीं होती। जब आदमी मरता है तो उसके शरीर के सभी तत्व उन मूल तत्वों से जा मिलते हैं, जिनसे उसका शरीर बना है। मरने के बाद कुछ नहीं बचता, न 'शरीर' और न 'आत्मा'।

३. एक दूसरी विचार-धारा का नाम था निर्वृति-वाद। इसके मुख्य उप-देशक का नाम था मक्खली गोसात। उसका मत एक प्रकार का 'पूर्व निश्चयवाद' था। उसका मत था कि न कोई कुछ कर सकता है और न होने से रोक ही सकता है। घटनाएँ घटती हैं। कोई स्वेच्छा से उन घटनाओं को घटा नहीं सकता है। न कोई दुःख को दूर कर सकता है और न कोई उसे घटा-बढ़ा सकता है। आदमी पर, संसार में जो कुछ बीतने को हो, वह बीत कर रहता है।

४. तीसरा मत उच्छेदवाद कहलाता था। इसका मुख्य उपदेशक अजित केस-कम्बल था। उसका मत एक प्रकार का सम्पूर्ण-नाशवाद था। उसकी शिक्षा थी कि यज्ञ और होम बेकार हैं। कर्मों के कोई ऐसे फल नहीं होते जिन्हें 'आत्मा'

भोग सके वा उसे भोगवने पड़े। न कहीं कोई 'स्वर्ग' है और न 'नरक'। आदमी का निर्माण दुःख के कुछ तत्वों से हुआ है। 'आत्मा' उनसे बच नहीं सकता। संसार में जितना भी कष्ट है, जितना भी दुःख है, 'आत्मा' का उससे कहीं किसी तरह भाग नहीं। यह कष्ट वा दुःख स्वयं अनायास समाप्त हो जायगा। 'आत्मा' को चौरासी लाख योनियों धारण करनी पड़ेंगी। तभी 'आत्मा' के कष्टों और दुःख का अन्त होना होगा, इससे पहले किसी तरह नहीं।

५. चौथा मत जम्बोव्वा-वाद कहलाता था। इस मत के मुखिया का नाम पशुप कच्चावम था। उसका उपदेश था कि सात तत्वों से प्राणी का निर्माण होता है—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, सुख, दुःख तथा आत्मा। प्रत्येक तत्व दूसरे से स्वतन्त्र है। एक का दूसरे पर प्रभाव नहीं पड़ता। वे अपने में सम्पूर्ण हैं और वे सभी निरपेक्ष हैं। उनका किसी भी तरह नाश हो ही नहीं सकता। यदि कोई आदमी किसी का सिर भी काट दे तो वह कोई "मारना" नहीं होता। यह तो इतना ही है कि शरीर सात तत्वों में प्रवेश कर गया है।

६. सञ्जय बेलट्टिपुत्र का अपना ही एक निजी दार्शनिक मत था। यह 'विक्षेप-वाद' कहलाता था। यह अंतिम दर्जों का सन्देह-वाद था। उसका तर्क था, "यदि कोई मुझे पूछे कि स्वर्ग है, और यदि मुझे लगे कि है तो मैं कहूँगा कि हाँ है। यदि मुझे लगे, कि स्वर्ग नहीं है तो मैं कहूँगा कि नहीं है। यदि कोई मुझे पूछे कि क्या आदमी बनाये जाते हैं, क्या आदमी को अच्छे-बुरे कर्मों का फल भोगना पड़ता है, क्या मृत्यु के अनन्तर 'आत्मा' रहती है, मैं इन सब का नकारात्मक उत्तर दूँगा, क्योंकि मैं नहीं समझता कि ये हैं..." कुछ-कुछ इसी प्रकार सञ्जय का तर्क चलता था।

७. छठा दार्शनिक मत चातुर्धामसंवर-वाद कहलाता था। इस मत के संस्थापक या मुख्याचार्य उस समय जीवित थे, जब गौतम प्रकाश की खोज में संलग्न थे। आचार्य का नाम महावीर था, वह जो निगण्डनाथ पुत्र भी कहलाते थे। महावीर का शिक्षण था कि 'आत्मा' को अपने पूर्व-जन्मों के कर्म तथा इस जन्म के कर्मों के परिणाम-स्वरूप ही 'पुनर्जन्म' ग्रहण करना पड़ता है। इसलिये उसका कहना था कि तपश्चर्या के द्वारा पुण्यकर्मों का नाश कर डालना चाहिये। बुरे कर्मों का होना रोकने के लिये महावीर ने चातुर्धाम धर्म का उपदेश दिया अर्थात् चार नियमों के पालन करने का—(१) हिंसा न करना, (२) चोरी न करना, (३) झूठ नहीं बोलना, (४) अपरिग्रह रखना और ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना।

२. अपने समकालीनों के प्रति उनका भाव

१. बुद्ध ने इन नये दार्शनिकों के मत को स्वीकार नहीं किया।

२. बुद्ध का उनकी शिक्षाओं को अस्वीकार करना सकारण था । बुद्ध का कहना था :

३. यदि पूर्ण कारण या पक्ष कल्याण के सिद्धान्तों को सत्य माना जाय तो फिर आदमी कोई भी बुराई कर सकता है, किसी को कुछ भी हानि पहुंचा सकता है; बिना किसी भी तरह की सामाजिक जिम्मेदारी स्वीकार किये या बिना किसी भी तरह के सामाजिक प्ररिणाम का विचार किये एक आदमी दूसरे को हत्या भी कर ही सकता है ।

४. यदि मक्खली गोसाल का सिद्धान्त ठीक मान लिया जाय तो आदमी भाग्य के हाथ का शिकार बन जाता है । आदमी किसी भी तरह अपने बंधनों को नहीं काट सकता ।

५. यदि अजित केसकम्बल का सिद्धान्त ठीक माना जाय तो आदमी के लिये खाने, पीने और मौज उड़ाने के अतिरिक्त शेष कुछ करने के लिये रह ही नहीं जाता ।

६. यदि सज्जय वेसट्ठिपुत्त का सिद्धान्त सही हो तो फिर पानी पर यूँ ही बहते रज्जु की तरह आदमी का जीवन निरुद्देश्य हो जायगा ।

७. यदि निमग्गनामपुत्त का सिद्धान्त सही हो तो आदमी का जीवन काम-क्लेश तथा तपश्चर्या के आधीन हो जायगा—आदमी की इच्छाओं और स्वाभाविक प्रवृत्तियों का सर्वथा मूलोच्छेद ।

८. इसलिये उन दार्शनिकों का कोई एक भी मत बुद्ध को अच्छा नहीं लगा । उनको ऐसा लगा कि ये सब ऐसे आदमियों के ही विचार थे जो या तो निराशावादी थे, या असहाय थे या किसी भी भले-बुरे परिणाम की ओर से सर्वथा उदासीन थे । इसलिये उन्होंने अग्नय ही कहीं से प्रकाश पाने की आज्ञा रखी ।

सातवाँ भाग

समानता तथा विषमता

१. वे बातें जिनका बुद्ध ने सर्वथा त्याग किया

१. शास्त्रिक तथा धार्मिक विचार-सारणी के इस पर्यवेक्षण से यह स्पष्ट है कि जिस समय बुद्ध ने अपने शासन की नींव रखी, उस समय कुछ विचार और मान्यताएँ ऐसी थीं जिन्होंने लोगों के दिमाग में घर बना रखा था। वे विचार और मान्यताएँ थीं :—

(क) वेदों को स्वतः प्रमाण मानना।

(ख) आत्मा के मोक्ष में विश्वास, अर्थात् इसका पुनर्जन्म न होना।

(ग) धार्मिक-संस्कारों तथा यज्ञादि के करने को 'आत्मा' के मोक्ष का साधन मानना।

(घ) सामाजिक-संगठन के निमित्त चातुर्वर्णी-व्यवस्था को आदर्श मानना।

(ङ) ईश्वर की सृष्टि-कला और 'ब्रह्म' को विश्व का मूलधार तत्व मानना।

(च) 'आत्मा' में विश्वास।

(छ) 'संस्करण' अर्थात् 'आत्मा' के एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने पर विश्वास।

(ज) कर्म में विश्वास अर्थात् इस जन्म में आदमी की जो भी स्थिति-परिस्थिति है उस सब को पूर्व-जन्म का परिणाम मानना।

२. अपने बुद्ध शासन के स्तम्भों की स्थापना करते समय बुद्ध ने इन परम्परागत-मान्य विचारों के साथ अपने ही अनोखे ढंग से बरताव किया।

३. वे वे बातें हैं जिनका बुद्ध ने सर्वथा त्याग कर दिया।

(क) मैं कहाँ से आया हूँ, किधर से आया हूँ, मैं क्या हूँ—इस प्रकार के व्यर्थ के मानसिक संकल्प-विकल्प उठाते रहने की बुद्ध ने निन्दा की।

(ख) उन्होंने 'आत्मा' के बारे में सभी मान्यताओं का त्याग किया। उन्होंने 'आत्मा' को न शरीर ही माना, न वेदनाएँ ही माना, न संज्ञा ही माना, न संस्कार ही माना और न विज्ञान ही माना।

(ग) कुछ धार्मिक उपदेशकों द्वारा प्रतिपादित सभी उन्मेषवादी मतों का तिरस्कार किया।

(घ) उन्होंने 'नास्तिकों' के मत का त्याग किया।

(ङ) उन्होंने इस बात को मान्य नहीं ठहराया कि विश्व के विकास का आरम्भ किसी के 'ज्ञान' से बँधा हुआ है।

(च) उन्होंने इस सिद्धान्त का खण्डन किया कि किसी ईश्वर ने आदमी का निर्माण किया है अथवा वह किसी 'ब्रह्म' के शरीर का अंग है।

(छ) 'आत्मा के अस्तित्व' की तो उन्होंने उपेक्षा की और उससे सर्वथा इनकार किया।

२. वे बातें जिनमें बुद्ध ने परिवर्तन किया

(क) उन्होंने कार्य-कारण के महान् नियम की अपनी भाषाओं-प्रभाषाओं सहित प्रतीत्यसमुत्पाद के रूप में मान्य ठहराया।

(ख) उन्होंने जीवन के निराशावादी दृष्टि-कोण का खण्डन किया और साथ ही इस भ्रूलंघ्य दृष्टि-कोण का भी कि किसी ईश्वर ने आदमी और संसार का भविष्य पहले से निश्चित कर रखा है।

(ग) उन्होंने इस सिद्धान्त को भी अस्वीकार किया कि किसी पूर्व-जन्म में किये गये किन्हीं कार्यों में कुछ ऐसी सामर्थ्य है कि वे दुःख और कष्ट का कारण होते हैं और उन के रहते इस जन्म के कर्म कुछ नहीं कर सकते—ये सभी वकार हैं। उन्होंने 'कर्म' के इस निराशावादी दृष्टि-कोण का त्याग किया। उन्होंने पुराने 'कर्म-वाद' के स्थान पर एक बहुत ही अधिक वैज्ञानिक 'कर्म-वाद' की स्थापना की—एक प्रकार से बोझ तो पुरानी थी, किन्तु भीतर की सुरा नई थी।

(घ) संसरण अर्थात् आत्मा के एक शरीर से निकल कर दूसरे में जाने की बात के स्थान पर संसरण-रहित पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया।

(ङ) उन्होंने 'मोक्ष' अथवा 'आत्मा' की मुक्ति के सिद्धान्त के स्थान पर बौद्ध 'निर्वाण' की स्थापना की।

(५) इस प्रकार बुद्ध का वासन अपनी मौलिकता लिये हुए है। इसमें जो कुछ थोड़ा-बहुत पुराना है वह या तो बदल दिया गया है या उसकी नई व्याख्या कर दी गई है।

३. वे बातें जिन्हें बुद्ध ने स्वीकार किया

१. उनकी शिक्षा की पहली विशेषता थी कि मन को सभी चीजों का केन्द्र-बिन्दु स्वीकार किया गया था।

२. मन चीजों का पूर्वगामी है वह उस पर प्रभाव डालता है। वह उन्हें उत्पन्न करता है। यदि मन काबू में है तो सब कुछ काबू में है।

३. मन ही सब मानसिक-क्रियाओं में प्रधान है। मन ही मुख्य है। मन उन चैतन्य-क्रियाओं की ही उपज है।

४. इसलिये सब से मुख्य बात मन की साधना है।

५. बुद्ध की शिक्षाओं की दूसरी विशेषता यह है कि उनके अनुसार मन ही उन सब भलाइयों और बुराईयों का स्रोत है जो हमारे भीतर उत्पन्न होती हैं और जिन का हमें बाहर से शिकार होना पड़ता है।

६. जो कुछ भी बुराई है—जिसका बुराई से सम्बन्ध है, जो बुराई से समन्वित है—वह सब मन की ही उपज है। जो कुछ भी भलाई है—जिसका भलाई से सम्बन्ध है, जो भलाई में समन्वित है—वह सब मन की ही उपज है।

७. यदि आदमी बुरे मन से कुछ भी बोलता या करता है तो दुःख उसके पीछे-पीछे ऐसे ही ही लेता है जैसे गाड़ी के पहिये गाड़ी को खींचने वाले बैलों के पीछे पीछे। इसलिये अपने चित्त को निर्मल बनाये रखना ही धर्म का सार है।^१

८. उनकी शिक्षाओं की तीसरी विशेषता है सभी पाप-कर्मों से विरति।

९. उनकी शिक्षाओं की चौथी विशेषता है कि धर्म धार्मिक-ग्रन्थों के पाठ में नहीं है, बल्कि धार्मिक जीवन बिताने में है।

१०. क्या कोई कह सकता है कि बुद्ध का धर्म उनका स्वपना आविष्कार न था? उनकी अपनी कृति न थी?

द्वितीय काण्ड

धर्म-दीक्षाओं का आन्दोलन

- | | | |
|-------------|---|--------------------------------------|
| पहला भाग | — | बुद्ध और उनका विशद योग |
| दूसरा भाग | — | परिव्राजकों की धर्म-दीक्षा |
| तीसरा भाग | — | कुलीनों तथा धार्मिकों की धर्म-दीक्षा |
| चौथा भाग | — | जन्म-भूमि का आवाहन |
| पाँचवाँ भाग | — | धर्म-दीक्षाओं की पुनरावृत्ति |
| छठा भाग | — | निम्नतर-स्तर के लोगों की धर्म-दीक्षा |
| सातवाँ भाग | — | स्त्रियों की धर्म-दीक्षा |
| आठवाँ भाग | — | पतिघों तथा भुजूरितों की धर्म-दीक्षा |

पहला भाग

बुद्ध और उनका विशद योग

१. उपदेश देना अथवा नहीं देना

१. बोधि प्राप्त करने के अनन्तर और अपने सङ्गमें की कृप-रेखा निश्चित कर लेने के अनन्तर बुद्ध के मन में एक विचार आया। क्या उसे दूसरों को अपने धर्म का उपदेश देना चाहिये, अथवा अपने ही कल्याण में रत रहना चाहिये ?

२. उन्होंने सोचा, निस्संदेह मैंने एक नया सङ्गमें पा लिया है। लेकिन हर सामान्य आदमी के लिये इनका समझ सकना और अनुकरण कठिन है। बुद्धिमानों तक के लिये यह अति सूक्ष्म है।

३. आदमियों के लिये अपने आप को 'आत्मा' और 'परमात्मा' के माया-जाल से मुक्त कर सकना कठिन है। आदमियों के लिये रस्मों और रीति-रिवाजों और धार्मिक-संस्कारों के बन्धनों से मुक्त होना कठिन है। आदमियों के लिये ब्राह्मणी 'कर्मवाद' से मुक्त होना कठिन है।

४. आदमियों के लिये आत्मा को 'नित्य' मानने के सिद्धान्त से मुक्त होना कठिन है और मेरे इस सिद्धान्त को मानना भी कठिन है कि 'आत्मा' का कहीं कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है और मरणान्तर भी कहीं कोई 'आत्मा' शेष नहीं रहती।

५. 'आदमी स्वार्थ-रत है। वे इसी में भजा लेते और आनन्द मानते हैं। आदमियों के लिये मेरे सङ्गमें को स्वार्थ-परता के ऊपर स्थान देने के सिद्धान्त को समझना कठिन है।

६. यदि मैं अपने सिद्धान्त का उपदेश दूँ, और दूसरे इसे समझ न सकें, अथवा समझ कर स्वीकार न कर सकें, अथवा स्वीकार करके भी तदनुसार आचरण न कर सकें, तो इससे दूसरों को भी व्यर्थ की शकावट होगी और मुझे भी व्यर्थ की हैरानी।

७. "मैं संसार से दूर रहकर एक संन्यासी का ही जीवन क्यों न बिताऊँ ? मैं अपने कल्याण में ही क्यों न लगा रहूँ ? मैं कम से कम अपना कल्याण तो कर ही सकता हूँ।"

८. इस प्रकार विचार करने से बुद्ध का मन सङ्गमें प्रवेश की ओर न झुक कर विष्णुप्रयत्ना की ओर ही झुका।

९. ब्रह्मा सहस्रपति ने जब यह जाना कि बुद्ध के मन में क्या विचार चलकर काट रहा है, उसने सोचा: 'निश्चय से संसार का नाश होने जा रहा है, निश्चय से संसार विनाश की प्राप्त होने जा रहा है, यदि सम्पक् सम्बुद्ध तथागत का मन धर्म प्रचार की ओर न झुक कर निष्क्रियता की ओर झुक जाता है।'।

१०. इस चिन्ता से घबराकर ब्रह्मा सहस्रपति ब्रह्म-लोक से विदा होकर बुद्ध के सामने प्रकट हुआ। अपने वस्त्र को एक कंधे पर करके वह झुका और हाथ जोड़ कर बोला 'आप अब सिद्धार्थ गौतम नहीं हैं। आप बुद्ध हैं। आप सम्पक् सम्बुद्ध हैं। आप तथागत हैं। आप संसार को अन्धकार मृत करने के प्रयास से कैसे विमुक्त हो सकते हैं? आप संसार को सत्यपथ पर ले चलने से कैसे विमुक्त हो सकते हैं?'

११. 'बहुतसे प्राणी हैं, जो बहुत मलिन नहीं हैं, उन्हें सद्धर्म ध्वषण करना नहीं मिलेगा तो वे विनाश को प्राप्त होंगे'।

१२. आप जानते हैं भगवान् कि मगध में एक पुराना 'धर्म' पैदा हुआ था जिसमें बहुत दोष थे।

१३. 'क्या भगवान्! अब उन लोगों के लिये अमृत-द्वार नहीं खोलेंगे?'

१४. 'जैसे पर्वत के शिखर पर खड़ा हुआ कोई अपने आस-पास के नीचे खड़े हुए लोगों को देखता है, उसी तरह के प्रज्ञा के शिखर पर खड़े हुए भगवान्! हे दुःख का क्षय किये हुए भगवान्! अपने आस पास के उन लोगों की ओर देखें जो दुःख के सागर में निमग्न हैं।

१५. 'हे बोर! हे सार्वबाह! हे जाति-क्षय! आप उठें। संसार के कल्याणार्थ विचरे। उसकी ओर से विमुक्त न हों।

१६. 'हे भगवान्; आप दया करके देवताओं और मनुष्यों को सद्धर्म का उपदेश दें।'।

१७. बुद्ध ने उत्तर दिया—'हे मनुष्यों में ज्येष्ठ-श्रेष्ठ ब्रह्म! यदि मैंने धर्मोपदेश देने का संकल्प नहीं किया तो वह केवल व्यर्थ की हैरानी से बचने के ब्याल से नहीं किया।'।

१८. वह जानकर कि संसार में इतना दुःख है बुद्ध ने निश्चय किया कि संन्यासी की तरह हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना और जो कुछ दुनिया में हो रहा है उसे वैसे ही होते रहने देना, उसके लिये ठीक न होगा।

१९. उन्हें तपश्चर्या तथा आत्म-पीड़न का पथ व्यर्थ जान पड़ा था। संसार से भाग खड़े होना बेकार था। एक तपस्वी के लिये भी संसार से भाग खड़े होना संभव नहीं। उन्होंने निश्चय किया कि संसार से भाग खड़े होने की जरूरत नहीं है। जरूरत है संसार को बदलकर श्रेष्ठतर बनाने की।

२०. बुद्ध ने अनुभव किया कि उन्होंने संसार का त्याग इसीलिये किया था कि वहाँ इतना संघर्ष है और वह इतने अधिक दुःख का कारण है, और जिसका

उनके पास कोई इलाज न था। यदि वह सड़म के प्रचार से, संसार के काट और दुःख को दूर कर सकें तो यह उनका कर्तव्य था कि वह संसाराभिमुख होकर उसकी सेवा करें, तकि निष्कियता की भूति बतकर चुपचाप बैठे रहे।

२१. इसलिये बुद्ध ने ब्रह्मा सहस्रपति की प्रार्थना स्वीकार की और सड़म का उपदेश देने का निश्चय किया।

२. ब्रह्मा सहस्रपति द्वारा शुभ-घोषणा

१. ब्रह्मा सहस्रपति यह सोचकर कि "मैं जनता को उपदेश देने के लिये बुद्ध को प्रेरित करने में सफल हो गया हूँ" बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने बुद्ध को नमस्कार किया, प्रदक्षिणा की और विदा हो गया।

२. वापस लौटते समय जाते जाते वह यह घोषणा करता रहा, "इस शुभ संवाद को सुनकर प्रसन्न होओ। हमारे भगवान् बुद्ध ने संसार की बुराई और काट का मूल कारण जान लिया है। उन्हें इससे मुक्त होने का उपाय भी ज्ञात है।"

३. "जो निराश है, जो दुःखी है उन्हें बुद्ध संतोष प्रदान करेंगे। जो मुड़-प्रस्त है उन्हें ज्ञान करेंगे। जिनकी हिम्मत टूट गई है उनकी हिम्मत बंधायेंगे। जो दलित है, जिनपर अत्माचार हुए हैं, उन्हें वह आशावान् बनायेंगे।

४. "आप लोग जिन्हें दुनिया के अंशट सहन करने पड़ते हैं, आप लोग जिन्हें दुनिया में भयानक संघर्ष करना पड़ता है, आप लोग जो म्याम की आशा लगाये रहते हैं, आप यह सुखद-संवाद सुन कर प्रसन्न हों।

५. "जो आहत हैं वे अपने जख्मों को भरा समझें। जो भूखे हैं वे अपने को भोजन-प्राप्त हुआ समझें। जो थके हैं वे अपने को विश्राम-प्राप्त समझें जो तृष्णा से व्याकुल हैं वे अपनी प्यास बुझी समझें। जो अन्धकार-ग्रस्त हैं वे अपने आपकी प्रकाश में समझें। जो परित्यक्त हैं वे अब खुशी मनायें।

६. "बुद्ध के सिद्धान्त में एक ऐसी उत्कट प्रेरणा है कि जो परित्यक्त है अथवा जिनका कोई नहीं है, उन्हें अपना बना लेने की इच्छा होती है, जो नीचे गिरा दिये गये हैं उन्हें ऊपर उठाने की इच्छा होती है और जो पददलित हैं उनके लिये आगे बढ़ने का समता का राज-पथ है।

७. "उन का धर्म सड़म है और उनका उद्देश्य है कि पृथ्वी पर सड़म का साम्राज्य स्थापित हो।

८. "उन का धर्म सत्य है, सम्पूर्ण सत्य है सत्य के अतिरिक्त कुछ नहीं अर्थात् सत्य ही सत्य है।

९. "धम्म है भगवान् बुद्ध, क्योंकि उनका पथ बुद्धि का पथ है और वह मिथ्या विश्वासों से मुक्ति का मार्ग है। धम्म है वे भगवान् बुद्ध जो मध्यम-मार्ग का उपदेश करते हैं। धम्म है वे भगवान् बुद्ध जो सड़म का उपदेश करते हैं।

धन्य है वे भगवान् बुद्ध जो शांति-प्रद निर्वाण का उपदेश देते हैं। धन्य है वे भगवान् बुद्ध जो मैत्री, करुणा की शिक्षा देते हैं और आतृभाव की ताकि आदमों अपने मानव-बांधवों को बन्धनों से मुक्ति लाभ करने में सहायक हो सके।

३. दो तरह की धर्म-दीक्षा

१. बुद्ध की धर्म-प्रचार की योजना धर्म-दीक्षा के दो अर्थ है।

२. पहली तो 'भिक्षु' की दीक्षा है, जिनको सामूहिक रूप से 'संघ' कहा जाता है।

३. दूसरी दीक्षा 'उपासक' की दीक्षा है अर्थात् गृहस्थ बौद्ध की।

४. एक भिक्षु और एक उपासक के जीवन में मुख्य भेद चार ही बातों को लेकर है—

५. एक उपासक गृहस्थ बना रहता है। एक भिक्षु गृह-त्यागी परिव्राजक बना आता है।

६. उपासक और भिक्षु दोनों को हो कुछ नियमों का पालन करना होता है।

७. भिक्षु के लिये ये 'व्रत' हैं और उनका पालन न करना दण्डनीय है, उपासक के लिये ये केवल 'शौल' हैं जिन्हें वह अपनी सामर्थ्य भर अधिक से अधिक पालन करने का प्रयास करता है।

८. एक उपासक सम्पत्ति रख सकता है। एक भिक्षु कोई सम्पत्ति नहीं रख सकता है।

९. एक उपासक बनने के लिये किसी 'संस्कार' की आवश्यकता नहीं।

१०. एक भिक्षु बनने के लिये 'उपसम्पन्न' होना आवश्यक है।

११. बुद्ध ने दीक्षा की इच्छा रखने वालों की इच्छा के अनुसार ही किन्हीं को 'उपासक' किन्हीं को 'भिक्षु' बनाया।

१२. एक उपासक जब चाहे भिक्षु बन सकता है।

१३. एक भिक्षु को 'भिक्षु' नहीं रहना होता यदि वह अपने मुख्य-व्रतों में से किसी एक का भी भंग कर दे अथवा वह स्वेच्छा से संघ का सदस्य न रहना चाहे।

१४. यह नहीं समझना चाहिए कि आगे के पृष्ठों में जिनके नाम आये हैं, बुद्ध ने केवल उन्हें ही दीक्षित किया।

१५. जो चन्द उदाहरण चुने गये हैं वे केवल यह दिखाने के लिये कि दीक्षा देने अथवा अपने सदस्य का प्रचार करने के सिलसिले में बुद्ध न किसी की 'जाति' का विचार करते थे और न किसी के 'पुरुष' व 'स्त्री' होने का।

१. महावग्ग (ब्रह्मपावन कथा)।

२. महावग्ग (ब्रह्मपावन कथा)।

दूसरा भाग

परिव्राजकों की दीक्षा

१. सारनाथ आगमन

१. धर्मोपदेशक का निश्चय कर चुकने के अनन्तर बुद्ध ने अपने आप से प्रश्न किया कि मैं सर्वप्रथम किसे धर्मोपदेश दूँ ? उन्हें सब से पहले आळार-कालाम का क्याल आया जो बुद्ध की सम्मति में विद्वान् था, बुद्धिमान था, समझदार था और काफ़ी निर्मल था । बुद्ध ने सोचा यह कैसा ही, यदि मैं सर्वप्रथम उसे ही धर्मोपदेश करूँ ? लेकिन बुद्ध को पता लगा कि आळार-कालाम की मृत्यु हो चुकी है ।

२. तब उन्होंने उड़क रामपुत्र को भी उपदेश देने का विचार किया । किन्तु उसका भी शरीरान्त हो चुका था ।

३. तब उन्हें अपने उन पाँच सावियों का ध्यान आया जो तिरण्यवरा नदी के तट पर उनकी सेवा में थे, और जो सिद्धार्थ गौतम के तपस्या और काय-स्नेह का पथ त्याग देने पर असन्तुष्ट हो उन्हें छोड़ कर चले गये थे ।

४. उन्होंने सोचा “उन्होंने मेरे लिये बहुत किया, मेरी बड़ी सेवा की, मेरे लिये बहुत कष्ट उठाया । कैसा हो यदि मैं उन्हें ही सर्वप्रथम धर्म का उपदेश दूँ ?”

५. उन्होंने उनके और-ठिकाने का पता लगाया । जब उन्हें पता लगा कि वे वाराणसी (सारनाथ) के इंसिगतन के मृगदाय में रहते हैं, तो बुद्ध उधर ही चल दिये ।

६. उन पाँचों ने जब बुद्ध को आता देखा तो आपस में वें किया कि बुद्ध का स्वागत नहीं करेंगे । उनमें से एक बोला, “मित्रो, वह धम्मण गौतम भला आ रहा है, जो पय-भ्रष्ट हो गया है, जिस ने तपस्या का मार्ग त्याग आराम-तलबी और कामभोग का पथ अपना लिया है । वह पापी है । इसलिये हमें न उसका स्वागत करना चाहिये न उसके सम्मान में उठ कर खड़ा होना चाहिये । न उसका पाश और चीवर ग्रहण करना चाहिये । हम उसके लिये एक आसन रख देते हैं, इच्छा होगी तो उस पर बैठ जायगा ।” वे सब सहमत थे ।

७. लेकिन जब बुद्ध समीप पहुँचे तो वह पाँचों परिव्राजक अपने संकल्प पर दृढ़ न रह सके । बुद्ध के व्यक्तित्व ने उन्हें इतना प्रभावित किया कि वे सभी अपने

आसन से उठ खड़े हुए। एक ने बुद्ध का पाक लिया, एक ने बीवर संभाला, एक ने आसन बिछाया और दूसरा पाँच धोने के लिये पानी ले आया।

८. यह सबकुछ एक अप्रिय-अतिथि का असाधारण स्वागत था।

९. इस प्रकार जो उपेक्षावान थे, श्रद्धावान बन गये।

२. धर्मचक्र प्रवर्तन

१. कुशल-क्षेम की बातचीत हो चुकने के बाद परिव्राजकों ने बुद्ध से प्रश्न किया—“क्या आप अब भी तपश्चर्या तथा काय-क्लेश में विश्वास रखते हैं?” बुद्ध का उत्तर नकारात्मक था।

२. बुद्ध ने कहा—दो सिरे की बातें हैं, दो दो किनारों की—एक तो काम-भोग का जीवन और दूसरा काय-क्लेश का जीवन।

३. एक का कहना है, लाखों पीपों मौज उड़ानों बमोंकि कल तो मरना ही है। दूसरे का कहना है तमाम वासनाओं का मूलोपछेद कर दो क्योंकि वे पुनर्जन्म का कारण हैं। उन्होंने दोनों को आदमी की शान के योग्य नहीं माना।

४. वे मध्यम मार्ग को मानने वाले थे—बीच का मार्ग, जो कि न तो काम-भोग का मार्ग है और न काय-क्लेश का मार्ग है।

५. बुद्ध ने परिव्राजकों से प्रश्न किया—मेरे इस प्रश्न का उत्तर दो कि जब तक किसी के मन में पाँचव वा स्वर्गीय भोगों की कामना बनी रहूँगी, तब तक क्या उसका ससरत काय-क्लेश स्थान नहीं होगा? उनका उत्तर था—“जैसा आप कहते हैं वैसे ही है।”

६. “यदि आप काय-क्लेश द्वारा काम-तृष्णा को शान्त नहीं कर सकते तो काय-क्लेश का दूरिर्दी जीवन चिताने से आप अपने को कैसे जीत सकते हैं?” उनका उत्तर था—“जैसा आप कहते हैं वैसे ही है।”

७. “अब आप अपने आप पर विजय पा लेंगे तभी आप काम-तृष्णा से मुक्त होंगे, तब आप को काम-भोग की कामना न रहेगी, और तब प्राकृतिक इच्छाओं की पूर्ति विकार पैदा नहीं करेगी। आप अपनी शारीरिक आवश्यकताओं के हिसाब से खाना-पीना ग्रहण करें।

८. “सभी तरह की काम-वासना उत्तेजक होती है। कामुक अपनी काम-वासना का गुलाम होता है। सभी काम-भोगों के चक्कर में पड़े रहना संवारपन और नीच कर्म है। लेकिन मैं तुरन्त कहता हूँ कि शरीर की स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति में बुराई नहीं है। शरीर को अरथ बनाये रखना एक कर्तव्य है। अन्यथा तुम अपने मनोबल को दृढ़ बनाये न रख सकोगे और प्रज्ञा रूपी प्रदीप भी प्रज्वलित न रह सकेगा।

९. हे परिव्राजकी इस बात को समझ लो कि आदमी को इन दोनों अन्त की बातों से सदा बचना चाहिये—एक तो उन चीजों के चक्कर में पड़े रहने से जितका आकर्षण काम-भोग सम्बन्धी तुष्ठा पर निर्भर करता है—यह एक बहुत निम्न कोटि की बात है; अयोग्य है, हानिकर है तथा दूसरी ओर तपश्चर्या अथवा काय-स्नेह से, क्योंकि वह भी कष्ट-प्रद है, अयोग्य है तथा हानिकार है।^१

१०. इन दोनों अन्तों से, इन दोनों सिरे की बातों के बीच में एक मध्यम मार्ग है—बीच का रास्ता। यह समझ लो कि मैं उसी मध्यम मार्ग का उपदेष्टा हूँ।

११. पाँचों परिव्राजकों ने उनकी बात ध्यान से सुनी। वे यह नहीं जानते थे कि बुद्ध के मध्यम मार्ग के बारे में क्या कहे। इसलिये उन्होंने प्रश्न किया—जब हम आपका साथ छोड़कर चले आये, उस के बाद से आप कहाँ-कहाँ रहे क्या-क्या किया? तब बुद्ध ने उन्हें बताया कि किस प्रकार गया पहुँचे, कैसे उस पीपल के पेड़ के नीचे ध्यान लगाकर बैठे और कैसे चार सप्ताह की निरन्तर समाधि के बाद उन्हें वह नया बोध प्राप्त हुआ जिससे वह नये मार्ग का आविष्कार कर सके।

१२. यह सुना तो परिव्राजक उस नये-मार्ग को विस्तारपूर्वक जानने के लिये अत्यन्त उत्सुक हो उठे। उन्होंने बुद्ध से प्रार्थना की कि वे उन्हें बतायें।

१३. बुद्ध ने स्वीकार किया।

१४. बुद्ध ने पहली बात यह बताई कि उनके सङ्ग में जो आत्मा, परमात्मा से कुछ लेना देना नहीं है। उनके सङ्ग में जो मरने के बाद (आत्मा का) क्या होता है, इससे कुछ सरोकार नहीं है। उनके सङ्ग में जो कर्म-काण्ड के क्रिया-कलापों से भी कुछ लेना-देना नहीं।

१५. बुद्ध के धर्म का केन्द्र-बिन्दु है आदमी और इस पृथ्वी पर रहते समय आदमी का आदमी के प्रति क्या कर्त्तव्य होना चाहिये?

१६. बुद्ध ने कहा, यह उनकी पहली स्थापना है।

१७. उनकी दूसरी स्थापना है कि आदमी दुःखी है, कष्ट में है और दरिद्रता का जीवन व्यतीत कर रहे है। संसार दुःख से भरा पड़ा है और धर्म का उद्देश्य इस दुःख का नाश करना ही है। इसके अतिरिक्त सङ्ग में और कुछ नहीं है।

१८. दुःख के अस्तित्व की स्वीकृति और दुःख के नाश करने का उपाय—यही धर्म की आधार-शिला है।^२

१९. धर्म के लिये एकमात्र यही सही आधार हो सकता है। जो धर्म इस प्राथमिक बात को भी अंगीकार नहीं कर सकता, धर्म ही नहीं है।

२०. हे परिव्राजकी! जो भी श्रमण या ब्राह्मण (धर्मोपदेष्टा) यह भी नहीं समझ पाते कि संसार में दुःख है और उस दुःख के नाश का उपाय है। ऐसे श्रमण ब्राह्मण मेरी सम्मति में श्रमण-ब्रह्मण ही नहीं हैं, न वे अपने को उपेष्ट-श्रेष्ठ समझने वाले इतना भी समझ पाये हैं कि धर्म का सही अर्थ क्या है?

२१. तब परिव्राजकों ने पूछा: दुःख और दुःख का विनाश हो यदि आप के धर्म की आधार-शिला है तो हमें बताइये कि आप का धर्म कैसे दुःख का नाश कर सकता है ?

२२. तब बुद्ध ने उन्हें समझाया कि उनके धर्म के अनुसार यदि हर आदमी (१) पवित्रता के पथ पर चले, (२) धर्म के पथ पर चले, (३) शील-मार्ग पर चले तो इस दुःख का एकान्तिक निरोध हो सकता है।

२३. और उन्होंने कहा कि उन्होंने ऐसे धर्म का आविष्कार कर लिया है।

३. धर्मचक्र प्रवर्तन

१. परिव्राजकों ने तब बुद्ध से अपने धर्म की व्याख्या करने की प्रार्थना की।

२. बुद्ध ने कृपया इसे स्वीकार किया।

३. उन्होंने सब से पहले उन्हें पवित्रता का पथ ही समझाया।

४. उन्होंने परिव्राजकों से कहा 'कोई भी आदमी जो अच्छा बनना चाहता है उसके लिये यह आवश्यक है कि वह कोई अच्छाई का माप-दण्ड स्वीकार करे।

५. 'मेरे पवित्रता के पथ के अनुसार अच्छे जीवन के पांच माप दण्ड हैं—
(१) किसी प्राणी की हिसा न करना (२) चोरी न करना अर्थात् दूसरे की चीज को अपनी न बना लेना, (३) व्यभिचार न करना, (४) जसाय न बोलना, (५) नशीली चीजों का ग्रहण न करना।

६. मैं कहता हूँ कि हर आदमी के लिये यह परमावश्यक है कि वह इन पांच शीलों को स्वीकार करे। क्योंकि हर आदमी के लिये जीवन का कोई माप-दण्ड होना चाहिये, जिस से वह अपनी अच्छाई-बुराई को माप सके; मेरे धर्म के अनुसार ये पांच शील जीवन की अच्छाई-बुराई मापने के माप-दण्ड हैं।

७. दुनिया में हर जगह पतित (गिरे हुए) लोग होते ही हैं। लेकिन पतित दो तरह के होते हैं: एक तो पतित वे होते हैं जिनके जीवन का कोई माप-दण्ड होता है, दूसरे पतित वे होते हैं जिनके जीवन का कोई माप-दण्ड ही नहीं होता।

८. जिनके जीवन का कोई माप-दण्ड नहीं होता वह 'पतित' होने पर भी यह नहीं जानता कि वह 'पतित' है। इसलिये वह हमेशा 'पतित' ही रहता है। दूसरी ओर जिसके जीवन का कोई माप-दण्ड होता है वह हमेशा इस बात की कोशिश करता रहता है कि पतितारूपा से ऊपर उठे। क्यों ? इसका उत्तर यही है वह जानता है कि वह पतित है, गिर गया है।

९. आदमी के लिये जीवन-मुधार का कोई माप-दण्ड होने और न होने में यही बड़ा अन्तर है। आदमी अपने स्तर से नीचे गिर पड़े यह इतनी बड़ी बात नहीं है जितनी यह कि, आदमी के जीवन का कोई स्तर ही न हो।

१०. हे परिव्राजको तुम ! पूछ सकते हो कि इन पाँच शीलों को जीवन का माप-दण्ड ही क्यों स्वीकार किया जाय ?

११. इस प्रश्न का उत्तर तुम्हें स्वयं ही मिल जायगा यदि तुम अपने से ही यह प्रश्न पूछो—क्या यह शील व्यक्ति के लिये कल्याणकारी है ? और साथ ही यह भी पूछो, क्या इन शीलों का पालन करना समाज के लिए कल्याणकारी है ?

१२. यदि इन दोनों प्रश्नों का तुम्हारा उत्तर स्वीकारात्मक है तो इस से यह सीधा परिणाम निकलता है कि मेरे पवित्रता के पथ के ये पाँच शील इस योग्य हैं कि उन्हें जीवन का सूत्र मान-दण्ड मान लिया जाय ।

४. धर्मचक्र-प्रवर्तन

अष्टांगिक-मार्ग या सम्यक् मार्ग

१. इसके आगे बुद्ध ने उन परिव्राजकों को अष्टांगिक मार्ग का उपदेश दिया । बुद्ध ने कहा—इस मार्ग के आठ अंग हैं ।

२. बुद्ध ने सर्वप्रथम सम्मा दिट्ठी (= सम्यक् दृष्टि) की व्याख्या की जो अष्टांगिक मार्ग में प्रथम है और प्रधान है ।

३. सम्यक् दृष्टि का महत्त्व समझाने के लिये बुद्ध ने परिव्राजकों को कहा :-

४. "हे परिव्राजको ! तुम्हें इस का बोध होना चाहिये कि यह संसार एक कारागार है और आदमी इस कारागार में एक कैदी है ।

५. इस कारागार में इतना अधिक अन्धकार है कि यहाँ कुछ भी दिखाई नहीं देता । कैदी को यह तक दिखाई नहीं देता कि वह कैदी है ।

६. इतना ही नहीं कि बहुत अधिक समय तक इस अन्धेरी कोठरी में ही पड़े रहने के कारण आदमी एकदम अन्धा हो गया ही, बल्कि उसे इस बात में भी बड़ा सन्देह हो गया है कि प्रकाश नाम की कोई चीज भी कभी कहीं हो सकती है ।

७. मन ही एक ऐसा साधन है, जिसके माध्यम से आदमी को प्रकाश की प्राप्ति हो सकती है ।

८. लेकिन इन कारागार-वासियों के दिमाग की भी अवस्था ऐसी नहीं है कि यह उद्देश्य पूरा हो सके ।

९. इनका दिमाग जरा सा प्रकाश मात्र जाने देता है, इतना ही है कि जिनके पास आँखें हैं वह यह देख सके कि अन्धकार नाम की भी कोई वस्तु है ।

१०. इसलिये ऐसी समझ बड़ी सदीप है ।

११. लेकिन हे परिव्राजको ! कैदी की स्थिति ऐसी निराशाजनक नहीं है जैसी वह प्रतीत होती है ।

१२. क्योंकि आदमी में एक बल है, एक शक्ति है जिसे संकल्प-बल या इच्छा-

शक्ति कहा जाता है। जब आदमी के सम्मुख कोई उपयुक्त श्रावण उपस्थित होता है तो इस इच्छा-शक्ति को जाग्रत और किया-शील बनाया जा सकता है।

१३. आदमी को यदि कहीं से इतना भी प्रकाश मिल जाये कि वह यह देख सके कि उसे अपनी इच्छा-शक्ति को किस दिशा में अपसर करना चाहिये, तो आदमी अपनी इच्छा-शक्ति का ऐसा संचालन कर सकता है कि वह अन्त में उसे बन्धन-मुक्त कर दे।

१४. इसलिये यद्यपि आदमी बन्धन में है तो भी वह स्वतन्त्र हो सकता है; वह किसी भी समय ऐसा पहला कदम उठा सकता है कि एक न एक दिन वह स्वतन्त्र होकर रहे।

१५. यह इसलिये कि हम तब किसी दिशा में भी अपने मन को ले जाना चाहें, हम उसे उस दिशा में ले जा सकते हैं। मन ही है जो हमें जीवन-क्रीड़ा-कारागार का कैदी बनाता है और यह मन ही है जो हमें कैदी बनाये रखता है।

१६. लेकिन मन ने ही जिसे बताया है, मन ही उसे नष्ट भी कर सकता है, मन अपनी कृति को मटियामेट भी कर सकता है। यदि इसने आदमी को बंधन में बांधा है तो ठीक दिशा में अपसर होने पर यही आदमी को बन्धन-मुक्त कर सकता है।

१७. यह है जो सम्यक् दृष्टि कर सकती है।

१८. तब परिब्राजकों ने प्रश्न किया "सम्यक्-दृष्टि का अन्तिम उद्देश्य क्या है?" बुद्ध ने उत्तर दिया—"अविद्या का विनाश ही सम्यक्-दृष्टि का उद्देश्य है। यह मिथ्या-दृष्टि की विरोधिनी है।

१९. "और अविद्या का अर्थ है कि आदमी दुःख को न जान सके, आदमी दुःख के निरोध के उपाय को न जान सके—आदमी इन आर्से-सत्त्वों को न जान सके।"

२०. सम्यक् दृष्टि का मतलब है कि आदमी कर्म-काण्ड के क्लृप्ता-कलाप को व्यर्थ समझे, आदमी जस्त्रों की पवित्रता की मिथ्या-धारणा से मुक्त हो।

२१. सम्यक् दृष्टि का मतलब है कि आदमी मिथ्या-विश्वास से मुक्त हो, आदमी यह न समझता रहे कि कोई भी बात प्रकृति के नियमों के विरुद्ध घट सकती है।

२२. सम्यक् दृष्टि का मतलब है कि आदमी ऐसी सब मिथ्या-धारणाओं से मुक्त हो जो आदमी के मन की कलाना-भाव हैं और जिनका आदमी के अनुभव या परोक्षता से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं।

२३. सम्यक्-दृष्टि का मतलब है कि आदमी का मन स्वतन्त्र हो, आदमी के विचार स्वतन्त्र हों।

२४. हर आदमी की कुछ आशाएँ होती हैं, आकांक्षाएँ होती हैं : महत्वा-

काश्यामें होती है। सम्यक्-संकल्प का मतलब है कि हमारी आशायें, हमारी आकांक्षायें ऊँचे स्तर की हों, निम्नस्तर की न हों; हमारे योग्य हों, अयोग्य न हों।

२१. सम्यक्-वाणी का मतलब है कि आदमी (१) सत्य ही बोले, (२) आदमी असत्य न बोले, (३) आदमी दूसरों की बुराई न करता फिरे, (४) आदमी दूसरों के बारे में झूठी बातें न फैलाता फिरे, (५) आदमी किसी के प्रति गाली-गलौज का वा कठोर बचनों का व्यवहार न करे, (६) आदमी सभी के साथ विनम्र वाणी का व्यवहार करे, (७) आदमी व्यर्थ की, बेमतलब मूर्खतापूर्ण बातें न करता रहे, बल्कि उसकी वाणी बुद्धिसंगत हो, साधक हो और सोद्देश्य हो।

२२. जैसा मैंने समझाया सम्यक्-वाणी का व्यवहार न किसी के भय की अपेक्षा रखता है, और न किसी के पक्षपात की। इस का इससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं होना चाहिये कि कोई 'बड़ा आदमी' उसके बारे में क्या सोचने लगेगा अथवा सम्यक्-वाणी के व्यवहार से उसकी क्या हानि हो सकती है।

२३. सम्यक्-वाणी का माप-दण्ड न किसी 'ऊपर के आदमी' की आज्ञा है, और न किसी व्यक्ति को हो सकने वाला व्यक्तिगत लाभ।

२४. सम्यक्-कर्मान्त योग्य व्यवहार की शिक्षा देता है। हमारा हर कार्य ऐसा हो जिसके करते समय हम दूसरों की भावनाओं और अधिकारों का कयाल रखें।

२५. सम्यक्-कर्मान्त का माप-दण्ड क्या है? सम्यक्-कर्मान्त का माप-दण्ड यही है कि हमारा कार्य जीवन के जो मुख्य नियम हैं उनसे अधिक से अधिक सम्बन्ध रखता हो।

२६. जब किसी आदमी के कार्य इन नियमों से सम्बन्ध रखते हों, तो उन्हें हम सम्यक्-कर्म कह सकते हैं।

२७. प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका कमाना ही होती है। लेकिन जीविका कमाने के ढंगों और ढंगों में अन्तर है। कुछ बुरे हैं, कुछ भले हैं। बुरे ढंग वे हैं जिनसे किसी की हानि होती है अथवा किसी के प्रति अन्याय होता है। अच्छे ढंग वे हैं जिनसे आदमी बिना किसी को हानि पहुँचाये अथवा बिना किसी के साथ अन्याय किये अपनी जीविका कमा सकता है। यही सम्यक्-आजीविका है।

२८. सम्यक्-व्यायाम; अविद्या को नष्ट करने के प्रयास की प्रथम सीढ़ी है, इस दुःखद कारागार के द्वार तक पहुँचने का रास्ता ताकि उसे खोला जा सके।

२९. सम्यक्-व्यायाम के चार उद्देश्य हैं।

३०. एक है अष्टांगिक-मार्ग विरोधी चित्त-प्रवृत्तियों की उत्पत्ति को रोकना।

३१. दूसरा है ऐसी चित्त-प्रवृत्तियों की दबाना जो उत्पन्न हो गई हों।

३२. तीसरा है ऐसी चित्त-प्रवृत्तियों को उत्पन्न करना जो अष्टांगिक मार्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हों।

३७. जोया है ऐसी उत्पन्न चित्त-प्रवृत्तियों में और भी अधिक वृद्धि करना तथा उनका विकास करना ।

३८. सम्पक्-स्मृति का मतलब है हर बात पर ध्यान दे सकना । यह मन की सतत् जागरूकता है । मन में जो अकुशल विचार उठते हैं, उन की चौकीदारी करना सम्पक्-स्मृति का ही एक दूसरा नाम है ।

३९. "हे परिब्राजको ! जो आदमी सम्पक्-दृष्टि, सम्पक्-संकल्प, सम्पक्-वार्ता, सम्पक्-कमांत्, सम्पक्-आजीविका, सम्पक्-व्यायाम और सम्पक्-स्मृति को प्राप्त करना चाहता है, उसके मार्ग में पांच बाधाएँ या बन्धन आते हैं ।"

४०. ये हैं लोभ, द्वेष, आसक्त्य, विचिकित्सा तथा अनिश्चय इन बाधाओं का जो वास्तव में कई बंधन ही हैं जीत लेना या तोड़ना आवश्यक है । इन बंधनों से मुक्त होने का उपाय समाधि है । लेकिन परिब्राजको ! यह समझ लेना चाहिये कि समाधि और 'सम्पक्-समाधि' एक ही बात नहीं । दोनों में बड़ा अन्तर है ।

४१. समाधि का मतलब है केवल चित्त की एकाग्रता । इसमें सन्देह नहीं कि इससे बैसे ध्यानों को प्राप्त किया जा सकता है कि जिनके रहते ये पांचो संयोजन या बन्धन स्थगित रहते हैं ।

४२. लेकिन ध्यान की ये अवस्थायें अस्थायी हैं । इसलिये संयोजन या बंधन भी अस्थायी तौर पर ही स्थगित रहते हैं । आवश्यकता है चित्त में स्थायी परिवर्तन लाने की । इस प्रकार का स्थायी-परिवर्तन सम्पक्-समाधि के द्वारा ही लाया जा सकता है ।

४३. खाली समाधि एक नकारात्मक स्थिति है, क्योंकि यह इतना ही तो करती है कि संयोजनों को अस्थायी तौर पर स्थगित रखे । इसमें मन का स्थायी परिवर्तन निहित नहीं है । सम्पक्-समाधि एक आकारमक वस्तु है । यह मन को कुशल-कर्मों का एकाग्रता के साथ चिन्तन करने का अभ्यास लातती है और इस प्रकार मन की संयोजनोत्पन्न अकुशल-कर्मों की ओर आकर्षित होने की प्रवृत्ति को ही समाप्त कर देती है ।

४४. सम्पक्-समाधि मन को कुशल और हमेशा कुशल ही कुशल (भलाई ही भलाई) सोचने की आदत डाल देती है । सम्पक्-समाधि मन को वह अंग्रेजित शक्ति देती है, जिससे आदमी कल्याणरत रह सके ।

५. धर्मचक्र प्रवर्तन

शील का मार्ग

१. तदनन्तर बुद्ध ने उन परिब्राजकों को शील का पथ या सद्गुणों का मार्ग समझाया ।

२. उन्होंने उन्हें बताया कि शील के पथ का पथिक होने का मतलब है इन सदगुणों का अभ्यास करना: (१) जीव, (२) दान, (३) उपेक्षा, (४) नैककर्म, (५) वीर्य, (६) शान्ति, (७) सत्य, (८) अधिष्ठान, (९) करुणा और (१०) मैत्री।

३. उन परिव्राजकों ने बुद्ध से इन सदगुणों का यथार्थ अर्थ समझना चाहा।

४. तब बुद्ध ने उनकी शंका मिटा कर उन्हें सन्तुष्ट करने के लिये कहा—

५. "शील का मतलब है नैतिकता, अकृश्रल न करने की प्रवृत्ति और कुशल करने की प्रवृत्ति; चुराई करने में लज्जा-भय मानना। लज्जा-भय के कारण पाप से बचने रहने का प्रयास करना शील है। शील का मतलब है पाप-भीकता।

६. नैककर्म का मतलब है सांसारिक काम-भोगों का त्याग।

७. दान का मतलब है बदले में किसी भी प्रकार की स्वार्थ-वृत्ति की आशा के बिना दूसरों की भलाई के निमित्त अपनी सम्पत्ति का ही नहीं, अपने रात, अपने शरीर के अंगों और यहाँ तक कि अपने प्राणों तक का बलिदान कर देना।

८. वीर्य का मतलब है सम्पत् प्रयत्न। जो कुछ एक बार करने का निश्चय कर लिया अथवा जो कुछ करने का संकल्प कर लिया उसे अपनी पूरी सामर्थ्य से करने का प्रयास करता और बिना उसे पुरा किये पीछे मुड़ कर नहीं देखना।

९. शान्तिक का मतलब है क्षमा-शीलता। घृणा के उत्तर में घृणा नहीं करना—यही इसका सार है। क्योंकि घृणा से तो घृणा कभी भिड़ती ही नहीं। क्षमा-शीलता से ही घृणा का मर्दन होता है।

१०. सत्य का मतलब है मृषावादी न होना। आदमी को कभी झूठ नहीं बोलना चाहिये। उसे सत्य और केवल सत्य ही बोलना चाहिये।

११. अधिष्ठान का मतलब है अपने उद्देश्य तक पहुँचने का दृढ़ निश्चय।

१२. करुणा का मतलब है सभी प्राणियों के प्रति प्रेमभरी दया।

१३. मैत्री का मतलब है कि सभी प्राणियों के प्रति भातृ-भावना हो, मित्रों के प्रति ही नहीं, शत्रुओं तक के प्रति; आदमियों के प्रति ही नहीं, सभी विरबलेश प्राणियों के प्रति।

१४. उपेक्षा का मतलब है अनासक्ति, यह दूसरों के सुख-दुःख के प्रति निरपेक्ष-भाव रखने से सर्वथा भिन्न वस्तु है। यह चिरा की यह अवस्था है जिसमें प्रिय-अप्रिय कुछ नहीं है। कल-कुछ भी हो—दसकी ओर से निरपेक्ष रहकर—साधना में रत रहना।

१५. इन सदगुणों का आदमी को अपनी पूरी सामर्थ्य भर अभ्यास करना होता है। इसीलिये उन्हें 'पारमिता' कहा गया है।

६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन

१. अपने धर्म का उद्गेश देकर और उसकी सम्पक् व्याख्या करके बुद्ध ने परिव्राजकों से प्रश्न किया :—

२. “क्या आदमी के चरित्र की पवित्रता ही संसार की भलाई की आधार-मिला नहीं है ?” उनका उत्तर था—“हाँ, यह ऐसा ही है।”

३. और फिर बुद्ध ने पूछा “क्या ईर्ष्या, राग, अमान, हिंसा चोरी, व्यभिचार और असत्य चरित्र की पवित्रता की जड़ नहीं खोद देते ? क्या व्यक्तिगत पवित्रता के लिये यह आवश्यक नहीं है कि आदमी में इतना चारित्रिक बल हो कि वह इस प्रकार की बुराइयों के वश में न आ सके ? यदि किसी आदमी में व्यक्तिगत पवित्रता ही नहीं है तो वह जन-कल्याण कैसे कर सकता है ?” उनका उत्तर था—“हाँ, यह ऐसा ही है।”

४. “और आदमी दूसरों को अपना गुलाम बनाना, दूसरों को अपने वश में रखना क्यों चाहते हैं ? आदमी दूसरों के सुख-दुःख की ओर से उदासीन क्यों है ? क्या यह इसलिये नहीं है कि एक आदमी दूसरे के प्रति योग्य व्यवहार नहीं करता ?” उनका उत्तर था : “हाँ, यह ऐसा ही है।”

५. “तो क्या अष्टांग मार्ग अनुसरण सम्पक्-दृष्टि, सम्पक्, संकल्प, सम्पक् वाणी, सम्पक् आजीविका, सम्पक्-कर्मन्त, सम्पक्-व्यायाम, सम्पक्-स्मृति, सम्पक् समाधि—संक्षेप में सद्गम के अनुसार जीवन यापन—यदि प्रत्येक उस पथ पर चले उस सारी अमानबता का, उस सारे अन्वय का जो एक आदमी दूसरे के प्रति करता है, भंग नहीं कर देगा ? उनका उत्तर था “हाँ, यह ऐसा ही है।”

६. अब भील या सद्गुणों का उल्लेख करते हुए कहा—“क्या अभाव-ग्रस्तों का अभाव दूर करने के लिये, क्या दरिद्रों की दरिद्रता दूर करने के लिये और सामान्य जन-कल्याण करने के लिये दान आवश्यक नहीं है ? क्या जहाँ कष्ट है, जहाँ दरिद्रता है, उधर ध्यान देकर उसे दूर करने के लिये कठुणा की आवश्यकता नहीं है ? क्या निस्वार्थ-भाव से काम करने के लिये निष्काम-भाव की आवश्यकता नहीं है ? क्या व्यक्तिगत लाभ न होने पर भी सतत् प्रयत्न में सगे रहने के लिये उपेक्षा की आवश्यकता नहीं है ?

७. “क्या आदमी से प्रेम करना आवश्यक नहीं है ?” उनका उत्तर था, “हाँ”।

८. “मैं एक कदम आगे बढ़कर कहता हूँ, प्रेम करना पर्याप्त नहीं है, जिस चीज की आवश्यकता है, वह मैत्री है। प्रेम की अपेक्षा इस का क्षेत्र व्यापक है। इस का मतलब है न केवल आदमियों के प्रति मैत्री बल्कि प्राणी-मात्र के प्रति मैत्री। यह आदमियों में ही सीमित नहीं है। क्या ऐसी मैत्री अपेक्षित नहीं है ?

इसके अतिरिक्त दूसरी कौन सी चीज है जो सभी आदमियों को वह सुख प्रदान कर सके जो सुख आदमी अपने लिये चाहता है, आदमी का चित्त पक्षपातरहित रहे, सभी के लिये खुला, सभी के लिये प्रेम और घृणा किसी से भी नहीं ?”

९. उन सब ने कहा, “हाँ।”

१०. “लेकिन इन सद्गुणों के आचरण के साथ प्रज्ञा जुड़ी रहनी चाहिये— निर्मल बुद्धि।

११. “क्या प्रज्ञा आवश्यक नहीं है ?” परिष्कारक मौन रहे, उन्हें अपने प्रश्न का उत्तर देने के लिये मजबूर करने की दृष्टि से तथागत ने अपना कथन जारी रखा। उन्होंने कहा:—“भला आदमी हम उसी को कहेंगे जो कोई बुरा काम न करे, बुरी बात न सोचे, बुरे तरीके से अपनी जीविका न कमाये और मुह से कोई ऐसी बात भी न निकाले जिससे किसी की हानि हो अथवा किसी को कष्ट पहुँचे।” परिष्कारक बोले, “हाँ, यह ऐसा ही है।”

१२. लेकिन क्या सात्त्विक भी एक अन्धे को भौतिक किये जाने चाहिये ? मैं कहता हूँ कि नहीं। यह पर्याप्त नहीं है। यदि यह पर्याप्त होता तो हम एक छोटे बच्चे के बारे में कह सकते कि वह हमेशा भला ही भला है। क्योंकि अभी एक छोटा बच्चा यह भी नहीं जानता कि शरीर क्या होता है, वह नात चलाते रहने के अतिरिक्त और शरीर से कर ही क्या सकता है ? वह यह भी नहीं जानता कि माली क्या है ? वह चिल्लाने के अतिरिक्त और उससे कोई बुरी बात कर ही क्या सकता है ? वह यह भी नहीं जानता कि बित्तावर क्या होता है ? वह ज्यादा से ज्यादा प्रसन्नता के बारे में किसकारी भरोसा कर सकता है : वह यह नहीं जानता कि जीविकाार्जन क्या होता है ? वह किसी बुरे तरीके से अपनी जीविका क्या कमा सकता है ? वह अपनी माँ की छाती से दूध पीने के अतिरिक्त और कुछ जानता ही नहीं।

१३. “इसलिये सद्गुणों का अनुसरण भी प्रज्ञा-पूर्वक होना चाहिये, अर्थात् निर्मल बुद्धि के साथ।

१४. “एक और कारण भी है जिसकी वजहसे प्रज्ञा पारमिता इतनी अधिक महत्वपूर्ण और इतनी अधिक आवश्यक है। दान तो होना ही चाहिये। किन्तु बिना प्रज्ञा के दानका भी दुष्परिणाम हो सकता है। करुणा तो होनी ही चाहिये। किन्तु बिना प्रज्ञा के करुणा भी बुराई को समर्थक बन जाती है। सभी दूसरी पारमितियों प्रज्ञा-पारमिता को कसौटी पर खरी उतरनी चाहिये। निर्मल-बुद्धि का ही दूसरा नाम प्रज्ञा पारमिता है।

१५. “मेरी स्थापना है कि आदमी को अकुशल-कर्म का ज्ञान होना चाहिये, अकुशल-कर्म की उत्पत्ति किस प्रकार होती है; इसी तरह उसे कुशल-कर्म का भी ज्ञान होना चाहिये, कुशल-कर्म की उत्पत्ति कैसे होती है ? इसी प्रकार आदमी को कुशल-कर्म और अकुशल-कर्म का भेद भी स्पष्ट ज्ञात होना चाहिये। इस

प्रकार के ज्ञान के बिना चाहे कर्म-विशेष अपने में कुशल कर्म ही क्यों न हो, चाहे शुभ-कर्म अपने में शुभ-कर्म ही क्यों न हो, तब भी यथार्थ कुशल-भाव या यथार्थ शुभ-भाव नहीं ही है। इसीलिये मैं कहता हूँ कि प्रज्ञा एक आवश्यक सद्गुण है।”

१६. तब बूढ़ ने परिव्राजकों को इस प्रकार की प्रेरणा देते हुए अपना प्रवचन समाप्त किया :—

१७. “हो सकता है कि तुम मेरे धर्म की निराशावादी धर्म समझ बैठो, क्योंकि मैं आरमियों का पालन मानव-जाति के दुःख की ओर आकर्षित करता हूँ। मेरे धर्म के बारे में ऐसी धारणा बनाना गलती होगी।

१८. “निस्सन्देह मेरा धर्म दुःख के अस्तित्व को स्वीकार करता है, किन्तु यह उतना ही जोर उस दुःख के दूर करने पर भी देता है।

१९. “मेरे धर्म में दोमों बातें हैं—इस में मानव जीवन का उद्देश्य भी निहित है और यह अपने में आशा का संदेश भी है।

२०. “इसका उद्देश्य है अविद्या का नाश, जिसका मतलब है दुःख के अस्तित्व के सम्बन्ध में अज्ञान का नाश।

२१. “यह आशा का संदेश भी है क्योंकि यह दुःख के नाश का मार्ग बताता है।

२२. “क्या तुम इस बात से सहमत हो या नहीं?” परिव्राजकों का उत्तर था—“हाँ।”

७. परिव्राजकों की धर्म-दीक्षा

१. उन पाँचों परिव्राजकों ने यह तुरन्त देख लिया कि यह वास्तव में एक नया धर्म है। जीवन की समस्या के प्रति इस नये दृष्टि-कोण से वे इतने अधिक प्रभावित हुए कि सभी एक साथ कहने लगे “संसार के इतिहास में इससे पहले किसी भी धर्म के संस्थापक ने कभी यह शिक्षा नहीं दी कि दुनिया के दुःख की स्वीकृति ही धर्म का वास्तविक आधार है।

२. “संसार के इतिहास में इससे पहले कभी किसी भी धर्म के संस्थापक ने यह शिक्षा नहीं दी कि दुनिया के इस दुःख को दूर करना ही धर्म का वास्तविक उद्देश्य है।

३. “संसार के इतिहास में इससे पहले किसी ने भी कभी मुक्ति का ऐसा मार्ग नहीं सुनाया था जो इतना सरल हो, जो मिथ्या विश्वास और ‘अपौरुषेय’ शक्तियों की मध्यस्थता से इतना मुक्त हो, जो इतना स्वतन्त्र ही नहीं बल्कि जो किसी ‘आत्मा’ या ‘परमात्मा’ के विश्वास का इतना विरोधी हो और जो मोक्ष लाभ के लिये मरणान्तर किसी जीवन में विश्वास रखना या न रखना भी अनिवार्य न मानता हो।

४. "संसार के इतिहास में इस से पहले किसी ने भी कभी ऐसे धर्म की स्थापना नहीं की, जिसका 'इल्लहाम' या ईश्वर-वचन' से किसी भी तरह का कुछ भी सम्बन्ध न हो और जिसके 'अनुशासन' आदमी की सामाजिक आवश्यकताओं के अन्वयन के परिणाम हो और जो किसी 'ईश्वर' की आज्ञाओं न हों।

५. "संसार के इतिहास में इससे पहले किसी ने भी कभी 'मोक्ष' का यह अर्थ नहीं किया कि वह एक ऐसा 'सुख' है जिसे आदमी धर्मानुसार जीवन व्यतीत करने से, अपने ही प्रयत्न द्वारा यहाँ इसी पृथ्वी पर प्राप्त कर सकता है।"

६. उन परिषदाजकों ने जब भगवान् बुद्ध से उसके द्वारा उपदिष्ट नया सद्धर्म सुना तो इसी प्रकार अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति की।

७. उन्हें लगा कि बुद्ध के रूप में उन्हें एक ऐसे जीवन-सुधारक मिल गये हैं, जिनका रोम-रोम धर्म की भावना से ओत-प्रोत है, और जो अपने युग के बौद्धिक ज्ञान से सुपरिचित है, जिन में ऐसी मौलिकता है और साहस है कि वे विरोधी विचारों की जानकारी रखने के बावजूद मुक्ति के एक ऐसे मार्ग का प्रतिपादन कर सकें, जिस मुक्ति की यही, इसी जीवन में आत्म-साधना और आत्म-संयम द्वारा प्राप्त किया सकता है।

८. बुद्ध के लिये उनके मन में ऐसी असीम श्रद्धा उत्पन्न हुई कि उन्होंने उनके प्रति तुरन्त आत्म-समर्पण कर दिया और प्रार्थना की कि बुद्ध उन्हें अपना शिष्य बना लें।

९. बुद्ध ने उन्हें 'गहि भिक्खवे' (भिक्खुओं, आम्हों) कह कर भिक्षु-संघ में दीक्षित कर लिया। वे पंचवर्गीय भिक्षु नाम से प्रसिद्ध हुए।^९

१. महावग्ग।

२. संयुक्त निकाय और विनय (महावग्ग)

३. संयुक्त निकाय

४. मज्झिमनिकाय, सम्माविट्ठि सुत्त।

५. मज्झिमनिकाय, सम्माविट्ठि सुत्त।

६. सं० नि० ५५ : २ : १; विनय (महावग्ग १)।

तीसरा भाग

कुलीनों तथा धार्मिकों की धर्म-दीक्षा

१. यश कुल-पुत्र की दीक्षा

१. उस समय वाराणसी में यश नाम का एक गृहपतिपुत्र रहता था। वह तरुण था और उसकी आकृति बहुत आकर्षक थी। वह अपने माता-पिता को बहुत प्यारा था और बहुत श्री-सम्पन्न था। उसके बहुत से नौकर-चाकर थे, बहुत सी पत्नियाँ थीं और उसका सारा समय नाचने-गाने, सुरा पान करने आदि में ही बीतता था। वह विलासमय-जीवन व्यतीत करता था।

२. कुछ समय बीतने पर उसे विरति ने आ घेरा। उसे इस बे-होशी से कैसे छुटकारा मिले? क्या जो जीवन वह व्यतीत कर रहा था, उससे कोई श्रेष्ठ-तर जीवन भी था? यह न सोच सकने के कारण कि वह क्या करे, उसने अपने पिता का घर छोड़ देने का निश्चय किया।

३. एक रात उसने अपने पिता का घर छोड़ दिया और यों ही भटकने लगा; वह धूमता-धूमता ऋषिपतन की ओर ही चला आया।

४. क्लान्ति के सारे वह एक जगह बैठ गया और बैठा बैठा अकेला ही जोर जोर से बड़बड़ाने लगा "मैं कहाँ हूँ? कौन-सा रास्ता है? ओह! कितनी परेशानी है? ओह! कितना दुःख है?"

५. यह घटना उसी रात की है जिस दिन तथागत ने ऋषिपतन में पंच-वर्गीय भिक्षुओं को अपना उपदेश दिया था। ठीक उसी समय जब यश ऋषिपतन की ओर बढ़ा चला आ रहा था, तथागत, जो कि ऋषिपतन में ही विराजमान थे, बहुत सबरे उठकर, खुली हवा में टहल रहे थे। और तथागत ने देखा कि इस प्रकार के दुःखद वचन कहता हुआ यश कुल-पुत्र चला आ रहा है।

६. और तथागत ने उसकी दुःखभरी आवाज सुनकर कहा "कहीं कोई परेशानी नहीं है, कहीं कोई दुःख नहीं है, आ मैं तुझे रास्ता दिखाऊँगा।" तब तथागत ने यश कुल-पुत्र को अपना उपदेश दिया।

७. और जब यश ने वह उपदेश सुना, वह हैरत हुआ, वह प्रमुदित हुआ। उसने अपने मुनहरे जूते छोड़ दिये और जाकर तथागत के पास बैठ उन्हें नमस्कार किया।

८. बुढ़ के बचन हृदय-झूम कर यश ने तयागत से प्रार्थना की वह उसे शिष्य रूप में स्वीकार करें।

९. तब तयागत ने उसे "आ" कहा और उसे भी भिक्षु-धर्म की दीक्षा दे दी।

१०. यश के माता-पिता बड़े परेशान थे कि यश कहाँ चला गया। पिता यश की खोज में निकला। यश का पिता ठीक उसी जगह से गुजरा जहाँ स्वयं भगवान् बुढ़ और भिक्षु-वेश में यश कुल-पुत्र बैठा था। यश के पिता ने तयागत से प्रश्न किया—“कृपया कहें कि क्या आपने मेरे पुत्र यश को कहीं देखा है?”

११. तयागत का उत्तर था—“आर्ये-आप अपने पुत्र को देख सकेंगे।” यश का पिता आया और अपने पुत्र यश के पास ही बैठा, किन्तु उसे पहचान नहीं सका।

१२. तयागत ने उसे बताया कि कैसे यश उनके पास आया था और कैसे उनका प्रवचन सुनकर वह भिक्षु बन गया है। तब पिता ने अपने पुत्र को पहचान लिया। उसे इस बात से प्रसन्नता हुई कि उसके पुत्र ने शील ग्रहण किये हैं।

१३. “पुत्र यश!” यश का पिता बोला, “तुम्हारी माँ तुम्हारे बिमोह के दुःख से बहुत दुःखी है। घर आकर उसे सुखी करो।”

१४. तब यश ने तयागत की ओर देखा, और तयागत ने यश के पिता से पूछा—“गृहपति! क्या तुम यह चाहते हो कि यश फिर गृहस्थ बन जावे और जैसे पहले काम-भोग का जीवन व्यतीत करता था, वैसा ही अब करे?”

१५. यश के पिता ने उत्तर दिया—“यदि मेरे पुत्र यश को आप के साथ ठहरना ही अच्छा लगता है, तो वह आप के साथ ही ठहरे।” यश ने एक भिक्षु ही बने रहना ठीक समझा।

१६. विदा लेने से पहले, यश के पिता ने कहा—“भिक्षु संघ सहित तयागत मेरे घर पर भोजन करना स्वीकार करें।”

१७. चीवर-धारण कर, भिक्षा पात्र हाथ में ले, यश कुल-पुत्र सहित तयागत यश गृहपति के घर पहुंचे।

१८. घर आने पर माँ और यश कुल-पुत्र की पूर्ण भावों ने भी तयागत के दर्शन किये। भोजनान्तर तयागत ने यश गृहपति के परिवार के लोगों को धर्मोपदेश दिया। वे बहुत प्रमुदित हुए और उन्होंने तयागत की शरण ग्रहण की।

१९. यश के चार मित्र थे, जो वाराणसी के ही घनियों के पुत्र थे। उनके नाम थे विमल, सुबाहु, पुण्ड्रित् तथा गवाम्पति।

२०. जब यश के मित्रों ने सुना कि यश ने ‘बुढ़’ और उनके धर्म की शरण ग्रहण की है, तो उन्हें लगा कि जो बात यश के लिये अच्छी है, वही उनके लिये भी अच्छी होगी।

२१. इसलिये वे यश के पास गये और उससे कहा कि वह भगवान् बुद्ध से उनकी ओर से प्रार्थना करे कि वे उन्हें भी अपना शिष्य बना लें ।

२२. यश ने स्वीकार किया और भगवान् से प्रार्थना की—“कृपया इन मेरे चार मित्रों को धर्मोपदेश देकर कृतार्थ करें ।” भगवान् ने स्वीकार किया । यश के मित्रों ने भी ‘धर्म’ की दीक्षा ग्रहण की ।

२ काश्यप-बन्धुओं की धर्म-दीक्षा

१. काश्यप-परिवार नामक वाराणसी में एक प्रसिद्ध परिवार था । उस परिवार में तीन भाई थे । तीनों बहुत शिक्षित थे और अत्यन्त धार्मिक ।

२. कुछ समय बाद ज्येष्ठ पुत्र ने संन्यास लेने की सोची । तदनुसार उसने गृह-त्याग किया, संन्यास ग्रहण किया और उरुवेल की ओर गया, जहाँ पहुँच कर उसने अपना एक आश्रम स्थापित किया ।

३. उसके दोनों छोटे भाइयों ने भी उसका अनुसरण किया और वे भी संन्यासी बन गये ।

४. वे सभी अग्नि-होषी अर्थात् आग की पूजा करने वाले थे । बड़ी-बड़ी जटायें धारण करने के कारण वे जटिल कहलाते थे ।

५. तीनों भाइयों में से एक उरुवेल काश्यप कहलाता था, दूसरा नदी-काश्यप तीसरा गया-काश्यप ।

६. इन तीनों में से उरुवेल काश्यप के पाँच सौ जटिल शिष्य थे, नदी-काश्यप के तीन सौ जटिल शिष्य थे और गया-काश्यप के दो सौ जटिल शिष्य थे । इनमें से मुख्य उरुवेल काश्यप ही था ।

७. उरुवेल काश्यप की दूर-दूर तक क्पाति हो गई थी । उसके बारे में कहा जाता था कि उसे जीते जी मुक्ति प्राप्त हो गई है । फल्गु नदी के तट पर स्थित उसके आश्रम में बहुत दूर-दूर के लोग आते थे ।

८. जब भगवान् बुद्ध को उरुवेल काश्यप की क्पाति का पता लगा तो उनके मन में आया कि उरुवेल काश्यप को धर्मोपदेश दिया जाय और सम्भव हो तो धर्म-दीक्षा भी ।

९. उसके निवास का पता-ठिकाना पाकर तयागत उरुवेल पहुँचे ।

१०. तयागत उससे मिले और उसे शिक्षित करने तथा दीक्षित करने का योग्य अवसर पाने के लिये बोले—“काश्यप ! यदि तुम्हें असुविधा न हो तो एक रात मैं तुम्हारे आश्रम में रहूँ ।”

११. काश्यप का उत्तर था, “मैं इससे सहमत नहीं हूँ । मुचलिद नाम का एक जंगली नागराजा यहाँ रहता है । उसी का यहाँ वासन चलता है । वह बड़ा भयानक है । वह सभी अग्नि-पूजक साधुओं का विशेष विरोधी है । वह रात को

इस आश्रम में जाता है और बड़ी हानि पहुंचाता है। मुझे डर है कि वह तुम्हें भी वैसा ही काट न दे जैसा वह मुझे देता है।"

१२. काश्यप को यह पता नहीं था कि नाग लोग बूढ़ के मित्र और अनुयायी बन चुके थे। लेकिन तथ्यागत इसे जानते थे।

१३. इसलिये तथ्यागत ने पुनः आग्रह किया: "इसकी कोई सम्भावना नहीं है कि वह मुझे किसी तरह का काट देगा। काश्यप! एक रात मुझे अपनी अग्नि-शाला में रहने दें।"

१४. काश्यप बार-बार इनकार करता रहा और तथ्यागत बार-बार आग्रह करते रहे।

१५. तब काश्यप ने कहा, "मैं अधिक विवाद नहीं करना चाहता। किन्तु मुझे डर बहुत है। जो अच्छा समझें, करें।"

१६. तथ्यागत ने उसी समय अग्नि-शाला में प्रवेश किया और अपना आसन जमा लिया।

१७. नागराज मुचलिन्द ने अपने समय पर शाला में प्रवेश किया। लेकिन काश्यप के स्थान पर वहाँ उसने तथ्यागत को बैठे देखा।

१८. तथ्यागत की शान्त सम्भोर मुद्रा को देखकर मुचलिन्द को ऐसा लगा मानों वह किसी दिव्य पुरुष के सामने है। उसने सिर झुका कर तथ्यागत की पूजा की।

१९. उस रात काश्यप को ठीक-ठीक नींद नहीं आई। वह यही सोचता रहा कि उसके अतिथि के साथ क्या बीती होगी? इसलिये वह बड़ी पचराहट लिये जागा। उसे डर था कि शायद उस रात उसका अतिथि जला ही दिया गया हो।

२०. प्रातःकाल होने पर अपने अनुयायियों सहित काश्यप देखने के लिये आया। मुचलिन्द द्वारा भगवान् बूढ़ को हानि पहुंचाये जाने की तो बात ही क्या उन्होंने देखा कि मुचलिन्द भगवान् बूढ़ की पूजा कर रहा है।

२१. यह दृश्य देखा तो काश्यप को लगा कि वह कोई चमत्कार देख रहा है, उसकी आँखों के सामने कोई प्रतिमाएँ घट रहा है।

२२. उस चमत्कार से प्रभावित होकर काश्यप ने भगवान् बूढ़ से प्रार्थना की कि वे वहाँ एक आश्रम में रहे और वह स्वयं उनकी देख-भाल करेगा।

२३. भगवान् बूढ़ ने वहाँ ठहरना स्वीकार किया।

२४. लेकिन दोनों के दो भिन्न दृष्टि-कोण थे। काश्यप ने समझा कि उसे मुचलिन्द नागराज के विरुद्ध संरक्षण मिल गया। लेकिन भगवान् बूढ़ ने सोचा कि एक न एक दिन काश्यप को धर्मीयदेश देने का अवसर आयेगा ही।

२५. लेकिन काश्यप ने कभी कोई ऐसा अवसर नहीं दिया। वह समझता था कि तथ्यागत एक चमत्कार कर सकने वाले के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

२६. एक दिन तथागत ने स्वयं ही काश्यप से पूछा—“क्या तुम अर्हत् हो ?”

२७. “यदि तुम अर्हत् नहीं हो, तो, वह अग्नि-होत्र तुम्हारा क्या कल्याण करेगा ?”

२८. काश्यप बोला—“मैं नहीं जानता कि अर्हत् क्या होता है ? कृपया मुझे समझावें ।”

२९. तब भगवान् ने कहा—“आर्य अष्टांगिक मार्ग पर चलने वाले पथिक के पथ के बाधक सभी राग-द्वेषों को जिसने जीत लिया है, वह अर्हत् है । अग्नि-होत्र किसी को पाप-मुक्त नहीं कर सकता ।”

३०. वृ काश्यप अमिमान्नी स्वभाव का था । लेकिन उसके मन पर तथागत के तर्कों का प्रभाव पड़ा । अपने मन को कुछ झुकाकर और विनम्र बनाकर, पहाँ तक कि उसने सद्धर्म के ग्रहण करने का पात्र बनाकर उसने कहा कि लोक-गुरु बुद्ध की बुद्धि और उसकी बुद्धि का कोई मुकाबला नहीं ।

३१. और इस प्रकार, अंत में सभी शंकाओं का समाधान होने पर, उरुवेल काश्यप ने तथागत के धर्म को स्वीकार किया और उनका अनुयायी हो गया ।

३२. अपने गुरु के अनुगामी बन, काश्यप के सभी शिष्यों ने भी सद्धर्म ग्रहण किया । इस प्रकार काश्यप और उनके सभी शिष्य दीक्षित हो गये ।

३३. तब उरुवेल काश्यप ने अग्नि-होत्र करने के अपने सभी पात्र आदि उठाकर नदी में फेंक दिये जो जाकर पानी में तैरने लगे ।

३४. नदी-काश्यप और गया-काश्यप ने जो नदी के तीरे की ओर रहते थे, अग्नि-होत्र के समान को नदी में बहते जाते देखा । वे बोले—“यह सारा सामान हमारे भाई का है । उसने यह सारा सामान फेंक क्यों दिया है ? कोई न कोई असाधारण घटना घटी होगी ।” वे बहुत अधिक चर्चन हो गये । अपने पांच पांच सौ अनुयायियों सहित वे अपने भाई से मिलने के लिये नदी के ऊपर की ओर आगे बढ़े ।

३५. सभी अनुयायियों सहित अपने भाई को धमन-वेग पहने देल उनके मन में नाना तरह के विचार उठे । तब उन्होंने इस का कारण जानना चाहा । उरुवेल काश्यप ने उन्हें बताया कि उसने किस प्रकार बुद्ध के धर्म को अंगीकार कर लिया है ।

३६. वे बोले—“अब हमारे भाई ने बुद्ध के धर्म को स्वीकार कर लिया है, तो हमें भी उनका अनुकरण करना चाहिये ।”

३७. उन्होंने अपने बड़े भाई से अपनी इच्छा व्यक्त की । तब अपने सभी अनुयायियों सहित वे दोनों भाई तथागत का प्रवचन सुनने के लिये सामने उपस्थित

किये गये। तत्काल ने अग्नि-होषी धर्म और अपने धर्म की तुलना करते हुए प्रब-
धन किया।

३८. उन दोनों भाइयों को उपदेश देते हुए भगवान् बुद्ध ने कहा—“जिस प्रकार लकड़ी से लकड़ी के रंग-रंग साते पर आग पैदा होती है उसी प्रकार अस-
म्यन् विचार जब आपस में रंग-साते हैं तो अविद्या का जन्म होता है।

३९. ‘काम, क्रोध तथा अविद्या ये ही वह अग्नि हैं जो सभी चीजों को भस्मसात् कर देती हैं और संसार में दुःख और शोक का कारण बनती हैं।

४०. “लेकिन यदि एक बार आदमी सही रास्ते पर चल सके और काम, क्रोध तथा अविद्या रुपी आग को बुझा सके तो फिर विद्या और पवित्र आचरण जन्म लेते हैं।

४१. इसलिये जब एक बार आदमी को अकुशल कर्मों से तृष्णा हो जाती है तो उससे तृष्णा का क्षय होता है। तृष्णा का क्षय करने से ही आदमी श्रमण बनता है।”

४२. उन बड़े ऋषियों ने जब ये बुद्ध-वचन सुने तो अग्नि-होष से उनकी संबंधा उपेक्षा हो गई। उन्होंने भी बुद्ध का शिष्यत्व स्वीकार करने की इच्छा की।

४३. काश्यप-बन्धुओं की दीक्षा भगवान् बुद्ध की बड़ी विजय थी। क्योंकि जनता के मन पर उनका बड़ा प्रभाव था।

३. सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन की धर्म-दीक्षा

१. जिस समय भगवान् बुद्ध राजगृह में निवास करते थे, उसी समय अपने शार्ई सो अनुयायियों के साथ सञ्जय नाम का एक प्रसिद्ध परिव्राजक भी वहीं रहता था।

२. उसके शिष्यों में दो ब्राह्मण तरुण भी थे—सारिपुत्र और मौद्गल्यायन।

३. सारिपुत्र और मौद्गल्यायन सञ्जय की शिक्षाओं से सन्तुष्ट न थे और किसी थोड़ेतर धर्म की खोज में थे।

४. एक दिन की बात है कि पञ्चवर्गीय भिक्षुओं में से एक भिक्षु अश्व-
जित् पूर्वाह्न में अपना चीवर पहन तथा पात्र और चीवर ले, भिक्षाटन करने के लिये राजगृह नगर में प्रविष्ट हुए।

५. सारिपुत्र पर अश्वजित् की गम्भीर गति-विधि का बड़ा प्रभाव हुआ। अश्वजित् चबिर को देव सारिपुत्र ने सोचा “निश्चय से यह भिक्षु उन भिक्षुओं में से एक होगा, जो संसार में इस पद के योग्य हैं। यह कैसा होगा, यदि मैं इस भिक्षु के पास जाऊँ और इससे पूछूँ कि मित्र, तुम किसके नाम से प्रव्रजित हुए हो? तुम्हारा गुरु कौन है? तुम किस का धर्म मानते हो?”

६. फिर सारिपुत्र ने सोचा—“यह समय इस भिक्षु से कुछ पूछने का नहीं है ? यह भिक्षाटन के लिये भीतरी आंगन में प्रवेश कर चुका है । कैसा हो यदि सभी अर्थियों की तरह मैं इस भिक्षु के पीछे हो लू ?”

७. राजगृह में भिक्षाटन कर चुकने पर अश्वजित् स्थविर प्राप्त-भिक्षा ग्रहण कर बापस लौट गये । तब सारिपुत्र वहीं पहुँचे जहाँ अश्वजित् थे । समीप पहुँच कर कुशल-ओम पूछ एक ओर खड़े हो गये ।

८. एक ओर खड़े हुए सारिपुत्र परित्राजक ने अश्वजित् स्थविर से कहा—“मित्र ! आपकी जन्म शान्त है । आपकी छवि आभा-पूर्ण है । मित्र ! आप किसके नाम से प्रव्रजित हुए हैं ? आपका गुरु कोन है ? आप किस के धर्म को मानते हैं ?”

९. अश्वजित् का उत्तर था—“मित्र ! निश्चय से जो जाक्य-कुल-प्रव्रजित महान् स्वर्ण है, मैं उन्हीं के नाम से प्रव्रजित हुआ हूँ, वे ही मेरे गुरु हैं और मैं उन्हीं के धर्म को मानता हूँ ।”

१०. “और हे पूज्यवर ! आपके गुरु का सिद्धान्त क्या है ? वह आपको किस बात की शिक्षा देते हैं ?”

११. “मित्र ! मैं एक नया ही शिष्य हूँ, मुझे प्रव्रजित हुए थोड़ा ही समय हुआ है । मैंने अभी-अभी—कुछ ही समय पूर्व—इस धर्म-विनय को ग्रहण किया है । मैं विस्तार-पूर्वक तो आपको धर्म बता नहीं सकता । लेकिन मैं आप को संक्षेप में ही बताऊँगा ।”

१२. तब परित्राजक सारिपुत्र ने स्थविर अश्वजित् से कहा—“मित्र ! कम या अधिक आप जितना चाहें मुझे बतायें, लेकिन मुझे उसका सार अवश्य बता दें । मैं सार ही चाहता हूँ । बहुत से जम्हों को लेकर क्या करनेगा ?”

१३. तब अश्वजित् ने सारिपुत्र को तथागत की शिक्षाओं का सार बताया, जिससे सारिपुत्र का पूर्ण संतोष हो गया ।

१४. यद्यपि सारिपुत्र और मौद्गल्यायन भाई भाई नहीं थे । लेकिन वे दोनों वो भाइयों के ही समान थे । उन्होंने परस्पर एक दूसरे को बचन दे रखा था । जिसे सत्य की पहले प्राप्ति हो वह दूसरे को इसकी सूचना देगा । यही दोनों की आपस की बचन-बद्धता थी ।

१५. तबनुसार सारिपुत्र वहीं पहुँचे जहाँ मौद्गल्यायन थे । उन्हें देखकर मौद्गल्यायन ने सारिपुत्र से कहा—“मित्र ! आपकी शकल शान्त है । आपकी छवि आभा-पूर्ण है । तो क्या आपने सत्य प्राप्त कर लिया है ?”

१६. “हाँ मित्र ! मैंने सत्य प्राप्त कर लिया है ।” “और मित्र ! आपने सत्य को कैसे पा लिया है ?” तब सारिपुत्र ने वह सारी घटना कह सुनाई जो उसके और अश्वजित् के साथ घटी थी ।

१७. तब मौद्गल्यायन ने सारिपुत्र से कहा—“मित्र ! हम भगवान् तपागत के पास चलें ताकि वह हमारे शास्ता बनें ।”

१८. सारिपुत्र ने कहा—“मित्र ! यह जो डाई सी परिचाजक यहां रहते हैं, ये हमारी ओर ही देखकर वहां रहते हैं। इससे पहले कि हम उन्हें छोड़कर जायें, हमारे लिये यह उचित है कि हम उन्हें बता दें। वे जो चाहेंगे करें ।”

१९. तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन वहां गये जहां वे थे। उनके पास जाकर उन्होंने कहा—“हम महाश्रमण की शरण ग्रहण करने जा रहे हैं। वह महाश्रमण ही हमारे शास्ता है ।”

२०. उन्होंने उत्तर दिया—“आपके ही कारण हम यहीं रहते रहे हैं और आप को ही मानते रहे हैं। यदि आप महाश्रमण के अधीन ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करें, तो हम सब भी यही करेंगे ।”

२१. तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन सञ्जय के पास गये और पहुंचकर सञ्जय से कहा—“मित्र ! हम तपागत की शरण में जाते हैं। वह तपागत ही हमारे शास्ता है ।”

२२. सञ्जय बोला—“आप मत जायें। हम तीनों मिलकर इन सबकी मुखवाई करेंगे ।”

२३. दूसरी और तीसरी बार भी सारिपुत्र और मौद्गल्यायन ने अपनी बात दोहराई। सञ्जय का भी वही उत्तर था।

२४. तब उन डाई सी परिचाजकों सहित सारिपुत्र और मौद्गल्यायन राजगृह के वेष्टवन उद्यान में वहां पहुंचे जहां तपागत विराजमान थे।

२५. तपागत ने उन्हें—सारिपुत्र और मौद्गल्यायन को—दूर से जाते देखा। उन्हें देखकर तपागत ने भिक्षुओं को सम्बोधन किया—“भिक्षुओं, ये दो मित्र चले आ रहे हैं, सारिपुत्र और मौद्गल्यायन, ये दोनों मेरे श्रावक-युगत होंगे, श्रेष्ठ शिष्य-युगत ।”

२६. जब वे वेष्टवन पहुंचे तो वह जहां तपागत थे वहां गये। वहां पहुंच कर उन्होंने तपागत के चरणों में सिर से बन्दना की और प्रार्थना की—“भगवान् ! जमे आप से प्रब्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले ।”

२७. तब भगवान् ने धर्म-दीक्षा के निश्चित शब्द—भिक्षुओं ! जाओ (एहि भिक्षुत्वे)—कहे और डाई सी जटाधारियों सहित सारिपुत्र और मौद्गल्यायन भगवान् बुद्ध की शरण आये ।^१

४. राजा बिम्बिसार की धर्म-दीक्षा

१. राजगृह मगध-नरेश श्रेणिक बिम्बिसार की राजधानी थी।

२. जटिलों की इतनी बड़ी संख्या के बुद्ध की शरण में चले जाने से हर किसी की कबान पर तथागत की चर्चा थी।

३. इस प्रकार बिम्बिसारको तथागत के नगर में आगमन का पता लग गया।

४. बिम्बिसार नरेश ने सोचा—“उन कट्टर जटिलों के मत को बदल देना, हँसी-खेल नहीं है। निश्चय से वह भगवान् होंगे, अर्हत् होंगे, सम्मक् सम्बुद्ध होंगे, विद्या और आचरण से युक्त होंगे, सुगति-प्राप्त होंगे, लोक के जानकार होंगे, सर्वश्रेष्ठ होंगे, आदमियों के मार्ग-दर्शक होंगे, देवता और आदमियों के शास्ता होंगे। वे निश्चय से स्व-बुद्ध धर्म की शिक्षा दे रहे होंगे।”

५. “वह आदि में कल्याणकारक, मध्य में कल्याणकारक, अन्त में कल्याणकारक धर्म की शिक्षा दे रहे होंगे। वे अर्षों और शब्दों सहित धर्म का ज्ञान करा रहे होंगे। वे पूर्ण परिशुद्ध श्रेष्ठ जीवन प्रकाशित कर रहें होंगे। ऐसे दिव्य पुरुष का दर्शन करना अच्छा है।”

६. इस प्रकार मगध के बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियों के साथ मगध नरेश बिम्बिसार जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। उनके पास पहुँच और विनम्रता पूर्वक अभिवादन कर वह उनके निकट बैठ गया। उन बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियों में से भी कुछ ने भगवान् को विनम्रता पूर्वक अभिवादन किया और पास बैठ गये, कुछ ने भगवान् का कुशल-क्षेम पूछा और निकट बैठ गये, कुछ ने भगवान् को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और निकट बैठ गये, कुछ ने अपना नाम और गोत्र कहा और भगवान् के निकट बैठ गये और कुछ मृत्ती खूबचाप समीप आ बैठे।

७. मगध के उन बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियों ने उरुवेल काश्यप को भी महाश्रमण के भिक्षुओं में देखा। उनमें से कुछ सोचने लगे। “क्या उरुवेल काश्यप महाश्रमण की अधीनता में श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर रहा है, अथवा महाश्रमण ही उरुवेल काश्यप की अधीनता में श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर रहा है?”

८. मगध के उन बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियों के मन की बात जान तथागत ने उरुवेल काश्यप को सम्बोधित कर कहा—“हे उरुवेलवासी! तू ने क्या देखा जो अग्नि-परिचर्या छोड़ दी? यह कैसे हुआ कि तूने अग्निहोत्र का परित्याग कर दिया।

९. काश्यप ने उत्तर दिया—“यज्ञों से रूप, शब्द, रस, गन्ध, स्पर्श की ही ज्ञाना की जा सकती थी। जब मैंने समझ लिया कि ये वासुनामय रूप, रस, शब्द, गन्ध और स्पर्श अविशुद्ध है तो फिर मैंने यज्ञ-याग की कामना नहीं की।”

१०. “लेकिन यदि हजं न हो तो यह बताओ कि तुम्हारा यह विचार कैसे बदल गया?”

११. तब उरुवेल काश्यप ने अपने स्वान से उठ, अपने एक कंधे को नंगा किया और भगवान् बुद्ध के चरणों में सिर रखकर बन्दना की और निवेदन किया : “मैं

शिष्य हूँ और तपायल मेरे मानता हूँ।" तब मगध के उन असंख्य ब्राह्मणों और गृहपतियों ने जाना कि उरुवेल काश्यप ही महाश्रमण की अधीनता में श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर रहा है।

१२. तब मगध के उन बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियों के मन की बात को जानकर भगवान् ब्रुड ने उन्हें धर्मोपदेश दिया। जिस प्रकार बिना धर्मों का स्वच्छ कपड़ा रंग को अच्छी तरह पकड़ लेता है, उसी तरह बिम्बिसार प्रमुख उन मगध के बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियों को विरज, विमल ज्ञान-चक्षु प्राप्त हो गया। उनमें से एक लाख ने अपने उपासकत्व की घोषणा की।

१३. दूषण का साक्षी होकर, धर्म को समझ कर, धर्म की तह तक जाकर, सन्देह रहित होकर, बिचिकित्सा को जीतकर और पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर मगध-नरेश बिम्बिसार बोला :—“भगवान् ! जिस समय मैं राजकुमार था, उस समय मेरी पाँच जाकांछायें थी, वे पाँचों अब पूरी हो गई।

१४. “पूर्व समय में, भगवान् ! जब मैं राजकुमार था, मेरे मन में इच्छा उत्पन्न हुई कि मेरा राज्याभिषेक हो जाता। भगवान् ! यह मेरी पहली इच्छा थी, जो अब पूरी हो गई। और तब अर्हत् सम्पक् सम्बुड मेरे राज्य में आते ! यह मेरी दूसरी इच्छा थी। भगवान् ! जो अब पूरी हो गई। और मैं उन भगवान् की सेवा में उपस्थित होता ! यह मेरी तीसरी इच्छा थी, भगवान् ! जो अब पूरी हो गई। और वह भगवान् मुझे धर्मोपदेश देते ! यह मेरी चौथी इच्छा थी भगवान् ! जो अब पूरी हो गई। और मैं उन भगवान् का धर्म हृदयगम कर पाता ! यह मेरी पाँचवीं इच्छा थी भगवान् ! जो अब पूरी हो गई। भगवान् ! जिस समय मैं राजकुमार था, उस समय मेरी ये पाँच इच्छायें थी जो अब पूरी हो गई।

१५. “अद्भुत है भगवान् ! अद्भुत है। जैसे कोई ओषे को सीधा कर दे, अथवा डके तुण को उछाड़ दे, अथवा पक्-भ्रष्ट को मार्ग दिखा दे, अथवा अंधेरे में प्रदीप जला दे ताकि आँख बाने रास्ता देख सकें, उसी तरह से भगवान् ने माना प्रकार से धर्मोपदेश दिया है। मैं भगवान् की शरण ग्रहण करता हूँ। मैं धर्म की शरण ग्रहण करता हूँ। मैं संघ की शरण ग्रहण करता हूँ। आज दिन से जब तक इस शरीर में प्राण है, तब तक के लिये भगवान् मुझे अपना शरणागत उपासक मानें।”

५. अनाथपिण्डिक की धर्म-दीक्षा

१. सुदत्त कोसल जनपद की राजधानी आवस्ती का एक नागरिक था। कोसल जनपद पर राजा प्रसेनजित् का अधिकार था। सुदत्त प्रसेनजित् का श्रेष्ठी

(= सजाऊँगी) था। क्योंकि वह दरिद्रों को बहुत दान देता था, इसलिये उसका नाम अनाथपिण्डक पड़ गया था।

२. जिस समय भगवान् राजगृह में ठहरें हुए थे, उस समय मुदत्त किसी निजी काम से राजगृह गया। वह राजगृह श्रेष्ठी के यहाँ ठहरा था, जिसकी बहन से उसका विवाह हुआ था।

३. जब वह वहाँ पहुँचा तो उसने देखा कि उसका साता श्रेष्ठी भिक्षुसंघ तथा भगवान् बुद्ध को भोजन कराने के लिये इतनी बड़ी तैयारी करा रहा है कि उसने सोचा कि या तो किसी आवाह-विवाह की तैयारी है या राजा को निमंत्रण दिया गया है।

४. जब उसे ठीक बात की जानकारी हुई तो वह भगवान् बुद्ध का दर्शन करने के लिये अत्यन्त उत्सुक हो उठा। वह उसी रात भगवान् बुद्ध के दर्शनाभ्यं निकल पड़ा।

५. और तत्पश्चात् ने अनाथपिण्डक के हृदय की निर्मलता को तुरन्त भाँप लिया। उन्होंने उसका सात्वता भरे शब्दों में स्वागत किया। अपने आसन पर बैठ चुकने पर अनाथपिण्डक ने भगवान् से कुछ सदुपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की।

✓ ६. तत्पश्चात् ने उसकी इच्छा पूर्ति करने के निमित्त एक प्रश्न से आरम्भ किया। “कौन है जो हमारा निर्माण करता है, और हमें—जैसा चाहता है—चलाता है? क्या यह कोई ईश्वर है? कोई सृष्टिकर्ता? यदि ईश्वर निर्माणकर्ता है तो सभी प्राणियों को चुपचाप केवल उसकी इच्छा के अधीन चलना होगा। वे कुम्हार के बनाये हुए बरतनों के समान होंगे। यदि यह संसार ईश्वर द्वारा निमित्त होता तो उसमें दुःख, आपत्तियाँ और पाप कैसे होते? क्योंकि पवित्र-अपवित्र दोनों का तो रचयिता उसी को मानना होगा। यदि दुःख, आपत्तियों और पाप का मूल-स्रोत ईश्वर को न माना जाय, तो उससे भिन्न और उससे स्वतन्त्र एक दूसरा कारण स्वीकार करना होगा। तब ईश्वर सर्व-शक्तिमान नहीं रहेगा। इस प्रकार तुमने देखा कि ईश्वर के विचार की ही जड़ खुद गई।

७. “तो फिर क्या ‘ब्रह्म’ से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है? ‘ब्रह्म’ भी सृष्टि का कारण नहीं हो सकता। जिस प्रकार बीज में से पौधे की उत्पत्ति होती है—उसी प्रकार सभी चीजों की उत्पत्ति होती है। तो फिर एक ही ‘ब्रह्म’ से सभी चीजें कैसे उत्पन्न हो सकती हैं? यदि ‘ब्रह्म’ सर्वव्यापक है, तो फिर वह निश्चय से उनका निर्माता तो नहीं ही है।

८. “फिर यह भी कहा जाता है कि ‘आत्मा’ से ही उत्पत्ति हुई है। यदि ‘आत्मा’ ही निर्माता है तो उसने सभी वस्तुओं को वाञ्छनीय रूप ही क्यों नहीं दिया? दुःख-

सुख वास्तविक सत्य है, और उनका वास्तव अस्तित्व है। वह 'आत्मा' की कृति कैसे हो सकते हैं ?

९. "यदि तुम वही मत बना लो कि न कहीं कोई सृष्टि-कर्ता है और न कहीं कोई हेतु-प्रत्यय है तो फिर जीवन में जो साधना की जाती है, जो साधनों तथा साधन का भेल बिठाने का प्रयास किया जाता है, उस सबका कोई प्रयोजन नहीं होगा ?"

१०. "इसलिये हमारा कहना है कि जो भी जीवें अस्तित्व में आती हैं वे सब सहेतुक होती हैं। न वे ईश्वर द्वारा निर्मित होती हैं, न 'ब्रह्म' द्वारा, न 'आत्मा' द्वारा और न बिना हेतु के यों ही अस्तित्व में आती हैं। हमारे अपने कर्म ही हैं जो अच्छे और बुरे परिणामों को जन्म देते हैं।

११. "सारा संसार 'प्रतीत्य-समुत्पाद' के नियम से बंधा है और जितने भी हेतु हैं वे अर्चतसिक नहीं हैं। जिस सोने से सोने का प्याला निर्मित होता है वह आदि से अंत तक सोना होता है।

१२. "इसलिये हम 'ईश्वर' और उससे प्रार्थना करने सम्बन्धी मिथ्या-धारणों का त्याग करें, हम अपने की सूक्ष्म काल्पनिक उद्गारों में न उलझे रहें, हम 'आत्मा' और 'आत्माय' से मुक्त हों क्योंकि सभी जीवें सहेतुक हैं, इसलिए हम कुशल-कर्म करें ताकि उनका परिणाम भी कुशल ही हो।"

१३. अनाथविण्णक बोला— "तथामत के वचनों का सत्य मैं सुदयंगम कर रहा हूँ। मैं अपने अज्ञान को और भी अधिक दूर करना चाहता हूँ। जो कुछ मैं निवेदन करना चाहता हूँ, उसे सुनकर भगवान् मुझे मेरे कर्तव्य का आदेश दें।

१४. "मुझे काम-काज बहुत रहता है और क्योंकि मैंने बहुत धन इकट्ठा कर रखा है, इसलिए बहुत बातों की फिकर करनी पड़ती है। तो भी मैं अपने कार्य को आनन्दपूर्वक करता हूँ और बिना किसी प्रमाद के उसमें लगा रहता हूँ। मेरे बहुत से नौकर-चाकर हैं और उन सब की जीविका मेरे ही व्यापार की सफलता पर निर्भर करती है।

१५. "अब मैंने सुना है कि आपके शिष्य प्रब्रज्या के सुखों के गुण गाते हैं और गृहस्थ जीवन की गूँथी करते हैं। वे कहते हैं कि 'तथामत' ने अपना राज्य और परम्परागत ऐश्वर्य का त्याग कर दिया और सद्धर्म का पथ प्राप्त किया है। इस प्रकार उन्होंने सारे संसार को निर्वाण का रास्ता दिखाया है।

१६. "मैं जो उचित हो वही करना चाहता हूँ और मेरी ठाकठ अभिलाषा है कि अपने मानव-बन्धुओं की कुछ सेवा कर सकूँ। मैं जानना चाहता हूँ कि क्या मेरे लिये यह उचित है कि मैं अपनी सम्पत्ति, अपने घर, और अपने कार-बार का त्याग कर दूँ और आपको तरह-ही धर्म-जीवन का सुख प्राप्त करने के लिये घर से बे-घर हो जाऊँ ?"

१७. तथगत का उत्तर था— 'धर्म-जीवन का मुल हर उस व्यक्ति के लिये प्राप्य है जो आर्य-अष्टांगिक मार्ग का पथिक है। जो धन से चिपटा हुआ है उसके लिये यही अच्छा है कि धन की आसक्ति से अपने हृदय को विषाक्त बनाने के बजाय धन का त्याग कर दे; लेकिन जिसकी धन में आसक्ति नहीं है और जिसके पास धन है तथा वह उसका उचित उपयोग करता है, ऐसा आदमी अपने मानव-बन्धुओं के लिए एक वरदान है।'

१८. 'मैं तुम्हें कहता हूँ कि गृहस्थ ही बने रहो। अपने कारोबार में अग्रमाद-पूर्वक लगे रहो। आदमी का जीवन, ऐश्वर्य और अधिकार उसे अपना दास नहीं बनाते किन्तु जीवन, ऐश्वर्य और अधिकार के प्रति जो आदमी की आसक्ति है, वह उसे अपना दास बना लेती है।

१९. 'जो भिक्षु इसलिये संसार का त्याग करता है कि भिक्षु बनकर आराम-तनवी का जीवन व्यतीत करे, उसे इससे कुछ लाभ नहीं होगा। क्योंकि आलस्य का जीवन धुनित जीवन है और शक्ति का अभाव स्पृहणीय नहीं है।

२०. 'जब तक अन्तःप्रेरणा न हो तब तक तथगत का धर्म किसी को भी प्रवर्जित होने वा संसार का त्याग करने के लिये नहीं कहता, तथगत का धर्म हर आदमी से यही मांग करता है कि वह 'आत्म-दृष्टि' में मुक्त हो, उसका हृदय शुद्ध हो, उसे काम-भोगादि सुखों की त्यास न हो और वह श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करे।

२१. 'और आदमी चाहे जो करे, चाहे वे जिल्ली रहे, चाहे व्यापार करे, चाहे सरकारी ओकरी करे अथवा संसार त्याग कर ध्यान-भावना में रत रहे, उन्हें अपना कार्य पूरे दिल से करना चाहिए। उन्हें परिश्रमी और उत्साही होना चाहिए। और यदि वे उस कमल की तरह जो पानी में रहता हुआ भी पानी से अछूता रहता है, जीवन-संघर्ष में लगे रहने पर भी अपने मन में ईर्ष्या और घृणा को जगह नहीं देते, यदि वह संसार में रहते हुए भी स्वार्थ-भरा नहीं बल्कि परमार्थ-भरा जीवन व्यतीत करते हैं तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि उनका मन आनन्द, शान्ति और सुख से भर जायगा।'

२२. जनाधपिण्डक को लगा कि यह सत्य का धर्म है, सरलता का धर्म है और प्रज्ञा का धर्म है।

२३. उनकी तथगत के सद्धर्म में प्रगाढ़ आस्था हो गई। वह तथगत के चरणों पर नमस्कार हुआ और प्रार्थना की कि उसे प्राण रहने तक शरणागत उपासक जाने।

६. राजा प्रसेनजित् को धर्म-दीक्षा

१. जब यह सुना कि शाक्य मुनि गौतम कुछ पचारे हैं तो राजा प्रसेनजित्

अपने रथ पर चढ़कर जेतवन पहुँचा। दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करने के अनन्तर उसने कहा—

२. "यह मेरे राज्य का भाग्य है कि आप यहाँ पधारे हैं। आपके समान धर्म-राजा के रहते मेरे राज्य पर कोई भी आपत्ति आ ही कैसे सकती है ?

३. "अब जब आपके दर्शन हो गये तो कुछ धर्माभूत भी पान करने को मिले।

४. "सांसारिक सम्पत्ति अनित्य है और नाशवान् है, किन्तु जो धर्म करी धन है वह अनन्त है और नाशवान् नहीं है। राजा होने पर भी सत्कारी आदमी दुःखी हो रहता है। किन्तु एक साधारण आदमी भी यदि वह धर्म परायण है, सुखी रहता है।"

५. धन और काम-भोग की तृष्णा के कारण भारी हुए राजा के चित्त की अवस्था पहचान कर तथ्यागत ने उपदेश दिया—

६. "जिनका जन्म अति सामान्य स्थिति में हुआ रहता है वे भी जब किसी धर्म-परायण आदमी को देखते हैं तो उनके मन में उस आदमी के लिये आदर की भावना पैदा हो जाती है, तो फिर जिसने पहले बहुत पुण्य अर्जित किये हैं, ऐसे राजा का तो क्या ही कहना ?

७. "और अब जब मैं संक्षेप में धर्मापदेश देने जा रहा हूँ, महाराज ! मेरे शब्दों को ध्यानपूर्वक सुनें और हृदयंगम करें।

८. "हमारे अच्छे या बुरे कर्म छाया की तरह हमारा पीछा करते रहते हैं।

९. "जिस चीज की सर्वाधिक आवश्यकता है, वह है मर्म-पूर्ण हृदय।

१०. "अपनी प्रजा को अपनी अकेली सन्तान के समान समझे। उन्हें कष्ट न दें उन्हें मष्ट न करें। अपने शरीर के सभी अंगों को संपत रख। कुमार्ग छोड़ कर, सन्मार्ग पर चलें। दूसरों को नीचे गिराकर अपने को ऊपर न उठावें। दुःखी को सुख और सन्तुष्टता दें।

११. "राजकीय ठाट-बाट को ही अधिक महत्व न दें और लूजामदियों की मोठी लगने वाली बातें न सुनें।

१२. "जबने आपको काय-क्वेष द्वारा पीड़ित करने से कुछ लाभ नहीं है, लेकिन 'धर्म' और 'सुधर्म' का विचार करें।"

१३. "हम चारों ओर से लोक तथा दुःख की चट्टानों से घिरे हुए हैं और धर्म का विचार करने से ही हम इस दुःखों को लाप सकते हैं।

१४. "तब अन्याय करने में लाभ ही क्या है ?

१५. "सभी बुद्धिमान शारीरिक ऐश्वार्यास की उपाशा करते हैं। वे काम-नाशों से दूर रहकर अपना आध्यात्मिक विकास करने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं।

१६. "जब कोई वृक्ष आग से झूलस रहा हो तो पक्षी उस पर अपने घोंसले कैसे बना सकते हैं ? जहां राग का निवास है, वहां सत्य कैसे ठिक सकता है ? यदि किसी को इस बात का ज्ञान नहीं तो किसी विद्वान् को ऋषि मानकर चाहे उसकी प्रशंसा ही क्यों न की जाती हो वह अज्ञानी ही है।

१७. "जिसे यह ज्ञान प्राप्त है, उसे ही प्रज्ञा की प्राप्ति होती है। प्रज्ञा की प्राप्ति ही मानव-जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। इसकी उपेक्षा, जीवन की असफलता की द्योतक है।

१८. "सभी धार्मिक मतों की जिज्ञासों का यही एक केन्द्र-बिन्दु होना चाहिये। इसके बिना सब निरर्थक है।

१९. "यह सत्य कोई प्रव्रजितों के ही लिए नहीं है, इसका सम्बन्ध मानव-मात्र से है, साधु और गृहस्थ से समानरूप से। व्रतधारी प्रव्रजित में और गृहस्थ में मूलतः कोई भेद नहीं है। प्रव्रजित भी पतित होकर विनाश को प्राप्त होते हैं और गृहस्थ भी 'ऋषियों' के दर्जे तक पहुँचते हैं।

२०. "कस्मिन् का सतरा सभी के लिये समान है, यह दुनिया को बाढ़ की तरह बहा ले जाता है। जो एक बार इस भँवर-जाल में फँस गया, उस का बच निकलना कठिन है। लेकिन प्रज्ञा की नौका विद्यमान है और विचार शक्ति का चण्ड। धर्म की यही माँग है कि आप अपने आग को मार कपी शत्रु से सुरक्षित रखें।

२१. "क्योंकि कर्मों के फल से बच निकलना असम्भव है, इसलिए हम शुभ कर्म ही करें।

२२. "हम अपने विचारों की चौकसी रखें ताकि हम से कोई बुरा काम न हो, क्योंकि जैसा हम बोयेंगे वैसा ही हम काटेंगे।

२३. "आदमी प्रकाश से अंधेरे में और फिर अंधेरे से प्रकाश में जा सकता है। अंधेरे से और भी अधिक अंधेरे की ओर अग्रसर होने के भी मार्ग हैं; इसी प्रकार प्रकाश से अधिक प्रकाश की ओर बुद्धिमान् आदमी ज्ञान के अनुसार आचरण करेगा ताकि उसे और भी अधिक ज्ञान प्राप्त हो। वह लगातार सत्य की ओर अग्रसर होता रहेगा।

२४. बुद्धिसंगत-व्यवहार और सदाचार-परायण जीवन द्वारा सच्चे श्रेष्ठत्व का प्रकाश हो। भौतिक वस्तुओं की तुच्छता पर गहराई से विचार किया जाए और जीवन की अस्थिरता को अच्छी तरह समझ लिया जाए।

२५. "अपने विचारों को ऊँचा उठाओ, धृष्ट और दृढ़ता को अपनाओ। राजधर्म के नियमों का उत्संख्यन न करो। अपनी प्रसन्नता का आधार बाह्य-पदार्थों को नहीं, बल्कि अपने प्रीति-युक्त मन को ही बनाओ। इससे दूर भविष्य तक के लिये तुम्हारा यश अमर रहेगा।"

२६. राजा ने बड़े ध्यान से तथागत के अमृत वचनों का पान किया और हर वचन को हृदयङ्गम किया। उसने जीवन-पर्यन्त 'उपासक' बने रहने की इच्छा से तथागत की आरण-ग्रहण की।

७. जीवक की धर्म-दीक्षा

१. जीवक ने राजगृह की एक वेश्या शालवती के गर्भ से जन्म धारण किया था।^९

२. जन्म के तुरन्त बाद ही, उसे एक टोकरी में डाल कर कूड़े की एक ढेरी पर फेंक दिया गया—अज्ञात पिता का पुत्र जो था।

३. बहुत से लोग कूड़े के ढेर के पास खड़े होकर 'बच्चे' को देख रहे थे। राजकुमार 'अभय' का उधर से गुजरना हुआ। उसने लोगों से पूछा। लोगों ने बताया 'वह जोड़ित है'।

४. इसीलिये उस का नाम जीवक पड़ा। अभय ने उसे अपना लिया और पालन-पोषण कर बड़ा किया।

५. जब जीवक बड़ा हुआ तो उसे पता लगा कि किस प्रकार उसका जीवन सुरक्षित रहा था। उसकी उत्कट अभिलाषा हुई कि वह अपने माता को दूसरों का जीवन बचाने के ही अधिकाधिक योग्य बनाये।

६. इसलिये वह अभय को बिना जताये ही लक्षशिला विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिये भेजा गया और वहाँ उसने अध्ययन में सात वर्ष बिताये।

७. राजगृह लौट कर उसने चिकित्सा करनी आरम्भ की और अतिरक्ताल में ही बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली।

८. सर्वप्रथम उसने साकेत के एक सेठ की स्त्री की चिकित्सा की। उसके अच्छा हो जाने पर उसे सोलह हजार कार्षापण, एक दास, एक दासी और घोड़े सहित एक गाड़ी मिली।

९. उस की योग्यता ज्ञान, अभय ने उसे अपने ही भवन में रख लिया।

१०. राजगृह में ही उसने राजा बिम्बिसारका भयानक भगन्वर-रोग अच्छा किया। कहा जाता है कि इससे प्रसन्न होकर राजा की सभी पाँच सौ रानियों ने अपने-अपने अपने सभी गहने जीवक को दे दिये।

११. उत्प्रेष करने लायक चिकित्साओं में उसकी एक वह शल्य-चिकित्सा थी जो जीवक ने राजगृह के एक सेठ की सोपड़ी की की थी, और दूसरी बनारस के उस ओपटी के लटके की जो अन्तर्द्वियों के रोग से चिर-काल से दुःखी था।

१२. जीवक को राजा ने अपना तथा अपने रनिवास का 'राज-वैद्य' नियुक्त किया।

१३. लेकिन जीवक की तथागत में बड़ी भक्ति थी। वह शाक्त मुनि गौतम बुद्ध और संघ का भी चिकित्सक था।

१४. वह तथागत का उपासक बना। भगवान् बुद्ध ने उसे भिक्षु नहीं बनाया, क्योंकि वह चाहते थे कि वह चिकित्सा द्वारा रोगियों और जीवकों की सेवा करता रहे।

१५. बिम्बिसार की मृत्यु के अनन्तर जीवक उसके पुत्र अजात-शत्रु का भी चिकित्सक रहा। पितृ-हत्या का पाप कर चुकने के बाद अजात-शत्रु की तथागत के समीप लाने में मुख्य हाथ जीवक का ही था।

८. रट्ठपाल की धर्म-वीक्षा

१. एक बार जब भिक्षुसंघ सहित भगवान् बुद्ध कुरु देश में चारिका कर रहे थे तो वह कुरु-वनपद के ही सुल्लकोट्ठित नाम के एक निगम में ठहरे।*

२. अब कुरु-वासियों को इसका पता लगा तो वे भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ पहुंचे।

३. जब वे आकर बैठ गये, तब तथागत ने उन्हें धर्मोपदेश दिया। उपदेश श्रवण कर चुकने पर सुल्लकोट्ठित के ब्राह्मण गृहपति उठे और अडा-भक्तिपूर्वक नमस्कार कर चले गये।

४. उन ब्राह्मण गृहपतिओं के बीच रट्ठपाल नाम का एक तरुण बैठा था, जो कि एक श्रेष्ठ कुलोत्पन्न था। उस के मन में आया, जहाँ तक मैं समझ सकता हूँ जिस धर्म का भगवान् बुद्ध ने उद्देश दिया है, गृहस्थों में रहते हुए उसे उतनी पवित्रता, उतनी सम्पूर्णता के साथ आचरण में लाना आसान नहीं।

५. यह कैसा हो यदि मैं बाल-बढ़ी मुण्डा, काषाय वस्त्र धारण कर गृहस्थ न रहूँ प्रव्रजित बन जाऊँ—घर-बारी में वे-घर-बारी।

६. जब ब्राह्मण गृहपति अभी बहुत दूर नहीं भी गये होंगे, रट्ठाल भगवान् बुद्ध के पास आया और अभिवादन कर चुकने के अनन्तर उसने अपना विचार तथागत की सेवा में निवेदन किया। उसने प्रार्थना की कि उसे प्रव्रज्या मिले और उपसम्पादा मिले।

७. तथागत ने पूछा—“रट्ठपाल ! इसके लिये क्या तुम्हें अपने माता-पिता की अनुज्ञा है ?”

८. भगवन् ! नहीं।”

९. “जिन्हें माता-पिता से अनुज्ञा प्राप्त नहीं होती उन्हें मैं प्रव्रजित नहीं करता।”

१०. तरुण बोला “मैं अनुज्ञा प्राप्त करने का प्रयास करूँगा।” वह उठा और अत्यन्त विनम्रता पूर्वक भगवान् बुद्ध से विदा ग्रहण की। घर पहुंच

कर उसने माता-पिता से अपना विचार प्रकट किया और उनसे भिक्षु बनने के लिये अनुज्ञा मांगी।

११. माता पिता बोले—“रट्ठपाल ! तू हमारा प्रिय पुत्र है, अत्यन्त प्रिय पुत्र। तू ही हमारा एकमात्र पुत्र है। तू आराम में रहा है, आराम में गला है। तुझे दुःख-मुख का कुछ अनुभव नहीं। जा खा, पी, मोज कर और जितने चाहे पुण्य कार्य कर। हम तुम्हें प्रश्रित होने की अनुज्ञा नहीं देते।

१२. “तुम नहीं रहोगे। ती हमारा जीना दूधर हो जायगा। हमारे लिये जीने में कुछ आनन्द नहीं रहेगा। हम तुम्हें जीते जी, घर से बे-घर हो भिक्षु बनने की अनुज्ञा क्यों दें।”

१३. रट्ठपाल ने दूसरी और तीसरी बार भी अपनी प्रार्थना दोहराई। उसके माता पिता का एक ही उत्तर था।

१४. जब वह इस प्रकार अपने माता-पिता की अनुज्ञा प्राप्त करने में असफल रहा, तो वह तक्षण नंगी जमीन पर लेट गया और बोला—“या तो मैं भिक्षु बनूँगा, या यही पड़ा-पड़ा मर जाऊँगा।”

१५. उसके माता-पिता ने भिक्षु बनने के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए उससे उठ बैठने का बहुत आग्रह किया। लेकिन रट्ठपाल मुँह से एक शब्द नहीं बोला। उन्होंने दूसरी बार, और तीसरी बार भी—इस प्रकार बार-बार—आग्रह किया, तब भी रट्ठपाल चुप हो रहा।

१६. उसके माता-पिता ने रट्ठपाल के मित्रों को सारी बात बता कर उनसे कहा कि वे अपनी ओर से रट्ठपाल से आग्रह करें।

१७. उसके मित्रों ने तीन बार प्रयास किया, किन्तु वह एक शब्द नहीं बोला। तब उसके मित्र रट्ठपाल के माता-पिता के पास गये और बोले—वहाँ वह नंगी जमीन पर पड़ा है। कहता है या तो भिक्षु बनूँगा, या यही पड़ा-पड़ा मर जाऊँगा। यदि तुम अनुज्ञा नहीं दोगे तो वह जीते जी कभी नहीं उठेगा। लेकिन यदि तुम अनुज्ञा दे दोगे तो उसे भिक्षु बनने पर भी देश सकोगे। यदि भिक्षु-जीवन में उसका मन नहीं रहेगा अर्थात् उसे भिक्षु रहना अच्छा नहीं लगेगा तो यहाँ वापस घले आने के अतिरिक्त दूसरा क्या करेगा ? आप उसे अपनी अनुज्ञा दे ही दें।”

१८. “अच्छा, हम अपनी अनुज्ञा देते हैं। किन्तु भिक्षु बन चुकने के बाद हमें मिलने के लिये आना होगा।”

१९. उसके मित्र तुरन्त रट्ठपाल के पास गये। उन्होंने उसे आकर कहा—“तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हें इस गत पर भिक्षु बनने की अनुमति दे दी है कि भिक्षु बनने पर तुम उनसे मिलने आओगे।”

२०. तब रट्ठपाल उठ बैठा और सन्नत होने पर तत्वागत के पास पहुँचा और अभिवादन कर चुकने पर एक ओर बैठकर निवेदन किया—“मुझे अपने माता

पिता से भिक्षु बनने की अनुज्ञा मिल गई है। मेरी प्रार्थना है कि भगवान् मुझे संघ में दीक्षित कर लें।”

२१. रट्ठपाल ने प्रव्रज्या और उपसम्पदा प्राप्त की। शूलकोटित में प्रवेच्छ ठहर कर, इसके दो सप्ताह बाद, भगवान् बुद्ध चारिका के लिये भावस्ती की ओर चल पड़े। भावस्ती पहुंचकर वे अनाधपिण्डक के तेजबनाराम में विहार करने लगे।

२२. अकेले, एकान्त में रहते हुए सतत प्रयत्न-शील रट्ठपाल ने अचिर काल में ही उस उद्देश्य को प्राप्त कर लिया जिसकी प्राप्ति के लिए कुल-पुत्र घर से बेघर हो भिक्षु-जीवन ग्रहण करते हैं—मानव जीवन का अष्टम आदर्श।

२३. तब वह भगवान् बुद्ध के पास गया और अभिवादन कर चुकने के अनन्तर बोला—“आपकी अनुज्ञा से मैं अपने माता-पिता को देख आना चाहता हूँ।”

२४. अपने चित्त से रट्ठपाल के चित्त को जान कर और रट्ठपाल के पुनः गृहस्थ न बनने के बारे में पूरी तरह आश्वस्त होकर तयागत ने उसे जब चाहे जाने की अनुमति दे दी।

२५. तब अत्यन्त विनम्रतापूर्वक भगवान् बुद्ध से विदा ग्रहण कर, अपना गाव बीवर ले रट्ठपाल शूलकोटित की ओर चारिका के लिये निकल पड़ा जहाँ पहुंच कर उसने कुरु-नरेज के मृगोद्यान में विहार किया।

२६. दूसरे दिन प्रातःकाल जब वह भिक्षाटन के लिये निकला तो प्रत्येक घर के सामने भिक्षा के निमित्त लड़ा होता हुआ रट्ठपाल अपने ही घर के द्वार पर आ पहुंचा।

२७. अन्दर, कमरे के बीच दरवाजे में, उसका पिता कंधी से अपने बाल सँकार रहा था। रट्ठपाल को दूर से आता देख कर बोला—ऐसे ही तिरमूडों ने मेरे इकलौते प्रिय पुत्र को घर से बेघर बना दिया।

२८. इसलिये अपने ही पिता के घर से रट्ठपाल को कुछ नहीं मिला, एक इनकार तक नहीं; मात्र मालियाँ।

२९. ठीक उसी समय घर की एक दासी पहले दिन का बासी चावल फेंकने जा रही थी। रट्ठपाल ने उसे कहा—“बहन यदि इस फेंकने जा रही है तो इसे मेरे पात्र में ही डाल दे।”

३०. जब दासी उसके पात्र में बासी चावल डाल रही थी, उसने रट्ठपाल के हाव, पांव और स्वर पहचान लिया। वह दीड़ी-दीड़ी अपनी मालकिन के पास गई और बोली—मालकिन ! मालूम होता है कि छोटे मालिक बापस लौट आये हैं।”

३१. मां बोली, यदि तेरा कहना ठीक है तो तू दासता के बंधन से इसी क्षण मुक्त हुई।” वह दीड़ी अपने पति के पास गई और कहा कि उसने सुना है कि उसका पुत्र लौट आया है।

३२. माड़ी के नीचे बैठा। रट्ठपाल वह बासी चाबल खा रहा था कि पिता आ पहुँचा। बोला—“प्रिय पुत्र ! क्या यह हो सकता है कि तुम ही बैठे यह बासी भात खा रहो हो ? क्या तुम्हें अपने घर नहीं जाना चाहिये था ?”

३३. रट्ठपाल का उत्तर था—“गृहपति ! हम जे-घरों का क्या घर ? हम तो घर छोड़ चुके। हाँ, मैं तुम्हारे घर आया था, वहाँ मुझे कुछ नहीं मिला, इनकार भी नहीं; मात्र गालियाँ।”

३४. “पुत्र ! आओ। घर चलें।” “नहीं गृहपति ! मेरा आज का भोजन समाप्त हो गया।”

३५. “अच्छा तो, पुत्र कल का भोजन ग्रहण करने का वचन दो।”

३६. मिश्र रट्ठपाल ने मोत से स्वीकार कर लिया।

३७. तब पिता घर के भीतर गया। उसने आज्ञा दी कि सोने का डेर लगाकर उसे चटाई से ढक दिया जाय। उसके बाद उसने अपनी पुत्र-वधू से जो रट्ठपाल को पूर्व-भाषों थी कहा कि वह अपने को अच्छे से अच्छे उस धुंगार से अलंकृत करे जिसमें अलंकृत देखकर उसका पति उससे प्रसन्न होता था।

३८. रात के बीतने पर घर में अच्छे से अच्छा भोजन तैयार कर, रट्ठपाल को तैयारी की सूचना दी गई। उस पूर्वाह्न में रट्ठपाल उचित ढंग से चीवर धारण किये तथा अपना पाव-बोवर लिये आकर अपने विभे सज्जित आसन पर विराजमान हुए।

३९. तब उस सोने के डेर पर से चटाई हटवाकर रट्ठपाल के पिता ने कहा—“यह तुम्हारा मातृ-घन है। यह पितृ-घन। यह तुम्हारे दादा के समय से चला आया है। तुम्हारे पास भोगने के लिये बहुत है और पुण्य करने के लिये भी बहुत है।”

४०. “पुत्र ! आ। अपनी धमण-चर्मा को त्याग दो। गृही के निम्नस्तर के जीवन को पुनः अंगीकार कर ले। भोग भी भोग और पुण्य भी कर।”

४१. रट्ठपाल का उत्तर था—“गृहपति ! यदि मेरा कहना मानो तो सोने के इस डेर को गाड़ी से लदवाकर बीच गंगा में फेंकवा दो। यह किस लिये ? क्योंकि इससे तुम्हें दुःख दीर्घमनस्य, क्रोध, मत्त और शरीर की पीड़ा और कष्ट ही होने वाला है।”

४२. उसके पांव पकड़ कर रट्ठपाल की अम्ब पत्नियाँ पूछने लगी कि आखिर वे अप्सरायें कैसी हैं जिनके लिये वह वह व्रतधर्म्य वास कर रहा है ?

४३. रट्ठपाल का उत्तर था—“बहनो ! किन्हीं अप्सराओं के लिये नहीं।”

४४. अपने लिये ‘बहनो’ सम्बोधन सुना तो सभी देवियाँ मुग्ध होकर जमीन पर गिर पड़ीं।

४५. रट्ठपाल ने पिता से कहा, “गृहपति ! यदि भोजन कराना है तो दो, कष्ट मत दो।”

४६. "पुत्र ! भोजन तैयार है, करो", कहकर पिता ने रट्ठपाल को मयेन्द्र भोजन कराया ।

४७. भोजनान्तर रट्ठपाल कुकु-नरेश के सुगोष्ठान में चला गया और वहाँ पहुंचकर मध्याह्न की कड़ी धूप के समय एक वृक्ष छाया के नीचे बैठ गया ।

४८. अब राजा ने अपने माली को आज्ञा दे रखी थी कि उसके बाग की देखने आने से पहले वह उसे ठीक-ठाक करके रखे । माली अपना काम कर रहा था, उसने रट्ठपाल को एक वृक्ष के नीचे बैठा देखा । उसने राजा की सूचना दी कि बाग और तो सब तरह से ठीक-ठाक है, लेकिन एक वृक्ष के नीचे वह रट्ठपाल विराजमान है जिनके बारे में महाराज ने सुना है ।

४९. "आज उद्यान-यात्रा रहने दो । आज मैं उन अमण के दर्शन करूंगा ।" जितना भी पायेव आवश्यक था, उस सब की तैयारी की आज्ञा दे, अपने अनुयायियों को साथ ले वह राजकीय रथ पर चढ़ा और रट्ठपाल को देखने के लिये नगर से बाहर निकला ।

५०. वहाँ तक रथ से जाना योग्य था, वहाँ तक रथ से जाकर और आगे पैदल चलकर, अपने अनुयायियों सहित राजा वहाँ पहुँचा वहाँ रट्ठपाल विराजमान थे । कुशल-ओम की बात-चीत हो चरुने पर स्वयं अभी भी खड़े हुए राजा ने रट्ठपाल को फूलों की एक डेरी पर बैठने का निमंत्रण दिया ।

५१. "नहीं राजन् । आप वहाँ बैठें । मैं आने स्थान पर बैठा हूँ ।"

५२. संकेत किये गये स्थान पर बैठकर राजा ने कहा—रट्ठपाल ! चार तरह की हानियाँ हैं जिनके कारण आदमी दाढ़ी मूछ मुंडवा, कायाय वस्त्र धारण कर घर से बेघर हो जाते हैं—(१) बुढ़ापा, (२) गिरता हुआ स्वास्थ्य, (३) दरिद्रता, (४) निकट सम्बन्धियों का मरण ।

५३. एक आदमी को लो, जो बुढ़ा होने पर, बहुत आमु प्राप्त हो जाने पर, जरा-जोश हो जाने पर, अन्तिम समय के नजदीक आ पहुँचने पर उसे या तो और कमाने में कष्ट अनुभव होता है या जो कुछ उसके पास है उससे गुजारा नहीं चलता, तो वह घर से बेघर होने का निश्चय कर लेता है । इसे बुढ़ापे से उत्पन्न होने वाली हानि कहते हैं । लेकिन तुम्हारी तो अभी चढ़ती जवानी है, काले-काले केश हैं जिन्हें सफेदी छू भी नहीं गई है । सुन्दर तारुण्य है; तुम्हें तो बार्धक्य से उत्पन्न होने वाली किसी हानि का खतरा नहीं । तुमने क्या जाना, देखा या सुना है कि तुम घर से बेघर हो गये ?

५४. या एक आदमी को लो जो रोग-ग्रस्त है, जिसे बड़ा कष्ट है और जो बहुत बीमार है, उसे या तो और कमाने में कष्ट अनुभव होता है या जो कुछ उसके पास है उससे गुजारा नहीं चलता, तो वह घर से बेघर होने का निश्चय कर लेता है । इसे गिरते हुए स्वास्थ्य से उत्पन्न होने वाली हानि कहते हैं । लेकिन तुम न तो

बीमार ही हो और न तुम्हें कष्ट ही है, तुम्हारा हाजमा अच्छा है, तुम्हें गिरते हुए स्वास्थ्य से उत्पन्न होने वाली किसी हानि से कोई खतरा नहीं। तुमने क्या जाना, देखा या सुना है कि तुम घर से बेघर हो गये हो ?

१५. या एक आदमी को जो बड़ा धनी रहा है, जिसके पास बड़ी सम्पत्ति रही है और धीरे-धीरे उसका नाम हो गया है तो या तो उसे और कमाने में कष्ट अनुभव होता है या जो कुछ उसके पास है उससे गुजारा नहीं चलता, तो वह घर से बेघर होने का निश्चय कर लेता है। इसे दरिद्रता से उत्पन्न होने वाली हानि कहते हैं। लेकिन तुम तो न दरिद्र हो न सम्पत्ति शून्य हो, तुम्हें तो दरिद्रता से उत्पन्न होने वाली किसी हानि से कोई खतरा नहीं, तुमने क्या जाना, देखा या सुना कि तुम घर से बेघर हो गये हो ?

१६. या एक आदमी को लो जिसके सगे-सम्बन्धी जाते रहते हैं, जिसके रिश्तेदारों का मरण हो गया है उसे या तो और कमाने में कष्ट होने लगता है या जो कुछ उसके पास है उससे गुजारा नहीं चलता, तो वह घर से बेघर होने का निश्चय कर लेता है। इसे सम्बन्धियों के मरण से उत्पन्न होने वाली हानि कहते हैं। लेकिन तुम्हारे लो मित्रों और सगे-सम्बन्धियों की कमी नहीं। तुम्हें तो सगे-सम्बन्धियों के मरण से उत्पन्न होने वाली किसी हानि से कोई खतरा नहीं। तुमने क्या जाना, देखा या सुना कि तुम घर से बेघर हो गये ?”

१७. “राजन् ! मैं घर से बेघर इसलिए हो गया कि मैंने ये चार बातें जानी, देखी और जानने वाले तथा देखने वाले सम्पत्क सम्बुद्ध से सुनी—

- (क) संसार अनित्य है, निरन्तर परिवर्तनशील है।
- (ख) संसार का कोई मालिक या संरक्षक नहीं।
- (ग) हमारा कुछ भी नहीं, हमें सभी कुछ पीछे छोड़ जाना है।
- (घ) तृष्णा के बन्धीभूत होने से ही संसार दुःखी है।

१८. “मह अद्भुत है। यह अद्भुत है,” राजा कह उठा” इस विषय में तथागत का कथन सत्य है !”

१. महावग्ग (१ : ६)।

२. विनय (महावग्ग १)।

३. विनय (महावग्ग) १।

४. महावग्ग १ : ५; जातक (नि० ११)।

५. सुल्लवग्ग ६ : २ भाग।

६. अंगुत्तर निकाय अ० क० २ : ४ : ५।

७. रत्ठपाल सुत्त (मज्झिम निकाय २।४।२)।

चौथा भाग

जन्म-भूमि का आवाहन

१. शुद्धोदन से (अन्तिम) भेंट

१. सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की दीक्षा के बाद दो महीने तक भगवान् बुद्ध राजगृह में ही रहे ।

२. यह सुनकर कि तत्काल राजगृह में विराजमान हैं, उनके पिता शुद्धोदन ने संदेश भिजवाया—“मैं मरने से पूर्व अपने पुत्र को देखना चाहता हूँ । दूसरों को उसका भर्माभूत पान करने को मिला है उसके पिता को नहीं, उसके सम्बन्धियों को नहीं ।”

३. शुद्धोदन के दरबारियों में से एक का पुत्र कानुदायी ही यह संदेश लेकर गया था ।

४. संदेश-वाहक ने आकर कहा—“हे लोक-पूज्य ! आपका पिता आपको देखने के लिये उतना ही उत्सुक है जैसे कमलिनी सूर्योदय के लिये ।”

५. तत्काल ने पिता की प्रार्थना स्वीकार कर ली और बड़े भिक्षुसंघ को साथ ले पितृ-गृह की ओर प्रस्थान किया ।

६. भगवान् बुद्ध जगह जगह ठहरते हुए आगे बढ़ रहे थे, लेकिन कानुदायी तेजी से चलकर पहले पहुँच गया ताकि शुद्धोदन को यह सूचना दे सके कि भगवान् बुद्ध आ रहे हैं और रास्ते पर हैं ।

७. शीघ्र ही यह समाचार श्राव्य जलपद में फैल गया । हर किसी की ज़बान पर था कि राजकुमार सिद्धार्थ—जो बोध प्राप्त करने के लिये गृह-त्याग कर चला गया था—अब ज्ञान प्राप्त कर वापस कपिलवस्तु आ रहा है ।

८. अपने सम्बन्धियों और मन्त्रियों को लेकर शुद्धोदन और महाप्रजापति अपने पुत्र की अगवानी के लिये गये । जब उन्होंने दूर से ही अपने पुत्र को देखा, उसके सौन्दर्य, उसके ध्यस्तित्व, उसके तेज का उनके मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा । वे मन ही मन बड़े प्रमुदित हुए । किन्तु उनके पास शब्द न थे कि वे उसे व्यक्त कर सकें ।

९. निश्चय से वह उनका पुत्र था, उसकी शवल-सूरत वही थी । महान्

असम उनके हृदय के कितना समीप था और अब भी उनके बीच की दूरी कितनी अधिक थी ! वह महामुनि, अब इनका पुत्र सिद्धार्थ नहीं रहा था, अब वह बुद्ध था, सम्मत् सम्बुद्ध था, अर्हन्त था, लोक-गुरु था ।

१०. अपने पुत्र के धार्मिक पद का ध्यान कर शुद्धोदन रथ से उतरा और सर्व-प्रथम अभिवादन किया । बोला—“तुम्हें देखे सात वर्ष बीत गये । इस क्षण की हम कितनी प्रतीक्षा करते रहे !”

११. तब शुद्धोदन के सामने सिद्धार्थ विराजमान हुए । राधा आँखें पाकृष्ण कर अपने पुत्र की ओर देखता रहा । उसकी इच्छा हुई कि उसे नाम लेकर पुकारे किन्तु उसका साहस नहीं हुआ । सिद्धार्थ, वह मन ही मन बोला, सिद्धार्थ अपने पिता के पास लौट आओ, और फिर उसके पुत्र बन आओ । लेकिन अपने पुत्र की दृढ़ता देखकर उसने अपनी भावनाओं को वश में रखा । शुद्धोदन तथा प्रजापति—दोनों के दोनों विराज हो गये ।

१२. इस प्रकार अपने पुत्र के ठीक सामने पिता बैठा था—अपने दुःख में वह सुखी था, अपने सुख में वह दुःखी । उसे अपने पुत्र पर अभिमान था, किन्तु वह अभिमान धूर धूर हो गया जब उसे ध्यान आया कि उसका पुत्र कभी उसका उत्तराधिकारी न बनेगा ।

१३. “मैं तुम्हारे चरणों पर अपना राज्य रख दूँ”, उसने कहा, किन्तु यदि मैंने ऐसा किया तो तुम उसे मिट्टी के मोल का भी न समझोगे ।”

१४. तथागत ने सान्त्वना दी—“मैं जानता हूँ राजन् ! तुम्हारा हृदय प्रेम से गद्गद् है । तुम्हें अपने पुत्र के लिये महान् दुःख है । लेकिन प्रेम के वो पाये तुम्हें अपने उस पुत्र से बांधे हुए हैं, जो तुम्हें छोड़कर चला गया, उसी प्रेम के अन्तर्गत तुम अपने सारे मानव-बन्धुओं को बांध लो । तब तुम्हें अपने पुत्र सिद्धार्थ से भी बड़े किसी की प्राप्ति होगी, तुम्हें मिलेगा वह जो सत्य का संस्थापक है; तुम्हें मिलेगा वह जो धर्म का मार्ग-दर्शक है और तुम्हें मिलेगा वह जो शान्ति का लाने वाला है । तब तुम्हारा हृदय निर्वाण से भर जायगा ।”

१५. जब शुद्धोदन ने अपने पुत्र, बुद्ध के ये वचन सुने वह प्रसन्नता के मारे कांपने लगा । उसकी आँखों में आँसू थे और उसके हाव बड़े थे, जब उसने कहा—“अद्भुत परिवर्तन है ! संतप्त हृदय शान्त हो गया । पहले मेरे हृदय पर पत्थर पड़ा था, किन्तु अब मैं तुम्हारे महान् त्याग का मधुर फल चख रहा हूँ । तुम्हारे लिये यही उचित था कि तुम अपनी महान् कर्मणा से प्रेरित होकर राज्य के सुख-भोग का त्याग करते और धर्म-राज्य के संस्थापक बनते । अब धर्म-पथ के जानकार की हैसियत से तुम सभी को मोक्ष-मार्ग का उपदेश दे सकते हो ।”

१६. भिक्षु संघ सहित भगवान् बुद्ध उस उद्यान में ही विराजमान रहे, जब कि शुद्धोदन वापस घर लौट आया ।

१७. अगले दिन तथागत ने भिक्षा-पात्र लिया और कपिलवस्तु में भिक्षाटन के लिये निकले ।

१८. बात तुरन्त फैल गई :— जिस नगर में कभी सिद्धार्थ रथ में बैठ कर सवारी के लिये निकलते थे, आज उसी नगर में भिक्षा-पात्र हाथ में लिये घर-घर बिखर रहे हैं । चीवर का रंग भी लाल-मिट्टी के हों समान है और हाथ का भिक्षा-पात्र भी मिट्टी का ही है ।

१९. इस विचित्र बातों को सुना तो बुद्धोदन परचुराया हुआ दोड़ा गया :
तुम इस प्रकार मुझे क्यों लजाते हो ? क्या तुम इतना नहीं जानते कि मैं तुम्हें और तुम्हारे संध को भोजन करा सकता हूँ ?

२०. तथागत का उत्तर था—“यह हमारी वंश-परम्परा है ।”

२१. “यह कैसे हो सकता है ? हमारे वंश में कभी किसी एक ने भी भिक्षाटन नहीं किया है ।”

२२. “राजन् ! निश्चय से तुम और तुम्हारा वंश क्षत्रियों का वंश है । किन्तु मेरा वंश बुद्धों का वंश है । उन्होंने भिक्षाटन किया है और हमेशा भिक्षा पर ही निर्भर रहे हैं ।”

२३. बुद्धोदन निरुत्तर था । तथागत कहते रहे—“किसी को कहीं कुछ खजाना मिले तो उसमें जो बहुमूल्य रत्न होगा वह लेकर उसे अपने पिता को ही भेंट करेगा । मैं तुम्हें यह धर्म-निधि अर्पण करता हूँ ।”

२४. और तब तथागत ने अपने पिता को कहा—“यदि तुम अपने आपको इन मिथ्या स्वप्न-जालों से मुक्त करो, यदि तुम सत्य को अंगीकार करो, यदि तुम अप्रमादी रहो और यदि तुम धर्म-पथ पर ही चलो तो तुम्हें अक्षय-सुख प्राप्त होगा ।”

२५. बुद्धोदन ने निःशब्द रहकर वे शब्द सुने और बोला, “पुत्र ! मैं तुम्हारे कथनानुसार आचरण करने का प्रयास करूँगा ।”

२. यशोधरा और राहुल से भेंट

१. तब तथागत को बुद्धोदन घर में लिवा ले गया । परिवार के सभी लोगों ने उन्हें अभिवादन किया ।^३

२. लेकिन राहुल-माता यशोधरा नहीं आई । जब बुद्धोदन ने सूचना बिजबाई तो उसने कहला भेजा :—“मैं किसी योग्य समझी जाऊंगी तो सिद्धार्थ यहीं मुझे मिलने आयेंगे ।”

३. अपने सभी सम्बन्धियों से भेंट हो चुकने पर सिद्धार्थ ने पूछा—
“यशोधरा कहाँ है ?” उत्तर दिया गया—“उसने आने से इतकार कर दिया है ।”
सिद्धार्थ तुरन्त उठे और सीधे उसके भवन में गये ।

४. सारिपुत्र और मौद्गल्यायन को, जिन्हें वे यशोधरा के कमरे में भीतर तक साथ ले गये थे, तषागत ने कहा—“मैं तो मुक्त हूँ। लेकिन यशोधरा अभी मुक्त नहीं है। इतने सम्ये असें तक मुझे नहीं देखा है, इस लिये वह बहुत दुःखी है। जब तक उसका दुःख आँसुओं के मार्ग से वह न जागया, उसका जी भारी रहेगा। यदि वह तषागत का स्पर्श भी कर ले तो उसे रोकना नहीं।”

५. यशोधरा, सोच-विचार में गहरी डूबी हुई अपने कमरे में बैठी थी। तषागत ने प्रवेश किया तो भक्ति-बाहुल्य से उसका बड़ी हाल था जो किसी लला-लब भरे पात्र का हो और जो अपने में समा न सके।

६. वह यह भूल गई कि उसका स्नेहभाजन महामानव बुद्ध है, लोक-गुप्त है, सत्य का महान् उपदेष्टा है। उसने बड़े जोर से उसके चरण धरे और बार-बार रोने लगी।

७. लेकिन जब उसे इसका ध्यान आया कि शुद्धोदन भी वहाँ आ गया है तो उसे सज्जा आई। वह उठी और बड़ी भक्ति-भावना सहित एक और बैठ गई।

८. शुद्धोदन ने यशोधरा की ओर से बोलते हुए कहा—“इसका यह व्यवहार कुल्लक्षणिक भावना का परिणाम नहीं है। इसने बड़ी गहरी भक्ति का परिचय दिया है। इन सात वर्षों में, जब से तुम इसे छोड़कर चले गये, जब इसने सुना कि सिद्धार्थ ने अपना सिर मूडवा लिया है, इसने भी वैसा ही किया; जब इसने सुना कि सिद्धार्थ ने गहनों और सुगन्धित द्रव्यों का परित्याग कर दिया, इसने भी वैसा ही किया; और जब इसने सुना कि सिद्धार्थ एकाहारी हो गये, तब से यह भी मृत्तिका-पात्र में एक ही बार आहार ग्रहण करने लगी।

९. “यदि यह क्षणिक भावुकता नहीं है, तो यह सब इसके साहस की ही परिचायक है।”

१०. तब सिद्धार्थ ने यशोधरा को उसके महान् पुण्य की याद दिलाई और उस महान् साहस की जिसका परिचय उसने सिद्धार्थ की प्रव्रज्या के समय दिया था। उन्होंने कहा कि जब वे बोधिसत्व की अवस्था में बुद्धत्व प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील थे, उस समय उसकी पवित्रता, उसकी कोमलता तथा उसकी भक्ति ही उनका सबसे बड़ा संवल सिद्ध हुई थी। यह उसी का “कर्म” था और यह महान् पुण्य का परिणाम था।

११. यशोधरा की वेदना बचनों से परे की बात थी। किन्तु उसने जो धीरता और वीरता दिखाई उसने उसके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी को चार चाँद लगा दिये और उसे भी एक अनुपम पद प्रदान किया।

१२. तब यशोधरा ने सात वर्ष के राहुत को एक राजकुमार की तरह सजाया और बोली—

१३. “यह अमण, जो ब्रह्मा के समान है, तुम्हारे पिता है। उनके पास

अथ निधि है जिसे मैं अभी तक नहीं देखा है। उनके पास जा और वह अथ-निधि माँग, क्योंकि वह तेरा उत्तराधिकार है।”

१४. राहुल बोला—“मेरा पिता कौन है? मैं तो एक बाबा गुडोदन को ही पिता जानता हूँ।”

१५. पशोभरा ने बच्चे को गोद में लिया और लिहकी में से दिखाया—“वह देव, वह तेरे पिता है। और गुडोदन नहीं।” उस समय तथागत भिक्षु-संघ के बीच बैठे भिक्षा ग्रहण कर रहे थे और वहाँ से दूर नहीं थे।

१६. तब राहुल उनके पास गया और ऊपर मुँह उठाकर निर्भयतापूर्वक, किन्तु बड़े ही स्नेह-स्निग्ध स्वर में बोला—

१७. “क्या तुम मेरे पिता नहीं हो?” और उनके पास खड़ा ही खड़ा कहने लगा—“भ्रमण! तुम्हारी छाया बड़ी सुनकर है।” तथागत निःशब्द रहे।

१८. जब भोजन समाप्त हो गया, तथागत ने आशीर्वाद दिया और महल से बिदा हुए। राहुल पीछे-पीछे हो लिया और अपना उत्तराधिकार माँगता रहा।

१९. राहुल को किसी ने नहीं रोका, न स्वयं तथागत ने ही।

२०. तथागत ने सारिपुत्र की ओर देखा और कहा—“राहुल उत्तराधिकार चाहता है। मैं उसको वह नाशवान् निधि नहीं दे सकता जो अपने साथ चिन्ता में साती है, लेकिन मैं इसे श्रेष्ठ जीवन का उत्तराधिकार दे सकता हूँ जो अपने में एक अथ निधि है।”

२१. तब राहुल को ही संबोधित करके तथागत बोले—“सोना, चांदी और हीरे मेरे पास नहीं हैं। किन्तु यदि तू आध्यात्मिक-निधि चाहता है और उसे ले सकने तथा संभाल कर रखने में समर्थ है तो वह मेरे पास बहुत है। मेरी आध्यात्म-निधि मेरे धर्म का मार्ग ही है। क्या तू उन के संग में प्रविष्ट हुआ चाहता है जो अपना जीवन साधना में व्यतीत करते हैं और जो भी ऊँचे में ऊँचा आदर्श है—ऊँचे से ऊँचा सुख है, और जो प्राप्त है, उसे प्राप्त करने का प्रयास करते हैं?”

२२. राहुल ने दृढ़तापूर्वक कहा—“प्रविष्ट होना चाहता हूँ।”

२३. जब गुडोदन ने सुना कि राहुल भी भिक्षु-संघ में शामिल हो गया, उसे बड़ा क्लेश हुआ।

३. शाक्यों द्वारा स्वागत

१. जब तथागत अपने शाक्य जनपद में पधारे तो उन्होंने देखा कि उनके जनपदवासी दो भागों में विभक्त हैं—कुछ अनुकूल हैं, कुछ प्रतिकूल।

२. इससे उन्हें उस पुराने मतभेद की याद आई, जिसका परिचय शाक्यों ने उस समय दिया था जब कि कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने और न छेड़ने का प्रश्न शाक्यों के विचाराधीन था और जिस चर्चा में उसने ऐसा महत्त्वपूर्ण भाग लिया था।

३. जो उस समय उसके विरोधी थे उन्होंने अभी भी उसकी महानता को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था और उसे साधारण अभिवादन तक नहीं किया था। जो उसके अनुकूल थे, उन्होंने प्रति परिवार एक-एक तरह उसके संघ में दीक्षित होने के लिए देना तय किया था। इन सबने अब संघ में दीक्षित होकर, तयागत के साथ ही राजगृह जाने का संकल्प किया।

४. जिन परिवारों ने अपने अपने यहाँ से एक-एक पुत्र देने का निश्चय किया था, उनमें एक परिवार अमृतौदन का भी था।

५. अमृतौदन के दो पुत्र थे, एक था अनुरुद्ध जो बहुत ही सुकुमार था और दूसरा था महानाम।^१

६. तब महानाम अनुरुद्ध के पास गया—“या तो तुम गृह-त्याग करो, या मैं करता हूँ।” अनुरुद्ध का उत्तर था—“मैं सुकुमार हूँ। मेरे लिए गृहस्थी का त्याग करना कठिन है। तुम त्याग कर दो।”

७. “लेकिन अनुरुद्ध! मुझे यह तो सुनी कि गृहस्थी में क्या-क्या करता पड़ता है? पहले तो मुझे खेत में हल जुतवाना होता है। जब यह हो गया तब खेतों में बीज डलवाना होता है। जब यह हो गया, तब खेतों को पानी से सिंचवाना होता है। जब यह हो गया, तब पानी निकलवाना होता है। जब यह हो गया, तब पौधों की निर्राई करानी होती है। जब यह हो गया, तो फसल को कटवाना होता है। जब यह हो गया, तो फसल को ढोकर उठवा ले जाना होता है। जब यह हो गया, तो उसकी पूली बंधवाना होता है। जब यह हो गया, तो बेलों में रोदवाना होता है। जब यह हो गया, तो तिलके पुष्क कराना होता है। जब यह हो गया, तो भूसी-पुष्क कराना होता है। जब यह हो गया तो उसे फटकवाना होता है। जब यह हो गया, तो फसल को कौठों में भरवाना होता है। जब यह हो गया, तो फिर अगले वर्ष यही कम दोहराना होता है। और यह कम प्रत्येक वर्ष चालू रखना होता है।

८. “कामों का तो कोई अन्त नहीं। आदमी के कामों की समाप्ति तो कभी होती ही नहीं। ओह! हमारे काम कब खतम होंगे? ओह! हमारे काम कब समाप्त होंगे? इतनी पाँचों इन्द्रियों और उनके भोगों के रहते हुए, हम कब आराम से रह सकेंगे? हाँ, प्रिय अनुरुद्ध कामों का तो कोई अन्त नहीं। आदमी के कामों की समाप्ति तो कभी होती नहीं।”

९. अनुरुद्ध बोला—“तो गृहस्थी की तुम ही संभालो। मैं ही घर से बंधर होता हूँ।”

१०. तब अनुरुद्ध शाक्य अपनी माँ के पास गया—“माँ, मैं गृह-त्याग कर प्रव्रजित होना चाहता हूँ। मुझे अनुमति दे दो।”

११. अनुरुद्ध शाक्य के ऐसा कहने पर उसकी माँ बोली—“अनुरुद्ध तुम!

दोनों मेरे प्रिय पुत्र हो। तुम दोनों में से मैं किसी में कोई दोष नहीं देखती। मैं जानती हूँ कि मृत्यु आयेगी तो मुझे तुमसे जूवा कर देनी, किन्तु मैं जीते जी तुम्हें प्रव्रजित होने की अनुमति कैसे दे सकती हूँ ?”

१२. दूसरी बार फिर अनुरुद्ध ने अपनी प्रार्थना दोहराई। दूसरी बार भी उसे वही उत्तर मिला। तीसरी बार फिर अनुरुद्ध ने अपनी माँ से प्रार्थना की।

१३. उस समय शाक्य जनपद पर भद्रिय शाक्य राज्य करता था। वह अनुरुद्ध शाक्य का मित्र था। अनुरुद्ध की माँ ने सोचा कि भद्रिय-शाक्य कभी अपने राज्य को छोड़ कर नहीं जा सकता। इसलिए बोली—“अनुरुद्ध ! यदि शाक्य-राजा भद्रिय राज्य का त्याग करे तो तू भी उसके साथ प्रव्रजित हो जा सकता है।”

१४. तब अनुरुद्ध भद्रिय के पास पहुँचा और उससे कहा—“मित्र ? मेरी प्रव्रज्या में तुम बाधक हो रहे हो।”

१५. “मित्र ! यदि मैं बाधक हूँ, तो वह बाधा दूर हो। मैं तुम्हारे साथ हूँ। प्रसन्नतापूर्वक संसार त्याग कर दो।”

१६. “प्रिय मित्र ! आ, हम दोनों एकट्ठे संसार त्याग करें।”

१७. भद्रिय बोला—“मित्र ! मैं संसार त्याग करने में असमर्थ हूँ। और जो कुछ तुम मुझे करने के लिये कहो, मैं करूँगा। तुम जकेसे ही प्रव्रजित हो जाओ।”

१८. “मित्र ! माँ ने मुझे कहा है कि यदि तू प्रव्रजित होओ, तो मैं भी हो सकता हूँ। और तुमने अभी-अभी कहा है ‘यदि मैं बाधक हूँ, तो वह बाधा दूर हो। मैं तुम्हारे साथ हूँ। प्रसन्नतापूर्वक संसार त्याग कर दो।’ इसलिए मित्र ! जाओ, हम दोनों एकट्ठे संसार त्याग करें।”

१९. तब शाक्य-राजा भद्रिय अनुरुद्ध से बोला—“मित्र ! सात वर्ष तक प्रतीक्षा करो। सात वर्ष की समाप्ति पर हम एकट्ठे प्रव्रजित होंगे।”

२०. “मित्र ! सात वर्ष का समय बहुत होता है। मैं सात वर्ष प्रतीक्षा नहीं कर सकता।”

२१. भद्रिय ने छः वर्ष, पाँच वर्ष और इस प्रकार घटाते-घटाते एक वर्ष प्रतीक्षा करने की बात कही। फिर ग्यारह महीने, दस महीने और इस प्रकार घटाते-घटाते पन्द्रह दिन प्रतीक्षा करने की बात कही। अनुरुद्ध का एक ही उत्तर था—“इतना समय बहुत होता है।”

२२. तब भद्रिय बोला—“अच्छा मित्र ! एक सप्ताह प्रतीक्षा करो। इतने समय में मैं अपने भाइयों और पुत्रों को राज्य सौंप दूँ।”

२३. अनुरुद्ध बोला—“सात दिन बहुत नहीं होते। इतने दिन मैं प्रतीक्षा करूँगा।”

२४. तब शाक्य राजा भद्रिय, अनुरुद्ध, जानन्द, भृगु, किम्बिल और देवदत्त—जैसे कभी वह अपनी चतुरगिणी सेना सहित उद्यान-जीड़ा के लिये साध-साध

जाते थे, उसी प्रकार अब भी वह अपनी चतुरसिणी सेना को साथ ले घर से निकले। उपासी नाई भी साथ हो लिया। सब मिलाकर उनकी संख्या सात हो गई।

२५. कुछ दूर जाने पर उन्होंने अपनी सेना को वापिस लौटा दिया और सीमा पार कर दूसरे जनपद में प्रवेश किया। उन्होंने अपने सुन्दर गहने कपड़े उतारे, उनकी गठरी बनाई और उपासी नाई से बोले—“उपासी! तुम वापिस कपिलवस्तु चले जाओ। तुम्हारे जाने के लिए यह सब पर्याप्त है। हम तथागत को शरण ग्रहण करने जा रहे हैं।” और वे चले गये।

२६. वे चले गये और वापिस कपिलवस्तु लौटने के लिए उपासी ने विदा ली।

४. सिद्धार्थ को गृहस्थ बनाने का अंतिम प्रयास

१. यह सोच कि अब वह अपने पुत्र को फिर कभी न देख सकेगा, शुद्धोदन बार बार रोया।

२. तब शुद्धोदन ने अपने मन्त्री और अपने पुरोहित से पूछा कि क्या वे जाकर सिद्धार्थ को यहीं रोके रखने का और अपने परिवार में ही सम्मिलित हो जाने का प्रयास कर सकते हैं?

६. राजा की इच्छा के अनुसार मन्त्री और पुरोहित विदा हुए और अभी भगवान बूढ़ रास्ते में ही थे कि उनके पास जा पहुँचे।

४. उन्होंने यथोचित अभिवादन किया और उनकी अनुशा वाकर एक ओर बैठ गये।

५. जिस समय तथागत वृक्ष की छाया के नीचे बैठे थे, राज-पुरोहित ने निवेदन किया—

६. “हे राजकुमार! जिस राजा के हृदय को आपकी विदाई के तीर ने बुरी तरह बीधा है और जिस की आँखों से आँसुओं की धारा बहती रहती है, उस राजा की भावनाओं का जरा तो क्यात करें। उसकी कामना है कि आप फिर घर में चले आएं। वह सभी शान्ति से घर सकेगा।” उसका कथन है—

७. “मैं जानता हूँ कि आप धर्म-स्थित हैं और मैं यह भी जानता हूँ कि आप का यह संकल्प ब्रह्म के समान दृढ़ है। लेकिन इस प्रकार घर छोड़ कर चले जाने से उत्पन्न वियोगाग्नि से मेरा दिल जल रहा है।

८. “हे धर्म-प्रिय, धर्म के लिए ही आप अपने इस संकल्प को छोड़ दें।

९. “कुछ समय के लिए पृथ्वी के राज्य का उपभोग करें, बाद में शास्त्र-सम्मत विधि से आरण्यवास भी कर सकते हैं। अपने दुःखी सम्बन्धियों के प्रति निर्दयी न बनें। सभी के प्रति दयावान् होना ही धर्म है।

१०. “धर्म की साधना अनिवार्य तौर पर जंगल में ही नहीं होती, साधु

नगर में रहकर भी मोह-लाभ कर सकता है। ज्ञान और आचरण ही धर्म के सचाने साधन हैं। साधु-भेष और वनवास तो केवल कायरता के चोतक हैं।

११. “शाक्य-राजा दुःख के सागर में डूबा हुआ है, जिसमें तीव्र वेदना की लहरें उठ रही हैं। इसलिए तुम उसका उद्धार करो, क्योंकि उसकी वही दुरवस्था है जो समुद्र में डूबती हुई गी की।

१२. “और उस रानी—उस प्रजापति गौतमी—की ओर भी ध्यान दें, जिसने आपको पाल-पोस कर इतना बड़ा किया, जो अभी तक अमन्य-लोक को नहीं पधारी है। क्या आप उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं करेंगे जो बिना बछड़े की गो की तरह निरन्तर रँभाती रहती है ?

१३. “निश्चय से आप अपने दर्शन से अपनी पत्नी को तो संतुष्ट रखना ही चाहेंगे, जो अपने पति के जीवित रहते भी एक विधवा की तरह दुःखी रहती है, अथवा एक हंसिनी की तरह जिसका हंस उससे पृथक् कर दिया गया हो, अथवा उस हंसिनी की तरह जिसका हाथी उसे जंगल में छोड़ कर चला गया हो।”

१४. राज-पुरोहित के ये वचन सुन उस धर्म-ज्ञाता ने उन पर क्षण भर विचार किया और तब उसे इस प्रकार उत्तर दिया—

५. भगवान् बुद्ध का उत्तर

१. “मेरे प्रति राजा का जो वात्सल्य-भाव है, उससे मैं सुपरिचित हूँ, विशेष रूप से वह जो उसने मेरे प्रति दर्साया है, लेकिन यह सब होते हुए भी, क्योंकि मैं संसार के दुःखमय रूप से भी सुपरिचित हूँ, इसीलिए मैं अपने संबंधियों का त्याग करने के लिये मजबूर हूँ।

२. “यदि संसार में प्रियजनों से यह अनिवार्य वियोग न होता तो कौन है जो अपने प्रियजनों के साथ ही न रहता ? लेकिन, एक बार होने पर भी, यह वियोग फिर दुबारा होकर रहेगा, इसीलिए मैं अपने प्रिय पिता को छोड़ कर जा रहा हूँ।

३. “लेकिन मैं इसे ठीक नहीं समझता कि तुम यह सोचो कि मैं ही राजा के दुःख का कारण हूँ, क्योंकि वह अपने इस स्वप्नवत् समागम में भावी वियोग की चिन्ता करता है।

४. “इसलिए इस विषय में तुम्हारा मत निश्चित होना चाहिए। वियोग के नाना रूपों को देखकर तुम्हें यह समझ लेना चाहिए कि न कोई पुत्र और न कोई दूसरा सम्बन्धी ही दुःख का कारण है। सारा दुःख अज्ञान-जनित है।

५. “जिस प्रकार जो राही सड़क पर एकट्ठे होते हैं वे आगे चल कर पृथक् होते ही हैं, इसी प्रकार जब आज या कल सभी का परस्पर वियोग अनिवार्य है, तो कोई भी बुद्धिमान् आदमी किसी भी स्वजन से पृथक् होने पर दुःखी क्यों होगा—भले ही वह स्वजन उसका कितना ही प्रिय क्यों न हो ?

६. "अपने सम्बन्धियों को दूसरे लोक में छोड़ कर आदमी यहाँ इसमें चला जाता है, और फिर इसमें उन्हें छोड़ कर दूसरे में चला जाता है, और वहाँ जाकर, वहाँ से भी अन्यत्र चला जाता है—यही मानव-मान का हाल है। एक मुक्त पुरुष इस सबके लिये दुःखी क्यों हो ?

७. "जब माँ के गर्भ से निकलते हो, मृत्यु प्राणी का पीछा करने लग जाती है, तो तुमने अपने स्नेह में मेरे वनगमन को 'असमय' क्यों कहा ?

८. "किसी सांसारिक वस्तु को प्राप्त करने के लिए 'समय-असमय' हो सकता है, समय हर चीज के साथ लगा ही है, समय संसार को नाश-परिवर्तनों में से गुज़ारता है; लेकिन जब जीवन अस्थिर है, तो 'धर्म' करने के लिए कोई असमय नहीं है।

९. "राजा का तो यह संकल्प ठीक ही है, एक पिता के योग्य है कि वह मुझे राज्य देना चाहे; लेकिन मेरे लिए यह ऐसे ही होगा जैसे कोई लोभी रोगी प्रतिकूल भोजन ग्रहण कर ले।

१०. "किसी भी बुद्धिमान् के लिए 'राज्याधिकार' कितने उचित हो सकता है, जहाँ चिन्ता है, राग-द्वेष है, क्लान्ति है और है दूसरों के प्रति अय्याय।

११. "सोने का महल तो मुझे लगता है जैसे उसमें आग लगी है, अच्छे से अच्छे भोजन विष मिले प्रतीत होते हैं और कमलों के फूल में आच्छादित शम्पा पर, लगता है, जैसे मगरमच्छ लोट रहे हों।"

६. मन्त्री का उत्तर

१. उसके ज्ञान और गरिमा के अनुकूल, वृष्णा-विमुक्त, सर्वपूर्ण कथन सुना तो मन्त्री बोला—

२. "आपका यह संकल्प तो सर्वथा योग्य है और किसी भी तरह आपके अयोग्य नहीं, किन्तु केवलसमयकी दृष्टि से यह इससमय अयोग्य है। यह किसी भी तरहतुम्हारा धर्म नहीं हो सकता कि अपने बुद्धपिता को दुःख में छोड़ कर चल दो।

३. "निश्चय से तुम्हारी बुद्धि बहुत सूक्ष्म नहीं है, कम से कम धर्म, अर्थ और काम के मामले में तो सूक्ष्म नहीं ही है। जब कि किसी अविद्यमान अदृश्य वस्तु के लिए आप विद्यमान दृश्य का त्याग करने के लिए तैयार हैं।

४. "फिर कोई कहता है कि पुनर्जन्म है, कोई उठने ही विश्वास के साथ कहता है कि नहीं है, जब इस विषय में इतना सन्देह है तो फिर यही उचित है कि वर्तमान भोगों को भोगा जाय।

५. "यदि कोई परलोक होगा, तो हम परलोक में भी आनन्द मनायेंगे, किन्तु यदि कोई परलोक नहीं होगा तो फिर सारा संसार ही निश्चित रूप से अनायास मुक्त है।

६. "कुछ ऐसे हैं जो पुनर्जन्म तो मानते हैं, किन्तु मोक्ष की कोई सम्भावना नहीं मानते। उनका कहना है कि जैसे अग्निस्वभाव से ही उत्पन्न होती है और पानी स्वभाव से ही तरल होता है, इसी प्रकार यह संसार स्वभाव से ही संसरण-शील है।

७. "कुछ का मत है कि सभी वस्तुएं स्वभावज हैं—चाहे अच्छी हों, चाहे बुरी हों; चाहे सत् हों, चाहे असत् हों—और सब यह सारा संसार ही स्वभावज है, इसलिए भी हमारे सब प्रयास व्यर्थ हैं।

८. "जब इन्द्रियों की प्रक्रिया निश्चित है और बाह्य पदार्थों की अनुकूलता-प्रतिकूलता भी—तो फिर जिसका बूझावस्था और कष्ट से अटूट सम्बन्ध है, उसे कौन कैसे पुष्ट कर सकता है? क्या यह सब प्राकृतिक ही नहीं है!

९. "पानी आग को बुझा देता है और आग पानी को भाप बना कर उड़ा देती है। ये सभी तब जब इकट्ठे हो जाते हैं तो संसार का निर्माण करते हैं।

१०. "धर्म में ही हाथ, पाँव, पेट, पीठ और सिर की रचना हो जाती है—बुद्धिमानों का कहना है कि यह सब प्राकृतिक ही है।

११. "कांटों के तोषेपन का कौन निर्माण करता है? अथवा पशुओं और पक्षियों के स्वभाव की ही कौन रचना करता है? यह सब प्राकृतिक है। कोई भी कार्य ऐसा नहीं जिसमें चेतना कारण हो, तो फिर 'चेतना' का अस्तित्व ही कैसे हो सकता है?

१२. "कुछ का कहना है कि यह सृष्टि ईश्वर की रचना है। यदि ऐसा है तो फिर किसी चेतन आत्मा के प्रयत्नशील होने की आवश्यकता ही क्या है? जो सृष्टि को गति प्रदान करेगा, वही उस गति को अवकट भी करेगा?

१३. "कुछ कहते हैं कि प्राणी का जन्म और मरण दोनों 'आत्मा' पर निर्भर करते हैं। किन्तु उनका कहना है कि प्राणी का जन्म तो अनायास होता है, किन्तु मोक्ष प्रयास-निष्ठ है।

१४. "आदमी संतानोत्पत्ति द्वारा पितृ-ऋण से उद्धार होता है, शास्त्र-अध्ययन द्वारा ऋषि-ऋण से और यज्ञों द्वारा देव-ऋण से—जो इन तीनों ऋणों से मुक्त है, वही वास्तव में मुक्त है।

१५. "इसलिए बुद्धिमानों का कहना है कि जो इस कम से मोक्ष के लिए प्रयास करते हैं, उन्हें ही मोक्ष प्राप्त होता है। जो इस कम से प्रयास नहीं करते, उन्हें व्यर्थ का आयास ही होता है।

१६. "इसलिये हे सौम्य! यदि मोक्ष की ही चाह है तो शास्त्र-कर्म से उसकी ओर अग्रसर हो; इस प्रकार आपको भी 'मोक्ष' प्राप्त हो जायगा और राजा भी दुःख से 'मोक्ष' पा जायगा।

१७. "और जहाँ तक आपको वन से पुनरा घर वापिस आने के बारे में आशंका है, तो इसका विचार करने की आवश्यकता नहीं। पूर्व समय में भी लोग

वन जाकर वापस घर लौटे ही हैं—अम्बरीश लौटा है, हुमकेश लौटा है, राम लौटा है और भी बहुत लौटे हैं।”

७. भगवान बुद्ध की बुद्धता

१. तब मन्त्री के प्रिय और वक्तादारी से भरे वचन सुनकर—उस मन्त्री को जो राधा की आँखों के समान था—दुइवती बुद्ध ने अपना उत्तर दिया—यथोचित, न उक्ताने जाता और न जल्दबाजी से युक्त।

२. “कुछ है वा नहीं, इसमें मेरे लिये कोई दूसरा प्रमाण नहीं है, तपस्या और साधना द्वारा मैंने स्वयं सत्य को जान लिया है।

३. “मैं किसी ऐसे सिद्धान्त को सही स्वीकार नहीं कर सकता जो अज्ञानाश्रित है और जिसका सिर नीचे और पैर ऊपर की तरफ है। मैं किसी ऐसे सिद्धान्त को सही स्वीकार नहीं कर सकता, जिसमें सैकड़ों बातों को यूँ ही पहले से सही मानकर चलना होता है। कौन बुद्धिमान आदमी केवल किसी दूसरे पर आश्रित होकर किसी बात में विश्वास करेगा? मानव जाति तो अँधेरे में एक अन्धे के पीछे चलने वाली चञ्चुहीन जाति बनो हुई है।

४. “लेकिन यदि कोई सत्य और झूठ में विवेक न कर सके, यदि कोई भलाई और बुराई के विषय में सन्दिग्ध हो तो उसे भी अपना चित्त भलाई में ही लगाये रहना चाहिये। सद्बुद्धि वाले के लिये बोझा बोझ का परिश्रम भी कल्याणकारी ही होता है।

५. “लेकिन यह देखकर कि इस ‘प्रविष्ट परम्परा’ का भी टिकाना नहीं, यह समझ लो कि ठीक वही होता है जो विश्वसनीय लोगों का वचन हो, और विश्वसनीयता का मतलब है निर्विषादता। जो सर्वथा निदोष है वह सत्य का अपलाप कर ही नहीं सकता।

६. “और जो कुछ तुम मुझे घर लौट चलने के बारे में कह रहे हो और अपने पक्ष के समर्थन में कुछ लोगों के उदाहरण दे रहे हो तो ऐसे लोगों की क्या प्रमाणिकता जिन्होंने अपने व्रत को ही लोड़ दिया।

७. “चाहे यूम पृथ्वी पर जा गिरे और चाहे हिमालय भी अपने स्वान से हट जाये, तो भी मैं किसी हातउम में भी इन्द्रिय-विषयीन्मुख होकर घर नहीं लौट सकता।

८. “मैं जलती हुई आग में प्रविष्ट हो जाऊँगा, किन्तु बिना अपने (मानवता के कल्याण के) उद्देश्य को धूरा क्रिये घर नहीं लौट सकता।”

इतना कहता और अपने दृढ़ निश्चय के कारण तपामत सर्वथा उपेक्षायाम् होकर उठकर चल दिये।

९. तब आँखों में आँसु लिये मन्त्री और पुरोहित निराश होकर कपिलवस्तु लौट आये। उन्होंने सिद्धार्थ का अद्विग निश्चय सुन लिया था।

१०. राजपुत्र के प्रति हृदय में प्रेम होने के कारण और राजा के प्रति हृदय में भक्ति होने के कारण वे लौट आये, किन्तु बार-बार पीछे मुड़ कर देखते थे। वे न उन्हें देखते ही रह सकते थे, न उन्हें आँखों से ओझल होने दे सकते थे—ओ कि सूर्य की भाँति अपने तेज से तेजस्वी थे।

११. राजपुत्र को वापिस लौटा लाने में असमर्थ सिद्ध हो मन्त्री और पुरोहित लड़खड़ाते कदमों से वापिस लौटे। वे आपस में कह रहे थे—“हम उस राजा को चल कर अब क्या मुँह दिखायेंगे, जो अपने पुत्र का मुँह देखने के लिये ही तड़पा रहा है।”

१. जातक निदान-कथा ४; महाभाग अ० क० ।

२. जातकट्टकथा (निदान) ।

३. चूलभाग ।

४. सिद्धार्थ कुमार को गृह-स्वाग के बाद भी लौटा लाने का यह प्रयास अश्वघोषकृत बुद्धचरित के अनुसार बोधि-साम से पहले का है ।

पाँचवाँ भाग

धर्म-दीक्षा का पुनरारम्भ

१. गंधार ब्राह्मणों को धर्म-दीक्षा

१. राजगृह के समीप ही, गृध्रकूट पर्वत के पीछे एक गाँव था, जिसमें कोई सत्तर ब्राह्मण परिवार रहते थे।

२. इन लोगों को धर्म दीक्षा देने के उद्देश्य से भगवान् बुद्ध आकर एक वृक्ष के नीचे विराजमान हुए।

३. लोगों ने जब तपागत का तेज और गम्भीर अवस्थित्व देखा तो उससे प्रभावित होकर उनके गर्व आ इकट्ठे हुए। तपागत ने प्रश्न किया—“तुम कब से इस पर्वत के नीचे रहते आये हो, और तुम्हारा पेशा क्या है?”

४. उनका उत्तर था—“पिछली तीस पीढ़ियों से हम यहीं रहते आये हैं, और हमारा पेशा पशु-पालन है।”

५. और जब उनके धार्मिक-विश्वासों के बारे में प्रश्न किया गया तो उनका उत्तर था—“हम ऋग्वेद के अनुसार सूर्य, अग्नि, वायु, अश्वि देवताओं को पूजा करते हैं।

६. “यदि हममें से किसी को मृत्यु हो जाती है तो हम इकट्ठे होते हैं और प्रार्थना करते हैं कि वह ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हो जिससे उसे पुनः पुनर्जन्म न ग्रहण करना पड़े।”

७. भगवान् बुद्ध ने कहा—“यह क्षेमकर मार्ग नहीं है। इससे तुम्हारा कुछ लाभ नहीं हो सकता। मेरे मार्ग का अनुसरण करने से, सच्चा धर्मज्ञ बनने से, आर्य-संघस्य का अभ्यास करने से ही निर्वाण प्राप्त हो सकता है।

८. “जो सत्य को असत्य और असत्य को सत्य समझ बैठते हैं, ऐसे मिथ्या दृष्टि-सम्पन्न लोगों को कभी सद्गति नहीं हो सकती।”

९. “जो सत्य को सत्य और असत्य को असत्य जान लेते हैं, ऐसे सम्पक्-दृष्टि-सम्पन्न लोगों को ही सद्गति की प्राप्ति होती है।”

१०. “संसार में सभी मृत्यु को प्राप्त होते हैं, कोई उससे बच नहीं सकता।

११. “यह समझ लेना कि जो पैदा हुआ है, उसे एक न एक दिन मरना

अवश्य है, और इसलिये जन्म मरण के बंधन से छुटकारा पाने की इच्छा करना—यही सच्ची धर्म-साधना है ।”

१२. उन सत्तर ब्राह्मणों को जब यह बुद्ध-वचन सुनने के लिए मिला तो उन्होंने तुरन्त श्रमण बनने की इच्छा प्रकट की । बुद्ध द्वारा अनुमति प्राप्त होने पर उनका केश-छेदन हो गया । उनकी वेश-भूषा सच्चे श्रमण की हो गई ।

१३. अब वे सब बिहार की ओर चल पड़े । रास्ते में उन्हें अपनी पत्नियों की याद आई और अपने परिवार की याद आई । उसी समय भारी वर्षा में उनका आगे बढ़ना रोक दिया ।

१४. रास्ते में कोई दस मकान थे । उन्होंने उनमें आश्रय लिया । एक मकान के भीतर जाने पर मालूम हुआ कि क्योंकि उसकी छत चूर रही थी, इसलिये उसके भीतर घुसना निष्प्रयोजन था ।

१५. इस अवसर के उपयुक्त भगवान् बुद्ध ने कहा—“जिस प्रकार यदि छत ठीक से छाई न गई हो तो उसमें से वर्षा का पानी अन्दर घुस जाता है, इसी प्रकार यदि चित्त को ठीक-ठीक साधा न गया हो तो उसमें (काम-) राग का प्रवेश हो जाता है ।”^३

१६. “लेकिन जिस प्रकार यदि छत ठीक से छाई गई हो तो उसमें से वर्षा का पानी अन्दर नहीं आ सकता, उसी प्रकार यदि चित्त को ठीक-ठीक साधा गया हो तो उसमें (काम-) राग का प्रवेश नहीं हो सकता ।”^४

१७. इन बातों को सुना तो उन सत्तर ब्राह्मणों को यह लगा तो सही कि उनके मन के संकल्प-विकल्प शुभ नहीं हैं, तो भी अभी वह विचिकित्ता से मुक्त नहीं थे । इतना होने पर भी वे आगे बढ़े चले गये ।

१८. आगे बढ़े तो उन्होंने पृथ्वी पर कुछ सुगन्धित द्रव्य पड़ा देखा । बुद्ध ने उसकी ओर उनका ध्यान आकर्षित किया । थोड़ी ही दूर और आगे जाने पर कुछ कूड़ा-करकट भी पड़ा दिखाई दिया । बुद्ध ने उसकी ओर भी उनका ध्यान आकर्षित किया और साध-साध यह भी कहा—

१९. “जो दुःखीनों की संगति में रहता है वह उसी प्रकार कुञ्जील हो जाता है जैसे किसी दुर्गन्धयुक्त पदार्थ को ग्रहण करने वाले स्वयं गंधाने लगता है; वह उत्तरोत्तर निकृष्ट होता जाता है और अकुञ्जल ही अकुञ्जल करने में दक्ष हो जाता है ।

२०. “लेकिन जो बुद्धिमान् बुद्धिमानों की संगति करता है, वह भी बँटा ही हो जाता है, ठीक जैसे किसी सुगन्धित पदार्थ को ग्रहण करने वाले के शरीर से भी सुगन्ध आने लगती है; वह उत्तरोत्तर बुद्धिमान् होता जाता है, शीलवान् होता जाता है, गुणवान् होता जाता है और संतोष को प्राप्त करता है ।”

२१. इन सब भाषाओं को सुनकर, उन सत्तर ब्राह्मणों को निश्चय हो गया कि उनके मन में जो परतीठ कर काम-भीम का जीवन व्यतीत करने के स्थान जाने

लगे थे वे कुछ बहुत उचित नहीं थे। ऐसे विचारों से सर्वथा मुक्त हो वे बिहार आये और साधना कर अचिर काल में ही अर्हत्व को प्राप्त हुए।

२. उत्तरवती के ब्राह्मणों की धर्म-दीक्षा

१. जिस समय भगवान बुद्ध धावस्ती के जेतवन-में विहार कर रहे थे और देवताओं तथा मनुष्यों के कल्याणार्थ धर्मोपदेश दे रहे थे, ठीक उस उभय धावस्ती के पूर्व के उत्तरवती नाम नगर में पाँच सौ ब्राह्मण रहते थे।

२. उन सबने एकट्ठे होकर एक संगठन निवासी निर्पन्थ तपस्वी के पास जाने का संकल्प किया, जो अपने शरीर पर धूल आदि लपेट कर 'क्षुपि' बना हुआ था।

३. रास्ते-में एक कान्तार में पहुँचने पर उन्हें जोर की प्यास लगी। दूरी पर उन्हें एक पेड़ दिखाई दिया। उन्होंने सोचा, वहाँ कुछ बस्ती जरूर होगी और पानी मिलेगा। किन्तु जब वे वहाँ पहुँचे तो वहाँ कोई बस्ती न थी। केवल एक पेड़ ही था।

४. ऐसी परिस्थिति में वे जोर जोर से रोने-चिल्लाने लगे। तब तक उस वृक्ष-पर से उन्हें अचानक वृक्ष-देवता का स्वर सुनाई दिया। वृक्ष-देवता ने पूछा—“तुम क्यों रो-चिल्ला रहे हो?” लोगों ने कारण बताया तो वृक्ष-देवता ने उन्हें यथेच्छ खाने-पीने को दिया।

५. आगे बढ़ने से पूर्व उन ब्राह्मणों ने उस वृक्ष-देवता से पूछा कि उसने पूर्व जन्म में ऐसा क्या कर्म किया था कि वह वृक्ष-देवता होकर पैदा हुआ?

६. उसने उत्तर दिया कि जिस समय (अनाथ पिण्डक) मुदत्त ने तथामत को जेतवनाराम का दान दिया था, उस समय वह वहाँ सारी रात धर्म सुनता रहा था। लौटते समय उसने अपने पात्र में भिक्षुओं को पानी का दान किया था।

७. दूसरे दिन प्रातःकाल पर लौटने पर उसकी स्त्री ने पूछा कि उससे क्या अपराध हो गया था कि वह सारी रात बाहर रहा। उसने कहा कि वह गुस्से में नहीं था, बल्कि वह सारी रात जेतवन में बुद्ध का उपदेश सुनता रहा था।

८. यह सुन उसकी स्त्री ने तथामत को बेहिसाब सुनाई—“यह शीतल पागल है। यह केवल लोगों को ठगता है।”

९. “उसके ऐसा बोलने पर भी,” वृक्ष-देवता ने कहा, “मैंने उसका विरोध नहीं किया। इसी कारण मरणानन्तर मैं प्रेत होकर पैदा हुआ, और अपनी उस कायरता के ही परिणामस्वरूप मेरा श्रेष्ठ इस पेड़ तक ही सीमित है।

१०. “यज्ञ-यागादि सभी दिन-रात सुन ही देने वाले हैं, चित्ता के जनक हैं।

११. “चिन्ता से मुक्त होने के लिए और दुःख का शम करने के लिये आदमी

को (बुद्ध के) धर्म को ही स्वीकार करना चाहिये और जो यह क्षत्रियों का सामा-
रिक धर्म है, उससे मुक्ति पानी चाहिए ।”

१२. ब्राह्मणों ने जब बृह-देवता के ये बचन सुने तो उन्होंने श्रावस्ती जाने
का निश्चय किया । वह वहाँ पहुँचे और तथ्यागत को अपने आने का उद्देश्य कहा ।
उनकी प्रार्थना सुनी, तब तथ्यागत ने कहा—

१३. “चाहे आदमी नम्र रहता हो, चाहे बड़ी-बड़ी जटायें बड़ाकर रहता
हो, चाहे कुछ पत्तों अथवा बलकल चौर से ही अपना शरीर ढकता हो, चाहे वह
शरीर पर धूल ही रमाता हो और पत्थरों पर सोता हो; किन्तु इस सबसे वह
कृष्णा से मुक्त नहीं हो सकता ।

१४. “लेकिन जो न किसी से कलह करता है और न किसी को हत्या
करता है, जो अग्नि से भी किसी का नाम नहीं करता, जो किसी को पराजित
करके स्वर्ध्व विजयी भी नहीं होना चाहता, जिसकी सभी के प्रति वैवी भावना है—
ऐसे आदमी के मन में किसी के लिये द्वेष या घृणा का भाव नहीं होता ।

१५. “प्रेतों की बलि चढ़ाना, ताकि पुण्य लाभ हो, वा परलोक में फल
मिले सत्पुरुषों का सत्कार करने के बोधे हिंसे के भी बराबर नहीं ।

१६. “जो सदाचारी है, जो ज्येष्ठों के प्रति—बुढ़ों के प्रति—सदा आदर
की भावना प्रदर्शित करता है—उसे इन चार चीजों की प्राप्ति होती है—आयु
की, वर्ण की, सुख की तथा बल की ।”

१७. अपने पति से वह सब सुना, तो परनी शांत हो गई ।

१. धम्मकवग्गो—११ (धम्मपड) ।

२. धम्मकवग्गो—१२ (धम्मपड) ।

३. धम्मकवग्गो—१३ (धम्मपड) ।

४. धम्मकवग्गो—१४ (धम्मपड) ।

५. दण्डवग्गो—१३ (धम्मपड) ।

छठा भाग

निम्नस्तर के लोगों की धर्म-दीक्षा

१. नाई उपालि की धर्म-दीक्षा

१. वापस लौटते समय नाई उपाली ने सोचा—“शाक्य प्रचण्ड स्वभाव के हैं। यदि मैं इन गहनों को लेकर वापस लौटा तो वह सोचकर कि मैं अपने साधियों की हत्या करके और उनके गहने लेकर भाग आया, वे मेरी हत्या भी कर डाल सकते हैं। तो मैं भी उसी रास्ते क्यों न जाऊँ जिस रास्ते ये शाक्य कुल-पुत्र गये हैं ?”

२. “सचमुच मुझे क्यों उनके पीछे-पीछे नहीं जाना चाहिये ?” नाई उपालि ने अपने से पूछा। तब उसने अपनी पीठ पर से गहनों की गठरी उतारी और उसे एक पेड़ पर लटका दिया। उसने कहा—“जिसे वह गठरी मिले, वह इसे अपनी समझ कर ले जाये।” इसके बाद वह शाक्यों के पीछे-पीछे जाने के लिये वापस लौट पड़ा।

३. शाक्यों ने उसे दूर से आते देखा, तो बोले—“उपाली ? तू लौट किस लिये आया है ?”

४. तब उसने अपने मत की बात कही। शाक्य कुल-पुत्र बोले—“उपाली ! तूने अच्छा किया है कि तू वापस नहीं लौटा। क्योंकि शाक्य निस्सन्दिह चण्ड हैं। वे तुझे मार भी डाल सकते थे।”

५. और वे उपालि को अपने साथ लिये वहाँ पहुँचे जहाँ तथागत ठहरे हुए थे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने तथागत को प्रणाम किया और एक ओर जा बैठे। इस प्रकार बैठ चुकने पर उन्होंने तथागत से निवेदन किया—

६. “भगवान् ! हम शाक्य लोग बड़े अभिमानी स्वभाव के हैं। और वह उपालि नाई चिरकाल से हमारी सेवा करता चला आ रहा है। भगवान् पहले इसे ही प्रबुद्धित उपसम्पन्न करें ताकि हम इसे अपने से बड़ा मान इसका अभिवादन करें, इसे हाथ फैलाकर नमस्कार करें और इस प्रकार हम शाक्यों के अभिमान में कुछ कमी आये।”

७. तब तथागत ने पहले तो नाई उपालि को ही प्रबुद्धित और उपसम्पन्न किया। इसके बाद उन दूसरे शाक्य-कुल-पुत्रों को भिक्षु संघ में दीक्षित किया।

२. भंगी सुणीत की धर्म-दीक्षा

१. राजगृह में एक सुणीत नाम का भंगी रहता था। गृहस्थों द्वारा सड़क पर फेंका गया कूड़ा-कचरा साफ करना ही उसकी जीविका का साधन था। यह उसका परम्परागत नीच पेशा था।

२. एक दिन प्रातःकाल तथागत उठे, चीवर धारण किये और बहुत से भिक्षुओं को साथ लिये भिक्षाटन के लिए निकले।

३. अब उस समय सुणीत कूड़ा-कचरा इकट्ठा कर के ढेर लगा रहा था, जिसे वह बाद में टोकरी से गाड़ी में ढालने वाला था और उस गाड़ी को खींच कर ले जाने वाला था।

४. और जब उसने अनुयायियों सहित तथागत को आते देखा, उसका हृदय प्रसन्नता से भर गया; किन्तु साथ ही वह डर भी गया था।

५. सड़क पर छिपने की कोई जगह न देख, उसने अपनी गाड़ी को दीवार से जा सटाया और खुद भी दीवार से सट कर हाथ जोड़े हुए खड़ा हुआ।

६. तथागत जब कुछ समीप आये तो उन्होंने अमृत भरी बाणी में उसे सम्बोधित किया—“सुणीत ! यह तुम्हारा वरिष्ठ जीविका का साधन क्या है ? क्या तुम्हें छोड़ कर संघ में प्रविष्ट हो सकते हो ?”

७. सुणीत को ऐसा लगा जैसे किसी ने उस पर अमृत वर्षा की हो। बोला—“जिस संघ में भगवान् बुद्ध हैं, उसमें मैं कैसे नहीं जा सकता ? कृपया आप मुझे संघ में प्रविष्ट कर लें।”

८. तब तथागत के श्रीमुख से निकला—“भिक्षु आ।” इस एक वचन से ही सुणीत को प्रव्रज्या और उपसम्पदा मिली तथा वह पात्र-चीवर युक्त हो गया।

९. भगवान् बुद्ध उसे बिहार ले गये तथा धर्म और विद्या की शिक्षा दी—“शील, संमम और दमन से प्राणी बुद्ध हो जाते हैं।”

१०. जब पूछा गया कि सुणीत इतना महान् कैसे हो गया तो तथागत ने कहा—“जिस प्रकार रास्ते पड़े किसी कूड़े-कचरे के ढेर पर एक सुगन्धित कौबल भी उग सकता है, उसी प्रकार इस अंधे-जगत में, इस कूड़ा-कचरे संसार में बुद्ध-पुत्र भी प्रकाशित हो सकता है।”

३. सोपाक तथा सुप्पिय अछूतों की धर्म-दीक्षा

१. सोपाक आवस्ती का एक अछूता बालक था। प्रसन्न-वेदना के समय उसकी मां बेहोश हो गई। उसके पति और सम्बन्धियों ने सोचा कि वह मर गई है। वे उसे श्मशान में ले गये और वहाँ उसके लिये चिता तैयार की।

२. लेकिन उस समय इतना पानी बरसा और ऐसा तूफान आया कि चिता

में जाग लगा सकना असम्भव हो गया। इसलिये सोन उसे यूँ ही चिता पर पड़ा छोड़ बने गये।

३. सोपाक की माँ उस समय तक मरी नहीं थी। वह बाद में मरी। मृत्यु से पहले वह बालक को जन्म दे गई।

४. उस बच्चे का भ्रमशान के रखवाले ने ही अपने बच्चे मुण्डिय के साथ पालन-पोषण किया। माँ की जाति के नाम पर बच्चे का नाम भी सोपाक ही पड़ गया।

५. एक दिन भगवान् बुद्ध भ्रमशान के पास से गुजर रहे थे। सोपाक उन्हें देख कर उनके पास चला गया। भगवान् को अभिवादन कर, उसने भगवान् से संघ में प्रविष्ट होने की अनुज्ञा माँगी।

६. उस समय सोपाक की आयु केवल सात वर्ष की थी। भगवान् बुद्ध ने उसे अपने पिता की अनुमति लाने के लिये कहा।

७. सोपाक जाकर अपने पिता को ही ले आया। पिता ने भगवान् को अभिवादन किया और प्रार्थना की कि वे उसके पुत्र को संघ में प्रविष्ट कर लें।

८. इस बात का स्थान न कर कि वह 'अछूत' है, भगवान् बुद्ध ने उसे संघ में प्रविष्ट कर लिया तथा उसे धर्म और विनय की शिक्षा दी।

९. बाद में सोपाक एक स्वधिर हुआ।

१०. मुण्डिय और सोपाक बचपन से साथ ही साथ बड़े हुए थे। और क्योंकि मुण्डिय के पिता ने ही सोपाक का भी पालन-पोषण किया था, इसलिये मुण्डिय ने भी अपने साथी सोपाक से भगवान् बुद्ध के धर्म की शिक्षा ग्रहण कर ली। उसने सोपाक से ही उसे प्रव्रजित करने की प्रार्थना भी की। जाति-वाद के हिसाब से सोपाक मुण्डिय की भी अपेक्षा 'नीचे' जाति का था।

११. सोपाक ने स्वीकार किया, और मुण्डिय जो एक 'नीच' जाति का था और जिसका परम्परागत गैला भ्रमशान की रखवाली था—भी एक भिक्षु बन गया।

४. सुमङ्गल तथा अन्य 'नीच' जाति वालों की धर्म-दीक्षा

१. सुमङ्गल धावस्ती का ही एक किसान था। वह दराती, हल और कुदाली से खेत में काम कर के ही अपनी जीविका कमाता था।

२. छन्न कपिलवस्तु का ही एक अधिवासी था और बुद्धोदन के ही घर का एक दास।

३. धनिय राजगृह का रहने वाला था। वह एक कुम्हार था।

४. 'कम्पत-कुर' धावस्ती में ही रहता था। बदन पर चीपड़े, हाथ में लत्पर लिये भीख मांगते फिरता ही उसकी जीविका का एकमात्र साधन था। उनका नाम ही पड़ गया था—'चीपड़े-चावल'। बड़े होने पर वह पास बेच कर गुजारा करने लगा था।

५. इन सभी ने भगवान् बुद्ध से संघ में प्रविष्ट होने की अनुज्ञा चाही। बिना उनकी नीज जाति की ओर देखे और बिना उनके पहले के पेशे की ओर देखे भगवान् बुद्ध ने सभी को संघ में प्रविष्ट कर लिया।

५. कुष्ठ-रोगी सुप्रबुद्ध की धर्म-बोला

१. एक समय भगवान् बुद्ध राजगृह के वंज्जवन में विराजमान थे, जहाँ गिलहरियों को दाना भुगाया जाता था।

२. उस समय राजगृह में एक आदमी रहता था, एक कोड़ी, नाँप सुप्रबुद्ध। वह अत्यन्त अभागा था, अत्यन्त दरिद्र था और अत्यन्त दुःखी था।

३. और ऐसा हुआ कि उस समय तथागत बड़े भारी जन-समूह से घिरे हुए धर्मोपदेश दे रहे थे।

४. उस कुष्ठ-रोगी सुप्रबुद्ध ने जब कुछ दूर से वह भीड़ देखी तो उसके मन में हुआ—“निस्सन्देह वहाँ लोगों को भीख बँट रही होगी। मैं भी यदि वहाँ निकट चला जाऊँ तो मुझे भी खाने को कुछ न कुछ अवश्य मिल ही जायगा।”

५. इस प्रकार कोड़ी सुप्रबुद्ध उस भीड़ के समीप पहुँचा। वहाँ जाकर उसने देखा कि बड़े जन-समूह के मध्य बैठे तथागत धर्मोपदेश दे रहे हैं। उसने सोचा—“यहाँ भीख तो नहीं बँट रही है। यहाँ तो अमण गौतम का धर्मोपदेश हो रहा है। अच्छा, मैं धर्मोपदेश ही सुनूँ।”

६. वह यह निश्चय करके, एक ओर बैठ गया “मैं भी धर्मोपदेश सुनूँगा।”

७. अपने चित्त से सभी उपस्थित लोगों के चित्त की दशा जानकर तथागत ने सोचा—“इस उपस्थित लोगों में कौन है जिसे धर्माविबोध हो सकता है?” तब तथागत ने वही एक ओर बैठे कोड़ी सुप्रबुद्ध को देखा। उसे देख कर तथागत ने जाना—“इसे धर्माविबोध हो सकता है।”

८. तब उस कोड़ी सुप्रबुद्ध के लिए ही तथागत ने धर्मोपदेश दिया—दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा आदि। उन्होंने काम-मुक्तों की सुच्छता और आसक्तों से मुक्ति-लाभ करने पर जोर दिया।

९. जब तथागत ने देखा कि कोड़ी सुप्रबुद्ध का चित्त नरमा गया है, कमाया गया है, ऊपर उठ आया है तथा थड़ा-मुक्त हो गया है तब जो बुद्धों की सर्वोत्कृष्ट वेशना है उसका उपदेश दिया—दुःख, दुःख का समुदय, दुःख का निरोध तथा दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग।

१०. जिस प्रकार एक खच्छ कपड़ा रंग को अच्छी तरह पहन कर लेता है उसी प्रकार उसी स्थान पर बैठे-बैठे कोड़ी सुप्रबुद्ध को विरज, विमल प्रज्ञा प्राप्त हुई—जो कुछ भी समुदय-धर्म है, वह सब निरोध-धर्म है। और कोड़ी सुप्रबुद्ध को सत्य के दर्शन हो गये, वह सत्य को प्राप्त हो गया, वह सत्य में निमग्न हो गया। वह

सन्देह के उस पार चला गया। उसकी विचिकित्सा शान्त हो गई। उसमें विश्वास उत्पन्न हो गया। अब उसे और कुछ करणीय नहीं रहा। वह तयागत की देशना में सुप्रतिष्ठित हो गया। तब कोड़ी सुप्रबुद्ध अपने आसन से उठा और तयागत के कुछ समीप जाकर एक ओर बैठ गया।

११. इस प्रकार बैठे हुए उसने तयागत से निवेदन किया—“अद्भुत है भगवान् ! अद्भुत है। जैसे कोई मिरे को ऊपर उठा ले, छिपे को उघाड़ के, पच-भष्ट को रास्ता दिखा दे, अन्धकार में प्रदीप प्रज्वलित कर दे ताकि जिन्हें आँख है वे रास्ता देख लें, इसी प्रकार भगवान् ने नाना प्रकार से धर्म की व्याख्या कर दी। मैं बुद्ध, धर्म और संघ की जरण ग्रहण करता हूँ। भगवान् आज से मेरे प्राण रहने तक मुझे अपना शरणागत उपासक समझें।”

१२. तब तयागत की वाणी द्वारा चेतनता और प्रसन्नता को प्राप्त हुआ कोड़ी सुप्रबुद्ध अपने स्थान से उठा और भगवान् को अभिवादन कर वहाँ से विदा हुआ।

१३. दुर्भाग्यवश एक दुर्घटना हो गई। एक तरफ बछड़े ने रास्ते में उस कोड़ी सुप्रबुद्ध को सींग खींच कर जान से मार डाला।^१

१. सुत्तसंगम—७।१-२।

२. सुणीत थेरो, द्वावस निपातो (थेर-भाषा)।

३. पुरकवग्गी, धम्मपद (४।१५-१६)।

४. सुणिय थेरो तथा सोपाक थेरो (थेरभाषा—सुत्तवी बग्गी) अट्ठकथा।

५. सुमंगलथेरो (थेरभाषा—पञ्चमो बग्गी)।

६. कुट्टी-मुत्त (उद्दान ५।१३)।

सातवां भाग

स्त्रियों की धर्म-दीक्षा

१. महाप्रजापति गौतमी, यशोधरा तथा अन्य स्त्रियों की धर्म-दीक्षा

१. जब सिद्धार्थ कपिलवस्तु लौटे तो शाक्य स्त्रियाँ भी 'संघ' में प्रविष्ट होने के लिए उत्तनी ही उत्सुक थीं जितने पुरुष ।

२. ऐसी स्त्रियों की अगुआ स्वयं महाप्रजापति गौतमी थी ।

३. जिस समय तथागत शाक्यों के न्यषोधराराम में ठहरे हुए थे, महाप्रजापति गौतमी उनके पास पहुँची और बोली—'भगवान् ! यह अच्छा होगा यदि स्त्रियों को भी तथागत के धर्म-विनय के अनुसार प्रव्रजित होने की अनुज्ञा मिले ।'

४. गौतमी ! रहने दे । ऐसे विचार को मन में उत्पन्न न होने दे ।' दूसरी और तीसरी बार भी महाप्रजापति गौतमी ने अपनी प्रार्थना दोहराई, दूसरी और तीसरी बार भी उसे वही उत्तर मिला ।

५. तब महाप्रजापति गौतमी बहुत ही दुःखित हुई, चिन्तित हुई । उसने तथागत के सामने सिर झुकाया और आँखों में आँसू लिये, रोती हुई बली गई ।

६. जब तथागत न्यषोधराराम से चारिका के लिये निकल पड़े, तो महाप्रजापति गौतमी और दूसरी शाक्य स्त्रियाँ इकट्ठी हुई और विचार करने लगीं कि तथागत के उनकी प्रार्थना स्वीकार न करने पर, अब आगे क्या किया जाय ?

७. शाक्य स्त्रियों ने सोचा कि वे तथागत के इस इन्कार को उनका 'अन्तिम निर्णय' नहीं मानेंगी और किसी न किसी तरह तथागत का राजी करेगी । उन्होंने यह भी निर्णय किया कि वे एक कदम आगे जायेंगी और स्वयं 'परिव्राजिका' बन कर तथागत के सामने उपस्थित होंगी ।

८. तदनुसार महाप्रजापति गौतमी ने अपने बाल काटे, काषाय-वस्त्र पहना और दूसरी अनेक स्त्रियों को साथ लिये तथागत से भेंट करने के लिये निकली । उस समय तथागत वैशाली के महावन के कूटागार-भवन में ठहरे हुए थे ।

९. धीरे-धीरे अन्य स्त्रियों के साथ महाप्रजापति गौतमी वैशाली के कूटागार-भवन में पहुँची । उस समय उसके पाँव सूजे हुए थे और उन पर धूल गड़ी थी ।

१०. उसने अपनी वही प्रार्थना, जो उसने उस समय की थी, जब तथागत ग्वाघोषाराम में ठहरे हुए थे, दोहराई और तथागत ने भी फिर उसे पूर्ववत् ही अस्वीकार कर दिया।

११. प्रार्थना के दुबारा अस्वीकृत हो जाने से प्रजापति गौतमी बहुत खिन्न हुई और कूटागार के दरवाजे के बाहर जाकर खड़ी हो गई। वह नहीं जानती थी कि अब वह क्या करे ? जिस समय वह इस प्रकार खड़ी हुई थी, आनन्द ने कूटागार की ओर जाते समय, उसे देखा और पहचान लिया।

१२. उसने महाप्रजापति से प्रश्न किया—“तू यहाँ इस प्रकार बरामदे के बाहर क्यों खड़ी है ? तेरे पाँव सूजे हैं। उन पर धूल चढ़ी है। चेहरा दुःखी है। आँखों से आँसू बह रहे हैं।” “आनन्द ! क्योंकि तथागत स्त्रियों को घर से बेघर हो, उनके धर्म और विनय के अनुसार प्रव्रजित होने की आज्ञा नहीं देते।”

१३. तब आनन्द स्थविर वहाँ गये जहाँ तथागत थे और तथागत को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। इस प्रकार बैठ कर आनन्द ने तथागत से निवेदन किया, भगवान् ! महाप्रजापति गौतमी बरामदे के बाहर खड़ी है। उसके पाँव सूजे हैं। उन पर धूल चढ़ी है। चेहरा दुःखी है। आँखों से आँसू बह रहे हैं। क्योंकि तथागत स्त्रियों को, घर से बेघर हो तथागत के धर्म और विनय के अनुसार, प्रव्रजित होने की आज्ञा नहीं देते। भगवान् यह अच्छा हो यदि महाप्रजापति गौतमी की इच्छा के अनुसार स्त्रियों को भी प्रव्रजित होने की आज्ञा मिल जाये।

१४. “क्या महाप्रजापति गौतमी ने तथागत की विशेष सेवा नहीं की है जब मौसी की हैसियत से, तथागत की माता का शरीरान्त हो जाने पर, वह अपने स्तन से ही तथागत को दुग्ध-पान कराती रही है ? यह अच्छा होगा, भगवान् ! यदि स्त्रियों को भी, घर से बेघर हो, तथागत के धर्म और विनय के अनुसार प्रव्रजित होने की अनुज्ञा मिले।”

१५. “आनन्द ! रहने दो। तुम्हें यह न रुचे कि स्त्रियों को भी प्रव्रजित होने की अनुज्ञा मिले।” दूसरी बार और तीसरी बार भी आनन्द ने अपनी प्रार्थना दोहराई और दूसरी तथा तीसरी बार भी आनन्द की प्रार्थना अस्वीकृत हो गई।

१६. तब आनन्द स्थविर ने तथागत से प्रश्न किया—“भगवान् ! आपके स्त्रियों को प्रव्रजित न होने देने का क्या कारण हो सकता है ?”

१७. “भगवान् जानते हैं कि ब्राह्मणों का यह मत है कि भूढ़ और स्त्रियाँ कभी मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकती क्योंकि वे अपरिशुद्ध होती हैं और पुरुषों के मुकाबले में निम्न जाति की होती हैं। इसलिये वे भूढ़ों और स्त्रियों को प्रव्रज्या नहीं लेने देते ? तो क्या तथागत की दृष्टि भी ब्राह्मणों के समान ही है ?

१८. “क्या तथागत ने ठीक उसी प्रकार भूढ़ों को भी संघ में प्रविष्ट नहीं

किया है जैसे ब्राह्मणों को ? भगवान् ! स्त्रियों से ही ऐसा भेद-भाव करने का क्या कारण है ?

१९. “क्या तथागत का यह मत है कि तथागत के धर्म और विनय के अनुसार चलकर स्त्रियों निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकती ?”

२०. तथागत बोले—“आनन्द ! मुझे गलत तौर पर मत समझो । मेरा मत है कि पुरुषों की तरह ही स्त्रियां भी निर्वाण प्राप्त कर सकती हैं । आनन्द ! मुझे गलत तौर पर मत समझो । मैं पुरुषों को स्त्रियों की अपेक्षा किसी भी तरह विशेष नहीं मानता । महाप्रजापति गौतमी की प्रार्थना को जो मैंने स्वीकार नहीं किया है, वह स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा हेय समझने के कारण नहीं, बल्कि व्यवहारिक कारणों से ही ।”

२१. “भगवान् ! मैं बड़ा प्रसन्न हूँ कि तथागत ने मुझ पर यथार्थ कारण प्रकट कर दिया है । लेकिन क्या व्यवहारिक कारणों से महाप्रजापति गौतमी की प्रार्थना सर्वथा अस्वीकृत होनी चाहिये ? क्या ऐसा करने से लोग धर्म की निन्दा नहीं करेंगे ? क्या लोग ऐसा नहीं कहेंगे कि तथागत के धर्म-विनय में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को हेय माना जाता है ? क्या जिन व्यवहारिक कठिनाइयों की तथागत को चिन्ता है, उनसे बचने के लिए कुछ नियम नहीं बनाये जा सकते ?”

२२. “अच्छा ! आनन्द ! यदि महाप्रजापति का इतना आपत्त है कि मेरे धर्म-विनय में उन्हें प्रव्रजित होने की अनुमति मिलनी ही चाहिये, तो मैं इसे स्वीकार करता हूँ । लेकिन इसके लिये महाप्रजापति गौतमी को स्त्रियों की ओर से आठ बातें स्वीकार करनी होंगी और स्त्रियों से उनका पालन कराना भी उसकी जिम्मेदारी होगी । नहीं महाप्रजापति की दीक्षा होगी ।”

२३. तब आनन्द स्वविर ने तथागत से उन आठ नियमों की जानकारी प्राप्त की और जाकर प्रजापति गौतमी को वह सब बातचीत सुना दी जो तथागत से हुई थी ।

२४. महाप्रजापति गौतमी बोली—“आनन्द ! जिस प्रकार अलंकार-प्रिय कोई कुमार या कुमारी, यदि स्नानान्तर उसे कमल के फूलों की, वा चमेली के फूलों की, वा अतिमुक्तक की माला दो जाय और वह उसे दोनों हाथों में लेकर सिर पर रखे, उसी प्रकार आनन्द ! मैं इन आठों नियमों को अपने सिर पर, जीवन-पर्यन्त पालन करने के लिये, धारण करती हूँ ।”

२५. तब आनन्द स्वविर तथागत के पास आये और अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ कर आनन्द स्वविर ने तथागत को कहा—“महाप्रजापति गौतमी ने इन आठों नियमों के पालन कराने की जिम्मेदारी अपने सिर पर ले ली है । इसलिये अब यह उसकी उपसम्पदा मान ली जाय ।”

२६. अब महाप्रजापति गौतमी ने प्रव्रज्या-उपसम्पदा ग्रहण की और उसके

साथ ही उन पाँच सौ शाक्य-देवियों ने भी जो महाप्रजापति गौतमी के साथ चल कर आई थीं। इस प्रकार प्रव्रजित-उपसम्पन्न हो कर प्रजापति गौतमी तषागत के सामने आई और तषागत को अभिवादन किया। तषागत ने उसे धर्म और विनय की शिक्षा दी।

२३. दोष पाँच सौ भिक्षुणियों को तषागत के ही एक शिष्य नन्दक ने धर्म और विनय की शिक्षा दी।

२४. महाप्रजापति गौतमी के साथ जिन शाक्य-देवियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की अर्थात् भिक्षुणियाँ बनीं, उनमें वशोधरा भी थी। भिक्षुणी होने पर उसका नाम भद्रा कच्चाना (भद्रा कात्यायना) हुआ।

२. प्रकृति नामक चण्डालिका की धर्म-दीक्षा

१. उस समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में अनाथ-पिण्डक के जेतवनाराम में विराज रहे थे।^२

२. तषागत का शिष्य आनन्द भिवार्म नगर में गया था। भोजनान्तर आनन्द पानी पीने के लिये नदी की ओर जा रहा था।

३. उसने एक लड़की को देखा जो नदी से पड़े में पानी भर रही थी। आनन्द ने उससे पानी माँगा।

४. लड़की का नाम प्रकृति था। बोली—“मैं पाण्डाल-कन्या हूँ। मैं पानी नहीं दे सकती।”

५. आनन्द ने उत्तर दिया—“मुझे पानी चाहिए। मुझे तुम्हारी जाति नहीं चाहिये।” तब लड़की ने आनन्द को अपने बरतन से कुछ पानी दिया।

६. तब आनन्द जेठवन लौट आये। वह लड़की भी आनन्द के पीछे-पीछे आई और आनन्द के निवास-स्थान का पता लगा लिया। उसने यह भी मालूम कर लिया कि उसका नाम आनन्द है और वह बुद्ध-शिष्य है।

७. घर लौट कर उसने अपनी माँ मातंगी से सारा वृत्तान्त कहा और जमीन पर लेट कर रोने लगी।

८. माँ ने रोने का कारण पूछा। लड़की बोली—“यदि तुम मेरा विवाह करना चाहती हो, तो मैं केवल आनन्द से करूँगी, मैं किसी अन्य से नहीं करूँगी।”

९. माता ने पता लगाया। लौट कर लड़की से बोली—“विवाह असम्भव है। क्योंकि आनन्द ने ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण कर रखा है।”

१०. यह बात सुनी तो लड़की बहुत दुःखी हुई। उसने खाना-पीना छोड़ दिया। वह इसे भाग्य-देखा स्वीकार करने को तैयार न थी। इसलिये उसने कहा—“माँ! तुम जादू-टोना जानती हो। क्या नहीं? तो तुम इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्यों जादू-टोना नहीं करती?” माँ बोली—“मैं देखूँगी कि क्या हो सकता है।”

११. मातंगी ने आनन्द को भोजन के लिए निमंत्रण दिया। लड़की बहुत प्रसन्न हुई। मातंगी ने तब आनन्द को कहा कि उसकी लड़की उससे शादी करने के लिये अत्यन्त व्याकुल है। आनन्द ने उत्तर दिया—“मैं ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण कर चुका हूँ। मैं किसी भी स्त्री से विवाह नहीं कर सकता।”

१२. मातंगी बोली—“यदि तुम मेरी लड़की से विवाह नहीं करते, तो वह आत्महत्या कर लेगी। उसकी तुम्हारे प्रति इतनी अधिक आसक्ति है।” आनन्द का उत्तर था—“मैं असमर्थ हूँ।”

१३. मातंगी घर में गई और लड़की से कहा कि आनन्द तो विवाह करने से इनकार करता है।

१४. लड़की चिल्लाई—“माँ! तुम्हारा मन्तर-जन्तर कहाँ गया?” मातंगी बोली—“मेरा मन्तर-जन्तर तथागत के मन्तर-जन्तर के विरुद्ध असर नहीं करता।”

१५. लड़की चिल्लाई—“माँ! दरवाजा बन्द कर दे। उसे बाहर न जाने दे। मैं देखूंगी कि आज ही रात को वह मुझे पत्नी रूप में कैसे नहीं ग्रहण करता?”

१६. माँ ने वैसा ही किया, जैसा लड़की चाहती थी। रात होने पर माँ ने कमरे में बिस्तर लगा दिया। लड़की ने अपने आप को अच्छी से अच्छी तरह अलंकृत किया और अन्दर आई। आनन्द पर इसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ा।

१७. अन्त में माँ ने अपने जाजू-टोने का प्रयोग किया। परिणाम-स्वरूप कमरे में आग जल उठी। माँ ने आनन्द के कपड़ों को पकड़ा और बोली—“यदि तुम अब भी मेरी लड़की से विवाह करना स्वीकार नहीं करते तो मैं तुम्हें आग में झोंक दूंगी।” तब भी आनन्द झुका नहीं। माँ और लड़की दोनों को हार माननी पड़ी। उन्होंने आनन्द को स्वतन्त्र कर दिया।

१८. वापिस लौट कर आनन्द ने सारी आप-बीती तथागत को कह सुनाई।

१९. दूसरे दिन वह लड़की आनन्द को खोजती हुई जेतवन पहुँची। आनन्द भिक्षाटन के लिए निकल रहे थे। उसे देखा तो उससे बच निकलना चाहा। लेकिन जहाँ-जहाँ आनन्द गया, लड़की ने पीछा किया।

२०. जब आनन्द लौटा तो उसने देखा कि लड़की जेतवन बिहार के दरवाजे पर खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही है।

२१. आनन्द ने तथागत से कहा कि किसी प्रकार वह लड़की उसका पीछा नहीं छोड़ती है। तथागत ने उसे बुलवा भेजा।

२२. जब लड़की सामने आई तो तथागत ने प्रश्न किया—“तू आनन्द का पीछा किसलिये कर रही है?” लड़की का उत्तर था कि वह उससे विवाह करके रहेगी। बोली—“मैंने सुना है कि वह अविवाहित है। मैं भी अविवाहित हूँ।”

२३. भगवान् कुछ बोले—“आनन्द! निश्चय है। उसके सिर पर बाल नहीं हैं। यदि तুম भी उसी की तरह मुण्डन करा लो तो मैं देखूंगा कि कुछ हो सकता है।”

२४. लड़की बोली—“मैं इसके लिए तैयार हूँ।” भगवान बुद्ध ने कहा—
“मुण्डन कराने से पूर्व तुम्हें अपनी माँ से अनुमति लेनी होगी।”

२५. लड़की माँ के पास आई और बोली—“माँ ! जो तुम नहीं कर सकती, वह मैं कर सकती हूँ। भगवान बुद्ध ने वचन दिया है कि यदि मैं मुण्डन करा लूँ तो वह आनन्द से मेरा विवाह करा देंगे।”

२६. माँ ज़ुड़होकर बोली—“तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। तुम मेरी लड़की हो और तुम्हें बाल रखने चाहिए। तुम आनन्द जैसे धम्म से शादी करने के लिए इतना क्यों तड़पती हो ? मैं किसी अच्छे आदमी से तुम्हारी शादी करा दूँगी।”

२७. उसका उत्तर था—“या तो मैं आनन्द से शादी करूँगी, या मर जाऊँगी। तीसरी बात होने को ही नहीं है।”

२८. माँ बोली—“तुम मेरा अपमान क्यों कर रही हो ?” लड़की बोली—
“यदि मैं तुम्हें प्रिय हूँ तो जैसा मैं चाहूँ वैसा मुझे करने दो।”

२९. माँ ने अपना विरोध वापस ले लिया और लड़की ने मुण्डन करा लिया।

३०. तब लड़की तथागत के सामने उपस्थित हुई। बोली—“आपके आदेश के अनुसार मैंने अपना मुण्डन करा लिया है।”

३१. तथागत ने कहा—“आलिर तू चाहती क्या है ? उसके शरीर का कौन सा हिस्सा है जिस से तुझे प्रेम है ? लड़की बोली—“मैं उसकी नाक से प्यार करती हूँ। मैं उसके मुँह से प्यार करती हूँ। मैं उसके कानों से प्यार करती हूँ। मैं उसकी आवाज से प्यार करती हूँ। मैं उसकी आँखों से प्यार करती हूँ। मैं उसकी बाल से प्यार करती हूँ।”

३२. तब तथागत बोले—“क्या तुम जानती हो कि आँखें आँगुओं का अङ्ग भाग है। नाक सोंड़ का घर है। मुँह में धूँक ही भरा रहता है। कानों में मैल ही मैल होता है और शरीर मल-मूत्र का खजाना भाग है।”

३३. जब स्त्री-पुरुष सहवास करते हैं वे बच्चों को जन्म देते हैं। जहाँ जन्म है, वही मृत्यु भी है। जहाँ मृत्यु है वही दुःख भी है। लड़की ! मैं नहीं जानता कि आनन्द से शादी करके तू क्या पावेगी ?”

३४. लड़की गम्भीरतापूर्वक सोचने लगी और इस परिणाम पर पहुँची कि आनन्द से शादी करना बेकार है, जिसके लिये वह मरी जा रही थी। उसने अपना यह मत तथागत पर प्रकट कर दिया।

३५. तथागत को अभिवादन कर लड़की बोली—“अज्ञान के बन्धीभूत होकर ही मैं आनन्द के पीछे लगी थी। अब मेरी आँख खुल गई है। मैं उसनाविक की तरह हूँ जिसकी नौका एक दुर्घटना के बाद दूसरे किनारे जा लगी है। मैं एक अरक्षित वृद्ध पुरुष की तरह हूँ जिसे सुरक्षा मिल गई है। मैं उस अन्धे पुरुष की तरह हूँ जिसे दृष्टि प्राप्त हो गई है। तथागत के ज्ञानामृत ने मेरी निद्रा भंग कर दी है।”

३६. भगवान् हे हे प्रकृति ! यद्यपि तू चाण्डाल-कन्या है किन्तु तू श्रेष्ठ पुरुषों और स्त्रियों के लिये आदर्श का काम देगी । तू "मीन" जाति की है सही, लेकिन ब्राह्मण तुझसे शिक्षा ग्रहण करेंगे । न्याय तथा धर्म के पथ में विचलित न होना । तेरी कीर्ति राज-सिंहासन पर बैठी हुई रानियों की कीर्ति से बढ़ जायगी ।"

३७. मादी की बात जाती रही तो अब उसके सामने "भिक्षुणी-संघ" में प्रविष्ट होने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग न था ।

३८. उसने इच्छा प्रकट की तो वह भिक्षुणी-संघ में ले ली गई । पूर्व निस्सन्देह वह "नीचतम" जाति की थी ।

आठवाँ भाग

पतितों तथा अपराधियों की धर्म-दीक्षा

१. एक आवारे की धर्म-दीक्षा

१. उस समय राजगृह में एक अत्यन्त असंयत आदमी रहता था, जो न अपने माता-पिता का ही आदर करता था, न दूसरे बड़े-पूज्यों का । जब भी उससे कोई पाप-कर्म हो जाता तो वह सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि-देवता की ही पूजा किया करता था ताकि उसे पुण्य लाभ हो और वह अपने में मस्त रहे ।

२. तीन साल तक लगातार पूजा और बलिदान आदि में इतना शारीरिक कष्ट उठाने पर भी उसे किसी प्रकार की शान्ति नहीं मिली ।

३. अन्त में उसने आवस्ती पहुँच कर तषागत से भेंट करने की सोची । वहाँ पहुँचा और जब उसने तषागत के तेजपूर्ण व्यक्तित्व के दर्शन किये, वह उनके चरणों पर गिर पड़ा और अपनी अपरिमित प्रसन्नता प्रकट की ।

४. तब तषागत ने उसे बताया कि पशुओं की बलि देना मूर्खता है, और ऐसे वाह्य कर्मकाण्डों में (जिनका मन से कुछ सम्बन्ध नहीं) लगे रहना व्यर्थ है और ऐसे उपचारों में भी जिनमें आदरणीयों का आदर नहीं होता । अन्त में उन्होंने कुछ गायार्थे कही । उस समय वह सारा स्थान उनके तेज से प्रकाशित हो गया ।

५. तब उस गाँव के रहने वाले, विशेष रूप से बच्चों के माता-पिता तषागत की सेवा के लिये आये ।

६. बच्चों के माता-पिता को देखकर और उन्होंने अपने बच्चों के बारे में जो कुछ बताया उसे सुनकर तषागत मुस्कराये और वे गायार्थे कही—

७. ध्येष्ठ आदमी ईर्ष्या से सर्वथा मुक्त होता है । उसका दिमाग खुला होता है और वह खुले प्रकाशयुक्त स्थान पर ही रहता है । यदि कभी उस पर कोई मुसीबत भी आ पड़ती है, वह चबराता नहीं, वह विचलित नहीं होता । उस समय भी वह अपनी बुद्धि का ही परिचय देता है ।

८. "ध्येष्ठ आदमी सांसारिक बातों से सरोकार नहीं रखता । वह न धन की इच्छा रखता है, न संतान की और न जगह-जमीन की । वह सावधान रहकर नील का पालन करता है । वह प्रज्ञा के पथ पर चलता है और विचित्र-विचित्र सिद्धान्तों का अनुसरण नहीं करता ।

९. अष्ट आदमी अतिथिता के रूप को भली प्रकार समझ कर और यह जानकार कि यह संसार बालू में जमे वृक्ष के समान है, अपने अस्तिवर विस मित्र को स्थिरता के पथ पर और अपने अपवित्र-शील मित्र को पवित्रता के पथ पर लाने का पुरा-पुरा प्रयास करता है ।”

२. डाकू अंगुलिमाल की धर्म-दीक्षा

१. कौशल-नरेश प्रमत्तचित्त के राज्य में अंगुलिमाल नाम का एक डाकू रहता था, जिसके हाथ सदा रक्त से रंगे रहते, जिसका काम ही था आदिमियों को सदा जकमी करते रहना और उनकी जान लेते रहना और जिसके मन में किसी भी प्राणी के लिये कोई दया न थी । उसके कारण जो पहले गांव थे, वे अब गांव नहीं रहे थे; जो पहले नगर थे, वे अब नगर नहीं रहे थे; जो पहले इलाके थे, वे अब इलाके नहीं रहे थे ।”

२. जिस किसी आदमी की भी वह हत्या करता था, वह उसको एक अंगुली काट कर अपनी माला में पिरो लेता था—इसलिये उसका नाम अंगुलिमाल पड़ा ।

३. एक समय जब भगवान् बुद्ध आवस्ती के जेतवनाराम में विराजमान थे, उन्होंने डाकू अंगुलिमाल के अत्याचारों की कहानी सुनी । तथागत ने उस डाकू को एक संत पुरुष में बदल देने का निश्चय किया । इसलिये एक दिन भोजनानन्तर, पात्र-चीवर धारण कर, जिधर अंगुलिमाल के होने की बात सुनी जाती थी, उधर ही चल दिये ।

४. उन्हें उधर जाते देख, भाले, बकरियां चराने वाले, हल खेतने वाले और दूसरे रास्ता चलने वाले सभी मुसाफिर चिल्ला उठे—“अमण ! उधर मत जा, अंगुलिमाल के हाथ में पड़ जायगा ।”

५. “जब दस, बीस, तीस और चालीस आदमी तक भी इकट्ठे मिलकर यात्रा करते हैं; तब भी वह उस डाकू के काबू में आ जाते हैं ।”

लेकिन तथागत बिना एक भी शब्द बोले अपने पथ पर आगे बढ़ते ही रहे ।

६. दूसरी और तीसरी बार भी उन आस-पास के लोगों ने तथा अग्य भी सभी लोगों ने तथागत को सावधान किया । किन्तु तथागत अपने पथ पर आगे बढ़ते ही गये ।

७. कुछ दूर से डाकू ने तथागत को उस ओर आगे बढ़ते जाते देखा । उसे बड़ा आश्चर्य हुआ । जब दस-बीस.....चालीस, पचास आदमी तक भी इकट्ठे मिल कर उस ओर आने का साहस नहीं करते, वह ‘अमण’ अकेला ही उस ओर आगे बढ़ा चला आ रहा है ! डाकू ने ‘अमण’ की हत्या करने का विचार किया ।

उसने अपनी डाल-तलवार ली, तीर और तूणीर संभाले और तथागत का पीछा किया।

८. तथागत अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़े चले जा रहे थे, किन्तु डाकू अपने घुरे जोर से उसका पीछा करने पर भी उनको पकड़ नहीं पा रहा था।

९. डाकू ने सोचा—“यह विचित्र बात है! यह अद्भुत बात है! अभी तक ऐसा था कि पूरी गति से भागे जाते हुए एक हाथी, एक घोड़े, एक गायी और एक हिरण तक को मैं पा ले सकता था, और अब मैं पूरा जोर लगा कर भी स्वाभाविक गति से जाते हुए इस श्रमण को भी नहीं पकड़ पा रहा हूँ।” तो वह रुक गया और उसने चिल्लाकर तथागत को भी कहा—“रुको।”

१०. जब दोनों मिले, तथागत ने कहा—“अंगुलिमाल! मैं तो रुका हूँ। अब तू भी पाप-कर्म करने से रुक। मैं इसीलिए यहाँ तक आया हूँ कि तू भी सत्यपथ का अनुगामी बन जायें। तेरे अन्दर का ‘कुशल’ अभी मरा नहीं है। यदि तू इसे केवल एक अवसर देगा तो यह तुम्हारी काया पलट देगा।”

११. अंगुलिमाल पर तथागत के वचनमृत का प्रभाव पड़ा। बोला—“आखिर इस मुनि ने मुझे जीत ही लिया।

१२. “और अब जब आपकी दिव्य वाणी मुझे हृषेश के लिये पाप-विरत होने को कह रही है, तो मैं इस अनुशासन को स्वीकार करने के लिये तैयार हूँ।”

१३. अंगुलिमाल ने अपने गले में से अंगुलियों की माला उतार कर दूर फेंक दी और तथागत के चरणों पर गिर कर ‘धर्म-वीक्षा’ की याचना की।

१४. देवताओं और मनुष्यों के शास्ता तथागत बोले—“भिक्षु! आ।” और अंगुलिमाल उसी समय “भिक्षु” बन गया।

१५. भिक्षु अंगुलिमाल को अपना अनुचर बनाकर तथागत व्याघ्रस्ती के जेतवनाराम को वापिस लौट गये। ठीक उसी समय राजा प्रसेनजित् के महल के आँगन में एक बड़ी भारी भीड़ चिल्ला-चिल्ला कर राजा से कह रही थी—“तुम्हारे राज्य में जो अंगुलिमाल डाकू है, वह बहुत अत्याचार कर रहा है, जुल्म डार रहा है, निर्दोष लोगों को जान से मार रहा है और उन्हें जफती बना रहा है। जिन लोगों को वह जान से मारता है, उनको अंगुलियों काट-काट कर वह माला में पिरो लेता है और उसे अभिमानपूर्वक धारण करता है। महाराज! उसका दमन करें।” प्रसेनजित् ने उसका मूलोच्छेद कर डालने का आवाहन दिया। लेकिन वह कुछ भी कर सकने में असमर्थ रहा।

१६. एक दिन राजा प्रसेनजित् तथागत के दर्शनार्थ जेतवन गया। तथागत ने प्रश्न किया—“राजन्! क्या मगध के नरेश सेनिय बिम्बिसार के साथ मामला कुछ गड़बड़ाया है या वैजाली के लिच्छवियों के साथ अथवा किसी अन्य विरोधी शक्ति के साथ?”

१७. “भगवान् ! इस प्रकार की तो कोई बात नहीं है । किन्तु मेरे राज्य में अंगुलिमाल नाम का एक डाकू रहता है, जो मेरी प्रजा को बहुत काट दे रहा है । मैं उसका दमन करना चाहता हूँ, किन्तु मैं असमर्थ सिद्ध हुआ हूँ ।”

१८. राजन् ! यदि आप अब देखें कि अंगुलिमाल के दाढ़ी-भूँछ मुण्डे हैं, उसने काषाय वस्त्र धारण कर रखा है, वह एक भिक्षु है, न वह किसी को मारता है, न चोरी करता है, न झूठ बोलता है, एकाहारी है और श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करता है—तो आप उससे कैसा व्यवहार करेंगे ?”

१९. “भगवान् ! या तो मैं उसे अभिवादन करूँगा, या उसके आगमन पर खड़ा हो जाऊँगा, या उसे बैठने का निमंत्रण दूँगा, या उसे चीवर तथा भिक्षुकी अन्य आवश्यकतायें स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करूँगा अथवा मैं उसकी रक्षा, सुरक्षा की व्यवस्था करूँगा—जिसका वह अधिकारी है । लेकिन इतना घुट और इतना पतित ऐसा मीलवान् हो ही कैसे सकता है ?”

२०. उस समय भिक्षु अंगुलिमाल भगवान् से नातिदूर ही थे । भगवान् ने अपना दाहिना हाथ निकाला और उसकी ओर संकेत करके कहा—“राजन् ! यह है अंगुलिमाल ।”

२१. राजा ने यह देखा तो वह जैसे मूँगा ही हो गया । उसके रोंगटे खड़े हो गये । यह देखा तत्प्रायः ने कहा—“राजन् ! भय मत मानें । यहाँ भय का कोई कारण नहीं ।”

२२. राजा का भय और चबराहट दूर हुई तो वह अंगुलिमाल के पास गया और बोला—“पूज्यवर ! क्या आप सन्मुख अंगुलिमाल हैं ?” राजन् ! हाँ !”

२३. “आपके पिता का क्या गोत्र था ? और आपकी माता का क्या गोत्र था ?” “राजन् ! मेरा पिता गार्ग्य था और मेरी माता मैत्रायणी ।”

२४. “गार्ग्य-मैत्रायणी-पुत्र ! प्रसन्न हो । मैं अब से आप की सब आवश्यकतायें पूरी करूँगा ।”

२५. उस समय अंगुलिमाल ने व्रत ले लिया था कि वह अरण्य में ही रहेगा, भिक्षु पर ही निर्वाह करेगा और तीन से अधिक चीवरों का व्यवहार नहीं करेगा और ये तीन चीवर भी पंखू-कृतिक होंगे अर्थात् कूड़े-कचरे के ढेर पर पड़े मिले हुए कपड़े के बने होंगे । उसने यह कहकर कि उसके तीन चीवर उसके पास हैं, राजा का निमंत्रण अस्वीकार कर दिया ।

२६. तब राजा भगवान् के पास गया और अभिवादन कर चुकने के अनन्तर एक ओर बैठ कर बोला—“भगवान् ! यह आश्चर्य है । यह अद्भुत है । आप जंगली को पालतू बना लेते हैं । अज्ञान्त को दान्त कर देते हैं । अशान्त को शान्त बना देते हैं । यही यह है जिसे मैं साठी-तलवार से बल में नहीं कर सका । लेकिन ! भगवान्

ने उसे बिना किसी लाठी-तलवार के बश में कर लिया है। भगवान् ! अब मैं आपसे विदा माँगता हूँ। मुझे बहुत से कार्य हैं।”

२७. “आप जिसका समय समझें।” तब राजा प्रसेनजित् अपने स्थान से उठा और अत्यन्त विनम्रतापूर्वक अभिवादन कर विदा हुआ।

२८. एक दिन जब पाचभीवर धारण किये अंगुलिमान आवस्ती में भिषाटन कर रहा था, एक आवस्ती ने उसके सिर पर डेला फेंक कर मारा, दूसरे ने एक डण्डा फेंक कर मारा और तीसरे ने एक ठीकरा फेंक कर मारा। सिर से रक्त बहने लगा। भिक्षा-पात्र टूट गया। वस्त्र फट गये। ऐसी ही अवस्था में अंगुलिमान भगवान् बुद्ध के पास पहुँचा। वह समीप आया तो भगवान् बुद्ध ने कहा—“अंगुलिमान ! यह सब सहन कर। अंगुलिमान ! यह सब सहन कर।”

२९. इस प्रकार भगवान् बुद्ध की शिष्याओं को अंगीकार करने से अंगुलिमान डाकू एक सन्त पुरुष बन गया।

३०. मुक्ति-मुख का आनन्द लेते हुए उसने कहा—“जो पहले प्रमादी रहकर भी बाद में अप्रमादी हो जाता है, वह बादलों से मुक्त चन्द्रमा की तरह लोक को प्रकाशित कर देता है।”

३१. “मेरे शत्रु भी इस शिक्षा को सोखें, इस मत को मानें और प्रज्ञा के पथ को अंगीकार करें। मेरे शत्रु भी समय रहते मैत्री, विनम्रता और जया-शीलता की शिक्षा ग्रहण करें। वे तदनुसार आचरण करें।

३२. “अंगुलिमान के रूप में मैं पतनोन्मुख था, मेरी अधोगति थी, मैं धारा में नीचे की ओर बहा जा रहा था। तथागत ने मुझे स्थल पर साकर खड़ा कर दिया। अंगुलिमान के रूप में मैं खून रंगे हाथ वाला था; अब मैं सम्पूर्ण रूप से मुक्त हूँ।”

३. दूसरे अपराधियों की धर्म-वीक्षा

१. राजसूह के दक्षिण की ओर एक बड़ा पर्वत था—नगर से कोई पचहत्तर मील।

२. इस पर्वत में से होकर एक दर्रा जाता था—बड़ा गहरा और बड़ा सूना। दक्षिण-भारत का रास्ता इसी दर्रे में से होकर गुजरता था।

३. इस लंग दर्रे में पाँच सौ डाकू रहते थे, जो इस दर्रे में से गुजरने वाले राहियों को लूट-मार करते थे।

४. राजा ने उनका दमन करने के लिये सेनाएँ भेजीं। लेकिन हर बार वे बच निकलते थे।

५. क्योंकि बुद्ध इस स्थान से बहुत दूर नहीं थे, इसलिये उन्होंने उन लोगों की स्थिति पर विचार किया। उन्होंने सोचा कि वे लोग यह भी नहीं जानते हैं कि

इनका आचरण दुराचरण है। यद्यपि इन्हीं जैसे लोगों को शिक्षित करने के लिये मैंने जन्म धारण किया है, तब भी न तो इन लोगों ने मुझे देखा है और न मेरी सीख सुनी है। तथागत ने उनके पास पहुँचने का निश्चय किया।

६. उन्होंने एक धनी घुड़-सवार का रूप बनाया और एक अच्छे घोड़े पर सवार हुए। कंधे पर धनुष और तलवार थी, खर्जों में सोना-चाँदी भरा था और घोड़े की सगाम आदि को कीमती जवाहरात जड़े थे।

७. उस तंग दर्रे में प्रवेश करने पर घोड़ा और से हिनहिनाया। उसकी आवाज सुनकर पाँच सौ डाकू उठ खड़े हुए और उस घुड़सवार को देखकर बोले—“हमें लूटने के लिये इतना माल एक साथ कभी नहीं मिला। इसे हम पकड़ें।”

८. उन्होंने घुड़सवार को घेर लेना चाँहा ताकि वह बचकर भाग न जाय, लेकिन उसे देखकर वह जमीन पर गिर पड़े।

९. जब वे जमीन पर गिरे तो सभी चिल्लाने लगे—“हे भगवान्! यह क्या है? हे भगवान्! यह क्या है?”

१०. तब उस घुड़सवार ने उन्हें समझाया कि उस दुःख के मुकाबले में, जो सारे संसार को घेरे हुए है तुम जो दूसरों को दुःख देते हो और स्वयं उठाते हो, कुछ नहीं; और इसी प्रकार अंधड़ा और चिकित्सा की चोट के सामने वह चोट जो स्वयं खाते हो और दूसरों को पहुँचाते हो, वह भी कुछ नहीं। धर्म-देवता के प्रति पूरी एकाग्रता ही इन जस्मों को भर सकती है।

११. मानसिक दुःख के समान कोई जस्म नहीं। मूर्खता के समान कोई बुझने वाला तीर नहीं। धर्म-शिक्षा ही इनकी चिकित्सा है। इसी से अंधों को आँख मिलती है और अज्ञानियों को ज्ञान मिलता है।

१२. आदमी इसी प्रकार के पीछे-पीछे चलते हैं, जैसे अंधों को आँख मिल गई हो।

१३. इससे अंधड़ा का नाश होता है, वह मानसिक दुःख को दूर करता है, इससे प्रीति प्राप्त होती है, और यह विमल-प्रज्ञा उसी को प्राप्त होती है जो ध्यान से (धर्मोपदेश) सुनता है।

१४. जिसने सबसे अधिक पुण्य प्राप्त किया है, वही इस पद का अधिकारी है।

१५. वह सुना तो डाकूओं ने अपने दुष्कृत्यों पर पश्चात्ताप किया। उनके शरीर में जो तीर लगे थे, वे अपने आप निकल आये, और उनके जस्म भर गये।

१६. तब वे श्वाक बन गये। उन्हें शान्ति प्राप्त हो गई।

४. धर्म-बोधा में खतरा

१. पुराने समय में भगवान् बुद्ध राजगृह से कोई पौने दो सौ मील की दूरी

पर पर्वतों से भरे एक प्रदेश में रहते थे। इन पर्वतों में कोई १२२ आदिमियों का एक गिरोह रहता था, जो जानवरों को मार कर उनके मांस से ही अपना काम चलाता था।

२. बुद्ध वहाँ पहुँचते हैं और जिस समय पुरुष बाहर शिकार खेलने गये हुए थे, उनकी अनुपस्थिति में उनकी स्त्रियों को धर्म-दीक्षित कर देते हैं। तदनन्तर वे कहते हैं—

३. जो दयावान् है वह किसी प्राणी की हत्या नहीं करता, वह प्राणियों के जीवन को सुरक्षित रखता है।

४. धर्म अमर है। जो धर्मानुसार आचरण करता है, उसे किसी आपत्ति का सामना नहीं करना पड़ता।

५. 'विनम्रता, सांसारिक भोगों के प्रति उपेक्षा, किसी को कष्ट न पहुँचाना, किसी को क्रोधित नहीं करना—यह ब्रह्मलोकवासियों के लक्षण हैं।

६. दुर्बलों के प्रति सदा मैत्री, बुद्ध की शिक्षा के अनुसार निर्मलता, पर्याप्त खा चुकने पर भोजन की मात्रा की जानकारी—यह सब बार-बार जन्म लेने और मरने से छूटने के साधन हैं।

इन बुद्ध वचनों को सुनकर स्त्रियाँ अपने घर वालों की अनुपस्थिति में ही बुद्ध के धर्म में दीक्षित हो गईं। जब उनके पुरुष लौटे तो वे बुद्ध को मार ही डालना चाहते थे, किन्तु उनकी स्त्रियों ने रोक लिया। बाद में मैत्री-मूक्त के पदों को सुन वे भी धर्म-दीक्षित हो गये।

७. और तब भगवान् बुद्ध ने ये पंक्तियाँ भी कहीं:—

८. जो मैत्री-भावना का अभ्यास करता है और सबके प्रति दयालु रहता है उसे ग्यारह लाभ होते हैं।^१

९. उसका शरीर सदा सुखी रहता है, वह हमेशा मीठी नींद सोता है, उसका चित्त एकाग्र रहता है।

१०. उसे दुःस्वप्न नहीं आते। उसकी देवता भी रक्षा करते हैं। वह आदिमियों का प्रिय होता है। उसे विषैले जीवों का खतरा नहीं होता। वह युद्ध-कष्ट से बचा रहता है। अग्नि या जल से उसकी हानि नहीं होती।

११. वह जहाँ भी रहता है (अपने कार्य में) सफल होता है। मरने पर ब्रह्मलोकगामी होता है, ये ग्यारह लाभ (= आनिसस) हैं।^२

१२. इन वचनों का उपदेश ग्रहण कर चुकने पर, स्त्रियों तथा पुरुषों ने—सभी ने—धर्म-दीक्षा ग्रहण की। वे संघ में सम्मिलित हो गये। और उन्होंने शान्ति-लाभ की।

१. अंगुलिमाल सुत्त (मज्झिम निकाय २।४।६)।

२. अंगुत्तर निकाय।

तृतीय काण्ड

बुद्ध ने क्या सिखाया ?

१. पहला भाग—धर्म में भगवान् बुद्ध का अपना स्थान ।
२. भगवान् बुद्ध के धर्म के बारे में विविध मत ।
३. धर्म क्या है ?
४. अ-धर्म क्या है ?
५. सद्वर्तन क्या है ?

संग्रह इतिहास

विष्णुशर्मा द्वारा संकलित

१. प्रथम भाग : १९०८ ई. में प्रकाशित ।

२. द्वितीय भाग : १९१० ई. में प्रकाशित ।

३. तृतीय भाग : १९१२ ई. में प्रकाशित ।

४. चतुर्थ भाग : १९१४ ई. में प्रकाशित ।

५. पंचम भाग : १९१६ ई. में प्रकाशित ।

प्रथम भाग

‘धर्म’ में भगवान बुद्ध का अपना स्थान

१. भगवान बुद्ध ने अपने धर्म में, अपने लिये कुछ भी विशेष स्थान नहीं रखा ।

१. ईसा ने ईसाइयत का पैगम्बर होने का दावा किया ।

२. इससे आगे उसने यह भी दावा किया कि वह खुदा का बेटा है ।

३. ईसा ने यह भी कहा कि जब तक कोई आदमी यह न स्वीकार करे कि ईसा खुदा का बेटा है, तब तक उसकी मुक्ति हो ही नहीं सकती ।

४. इस प्रकार ईसा ने किसी भी ईसाई की मुक्ति के लिये अपने आप को ईश्वर का पैगम्बर और बेटा मानने की अनिवार्य शर्त रखकर, ईसाइयत में अपने लिये एक खास स्थान सुरक्षित कर लिया ।

५. इस्लाम के पैगम्बर मुहम्मद साहब का दावा था कि वह खुदा द्वारा भेजे गये इस्लाम के पैगाम-बर थे ।

६. उनका यह भी दावा था कि कोई आदमी निजात (= मुक्ति) लाभ नहीं कर सकता जब तक वह ये दो बातें और न स्वीकार करे ।

७. जो इस्लाम में रहकर मुक्ति-लाभ करना चाहता हो, उसे यह स्वीकार करना होगा कि मुहम्मद साहब खुदा के पैगम्बर हैं ।

८. जो इस्लाम में रहकर मुक्ति-लाभ करना चाहता हो, उसे आगे यह भी स्वीकार करना होगा कि मुहम्मद साहब खुदा के आखिरी पैगम्बर थे ।

९. इस प्रकार इस्लाम में मुक्ति केवल उन्हीं के लिये सम्भव है जो ऊपर की दो बातें स्वीकार करें ।

१०. इस तरह मुहम्मद साहब ने किसी भी मुसलमान की मुक्ति अपने को खुदा का पैगम्बर मानने की अनिवार्य शर्त पर निर्भर करके अपने लिये इस्लाम में एक खास स्थान सुरक्षित कर लिया ।

११. भगवान् बुद्ध ने कभी कोई ऐसी शर्त नहीं रखी ।

१२. उन्होंने श्रुतीधन और महामाया का प्राकृतिक-पुत्र होने के अतिरिक्त कभी कोई दूसरा दावा नहीं किया ।

१३. उन्होंने ईसा मसीह या मुहम्मद साहब की तरह की शर्तें लगाकर अपने धर्म-शासन में अपने लिये कोई खास स्थान सुरक्षित नहीं रखा ।

१४. यही कारण है कि इतना बाहुमय रहते हुए भी हमें बुद्ध के व्यक्तिगत जीवन के बारे में इतनी कम जानकारी है ।

१५. जैसा ज्ञात ही है कि भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के अनन्तर राजगृह में प्रथम संगीति (काण्ठेस) हुई थी ।

१६. उस संगीति में महाकाश्यप अध्यक्ष थे । आनन्द, उपालि और अन्य दूसरे लोग, जो कपिलवस्तु के ही थे, जो जहाँ-जहाँ वे गये प्रायः हर जगह उनके साथ थे, धूमे और मृत्पु-पर्यन्त साथ रहे, वहाँ उपस्थित थे ।

१७. लेकिन अध्यक्ष महाकाश्यप ने क्या किया ?

१८. उन्होंने आनन्द को "धर्म" का संगायन करने के लिये कहा और तब 'संगीति-कारकों' से पूछा कि "क्या यह ठीक है ?" उन्होंने "हाँ" में उत्तर दिया । महाकाश्यप ने तब प्रश्न को समाप्त कर दिया ।

१९. तब महाकाश्यप ने उपालि को "विनय" का संगायन करने के लिये कहा और 'संगीति-कारकों' से पूछा कि "क्या यह ठीक है ?" उन्होंने "हाँ" में उत्तर दिया । महाकाश्यप ने तब प्रश्न समाप्त कर दिया ।

२०. तब महाकाश्यप को चाहिये था कि वह किसी तीसरे को जो संगीति में उपस्थित था, आज्ञा देते कि वह भगवान् बुद्ध के जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं का संगायन करे ।

२१. लेकिन महाकाश्यप ने ऐसा नहीं किया । उन्होंने सोचा कि "धर्म" और "विनय"—यही दो विषय ऐसे हैं जिनसे संघ का सरोकार है ।

२२. यदि महाकाश्यप ने भगवान् बुद्ध के जीवन की घटनाओं का व्योरा तैयार करा लिया होता, तो आज हमारे पास भगवान् बुद्ध का एक पूरा जीवन-चरित्र होता ।

२३. भगवान् बुद्ध के जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं का एक व्योरा तैयार करा लेने की बात महाकाश्यप को क्यों नहीं सूझी ?

२४. इसका कारण उपेक्षा नहीं हो सकती । इसका केवल एक ही उत्तर है कि भगवान् बुद्ध ने अपने 'धर्म-शासन' में अपने लिये कोई विशेष स्थान सुरक्षित नहीं रखा था ।

२५. भगवान् बुद्ध अपने धर्म से सर्वथा पृथक् थे । उनका अपना स्वातन्त्र्य था; धर्म का अपना ।

२६. भगवान् बुद्ध ने किसी को अपना उत्तराधिकारी बनाने से इनकार किया, यह भी इस बात का उदाहरण या प्रमाण है कि वह अपने 'धर्म-शासन' में अपने लिये कोई स्थान सुरक्षित रखना नहीं चाहते थे ।

२७. दो तीन बार भगवान् बुद्ध के अनुयायियों ने उनसे प्रार्थना की कि वे किसी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दें।

२८. हर बार भगवान् बुद्ध ने अस्वीकार किया।

२९. उनका उत्तर था, "धर्म ही धर्म का उत्तराधिकारी है।

३०. "धर्म को अपने ही तेज से जीवित रहना चाहिये; किसी मानवीय अधिकार के बल से नहीं।

३१. "यदि धर्म को मानवीय अधिकार पर निर्भर रहने की आवश्यकता है, तो वह धर्म नहीं।

३२. "यदि धर्म की प्रतिष्ठा के लिये हर बार इसके संस्थापक का नाम रटते रहने की आवश्यकता है, तो वह धर्म नहीं।"

३३. अपने धर्म को लेकर स्वयं अपने बारे में भगवान् बुद्ध का यही दृष्टिकोण था।

२. भगवान् बुद्ध ने कभी किसी को मुक्त करने का आश्वासन नहीं दिया। उन्होंने कहा कि वे मार्ग-दाता हैं, मोक्ष-दाता नहीं

१. बहुत से धर्म "इल्हामी-धर्म" माने जाते हैं। भगवान् बुद्ध का धर्म "इल्हामी धर्म" नहीं।

२. कोई धर्म "इल्हामी धर्म" इसी लिये कहलाता है कि वह भगवान् का 'संदेश' वा 'पैगाम' समझा जाता है ताकि, वे अपने रचयिता की पूजा करें कि वह उनकी आत्माओं को मुक्त करें।

३. अक्सर यह पैगाम किसी चुने हुए व्यक्ति के द्वारा प्राप्त माना जाता है, जो पैगाम-वर कहलाता है, जिसे यह पैगाम प्राप्त होता है और जो फिर उस पैगाम को लोगों तक पहुंचाता है।

४. यह पैगम्बर का काम है कि जो उसके धर्म पर ईमान लाने वाले हों, उनके लिये मोक्ष लाभ निश्चित कर दे।

५. जो धर्म पर ईमान लाते हैं, उनकी मुक्ति का मतलब है, उनकी रूहों की निजात, ताकि वे अब दोहल में न जा सकें, लेकिन उसके लिये शर्त है कि उन्हें खुदा के हुक्मों की तामील करनी होगी और यह स्वीकार करना होगा कि पैगम्बर खुदा का पैगाम-वर है।

६. बुद्ध ने कभी भी अपने को 'खुदा का पैगाम-वर' होने का दावा नहीं किया। यदि कभी किसी ने ऐसा समझा तो भगवान् बुद्ध ने उसका खण्डन किया।

७. इसमें भी बड़ी महत्वपूर्ण बात यह है कि भगवान् बुद्ध का धर्म एक आविष्कार (discovery) है, एक खोज है। इसलिये ऐसे किसी धर्म से जो "इल्हामी" कहा जाता है, इसका भेद पूरी-पूरी तरह स्पष्ट हो जाना चाहिये।

८. भगवान् बुद्ध का धर्म इन अर्थों में एक आविष्कार है या एक खोज है क्योंकि यह पृथ्वी पर जो मानवीय-जीवन है उसके गम्भीर अध्ययन का परिणाम है, और जिन स्वाभाविक-प्रवृत्तियों (instincts) को लेकर आदमी ने जन्म ग्रहण किया है उन्हें पूरी-पूरी तरह समझ लेने का परिणाम है, और साथ ही उन प्रवृत्तियों को भी जिन्हें आदमी के इतिहास ने जन्म दिया है और जो अब उसके विनाश का कारण बनी हुई हैं।

९. सभी पैगम्बरों ने "मुक्तिदाता" होने का दावा किया है। भगवान् बुद्ध ही एक ऐसे महापुरुष हुए हैं जिन्होंने इस प्रकार का कोई दावा नहीं किया। उन्होंने 'मोक्ष-दाता' को 'मार्ग-दाता' से सर्वथा पृथक् रखा है—एक तो 'मोक्ष' देने वाला दूसरा केवल उसका 'मार्ग' बता देने वाला।

१०. भगवान् बुद्ध केवल मार्ग-दाता थे। अपनी मुक्ति के लिये हर किसी को स्वयं अपने आप ही प्रयास करना होता है।

११. उन्होंने इस एक मुक्त में ब्राह्मण मोग्गल्लान को यह बात सर्वथा स्पष्ट कर दी थी।^१

१२. एक बार भगवान् बुद्ध व्यावस्ती में मिगारमाता के प्रासाद पूर्वाराम में ठहरे हुए थे।

१३. उस समय ब्राह्मण मोग्गल्लान गणक तबायत के पास जाया और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया। इस प्रकार बैठकर ब्राह्मण मोग्गल्लान गणक ने तबायत से कहा:—

१४. "श्रमण गौतम! जिस प्रकार किसी भी आदमी को इस प्रासाद का परिचय क्रमशः प्राप्त होता है, एक क्रम के अनुसार एक के बाद दूसरा, यहाँ तक कि आदमी ऊपर की अंतिम सीढ़ी तक जा पहुँचता है। इसी प्रकार हम ब्राह्मणों का शिक्षा-क्रम भी क्रमिक है, क्रमशः है; अर्थात् हमारे देवों के अध्ययन में।

१५. "श्रमण गौतम! जैसे धनुर्विद्या में, उसी प्रकार हम ब्राह्मणों में शिक्षा-क्रम क्रमिक है, क्रमशः है, जैसे गणना में।

१६. "अब हम विद्यार्थी को लेते हैं तो हम उसे गणना सिखाते हैं, 'एक एक, दो दोनी (चार), तीन तिया (नौ), चार चौके (सोलह) और इसी प्रकार सी तक।' अब श्रमण गौतम! क्या आपके लिये भी यह असम्भव है कि आप ऐसे भी शिक्षण-क्रम का परिचय दे सकें जो क्रमिक हो, जो क्रमशः हो और जिसके अनुसार आपके अनुयायी शिक्षा ग्रहण करते हों?"

१७. "ब्राह्मण! यह ऐसा ही है। ब्राह्मण! एक चतुर अश्व-शिक्षक को

ही लो। वह एक श्रेष्ठ बछेड़े को हाथ में लेता है। सबसे पहले वह उस के मुँह में लगाम लगाकर उसे साधता है। फिर धीरे-धीरे दूसरी बातें सिखाता है।

१८. "इसी प्रकार हे ब्राह्मण ! जो शिक्षाकामी है, ऐसे आदमी को तत्प्राप्त लेते हैं और सर्वप्रथम वही शिक्षा देते हैं कि भीलवान रहो... प्रातिमोक्ष के नियमों का पालन परो।

१९. "सदाचरण में दृढ़ हो जाओ, छोटे-छोटे दोषों को भी बड़ा समझो, शिक्षा ग्रहण करो और विनय में एक्के हो जाओ।

२०. "जब वह इस प्रकार शिक्षा में दृढ़ हो जाता है तो तत्प्राप्त उसे अगला पाठ देते हैं, धम्मण ! आओ आँख से किसी रूप को देखकर उसके सामान्य स्वरूप वा उसके ब्योरे से आकर्षित न होओ।

२१. "उस प्रवृत्ति पर काबू रखो, जो तृष्णा का परिणाम है, जो असंयत होकर चक्षु-इन्द्रिय से रूप देखने से उत्पन्न होती है, ये कु-प्रवृत्तियाँ, ये चित्त की अकुशल अवस्थायें आदमी पर बाढ़ की तरह काबू पा लेती हैं। चक्षु-इन्द्रिय को संयत रखो। चक्षु-इन्द्रिय को काबू में रखो।

२२. "और इसी प्रकार दूसरी इन्द्रियों के विषय में भी सावधान रहो। जब तुम कान से कोई शब्द सुनो या नाक से कोई गन्ध सूँघो, या जिह्वा से कोई नीब चखो, या शरीर से किसी का स्पर्श करो, और जब तुम्हारे मन में तत्सम्बन्धी संज्ञा पैदा हो तो उस वस्तु के सामान्य स्वरूप अथवा उसके ब्योरे से आकर्षित मत हो।

२३. "ज्यों ही वह उसका पूर्ण अभ्यास कर लेता है, तो तत्प्राप्त उसे अगला पाठ देते हैं : धम्मण ! आओ ! भोजन के विषय में मात्राग्र हो, न खेत के लिये, न मृद के लिए, न शरीर को सजाने के लिये, बल्कि जब तक इस शरीर की स्थिति है तब तक इसे स्थिर बनाये रखने, विहिंसा से घने रहने के लिये तथा श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने के लिये ही भोजन ग्रहण करो। भोजन ग्रहण करते समय मन में यह विचार रहना चाहिये कि मैं पहले की वेदना का नाश कर रहा हूँ, नई वेदना नहीं उत्पन्न होने दे रहा हूँ... मेरी जीवन-यात्रा निर्दोष होगी और सुख-पूर्ण होगी।"

२४. "ब्राह्मण ! जब वह भोजन के विषय में संयत हो जाता है, तब तत्प्राप्त उसे अगला पाठ पढ़ाते हैं : धम्मण ! आओ ! जागरूकता (= सति) का अभ्यास करो। दिन के समय, चलते हुए वा बैठे-बैठे अपने चित्त को चित्त-मलों से परिशुद्ध करो। रात के पहले पहर में भी चलते-फिरते रहकर वा एक जगह बैठकर ऐसा ही करो। रात के दूसरे पहर में सिंह-सीया से, बाहिनी करबट सेट जाकर एक पैर को दूसरे पाँव पर रखे हुए, जागरूकता तथा सम्यक् जानकारी से युक्त, अप्रमादरत। तब रात के तीसरे पहर में जागकर चलते हुए वा बैठे-बैठे अपने चित्त को चित्तमलों से परिशुद्ध करो।

२५. "और ब्राह्मण ! जब वह जागरूकता का अभ्यासी हो जाता है, तो

तथागत उसे अनला पाठ देते हैं : भ्रमण ! जाओ जागरुकता और स्मृति (=सम्पर्क जानकारी) से युक्त हो। आगे चलते हुए या पीछे हटते हुए—अपने आपको संयत रखो। आगे देखते हुए, पीछे देखते हुए, झुकते हुए, मिथिल होते हुए, चोबर धारण करते हुए, पाव-नीबर ले जाते हुए, खाते हुए, चबाते हुए, चलते हुए, सोच जाते हुए, चलते हुए, खड़े होते हुए, बैठते हुए, लेटते हुए, सोते हुए, जागते हुए, सोलते हुए या सोन रहते हुए, स्मृति सम्पर्क जानकारी से युक्त हो।

२६. “ब्राह्मण ! जब वह आत्म-संयमी हो जाता है तब तथागत उसे अगती शिक्षा देते हैं : भ्रमण ! जाओ किसी एकान्त-स्थान को लौओ—चाहे वन हो, चाहे किसी वृक्ष की छाया हो, चाहे कोई पर्वत हो, चाहे किसी पर्वत की मुष्ठा हो, चाहे श्मशान भूमि हो, चाहे वन-मुल्ल हो, चाहे खुला आकाश हो और चाहे कोई पुसाज का डेर हो। और वह बैसा करता है। तब वह भोजनान्तर, पालपी लगाकर बैठता है और शरीर को सीधा रख चारों-ध्यानों का अभ्यास करता है।

२७. “ब्राह्मण ! जो अभी शैथ है, जो अभी अशैथ नहीं हुए है, जो अभी अशैथ होने के लिये प्रयत्न-शील है, उनके लिये मेरा यही शिक्षा-क्रम है।

२८. “लेकिन जो अहंत-पद प्राप्त हैं, जो अपने आसनों का वष कर चुके हैं, जो अपने जीवन का उद्देश्य पूरा कर चुके हैं, जो कृत्कृत्य हैं, जो अपने सिर का भार उतार चुके हैं, जो मुक्ति-प्राप्त हैं, जिन्होंने भक्त-वन्धनों का मूलोच्छेद कर दिया है और जो प्रज्ञा-विमुक्त हैं, ऐसों के लिये उपरोक्त श्रेष्ठ जीवन सुख-विहार भर के लिये है और जागरुकता-युक्त जीवन आत्म-संयम मात्र के लिये।”

२९. जब यह कहा जा चुका तब ब्राह्मण मोग्गल्लान गणक ने तथागत से कहा—

३०. “भ्रमण गौतम ! मुझे यह तो बतावें कि क्या आप के सभी शिष्य निर्वाण प्राप्त करते हैं, अथवा कुछ नहीं भी कर पाते ?”

३१. “ब्राह्मण ! इस क्रम से शिक्षित मेरे कुछ श्रावक निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं, कुछ नहीं भी कर पाते हैं।”

३२. “भ्रमण गौतम ! इसका क्या कारण है ? भ्रमण गौतम ! इसका क्या हेतु है ? वहाँ निर्वाण है। यहाँ निर्वाण का मार्ग है। और यहाँ श्रवण-गौतम जैसा योग्य पक्ष-प्रदर्शक है। तो फिर क्या कारण है कि इस क्रम से शिक्षा-प्राप्त कुछ श्रावक निर्वाण प्राप्त करते हैं, कुछ नहीं करते हैं ?”

३३. “ब्राह्मण ! मैं तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर दूँगा। लेकिन पहले तुम जैसा तुम्हें लगे, वैसा मेरे इस प्रश्न का उत्तर दो। ब्राह्मण ! अब यह बतावें कि क्या तुम राजगृह आने-जाने का मार्ग अच्छी तरह जानते हो ?”

३४. "धम्म गौतम ! मैं निश्चय से राजगृह आने-जाने का मार्ग अच्छी तरह जानता हूँ ।"

३५. [अब कोई एक आदमी जाता है और राजगृह जाने का मार्ग पूछता है ।] लेकिन उसे जो रास्ता बताया जाता है, उसे छोड़कर वह दूसरा रास्ता पकड़ लेता है, वह गलत-मार्ग पर चल देता है, पूर्व की बजाय पश्चिम की ओर चल देता है ।

३६. "तब एक दूसरा आदमी जाता है और वह भी रास्ता पूछता है और तुम उसे भी ठीक-ठीक वैसे ही रास्ता बता देते हो । वह तुम्हारे बताये रास्ते पर चलता है और समुत्तम राजगृह पहुँच जाता है ?"

३७. ब्राह्मण बोला—“तो मैं क्या करूँ, मेरा काम रास्ता बता देना है ।"

३८. भगवान् बुद्ध बोले—“तो ब्राह्मण ! मैं भी क्या करूँ, तथागत का काम भी केवल रास्ता बता देना है ।"

३९. यहाँ यह सम्पूर्ण और सुस्पष्ट कथन है कि तथागत किसी को मुक्ति नहीं देते, वे केवल मुक्ति-पथ के प्रदर्शक हैं ।

४०. और फिर मुक्ति या निजात कहते किसे हैं ?

४१. हजरत मुहम्मद तथा ईसामसीह के लिये मुक्ति या निजात का मतलब है पैगम्बर की मध्यस्थता के कारण क़ह का दोषख जाने से बच जाना ।

४२. बुद्ध के लिये 'मुक्ति' का मतलब है 'निर्वाण' और 'निर्वाण' का मतलब है राग-द्वेष की आग का बुझ जाना ।

४३. ऐसे धर्म में 'मुक्ति' का आशवासन या वचन-बढ़ता हो ही कैसे सकती है ?

३. बुद्ध ने अपने या अपने शासन के लिए किसी प्रकार की 'अपौरुषेयता' का दावा नहीं किया । उनका धर्म मनुष्यों के लिये एक मनुष्य द्वारा आविष्कृत धर्म था । यह 'अपौरुषेय' नहीं था

१. प्रत्येक धर्म के संस्थापक ने या तो अपने को 'ईश्वरीय' कहा है, या अपने 'धर्म' को ।

२. हजरत मूसा ने यद्यपि अपने को 'ईश्वरीय' नहीं कहा, किन्तु अपनी शिक्षाओं को 'ईश्वरीय' कहा है । उसने अपने अनुयायियों को कहा कि यदि उन्हें 'खीर और मधु' के मुल्क में पहुँचना है तो उन्हें उन शिक्षाओं को स्वीकार करना पड़ेगा, क्योंकि वे 'ईश्वरीय' हैं ।

३. ईसा ने अपने 'ईश्वरीय' होने का दावा किया। उसने दावा किया कि 'ईश्वर-पुत्र' था। स्वाभाविक तौर पर उसकी शिष्यायें भी 'ईश्वरीय' हो गईं।

४. कृष्ण ने तो अपने आपको 'ईश्वर' ही कहा और अपनी शिष्याओं को 'भगवान का वचन'।^१

५. तथागत ने न अपने लिये और न अपने धर्म-शासन के लिए कोई ऐसा दावा किया।

६. उनका दावा इतना ही था कि वे भी बहुत से मनुष्यों में से एक हैं और उनका संदेश एक आदमी द्वारा दूसरे को दिया गया सन्देश है।

७. उन्होंने कभी यह भी दावा नहीं किया कि उनकी कोई बात गलत हो ही नहीं सकती।

८. उनका दावा इतना ही था कि जहाँ तक उन्होंने समझा है उनका पथ मुक्ति का सत्य-मार्ग है।

९. क्योंकि इसका आधार संसार भर के मनुष्यों के जीवन का व्यापक अनुभव है।

१०. उन्होंने कहा कि हर किसी को इस बात की स्वतन्त्रता है कि वह इसके बारे में प्रश्न पूछे, परीक्षण करे और देखे कि यह सन्मार्ग है या नहीं?

११. धर्म के किसी भी दूसरे संस्थापक ने अपने धर्म को इस प्रकार परीक्षण की कसौटी पर कसने का खुला चैलेंज नहीं दिया।

१. गणक भोग्गल्लान-सुत्त (१०७)।

२. वेदो भगवद्गीता—४।६।

दूसरा भाग

भगवान् बुद्ध के धर्म के बारे में विविध मत

१. दूसरों ने उनके धर्म को किस प्रकार समझा ?

१. "भगवान् बुद्ध की यथार्थ शिक्षायें कौन सी हैं ?"
२. यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर बुद्ध के कोई दो अनुयायी अथवा बुद्ध-धर्म के कोई दो विद्यार्थी एकमत नहीं प्रतीत होते ।
३. कुछ के लिये 'समाधि' ही उनकी खास शिक्षा है ।
४. कुछ के लिये 'विपश्यना' ही है ।
५. कुछ के लिये बुद्ध-धर्म चन्द विशेष रूप से दीक्षित लोगों का धर्म है । कुछ के लिये यह बहुत लोगों का धर्म है ।
६. कुछ के लिये इसमें शुद्ध दार्शनिकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं ।
७. कुछ के लिये यह केवल रहस्यवाद है ।
८. कुछ के लिये यह संसार से स्वार्थ-पूर्ण पलायन है ।
९. कुछ के लिये यह हृदय की प्रत्येक छोटी-बड़ी भावनाओं को दफना देने का अत्यन्त शक्तिशाली साधन है ।
१०. बुद्ध-धर्म के सम्बन्ध में और भी नाना मतों का संग्रह किया जा सकता है ।
११. इन मतों का परस्पर विरोध आवश्यकजनक है ।
१२. इनमें से कुछ मत तो ऐसे लोगों के हैं जिनके मन में किसी खास एक बात के लिये विरोध आकर्षण है । ऐसे ही लोगों में से कुछ समझते हैं कि बुद्ध-धर्म का सार, समाधि या विपश्यना में अथवा चन्द दीक्षित लोगों का धर्म होने में है ।
१३. कुछ दूसरे मतों का कारण यह है कि बुद्ध-धर्म के बारे में लिखने वाले अनेक लोग प्राचीन भारतीय इतिहास के परिचित हैं । उनका बौद्ध-धर्म का अध्ययन आकस्मिक है और इतिहास से सम्पर्क रहने के ही कारण है ।
१४. उनमें से कुछ बुद्ध-धर्म के विद्यार्थी हैं ही नहीं ।
१५. वे नृवृक्ष-शास्त्र के विद्यार्थी भी नहीं; वह शास्त्र जो धर्म की उत्पत्ति और विकास से भी सम्बद्ध है ।

१६. प्रश्न पैदा होता है कि क्या भगवान् बुद्ध का कोई सामाजिक संदेश था वा नहीं ?

१७. जब उत्तर देने के लिये खोर बासा जाता है तो बुद्ध-धर्म के पण्डित प्रायः दो बातों पर विशेष बल देते हैं। वे कहते हैं—

१८. भगवान् बुद्ध ने अहिंसा की शिक्षा दी थी।

१९. भगवान् बुद्ध ने शान्ति की शिक्षा दी थी।

२०. प्रश्न है—“क्या बुद्ध ने कोई दूसरा सामाजिक संदेश दिया ?

२१. “क्या बुद्ध ने ‘म्याम’ की शिक्षा दी ?”

२२. “क्या बुद्ध ने ‘मैत्री’ की शिक्षा दी ?”

२३. “क्या बुद्ध ने ‘स्वतन्त्रता’ की शिक्षा दी ?”

२४. “क्या बुद्ध ने ‘समानता’ की शिक्षा दी ?”

२५. “क्या बुद्ध ने ‘भ्रातृभाव’ की शिक्षा दी ?”

२६. “क्या बुद्ध कालं मार्क्स के मुकाबले पर खड़े हो सकते हैं ?”

२७. बुद्ध-धर्म का विचार करते समय इन प्रश्नों को प्रायः कभी उठाया ही नहीं जाता।

२८. मेरा उत्तर है कि भगवान् बुद्ध का एक सामाजिक संदेश है। इनका सामाजिक संदेश इन सब प्रश्नों का उत्तर है। लेकिन उन सब प्रश्नों के उत्तरों को आधुनिक लेखकों ने दफना दिया है।

२. भगवान् बुद्ध का अपना वर्गीकरण

१. भगवान् बुद्ध ने धर्म का अपने ढंग का वर्गीकरण किया है।

२. पहला वर्ग ‘धर्म’ है।

३. उन्होंने एक दूसरा वर्ग माना है, जो यद्यपि ‘धर्म’ शब्द के अन्तर्गत ही ग्रहण किया जाता है, किन्तु जो वास्तव में ‘अधर्म’ है।

४. उन्होंने एक तीसरा वर्ग माना है जिसे उन्होंने ‘सद्धर्म’ कहा है।

५. तीसरा वर्ग ‘धर्म के दर्शन’ के लिये है।

६. भगवान् बुद्ध के धर्म को समझने के लिये आवश्यक है कि तीनों वर्गों को भली प्रकार समझा जाय—धर्म को, अधर्म को तथा सद्धर्म को।

तीसरा भाग

धर्म क्या है?

१. जीवन की पवित्रता बनाये रखना धर्म है

१. "तीन तरह की जीवन की पवित्रताएँ हैं.....शारीरिक पवित्रता किसे कहते हैं ?

२. "एक आदमी जीव-हिंसा से विरत होता है, चोरी से विरत होता है, काम-मिथ्याचार से विरत होता है। इसे शारीरिक-पवित्रता कहते हैं।

३. "बाणी की पवित्रता किसे कहते हैं ?

४. "एक आदमी झूठ बोलने से विरत रहता है...

५. "मानसिक पवित्रता किसे कहते हैं ?"

६. "एक भिक्षु, जब काम-छन्द से ग्रस्त रहता है तो वह जानता है कि मुझमें काम-छन्द है। यदि वह काम-छन्द से ग्रस्त नहीं रहता, तो वह जानता है कि मुझमें काम-छन्द नहीं है। वह यह भी जानता है कि अनुत्पन्न काम-छन्द की किस तरह उत्पत्ति होती है? वह यह भी जानता है कि उत्पन्न काम-छन्द का कैसे उच्छेद होता है और वह यह भी जानता है कि किस तरह भविष्य में काम-छन्द उत्पन्न नहीं होता।

७. "यदि उसमें व्यापाद होता है तो वह जानता है कि मुझमें व्यापाद (= द्वेष) है। वह इसकी उत्पत्ति.....विनाश को भी जानता है और यह भी जानता है कि भविष्य में किस प्रकार इसकी उत्पत्ति नहीं होती।

८. "यदि उसमें स्थान-मृद (आलस्य-लज्जा) की उत्पत्ति हुई रहती है तो वह जानता है कि स्थान-मृद उत्पन्न है.....उद्धतपन.....यदि उसमें कुछ विचिकित्सा उत्पन्न रहती है तो वह जानता है कि विचिकित्सा उत्पन्न है। वह यह भी जानता है कि किस प्रकार इसका विनाश होता है और किस प्रकार भविष्य में इसकी उत्पत्ति नहीं होती। यही मानसिक-पवित्रता कहलाती है।"

९. "ओ शरीर, बाणी और मन से पवित्र है

"निष्पाप, स्वच्छ और पवित्रता से युक्त है

"उसे लोग 'निष्कलंक' नाम से पुकारते हैं।"

(ख)

१. "पवित्रता तीन तरह की है.....शरीर की पवित्रता, बाणी की पवित्रता तथा मन की पवित्रता।

२. "शरीर की पवित्रता किसे कहते हैं?"

३. "एक आदमी जीव-हिंसा से विरत रहता है, चोरी से विरत रहता है, काम-मिथ्याचार से विरत रहता है। यह 'शरीर की पवित्रता' है।

४. "वाणी की पवित्रता किसे कहते हैं?"

५. "एक आदमी झूठ बोलने से विरत रहता है..... व्यर्थ की बातचीत से विरत रहता है। यह वाणी की 'पवित्रता' कहलाती है।

६. "मन की पवित्रता किसे कहते हैं?"

७. "एक आदमी ईर्ष्यालु नहीं होता, और सम्पक्-दृष्टि रखता है। यह मन की पवित्रता है। ये तीन तरह की पवित्रतायें हैं।"

(ग)

१. ये पांच तरह की दुर्बलतायें हैं, जिनसे साधना में बाधा पहुंचाती है। कौन सी पांच?

२. जीव-हिंसा, चोरी, काम-मिथ्याचार, झूठ और नशा पैदा करने वाली शराब आदि नशीली चीजों का ग्रहण करना।

३. ये पांच तरह की दुर्बलतायें हैं जिनसे साधना में बाधा पड़ती है।

४. जब साधना की ये पांच बाधायें दूर हो जाती हैं, तो चार स्मृति-उपस्थानों की उत्पत्ति होनी चाहिये।

५. एक भिक्षु कार्य के प्रति कामानुपश्यना करता हुआ विहार करता है, प्रयत्नशील, ज्ञानवान्, स्मृतिमान और लोक में विद्यमान लोभ तथा दोर्मनस्य को कावू में किये हुए।

६. वह वेदनाओं के प्रति वेदनानुपश्यी हो विहार करता है.....

७. वह चित्त के प्रति चित्तानुपश्यी हो विहार करता है.....

८. वह चित्त में उत्पन्न होने वाले विचारों (= धर्मों) के प्रति धर्मानुपश्यी हो विहार करता है, प्रयत्नशील, ज्ञानवान्, स्मृतिमान और लोक में विद्यमान लोभ तथा दोर्मनस्य को कावू में किये हुए।

९. जब साधना की ये पांच बाधायें दूर हो जाती हैं तो चार स्मृति-उपस्थानों की उत्पत्ति होनी चाहिए।"

(घ)

१. ये तीन घात हैं; शील-घात, चित्त-घात और दृष्टि-घात।

२. शील-घात क्या है? एक आदमी प्राणी-हिंसा करता है, चोरी करता है, काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करता है, झूठ बोलता है, चुपली खाता है, कटोर बोलता है तथा व्यर्थ बोलता है। यह शील-घात कहलाता है।

३. चित्त-घात किसे कहते हैं ?

४. एक आदमी लोभी होता है, दीर्घमनस्य-युक्त होता है। यह चित्तका घात है।

५. दृष्टि-घात क्या है ?

६. यहाँ कोई आदमी इस प्रकार की गलत-धारणा मिथ्या-दृष्टि रखता है कि दान देने में, त्याग करने में, परित्याग करने में कोई पुण्य नहीं; भले-बुरे कर्म का कुछ फल नहीं होता; न यह लोक है और न पर-लोक है; न माता है, न पिता है और न स्वोत्पन्न प्राणी है; लोक में कोई ऐसे श्रमण-ब्राह्मण नहीं है जो शिखर तक जा पहुँचे हों, जिन्होंने पूर्णता लाभ की हो, जिन्होंने अपनी ही अभिज्ञा से परलोक का साक्षात्कार किया हो और जो उसकी घोषणा कर सकते हों। भिक्षुओ, यह दृष्टिघात है।

७. भिक्षुओ, यह शील-घात, चित्त-घात के और दृष्टि-घात के ही कारण ऐसा होता है कि मरने के अनन्तर प्राणी पुनर्जि को प्राप्त होते हैं। ये तीन दृष्टि-घात हैं।

८. भिक्षुओ! ये तीन लाभ हैं। कौन से तीन ? शील-लाभ, चित्त-लाभ तथा दृष्टि-लाभ।

९. शील-लाभ क्या है ?

१०. एक आदमी प्राणी-हिंसा से विरत रहता है..... कठोर बोलने से विरत रहता है और व्यर्थ बोलने से विरत रहता है। यह शील-लाभ है।

११. चित्त-लाभ क्या है ?

१२. एक आदमी न लोभी होता है और न दीर्घमनस्य-युक्त होता है। यह चित्त लाभ है।

१३. और दृष्टि-लाभ क्या है ?

१४. यहाँ कोई आदमी इस प्रकार की गलत-धारणा, मिथ्या-धारणा नहीं रखता है कि दान देने में, त्याग करने में, परित्याग करने में कोई पुण्य नहीं, भले-बुरे कर्म का कुछ फल नहीं होता, न यह लोक है और न पर-लोक है; न माता है, न पिता है और न स्वोत्पन्न प्राणी है, लोक में कोई ऐसे श्रमण-ब्राह्मण नहीं है जो शिखर तक जा पहुँचे हों, जिन्होंने पूर्णता लाभ की हो, जिन्होंने अपनी ही अभिज्ञा से परलोक का साक्षात्कार किया हो और जो उसकी घोषणा कर सकते हों। भिक्षुओ यह दृष्टि-लाभ है।

१५. भिक्षुओ, इन्हीं तीन लाभों के कारण शरीर का नाश होने पर मरने के अनन्तर प्राणी सुगति को प्राप्त होते हैं। भिक्षुओ, ये तीन लाभ हैं।*

२. जीवन में पूर्णता प्राप्त करना धर्म है

१. ये तीन पूर्णतायें हैं।

२. शरीर की पूर्णता, प्राणी की पूर्णता तथा मन की पूर्णता।

३. मन की पूर्णता कैसी होती है ?

४. आस्रवों अथवा चित्त मयों का पूरा क्षय हो गया होने से, इसी जीवन में सम्पूर्ण चित्त-विमुक्ति का अनुभव करने से—प्रज्ञा विमुक्ति जो कि आस्रवों से विमुक्ति है—उसे प्राप्त कर, उसी में, विहार करता है। यही मन की पूर्णता कह-
लाती है। ये तीन पूर्णतायें हैं।

५. और दूसरी भी पारमितायें हैं। भगवान् बुद्ध ने उन्हें सुभूति को समझाया था।

६. सुभूति—“बोधिसत्त्व की दान-पारमिता क्या है ?”

७. तथागत—“बोधिसत्त्व चित्त की सभी अवस्थाओं का ज्ञान रख कर दान देता है, अपनी भीतरी वा बाह्य, और उन्हें सर्वसाधारण के लिये परित्याग कर ‘बोधि’ को समर्पित करता है। वह दूसरों को भी ऐसा ही करने की प्रेरणा देता है। किसी भी वस्तु में उसकी आसक्ति नहीं।”

८. सुभूति—“एक बोधिसत्त्व की शील-पारमिता क्या है ?”

९. तथागत—“वह स्वयं इस कुशल-धर्मों में विचरता है और दूसरों को भी ऐसा ही करने की प्रेरणा करता है।”

१०. सुभूति—“बोधिसत्त्व की शान्ति-पारमिता क्या है ?”

११. तथागत—“वह स्वयं क्षमा-शील हो जाता है तथा दूसरों को भी क्षमा-शील रहने की प्रेरणा करता है।”

१२. सुभूति—“बोधिसत्त्व की वीर्य-पारमिता क्या है ?”

१३. तथागत—“वह सत्त पाँचों पारमिताओं की पूर्ति में संलग्न रहता है, तथा दूसरों को भी ऐसा ही करने की प्रेरणा करता है।”

१४. सुभूति—“बोधिसत्त्व की समाधि की पारमिता क्या है ?”

१५. तथागत—“वह अपने कौशल से ध्यानों का लाभ करता है, किन्तु तत्सम्बन्धित रूप-लोकों में उसका जन्म नहीं होता। वह दूसरों को भी ऐसा ही करने की प्रेरणा करता है।”

१६. सुभूति—“बोधिसत्त्व की प्रज्ञा-पारमिता क्या है ?”

१७. तथागत—“वह किसी भी धर्म (= भौतिक वा अभौतिक वस्तु) में नहीं फँसता, वह सभी धर्मों के स्वभाव पर विचार करता है। वह दूसरों को भी सभी धर्मों के स्वभाव पर विचार करने की प्रेरणा देता है।

१८. इन पारमिताओं का विकास करना धर्म है।

३. निर्वाण प्राप्त करना धर्म है

१. भगवान् बुद्ध ने कहा है : “निर्वाण से बढ़कर सुख कुछ नहीं।”

२. भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सभी धर्मों में निर्वाण का प्रमुख स्थान है।

३. निर्वाण क्या है ? भगवान् बुद्ध ने निर्वाण का जो अर्थ किया है, वह उससे सर्वथा भिन्न है जो उनके पूर्वजों ने किया है।

४. उनके पूर्वजों की दृष्टि में निर्वाण का मतलब था आत्मा का मोक्ष।

५. निर्वाण के चार स्वरूप थे : (१) लौकिक, (सांख्य, यिओ, और मौज उदाहो); (२) योगिक; (३) ब्राह्मणी; (४) औपनिषदिक।

६. ब्राह्मणी और औपनिषदिक निर्वाण में एक समानता थी। निर्वाण के दोनों स्वरूपों में 'आत्मा' की एक स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की गई थी—यह सिद्धान्त भगवान् बुद्ध की अमान्य ही था। इसलिये भगवान् बुद्ध को निर्वाण के ब्राह्मणी और औपनिषदिक स्वरूप का खण्डन करने में, उसे अस्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

७. निर्वाण की भौतिक कल्पना इतनी अधिक जड़ता लिये हुए थी कि वह कभी भी बुद्ध के गले से उतर ही न सकती थी। इसमें कुछ भी आध्यात्मिक तरव नहीं था।

८. भगवान् बुद्ध को लगता था कि निर्वाण के ऐसे स्वरूप को स्वीकार करना किसी भी मानव की बड़ी से बड़ी हानि करना है।

९. इन्द्रियों की भूल की संतुष्टि उस भूल को बढ़ाने का ही कारण बनती है। इस प्रकार के जीवन में से सुख कभी उत्पन्न नहीं हो सकता। इसके विपरीत इस प्रकार के सुख में से अधिकाधिक दुःख ही उत्पन्न हो सकता है।

१०. निर्वाण का योगिक स्वरूप एक सर्वथा अस्थायी अवस्था थी। इसका 'सुख' नकारात्मक था। इसके माध्यम से संसार से सम्बन्ध-विच्छेद हो सकता था। यह दुःख से बच निकलना था, किन्तु सुख-प्राप्ति नहीं थी। इससे जितने भी कुछ 'सुख' की आशा की जा सकती थी, वह 'सुख' अधिक से अधिक योग की अवधि भर था। यह स्थायी नहीं था। यह अस्थायी था।

११. बुद्ध का निर्वाण का स्वरूप अपने पूर्वजों के स्वरूप से सर्वथा भिन्न है।

१२. बुद्ध के निर्वाण के स्वरूप के मूल में तीन बातें हैं।

१३. इनमें से एक तो यह है कि किसी 'आत्मा' का सुख नहीं, बल्कि प्राणी का सुख।

१४. दूसरी बात यह है कि संसार में रहते समय प्राणी का सुख। 'आत्मा' की 'मुक्ति' और मरणानन्तर 'आत्मा' की 'मुक्ति' बुद्ध के विचारों से सर्वथा विरुद्ध बातें हैं।

१५. तीसरा विचार जो बुद्ध के निर्वाण के स्वरूप का मूलोपाधार है वह है राग-द्वेषाग्नि की ज्ञान्त करना।

१६. राग तथा द्वेष प्रज्ज्वलित अग्नि के समान है, यह बात भगवान् बुद्ध ने अपने उस प्रवचन में कही थी, जो उन्होंने बुद्ध-मया में रहते समय भिक्षुओं को दिया था।^२ भगवान् बुद्ध ने कहा :—

१७. भिक्षुओं, सभी कुछ जल रहा है। भिक्षुओं, क्या सभी कुछ जल रहा है ?

१८. "भिक्षुओं, चक्षु-इन्द्रिय जल रहा है, रूप जल रहा है, चक्षु-विज्ञान जल रहा है, चक्षु-संस्कार जल रहा है, और उस संस्कार से जो भी सुख-वेदना और असुख-असुख वेदना उत्पन्न होती है, वह वेदना भी जल रही है।

१९. "और ये किस से जल रहे हैं ?

२०. "ये रागाग्नि से जल रहे हैं, ये द्वेषाग्नि से जल रहे हैं, ये मोहाग्नि से जल रहे हैं, ये जाति, जरा, मरण, दुःख, दीर्घमनस्य तथा उपायास से जल रहे हैं।

२१. "भिक्षुओं, श्रोत्र-इन्द्रिय जल रहा है, शब्द जल रहा है, श्रोत्र-इन्द्रिय जल रहा है, गन्ध जल रहा है; जिह्वा जल रही है, रस जल रहे हैं, काय जल रहा है, चित्त के संकल्प-विकल्प जल रहे हैं और चित्त के संस्कारों से जो भी सुख-वेदना, दुःख—वेदना और असुख-असुख वेदना उत्पन्न होती है, वह वेदना भी जल रही है।

२२. "और ये किस से जल रहे हैं ?

२३. "मैं कहता हूँ, ये रागाग्नि से जल रहे हैं, द्वेषाग्नि से जल रहे हैं, मोहाग्नि से जल रहे हैं; ये जाति, जरा, मरण, दुःख, दीर्घमनस्य तथा उपायास से जल रहे हैं।"

२४. "भिक्षुओ, इसका ज्ञान होने से जो विश है और जो श्रेष्ठ है उसके मन में उपेक्षा उत्पन्न होती है, उपेक्षा उत्पन्न होने से रागाग्नि आदि की शान्ति होती है और रागाग्नि आदि के शान्त हो जाने से वह 'मुक्त' हो जाता है; और मुक्त हो जाने से वह जानता है कि मैं 'मुक्त' हो गया हूँ।"

२५. निर्वाण सुखद् कैसे हो सकता है ? यह एक दूसरा प्रश्न है जिसका उत्तर अपेक्षित है।

२६. सामान्य तौर पर यह कहा-श्रमशा जाता है कि अभाव आदमी को दुःखी बनाता है। लेकिन हमेशा यही बात ठीक नहीं होती। आदमी बाहुल्य के बीच में रहता हुआ भी दुःखी रहता है।

२७. दुःख लोभ का परिणाम है और लोभ दोनों को होता है, जिनके पास नहीं है उन्हें भी और जिनके पास है, उन्हें भी।

२८. भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को दिये एक प्रवचन में यह बात बली प्रकार सुस्पष्ट कर दी है—

२९. भिक्षुओं, लोभ से सुब्ध, द्वेष से दुष्ट और मोह से मूढ़ चित्त से आदमी अपने दुःखों से दुःखी रहता है, आदमी दूसरों के दुःखों से दुःखी रहता है, आदमी मान-सिक वेदना और पीड़ा अनुभव करता है।

३०. "किन्तु यदि लोभ, द्वेष तथा मोह का मूलोच्छेद हो जाय तो आदमी न अपने दुःखों से दुःखी रहेगा, न दूसरों के दुःखों से दुःखी रहेगा और न मानसिक वेदना और पीड़ा अनुभव करेगा ।

३१. "इस प्रकार भिक्षुओं, निर्वाण इसी जीवन में प्राप्य है, भविष्य-जीवन में ही नहीं, अच्छा लगने वाला है, आकर्षक है और बुद्धिमान व्यक्ति इसे हस्तगत कर सकता है ।"

३२. जो चीज आदमी को जला जालती है और जो उसे दुःखी बनाती है, वहाँ उसे स्पष्ट कर दिया गया है । आदमी के राग-द्वेष को जलती हुई अग्नि के समान कहकर भगवान् बुद्ध ने आदमी के दुःख की सर्वाधिक जोरदार व्याख्या की है ।

३३. राग-द्वेष की अधीनता ही आदमी को दुःखी बनाती है । राग-द्वेष को 'संयोजन' अथवा बंधन कहा गया है जो आदमी को निर्वाण तक नहीं पहुँचने देते । ज्यों ही आदमी राग-द्वेष को झोंक से मुक्त हो जाता है, उसके लिये निर्वाण-रथ खुल जाता है, वह दुःख का अन्त कर सकता है ।

३४. भगवान् बुद्ध ने इन संयोजनों को तीन विभागों में विभक्त किया है—

३५. पहला विभाग वह है जिसका सम्बन्ध हर प्रकार की तृष्णा से है, जैसे कामुकता और लोभ ।

३६. दूसरा वर्ग वह है जिसका सम्बन्ध सभी प्रकार की विवृष्णा से है—जैसे घृणा, शोक और द्वेष (दोष) ।

३७. तीसरा वर्ग वह है जिसका सम्बन्ध सभी तरह की अविद्या से है—जड़ता, मूर्खता और मूढ़ता (मोह) ।

३८. पहली (राग) अग्नि और दूसरी (द्वेष) अग्नि का सम्बन्ध आदमी की उन भावनाओं से है और उस दृष्टि-कोण से है जो उसका दूसरों के प्रति है, जबकि तीसरी (मोह) अग्नि का सम्बन्ध उन सभी विचारों से है जो सत्य से भिन्न हैं ।

३९. भगवान् बुद्ध के निर्वाण के सिद्धान्त के बारे में बहुत-सी गलत-फहमियाँ हैं ।

४०. शब्द की व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'निर्वाण' शब्द का सम्बन्ध है बुझ-जाना ।

४१. शब्द की इस व्युत्पत्ति को लेकर आलोचकों ने 'निर्वाण' को दो कोड़ी का नहीं रहने दिया है, उसे एक सर्वथा बेहूषा सी चीज बना दिया है ।

४२. उनका कहना है कि निर्वाण का मतलब है सभी मानवी-प्रवृत्तियों का बुझ जाना अर्थात् मृत्यु ।

४३. इस प्रकार उन्होंने निर्वाण के सिद्धान्त का मजाक उड़ाने की कोशिश की है ।

४४. जो कोई भी इस 'अग्नि-स्कन्धोपम' सूक्त^४ की भाषा का विचार करेगा, उसे यह स्पष्ट हो जायगा कि निर्वाण का यह अर्थ कदापि नहीं है।

४५. इस प्रवचन में यह नहीं कहा गया है कि जीवन जल रहा है और बुझ जाना मृत्यु है। इसमें यह कहा गया है कि राग-अग्नि जल रही है, द्वेषाग्नि जल रही है तथा मोहाग्नि जल रही है।

४६. इस अग्नि-स्कन्धोपम सूक्त में यह कही नहीं कहा गया कि आदमी की हर प्रकार की प्रवृत्तियों का मूलोच्छेद कर देना चाहिए। इसमें आग में घी डालना ही मना किया गया है।

४७. दूसरी बात यह है कि आलोचक 'निर्वाण' और 'परिनिर्वाण' का भेद करना भी भूल गये हैं।

४८. उद्दान के अनुसार "जब शरीर बिखर जाता है, जब तमाम संशयें रुक जाती हैं, जब तमाम वेदनाओं का नाश हो जाता है, जब सभी प्रकार की प्रक्रिया बंद हो जाती है और जब चेतना एक दम जाती रहती है" तभी परिनिर्वाण होता है। इस प्रकार परिनिर्वाण का मतलब है पूरी तरह बुझ जाना।

४९. निर्वाण का कभी यह अर्थ नहीं हो सकता। निर्वाण का मतलब है अपनी प्रवृत्तियों पर इतना काबू रखना कि आदमी धर्म के मार्ग पर चल सके। इससे अधिक और इसका दूसरा कुछ आशय ही नहीं।

५०. राघ को समझाते हुए स्वयं भगवान् बुद्ध ने यह स्पष्ट किया था कि निर्दोष जीवन का ही दूसरा नाम निर्वाण है।

५१. एक बार राघ स्वविर भगवान् बुद्ध के पास आये। आकर भगवान् बुद्ध को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। इस प्रकार बैठ कर राघ स्वविर ने भगवान् बुद्ध से कहा—“भन्ते ! निर्वाण किस लिये है ?”

५२. तत्प्राप्त ने उत्तर दिया—“निर्वाण का मतलब है रागाग्नि, द्वेषाग्नि तथा मोहाग्नि का बुझ जाना।”

५३. “लेकिन भन्ते ! निर्वाण का उद्देश्य क्या है ?”

५४. “राघ ! निर्दोष जीवन का मूल निर्वाण में है। निर्वाण ही उद्देश्य है। निर्वाण ही मकसद है।”

५५. ‘निर्वाण’ का मतलब सभी (प्रवृत्तियों का) बुझ जाना नहीं है, यह बात सारिपुत्र ने भी अपने इस प्रवचन में स्पष्ट की है :—

५६. एक बार भगवान् बुद्ध आषस्ती में, अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। उसी समय सारिपुत्र भी वहीं ठहरे हुए थे।

५७. भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा—“भिक्षुओ ! धर्म के दायद बनो। भौतिक-वस्तुओं के दायद न बनो। मेरी तुम पर अनुकम्पा है। इसलिये मैं तुम्हें धर्म का दायद बनाता हूँ।”

५८. भगवान् बुद्ध ने यह कहा और तब वह उठकर (गन्ध)-कुटी में चले गये ।

५९. सारिपुत्र पीछे रह गये । तब भिक्षुओं ने सारिपुत्र से प्रार्थना की कि वह बतायें कि निर्वाण क्या है ?

६०. तब सारिपुत्र ने भिक्षुओं को उत्तर देते हुए कहा—“भिक्षुओं! लोभ बुरा है, द्वेष बुरा है ।

६१. “इस लोभ और इस द्वेष से मुक्ति पाने का साधन मध्यम-मार्ग है, जो आँस देने वाला है, जो ज्ञान देने वाला है, जो हमें शान्ति, अभिज्ञा, बोधि तथा निर्वाण की ओर ले जाता है ।

६२. “यह मध्यम-मार्ग कौन सा है ? यह मध्यम-मार्ग आर्य अष्टांगिक-मार्ग के अतिरिक्त कुछ नहीं, यही सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् प्रयत्न (व्यायाम), सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधी; भिक्षुओं ! यही मध्यम-मार्ग है ।

६३. “हाँ भिक्षुओं ! क्रोध बुरी चीज है, द्वेष बुरी चीज है, ईर्ष्या बुरी चीज है, मात्सर्य बुरी चीज है, कंजूसपन बुरी चीज है, लालच बुरी चीज है, डोंग बुरी चीज है, टगी बुरी चीज है, उद्वपत्तन बुरी चीज है, मोह बुरी चीज है तथा प्रमाद बुरी चीज है ।

६४. “मोह तथा प्रमाद के नाश के लिये मध्यम-मार्ग है, जो आँस देने वाला है, जो ज्ञान देने वाला है, जो हमें शान्ति, अभिज्ञा, बोधि तथा निर्वाण की ओर ले जाता है ।

६५. “निर्वाण आर्य अष्टांगिक-मार्ग के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं ।”

६६. इस प्रकार सारिपुत्र ने कहा । प्रसन्न-चित्त भिक्षु सारिपुत्र का प्रवचन सुन प्रमुदित हुए ।

६७. निर्वाण के मूल में जो विचार है वह यही है कि यह निष्कलंकता का पथ है । किसी को भी निर्वाण से और कुछ समझना ही नहीं चाहिये ।

६८. सम्पूर्ण उच्छेदवाद एक अन्त है और परिनिर्वाण दूसरा अन्त है । निर्वाण मध्यम-मार्ग है ।

६९. यदि निर्वाण को इस प्रकार ठीक तरह से समझ लिया जाय, तो निर्वाण के सम्बन्ध में सारी गड़बड़ी दूर हो जाती है ।

४. तृष्णा का त्याग धर्म है

१. धम्मपद में भगवान् बुद्ध ने कहा है : “आरोग्य से बढ़कर लाभ नहीं; सन्तोष से बढ़कर धन नहीं ।”

२. यहाँ सन्तोष का मतलब बेचारगी या परिस्थिति के सामने सिर झुका देना नहीं है ।

३. ऐसा समझ बैठना भगवान् बुद्ध की दूसरी शिक्षाओं के सर्वथा प्रतिकूल पड़ेगा ।

४. भगवान् बुद्ध ने यह कही नहीं कहा कि "भाग्यवान हैं वे जो गरीब हैं ।"

५. भगवान् बुद्ध ने यह कही न कहा कि जो पीड़ित हैं उन्हें अपनी परिस्थिति बदलने का प्रयास नहीं करना चाहिये ।

६. दूसरी ओर उन्होंने 'ऐस्वर्ग्य' का स्वागत किया है । अपनी परिस्थिति की ओर से उपेक्षावान् होकर पड़े-पड़े कष्ट सहते रहने के उपदेश के स्थान पर उन्होंने भीर्ग्य, उत्साहपूर्वक परिस्थिति को बदलने का प्रयास करने का उपदेश दिया है ।

७. जब भगवान् बुद्ध ने यह कहा कि 'मन्तोष सबसे बड़ा धन है' तो उनके कहने का अभिप्राय यही था कि आदमी को लोभ के बन्धीभूत नहीं होना चाहिये, जिसकी कहीं कोई सीमा नहीं ।

८. जैसा कि भिक्षु राष्ट्रपाल ने कहा है; "मैं धनियों को देखता हूँ जो सूर्योदय-वण अधिक से अधिक इकट्ठा ही करते चले जाते हैं; उसमें से कभी भी किसी को कुछ नहीं देते, उनकी तृष्णा रूपी प्यास बुझती ही नहीं; राजाओं को देखता हूँ कि जिनका राज्य समुद्र तक पहुंच गया है, किन्तु अब समुद्र पार साम्राज्य के लिये दुखी हैं, अभी भी तृष्णार्त हैं, राजा-प्रजा सभी संसार से गुजर जाते हैं, उनका अभाव बना ही रहता है; वे शरीर त्याग देते हैं, किन्तु इस पृथ्वी पर उनकी काम-भोग की इच्छा की कभी तृप्ति ही नहीं होती ।" १०

९. महा-निदान-सुत्त ११ में भगवान् बुद्ध ने आनन्द को 'लोभ' को अपने वल में रखने के लिये कहा है । तथागत का वचन है:—

१०. "इस प्रकार आनन्द ! लाभ की इच्छा में से तृष्णा पैदा होती है, जब लाभ की इच्छा मत्कीयत की इच्छा में बदल जाती है, जब मत्कीयत की इच्छा अपनी मत्कीयत से बुरी तरह चिपटे रहने की इच्छा बन जाती है, तो यह 'लोभ' कहलाती है ।"

११. लोभ या संघट्ट करने की असंयत-कामना पर नजर रखने की जरूरत है ।

१२. "इस तृष्णा या लोभ को वल में रखने की क्यों जरूरत है?" "क्योंकि इसी से" भगवान् बुद्ध ने आनन्द से कहा "बहुत सी बुराइयाँ पैदा होती हैं, मुष्का-मुष्की भी हो जाती है, लोगों को आघात भी लगते हैं, झगड़े भी होते हैं । परस्पर विरोध भी होते हैं, कलह भी होते हैं, एक दूसरे की निन्दा तथा झूठ बोलना भी होता है ।" १२

१३. इसमें कोई संदेह नहीं कि वर्ग-संघर्ष का यह सही-सही विप्लवण है ।

१४. इसीलिए भगवान् बुद्ध ने 'तृष्णा' और 'लोभ' को अपने वल में रखने के लिये कहा है ।

५. यह मानना कि सभी संस्कार अनित्य हैं धर्म है ।

१. अनित्यता के सिद्धान्त के तीन पहलू हैं ।

२. अनेक तत्वों के मेल से बनी हुई चीजें अनित्य हैं ।

३. व्यक्तिगत रूप से प्राणी अनित्य है ।

४. प्रतीत्य-समुत्पन्न वस्तुओं का 'आत्म-तत्त्व' अनित्य है ।

५. अनेक तत्वों के मेल से बनी हुई चीजों की अनित्यता की बात महान् बौद्ध दार्शनिक असंग ने अच्छी तरह समझाई है ।

६. "सभी चीजें," असंग का कहना है, "हेतुओं तथा प्रत्ययों से उत्पन्न हैं। किसी का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। जब हेतु-प्रत्ययों का उच्छेद हो जाता है, वस्तुओं का अस्तित्व नहीं रहता ।"

७. प्राणी का शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु नामक चार महाभूतों का परिणाम है। जब इन चारों महाभूतों का पृथक्करण हो जाता है, प्राणी नहीं रहता ।

८. 'अनेक तत्वों के मेल से बनी हुई चीजें अनित्य हैं' कहने का अभिप्राय यही है ।

९. जीवित प्राणी की अनित्यता की सर्वश्रेष्ठ व्याख्या यही है कि वह है नहीं, वह हो रहा है ।

१०. इस अर्थ में भूत काल का प्राणी अपना जीवन व्यतीत कर चुका, न वह वर्तमान में कर रहा है और न भविष्य में करेगा ! भविष्यत् काल का प्राणी रहेगा, लेकिन न रहा है और न रहता है; वर्तमान काल का प्राणी रहता है, लेकिन न रहा है, और न रहेगा ।^१

११. संक्षेप यही है कि मानव निरन्तर परिवर्तन-शील है, निरन्तर संवर्धन-शील है। वह अपने जीवन के दो भिन्न क्षणों में भी एक ही नहीं है ।

१२. इस सिद्धान्त का तीसरा पहलू एक सामान्य आदमी के लिये समझ सकना कुछ कठिन है ।

१३. यह समझ लेना कि आदमी किसी न किसी दिन अवश्य मर जायेगा, बड़ा आसान है ।

१४. किन्तु यह समझ सकना कि किस प्रकार एक प्राणी जीते जी परिवर्तित होता रहता है, उतना ही आसान नहीं ।

१५. "यह कैसे सम्भव है ?" भगवान् बुद्ध का उत्तर था—"यह इसी लिये सम्भव है कि हर चीज अनित्य है ।"

१६. आगे चलकर इसी 'अनित्यता' के सिद्धान्त ने क्षुण्यवाद का रूप ग्रहण कर लिया है ।

१७. बीड़ 'शून्यता' का मतलब सोलह आने निषेध नहीं है। इसका मतलब इतना ही है कि संसार में जो कुछ है वह प्रतिक्षण बदल रहा है।

१८. बहुत कम लोग इस बात को समझ पाते हैं कि 'शून्यता' के ही कारण सभी कुछ सम्भव है, इसके बिना संसार में कुछ भी सम्भव नहीं रहेगा। सभी दूसरी बातें चीजों के अनित्यता के स्वभाव पर ही निर्भर करती हैं।

१९. यदि चीजें परिवर्तन-शील न हों बल्कि स्थायी और अपरिवर्तनशील हों, तब एक रूप से किसी दूसरे रूप में जीवन का सारा विकास ही रुक जायगा, किसी में कुछ भी परिवर्तन न हो सकेगा, किसी की कुछ भी उन्नति न हो सकेगी।

२०. यदि आदमी मर जाते या उन में परिवर्तन आ जाता और फिर वे सब उसी अवस्था में अपरिवर्तित स्थिति में रहते, तो क्या हालत होती? मानव-जाति की प्रगति सर्वथा रुक जाती।

२१. यदि 'शून्य' का मतलब 'अभाव' माना जाये तो कई कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

२२. 'शून्य' उस बिन्दु के समान है, जो कि एक पदार्थ है किन्तु जिसकी कोई सम्बाँध-बोझाई नहीं।

२३. भगवान् बुद्ध का यह उपदेश था कि सभी चीजें अनित्य हैं।

२४. इस सिद्धान्त से हमें क्या शिक्षा मिलती है? वह अधिक महत्व का प्रश्न है।

२५. इस सिद्धान्त से हमें जो शिक्षा मिलती है, वह सरल है। किसी वस्तु के प्रति आसक्ति न होओ।

२६. यह अनासक्ति—सम्पत्ति के प्रति अनासक्ति, सम्बन्धियों, मित्रों, तथा परिचितों के प्रति अनासक्ति का ही अभ्यास करने के लिये यह कहा गया है कि सभी चीजें अनित्य हैं।

६. 'कर्म' को मानव जीवन के नैतिक संस्थान का आधार मानना ठीक है

१. भौतिक संसार में एक प्रकार का नियम दिखाई देता है। निम्नलिखित बातें इसकी साक्षी हैं :

२. आकाश के नक्षत्रों के चलन में एक प्रकार का नियम है।

३. ऋतुओं के नियमानुसार जावागमन में भी एक नियम है।

४. बीजों से वृक्ष उत्पन्न होते हैं, वृक्षों में फल लगते हैं और फलों से फिर बीज प्राप्त होते हैं—इस में भी एक प्रकार का नियम है।

५. बौद्ध परिभाषा में यह सब 'बीज-नियम' तथा 'श्रुतु-नियम' आदि कहलाते हैं।

६. इसी प्रकार क्या समाज में भी कोई नैतिक-क्रम है? यदि है तो यह कैसे उत्पन्न हुआ है? इस का संरक्षण कैसे होता है?

७. जो 'ईश्वर' में विश्वास रखते हैं, उन्हें इस प्रश्न का उत्तर देने में कोई कठिनाई नहीं है। उन का उत्तर सरल है।

८. उन का कहना है कि संसार का नैतिक-क्रम ईश्वरेच्छा का परिणाम है। ईश्वर ने संसार को जन्म दिया है और ईश्वर ही संसार का कर्त्ता-भर्ता है। वही भौतिक, तथा नैतिक-नियमों का रचयिता भी है।

९. उन का कहना है कि नैतिक-नियम आदमी को भलाई के लिये हैं क्योंकि वे ईश्वर की आज्ञा हैं। आदमी को अपने रचयिता ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना ही पड़ेगा। और यह 'ईश्वर की आज्ञाओं का पालन ही है जो संसार को चलाता है।

१०. संसार का नैतिक-संस्थान ईश्वरेच्छा का परिणाम है—इसके पक्ष में यही तर्क दिया जाता है।

११. लेकिन यह व्याख्या किसी भी तरह संतोषजनक नहीं है। क्योंकि यदि 'ईश्वर' नैतिक-नियमों का जनक है और यदि 'ईश्वर' ही नैतिक-नियमों का आरम्भ और अवसान है और यदि आदमी ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करने के लिये मजबूर है, तो संसार में इतनी नैतिक-अराजकता या अनैतिकता क्यों है?

१२. इस 'ईश्वरी-नियम' के पास कौन सी शक्ति है? इस 'ईश्वरीय-नियम' का व्यक्ति पर कौन सा अधिकार है? ये महत्वपूर्ण प्रश्न हैं। लेकिन जो लोग यह मानते हैं कि संसार का नैतिक-संस्थान ईश्वरेच्छा का परिणाम है—उनके पास इन प्रश्नों का कोई संतोषजनक उत्तर नहीं।

१३. इन कठिनाइयों पर पार पाने के लिये बात कुछ थोड़ी बदल दी गई है।

१४. अब यह कहा जाने लगा है : निस्सन्देह ईश्वर की इच्छा से ही सृष्टि अस्तित्व में आई। यह भी सत्य है कि प्रकृति ने ईश्वर की इच्छा और मार्ग-दर्शन के अनुसार ही अपना कार्य आरम्भ किया। यह भी सत्य है कि उसने प्रकृति को एक ही बार वह सब शक्ति प्रदान कर दी जो अब उसकी समस्त क्रिया-शीलता के मूल में है।

१५. लेकिन इस के बाद 'ईश्वर' ने प्रकृति को स्वतन्त्र छोड़ दिया है कि वह भुक्त में उसी के बनाये हुए नियमों के अनुसार कार्य करती रहे।

१६. इसलिये अब यदि ईश्वरेच्छा या ईश्वर की आज्ञा के अनुसार कार्य नहीं होता, तो अब इसमें ईश्वर का कोई दोष नहीं, सारा दोष प्रकृति का है।

१७. लेकिन सिद्धान्त में इस तरह थोड़ा परिवर्तन कर देने से भी काम

नहीं चलता। इससे केवल इतना ही होता है कि ईश्वर पर कोई जिम्मेदारी नहीं रहती। लेकिन तब प्रश्न पैदा होता है कि ईश्वर ने यह काम प्रकृति को क्यों सौंपा है कि वह उसके बनाये नियमों का पालन कराये? इस प्रकार के अनुपस्थित, इस प्रकार के निकम्मे 'ईश्वर' का क्या प्रयोजन है?

१८. इस प्रश्न का कि संसार का नैतिक-क्रम कैसे सुरक्षित है? जो उत्तर बुद्ध ने दिया है, वह सर्वथा भिन्न है।

१९. तथागत का उत्तर है: 'विश्व के नैतिक-क्रम के बनाये रखने वाला कोई 'ईश्वर' नहीं है, वह 'कर्म-नियम' ही है जो विश्व के नैतिक-क्रम को बनाये हुए है।

२०. "विश्व का नैतिक-क्रम चाहे भला हो, चाहे बुरा हो; लेकिन भगवान् बुद्ध के उपदेशानुसार जैसा भी वह है वह आदमी पर निर्भर करता है, और किसी पर नहीं।

२१. 'कर्म' का मतलब है मनुष्य द्वारा किया जाने वाला 'कर्म' और 'विपाक' का मतलब है उसका परिणाम। यदि नैतिक-क्रम बुरा है तो इसका मतलब है कि आदमी बुरा (= अकुशल) कर्म करता है; यदि नैतिक-क्रम अच्छा है तो इसका मतलब है कि आदमी भला (= कुशल) कर्म करता है।

२२. बुद्ध ने केवल कम्म (कर्म) की ही बात नहीं कही। उन्होंने कम्म (कर्म) नियम की भी बात कही है—अर्थात् कर्म के कानून की।

२३. कर्म के नियम से बुद्ध का अनिप्राय था यह अनिवार्य है कि कर्म का परिणाम उसी प्रकार उसका पीछा करे जैसे रात दिन का करती है। यह एक कानून है।

२४. कुशल कर्म से होने वाला लाभ भी हर कोई उठा सकता है और अकुशल-कर्म से होने वाली हानि से भी कोई नहीं बच सकता।

२५. इसलिये भगवान् बुद्ध की चेष्टना थी: कुशल-कर्म करो ताकि उससे नैतिक-क्रम को सहारा मिले और उससे मानवता सामान्य हो; अकुशल-कर्म मत करो ताकि उससे नैतिक-क्रम को हानि पहुंचे और उससे मानवता दुःखी हो।

२६. यह हो सकता है कि एक कर्म और उसके विपाक में समय का थोड़ा बहुत या काफी अन्तर भी हो जाय। ऐसा बहुधा होता है।

२७. इस दृष्टि से कर्म के कई विभाग हैं जैसे—दिट्ठवम्मवेदनीय कर्म (इसी जन्म में फल देने वाला कर्म), उपपज्जवेदनीय कर्म (उत्पन्न होने पर फल देने वाला कर्म), अपरापरिमवेदनीय कर्म (अनिश्चित समय पर फल देने वाला कर्म)।

२८. कर्म कभी-कभी 'अहोसिकर्म' भी हो सकता है, अर्थात् कर्म जिसका कुछ 'विपाक' न हो। इस अहोसि-कर्म के अन्तर्गत वे सब कर्म आते हैं जो या तो इतने

दुर्बल होते हैं कि उनका कोई 'विपाक' नहीं हो सकता अथवा जो किसी अन्य सबलकर्म द्वारा वाधित हो जाते हैं।

२९. इन सब बातों के लिये योड़ी गुंजायश भी मान ली जाय तो भी भगवान् बुद्ध की यह देशना अपने स्थान पर ठीक ही है कि कर्म का नियम लागू होकर ही रहता है।

३०. कर्म के सिद्धान्त का अनिवार्य तौर पर यह मतलब नहीं कि करने वाले को ही कर्म का फल भुगतना पड़ता है; और इससे अधिक कुछ नहीं। ऐसा समझना गलती है। कभी-कभी करने वाले की अपेक्षा दूसरे पर ही कर्म का प्रभाव पड़ता है। लेकिन यह सब कर्म का नियम ही है, क्योंकि यह या तो नैतिक-क्रम को संभालता है अथवा उसे गड़बड़ाता है।

३१. व्यक्ति जाते रहते हैं, व्यक्ति जाते रहते हैं। लेकिन विश्व का नैतिक-क्रम बना रहता है और उसके साथ वह कर्म-नियम भी जो इसे बनाये रखता है।

३२. यही कारण है कि बुद्ध के धर्म में, नैतिकता को वह स्थान प्राप्त है जो अन्य धर्मों में 'ईश्वर' को है।

३३. इसलिये इस प्रश्न का कि 'विश्व का नैतिक-क्रम कैसे बना रहता है?' बुद्ध ने जो उत्तर दिया है वह इतना सरल है और इतना पक्का है।

३४. इतना होने पर भी इसका सच्चा जर्म बहुधा स्पष्ट नहीं होता। प्रायः ही नहीं, बल्कि लगभग हमेशा, या तो यह अच्छी तरह से समझा नहीं जाता, या गलत तौर पर समझा लिया जाता है अथवा इसकी गलत व्याख्या की जाती है। बहुत लोग इस बात को समझते प्रतीत नहीं होते कि 'कर्म के नियम' का सिद्धान्त इस प्रश्न का उत्तर है कि 'विश्व का नैतिक-क्रम कैसे बना रहता है?'

३५. लेकिन बुद्ध के 'कर्म के नियम' के सिद्धान्त का यही प्रयोजन है।

३६. 'कर्म के नियम' का सम्बन्ध केवल विश्व के नैतिक-क्रम के प्रश्न से है। इसे व्यक्ति-विशेष के धनी-निर्धन होने या भाग्यवान्-अभाग्यवान् होने से कुछ लेना देना नहीं।

३७. इसे केवल विश्व के नैतिक-क्रम के बने रहने से सरोकार है।

३८. इसी कारण से 'कर्म का नियम' धर्म का एक (महत्वपूर्ण) अंग है।

१. अंगुत्तर निकाय ।
२. अंगुत्तर निकाय ।
३. अंगुत्तर निकाय ।
४. अंगुत्तर निकाय ।
५. संयुत्तनिकाय ४३ : ३ : ६ । महावग्ग १ : ३ ।
६. अंगुत्तर निकाय—३ : ५२ ।
७. संयुत्तनिकाय ४३ : ३ : ६ । महावग्ग १ : ३ ।
८. धम्मदायाव सुत्तन्त (१।१।३) ।
९. धम्मपद, सुलवग्गो—गाथा २०४ ।
१०. मज्झिम निकाय रट्ठपात—८२ ।
११. महानिबान सुत्त (दीर्घ निकाय का १५वाँ सुत्तन्त) ।

चौथा भाग

अ-धर्म क्या है ?

१. परा-प्राकृतिक में विश्वास अ-धर्म है

१. जब भी कोई घटना घटती है, आवामी हमेशा यह जानना चाहता है कि यह घटना कैसे घटी ? इसका क्या कारण है ?

कभी-कभी कारण और उससे कलित होने वाला कार्य एक दूसरे के इतने समीप होते हैं कि कार्य के कारण का पता लगाना कठिन नहीं होता ।

३. लेकिन कभी-कभी कारण से कार्य इतना दूर होता है कि कार्य के कारण का पता लगाना कठिन हो जाता है । सरसरी दृष्टि से देखने से उस कार्य का कोई कारण प्रतीत ही नहीं होता ।

४. तब प्रश्न पैदा होता है कि अमुक घटना कैसे घटी ?

५. बड़ा सरल सीधा-साधा उत्तर है कि घटना किसी परा-प्राकृतिक कारण से घटी जिसे बहुधा 'करिश्मा' या 'प्रातिहार्य' भी कहा जाता है ।

६. बुद्ध के कुछ पूर्वजों ने इस प्रश्न के विविध उत्तर दिये हैं ।

७. पकुद कण्णन यह मानता ही नहीं था कि हर कार्य का कारण होता है । उसका मत था कि घटनायें बिना किसी कारण के ही घटती हैं ।

८. मक्खली मोसाल मानता था कि हर घटना का कारण होना चाहिये । लेकिन वह प्रचार करता था कि कारण आवामी की भाक्ति से बाहर किसी 'प्रकृति', किसी अनिवार्य आवश्यकता, किसी 'अनुत्पन्न नियम' अथवा किसी 'भाग्य' में ही खोजना चाहिये ।

९. भगवान् बुद्ध ने इस प्रकार के सिद्धान्तों का सन्दर्शन किया । उनका कहना था कि इतना ही नहीं कि हर घटना का कोई न कोई कारण होता है; बल्कि वह कारण या तो कोई न कोई मानवी कारण होता है या प्राकृतिक कारण होता है ।

१०. काल (समय), प्रकृति, आवश्यकता (?) आदि को किसी घटना का कारण मानने के शिलाफ उनका यही विरोध था ।

११. यदि काल (समय), प्रकृति, आवश्यकता (?) आदि ही किसी घटना के एकमात्र कारण हैं, तो हमारी अपनी स्थिति क्या रह जाती है ?

१२. तो क्या आदमी काल (समय), प्रकृति, अकस्मात्-पन, ईश्वर, भाग्य, आवश्यकता (?) आदि के हाथ की मात्र कठ-पुतली है ?

१३. यदि आदमी स्वतन्त्र नहीं है तो उसके अस्तित्व का ही क्या प्रयोजन है ? यदि आदमी परा-प्राकृतिक में विश्वास रखता है तो उसकी बुद्धि का ही क्या प्रयोजन है ?

१४. यदि आदमी स्वतन्त्र है, तो हर घटना का या तो कोई मानवी कारण होना चाहिये, या प्राकृतिक कारण। कोई घटना ऐसी हो ही नहीं सकती जिसका परा-प्राकृतिक कारण हो।

१५. यह सम्भव है कि आदमी किसी घटना के वास्तविक कारण का पता न लगा सके। लेकिन यदि वह बुद्धिमान है तो किसी न किसी दिन पता लगा ही लेगा।

१६. परा-प्राकृतिक-वाद का खण्डन करने में भगवान् बुद्ध के तीन हेतु थे—

१७. उनका पहला हेतु था कि आदमी बुद्धिवादी बने।

१८. उनका दूसरा हेतु था कि आदमी स्वतन्त्रतापूर्वक सत्य की खोज कर सके।

१९. उनका तीसरा उद्देश्य था कि मिथ्या-विश्वास के प्रधान-कारण को जड़ काट दी जाय, क्योंकि इसी के परिणाम-स्वरूप आदमी की खोज करने की प्रवृत्ति की हत्या हो जाती है।

२०. यही बुद्ध धर्म का 'हेतुवाद' है।

२१. यह 'हेतु-वाद' बुद्ध धर्म का मुख्य-सिद्धान्त है। यह बुद्धवाद की शिक्षा देता है और बुद्ध-धर्म यदि बुद्धवादी भी नहीं है तो फिर कुछ नहीं है।

२२. यही कारण है कि परा-प्राकृति की पूजा अ-धर्म है।

२. ईश्वर में विश्वास अ-धर्म है

१. इस संसार की किसने पैदा किया, यह एक सामान्य प्रश्न है। इस दुनिया को ईश्वर ने बनाया, यह इस प्रश्न का वैसा ही सामान्य उत्तर है।

२. ब्राह्मणी-योजना में इस सृष्टि-रचयिता के कई नाम हैं—प्रजापति, ईश्वर, ब्रह्मा या महाब्रह्मा।

३. यदि यह पूछा जाय कि यह ईश्वर कौन है, और यह कैसे अस्तित्व में आया तो इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं।

४. जो लोग 'ईश्वर' में विश्वास रखते हैं, वे उसे सर्व-शक्तिमान, सर्व-व्यापक तथा सर्व-अन्तर्गामी (= सर्वज्ञ) कहते हैं।

५. ईश्वर में कुछ नैतिक गुण भी बताये जाते हैं। ईश्वर को शिव (= भला) कहा जाता है, ईश्वर को न्यायी कहा जाता है और ईश्वर को दयालु कहा जाता है।

६. प्रश्न पैदा होता है कि क्या तथ्यागत ने ईश्वर को सृष्टि-कर्ता स्वीकार किया है ?

७. उत्तर है "नहीं।" उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

८. इसके अनेक कारण हैं कि तथ्यागत ने ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया।

९. किसी ने कभी 'ईश्वर' को नहीं देखा। लोग खाली उसकी चर्चा करते हैं।

१०. ईश्वर 'अज्ञात' है, 'अदृश्य' है।

११. कोई यह सिद्ध नहीं कर सकता कि इस संसार को ईश्वर ने बनाया है, संसार का विकास हुआ है, निर्माण नहीं हुआ।

१२. इसलिये 'ईश्वर' में विश्वास करने से कौन-सा लाभ हो सकता है ? इससे कोई लाभ नहीं।

१३. बुद्ध ने कहा ईश्वराश्रित धर्म कल्पनाश्रित है।

१४. इसलिये ईश्वराश्रित धर्म रखने का कोई उपयोग नहीं।

१५. इससे केवल मिथ्या विश्वास उत्पन्न होता है।

१६. बुद्ध ने इस प्रश्न को यहीं और यहीं नहीं छोड़ दिया। उन्होंने इस प्रश्न के नाना पहलुओं पर विचार किया है।

१७. जिन कारणों से भगवान् बुद्ध ने ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त को अस्वीकार किया, वे अनेक हैं।

१८. उनका तर्क था कि ईश्वर के अस्तित्व का सिद्धान्त सर्याश्रित नहीं है।

१९. भगवान् बुद्ध ने वासेट्ठ और भारद्वाज के साथ हुई अपनी बातचीत में इसे स्पष्ट कर दिया था।

२०. वासेट्ठ और भारद्वाज में एक विवाद उठ खड़ा हुआ था कि सच्चा मार्ग कौनसा है और झूठा कौनसा ?

२१. इस समय महान् भिक्षु संघ की साथ लिये भगवान् बुद्ध कोशल जनपद में विहार कर रहे थे। वह मनसाकत नामके ब्राह्मण-गाँव में अचिरवती नदी के तट पर एक बागीचे में ठहरे।

२२. वासेट्ठ और भारद्वाज दोनों मनसाकत नाम की बस्ती में ही रहते थे। जब उन्होंने यह सुना कि तथ्यागत उनकी बस्ती में आये हैं तो वे उनके पास गये और दोनों ने भगवान् बुद्ध से अपना-अपना दृष्टि-कोण विवेदन किया।

२३. भारद्वाज बोला—"तत्त्वस्य का दिखाया हुआ मार्ग सीधा मार्ग है, यह मुक्ति का सीधा पथ है और जो इसका अनुसरण करता है उसे वह से जाकर सीधा ब्रह्म से मिला देता है।"

२४. वासेट्ठ बोला—"हे गौतम ! बहुत से ब्राह्मण बहुत से मार्ग सुनाते

१२. तो क्या आदमी काल (समय), प्रकृति, अकस्मात्-घन, ईश्वर, भाग्य, आवश्यकता (?) आदि के हाथ की मान कठ-मुतली है ?

१३. यदि आदमी स्वतन्त्र नहीं है तो उसके अस्तित्व का ही क्या प्रयोजन है ? यदि आदमी परा-प्राकृतिक में विश्वास रखता है तो उसको बुद्धि का ही क्या प्रयोजन है ?

१४. यदि आदमी स्वतन्त्र है, तो हर घटना का या तो कोई मानवी कारण होना चाहिये, या प्राकृतिक कारण। कोई घटना ऐसी हो ही नहीं सकती जिसका परा-प्राकृतिक कारण हो।

१५. यह सम्भव है कि आदमी किसी घटना के वास्तविक कारण का पता न लगा सके। लेकिन यदि वह बुद्धिमान है तो किसी न किसी दिन पता लगा ही लेगा।

१६. परा-प्राकृतिक-वाद का खण्डन करने में भगवान् बुद्ध के तीन हेतु थे—

१७. उनका पहला हेतु था कि आदमी बुद्धिवादी बने।

१८. उनका दूसरा हेतु था कि आदमी स्वतन्त्रतापूर्वक सत्य की खोज कर सके।

१९. उनका तीसरा उद्देश्य था कि मिथ्या-विश्वास के प्रधान-कारण को जड़ काट दी जाय, क्योंकि इसी के परिणाम-स्वरूप आदमी की खोज करने की प्रवृत्ति की हत्या हो जाती है।

२०. यही बुद्ध धर्म का 'हेतुवाद' है।

२१. यह 'हेतु-वाद' बुद्ध धर्म का मुख्य-सिद्धान्त है। यह बुद्धवाद की मिशा देता है और बुद्ध-धर्म यदि बुद्धवादी भी नहीं है तो फिर कुछ नहीं है।

२२. यही कारण है कि परा-प्राकृति की पूजा अ-धर्म है।

२. ईश्वर में विश्वास अ-धर्म है

१. इस संसार को किसने पैदा किया, यह एक सामान्य प्रश्न है। इस दुनिया को ईश्वर ने बनाया, यह इस प्रश्न का वैसा ही सामान्य उत्तर है।

२. ब्राह्मणी-योजना में इस सृष्टि-रचयिता के कई नाम हैं—प्रजापति, ईश्वर, ब्रह्मा या महाब्रह्मा।

३. यदि यह पूछा जाय कि यह ईश्वर कौन है, और यह कैसे अस्तित्व में आया तो इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं।

४. जो लोग 'ईश्वर' में विश्वास रखते हैं, वे उसे सर्व-शक्तिमान, सर्व-व्यापक तथा सर्व अन्तर्गामी (= सर्वज्ञ) कहते हैं।

५. ईश्वर में कुछ नैतिक गुण भी बताये जाते हैं। ईश्वर को शिव (= भला) कहा जाता है, ईश्वर को न्यायी कहा जाता है और ईश्वर को दयालु कहा जाता है।

९. प्रश्न पैदा होता है कि क्या तथ्यागत ने ईश्वर को सृष्टि-कर्ता स्वीकार किया है ?

७. उत्तर है "नहीं।" उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

८. इसके अनेक कारण हैं कि तथ्यागत ने ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया।

९. किसी ने कभी 'ईश्वर' को नहीं देखा। लोग खाली उसकी ध्वनि करते हैं।

१०. ईश्वर 'अज्ञात' है, 'अदृश्य' है।

११. कोई यह सिद्ध नहीं कर सकता कि इस संसार को ईश्वर ने बनाया है, संसार का विकास हुआ है, निर्माण नहीं हुआ।

१२. इसलिये 'ईश्वर' में विश्वास करने से कौन-सा लाभ हो सकता है ? इससे कोई लाभ नहीं।

१३. बुद्ध ने कहा ईश्वराश्रित धर्म कल्पनाश्रित है।

१४. इसलिये ईश्वराश्रित धर्म रखने का कोई उपयोग नहीं।

१५. इससे केवल मिथ्या विश्वास उत्पन्न होता है।

१६. बुद्ध ने इस प्रश्न को यही और यूँ ही नहीं छोड़ दिया। उन्होंने इस प्रश्न के नाना पहलुओं पर विचार किया है।

१७. जिन कारणों से भगवान् बुद्ध ने ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त को अस्वीकार किया, वे अनेक हैं।

१८. उनका तर्क था कि ईश्वर के अस्तित्व का सिद्धान्त सर्याश्रित नहीं है।

१९. भगवान् बुद्ध ने वासेट्ठ और भारद्वाज के साथ हुई अपनी बातचीत में इसे स्पष्ट कर दिया था।^१

२०. वासेट्ठ और भारद्वाज में एक विवाद उठ खड़ा हुआ था कि सच्चा मार्ग कौनसा है और झूठा कौनसा ?

२१. इस समय महान् भिक्षु संघ को साथ लिये भगवान् बुद्ध कोशल जनपद में विहार कर रहे थे। वह मनसाकत नामके ब्राह्मण-गाँव में अचिरवती नदी के तट पर एक बागीचे में ठहरे।

२२. वासेट्ठ और भारद्वाज दोनों मनसाकत नाम की बस्ती में ही रहते थे। जब उन्होंने यह सुना कि तथ्यागत उनकी बस्ती में आये हैं तो वे उनके पास गये और दोनों ने भगवान् बुद्ध से अपना-अपना दृष्टि-कोण निवेदन किया।

२३. भारद्वाज बोला—"तत्त्व का दिखाया हुआ मार्ग सीधा मार्ग है, यह मुक्ति का सीधा पथ है और जो इसका अनुसरण करता है उसे वह ते जाकर सीधा ब्रह्म से मिला देता है।"

२४. वासेट्ठ बोला—"हे गौतम ! बहुत से ब्राह्मण बहुत से मार्ग सुनाते

हैं—अश्वत्थ्य ब्राह्मण, तैत्तिरिय ब्राह्मण, कण्डोक्त ब्राह्मण तथा भीहवर्गीय ब्राह्मण। वे सभी, जो कोई उनके बताये पथ का अनुसरण करता है, उसे 'ब्रह्म' से मिला देते हैं।

२५. "जिस प्रकार किसी गाँव या नगर के पास अनेक रास्ते होते हैं, किन्तु वे सभी आकर उसी गाँव में पहुँचा देते हैं—उसी तरह से ब्राह्मणों द्वारा दिखाये गये सभी पथ 'ब्रह्म' से जा मिलते हैं।

२६. तथागत ने प्रश्न किया—"तो वासेट्ठ ! तुम्हारा क्या यह कहना है कि वे सभी मार्ग सही हैं ?" वासेट्ठ बोला—"श्रमण गौतम ! हाँ मेरा यही कहना है।"

२७. "लेकिन वासेट्ठ ! क्या तीनों वेदों के जानकार इन ब्राह्मणों में कोई एक भी ऐसा है जिसने 'ब्रह्म' का आमने-सामने दर्शन किया हो ?"

२८. "गौतम ! नहीं !"

२९. "क्या तीनों वेदों के जानकार ब्राह्मणों के गुरुओं में कोई एक भी ऐसा है, जिसने 'ब्रह्म' का आमने-सामने दर्शन किया हो ?"

३०. "गौतम ! निश्चय से नहीं !"

३१. "तो किसी ने 'ब्रह्म' को नहीं देखा ? किसी को 'ब्रह्म' का साक्षात्कार नहीं हुआ ?" वासेट्ठ बोला—"हाँ ऐसा ही है।" "तब तुम यह कैसे मानते हो कि ब्राह्मणों का कथन सत्याथित है ?"

३२. "वासेट्ठ ! जैसे कोई अंघों की कतार हो। न आगे-आगे चलने वाला अंधा देख सकता हो, न बीच में चलने वाला अंधा देख सकता हो और न पीछे चलने वाला अंधा देख सकता हो—इसी तरह वासेट्ठ ! मुझे लगता है कि ब्राह्मणों का कथन केवल अंधा कथन है। न आगे-आगे चलने वाला देखता है, न बीच में चलने वाला देखता है और न पीछे चलने वाला देखता है। इन ब्राह्मणों की बात-चीत केवल उपहासार्थ है, शब्द-मात्र जिसमें कुछ भी सार नहीं।

३३. "वासेट्ठ ! क्या यह ठीक ऐसा ही नहीं है जैसे किसी आदमी का किसी स्त्री से प्रेम हो गया हो, जिसे उसने कभी देखा न हो ?" वासेट्ठ बोला—"हाँ, यह तो ऐसा ही है।"

३४. "वासेट्ठ ! अब तुम बताओ कि यह कैसा होगा जब लोग उस आदमी से पूछेंगे कि मित्र ! तुम जिस सारे प्रदेश की सुन्दरतम स्त्री से इतना प्रेम करने की बात कहते हो, वह कौन है ? वह वाचिय जाति से है ? ब्राह्मण-जाति से है ? वैश्य जाति से है अथवा शूद्र जाति से है ?

३५. महाब्रह्मा, सृष्टि के तथाकथित रचयिता की चर्चा करते हुए, तथागत ने भारद्वाज और वासेट्ठ को कहा—मित्रो ! "जिस प्राणी ने पहले जन्म लिया था, वह अपने बारे में सोचने लगा मैं ब्रह्मा हूँ, महाब्रह्मा हूँ, विजेता हूँ, अधिजित हूँ,

सर्व-द्रष्टा हूँ सर्वाधिकारी हूँ, मालिक हूँ, निर्माता हूँ, रचयिता हूँ, मुख्य हूँ, व्यवस्था-पक हूँ, आप ही अपना स्वामी हूँ और जो है तथा जो भविष्य में पैदा होने वाले हैं, उन सबका पिता हूँ। मुझ ही से ये सब प्राणी उत्पन्न होते हैं।

३६. "तो इसका यह मतलब हुआ न कि जो अब हैं और जो भविष्य में उत्पन्न होने वाले हैं, ब्रह्मा सब का पिता है ?

३७. "तुम्हारा कहना है कि यह जो पूज्य, विजेता, अविजित, जो है तथा जो होंगे उन सब का पिता, जिससे हम सब की उत्पत्ति हुई है—ऐसा जो यह ब्रह्मा है, यह स्थायी है, सतत रहने वाला है, निरप है, अपरिवर्तन-शील है और वह अनन्त काल तक ऐसा ही रहेगा। तो हम जिन्हें ब्रह्मा ने उत्पन्न किया है, जो ब्रह्मा के यहाँ से यहाँ आये हैं, सभी अनित्य क्यों हैं, परिवर्तन-शील क्यों हैं, अस्थिर क्यों हैं, अल्पजीवी क्यों हैं ? मरणधर्मी क्यों हैं ?

३८. इसका बासेट्ट के पास कोई उत्तर न था।

३९. तथागत का तीसरा तर्क ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता से सम्बन्धित था। "यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान है और सृष्टि का पर्याप्त कारण है, तो फिर आदमी के दिल में कुछ करने की इच्छा ही उत्पन्न नहीं हो सकती, उसे कुछ करने की आवश्यकता भी नहीं रहसकती, न उसके मन में कुछ करने का किसी भी तरह का कोई भी प्रयत्न करने का कोई संकल्प ही पैदा हो सकता है। यदि यह ऐसा ही है तो ब्रह्मा ने आदमी को पैदा ही क्यों किया ?"

४०. इसका भी बासेट्ट के पास कोई उत्तर न था।

४१. तथागत का चौथा तर्क था यदि ईश्वर 'शिव' है, कल्याण-स्वरूप है तो आदमी हत्यारे, चोर, व्यभिचारी, झूठे, चंगलखोर, बकबादी, लोभी, द्वेषी और कुमार्गी क्यों हो जाते हैं ? क्या किसी अच्छे, भले, शिव स्वरूप ईश्वर के रहते यह सम्भव है ?

४२. तथागत का पाँचवाँ तर्क ईश्वर के सर्वज्ञ, न्यायी और दयालु होने से सम्बन्धित था।

४३. यदि कोई ऐसा महान् सृष्टि-कर्ता है जो न्यायी भी है और दयालु भी है, तो संसार में इतना अन्धकार क्यों हो रहा है ? भगवान् बुद्ध का प्रश्न था। उन्होंने कहा:—"जिसके पास भी आँख है वह इस दर्दनाक हालत को देख सकता है ? ब्रह्मा अपनी रचना को सुधारता क्यों नहीं है ? यदि उसकी शक्ति इतनी असीम है कि उसे कोई रोकने वाला नहीं तो उसके हाथ ही क्यों ऐसे हैं कि शायद ही कभी किसी का कल्याण करते हों ? उसकी सारी की सारी सृष्टि दुःख क्यों भोग रही है ? वह सभी को सुखी क्यों नहीं रखता है ? चारों ओर ठगी, झूठ और अज्ञान क्यों फैला हुआ है ? सत्य पर झूठ क्यों बाजी मार ले जाता है ? सत्य और न्याय क्यों पराजित हो जाते हैं ? मैं तुम्हारे ब्रह्मा को पर-अन्यायी

मानता हूँ जिसने केवल अन्याय को आशय देने के लिये ही इस जगत की रचना की।”

४४. “यदि सभी प्राणियों में कोई ऐसा सर्वशक्तिमान ईश्वर व्याप्त है जो उन्हें सुखी अथवा दुखी बनाता है, और जो उन से पाप-पुण्य कराता है तो ऐसा ईश्वर भी पाप से सनता है। या तो आदमी ईश्वर की आज्ञा में नहीं है या ईश्वर स्वामी और नेक नहीं है अथवा ईश्वर अन्या है।

४५. ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त के विरुद्ध उनका जगता तर्क यह था कि ईश्वर की चर्चा से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

४६. भगवान् बुद्ध के अनुसार धर्म की घुरी ईश्वर और आदमी का सम्बन्ध नहीं है, बल्कि आदमी आदमी का सम्बन्ध है। धर्म का प्रयोजन यही है कि वह आदमी को सिखा दे कि वह दूसरे आदमियों के साथ कैसे व्यवहार करे ताकि सभी आदमी प्रसन्न रह सकें।

४७. एक और भी कारण था जिसकी वजह से तथागत ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त के इतने खिलाफ थे।

४८. वह धार्मिक रस्मों और व्यर्थ के धार्मिक क्रिया-कलाप के विरोधी थे। उनके विरोध का कारण यही था कि ये सब भ्रम्या-विश्वास के घर हैं और मिथ्या-विश्वास सम्यक्-दृष्टि का शत्रु है। उस सम्यक्-दृष्टि का जो तथागत के जार्म अष्टांगिक-मार्ग का सब से महत्वपूर्ण पक्ष है।

४९. तथागत की दृष्टि में ईश्वर-विश्वास बड़ी ही खतरनाक बात थी। क्योंकि ईश्वर-विश्वास ही प्रार्थना और पूजा की सामर्थ्य में विश्वास का उत्पादक है, और प्रार्थना कराने की जरूरत ने ही पादरी-पुरोहित को जन्म दिया और पुरोहित ही वह शरारती दिमाग था जिसने इतने अन्ध-विश्वास को जन्म दिया और सम्यक्-दृष्टि के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया।

५०. ईश्वर के अस्तित्व के विरुद्ध दिये गये इन तर्कों में से कुछ व्यावहारिक थे, कुछ मात्र सैद्धान्तिक। तथागत जानते थे कि ये ईश्वर के अस्तित्व के विश्वास के लिये एकदम मारक-तर्क नहीं हैं।

५१. लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि तथागत ने कोई मारक-तर्क दिया ही नहीं। एक तर्क उन्होंने दिया जो निश्चयात्मक रूप से ईश्वर-विश्वास के लिये प्राण-घातक है। यह उनके प्रतीत्य-समुत्पाद के सिद्धान्त के अन्तर्गत आता है।

५२. इस सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर का अस्तित्व है या नहीं है, यह मुख्य प्रश्न ही नहीं है। न यही प्रश्न मुख्य है कि ईश्वर ने सृष्टि की रचना की या नहीं की? असल प्रश्न यह है कि रचयिता ने सृष्टि किस प्रकार रची? यदि हम इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर दे सकें कि संसार की रचना कैसे हुई तो उसमें से ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त का कुछ औचित्य सिद्ध हो सकता है।

५३. महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या ईश्वर ने सृष्टि भाव (= किसी पदार्थ) में से उत्पन्न की अथवा अभाव (= शून्य) में से ?

५४. यह तो विश्वास करना असम्भव है कि 'कुछ नहीं' में से 'कुछ' की रचना हो गई ।

५५. यदि ईश्वर ने सृष्टि की रचना 'कुछ' में से की है तो वह 'कुछ'—जिस-में से नया 'कुछ' उत्पन्न किया गया है—ईश्वर के किसी भी अन्य चीज के उत्पन्न करने के पहले से चला आया है । इसलिये ईश्वर उस 'कुछ' का रचयिता नहीं स्वीकार किया जा सकता जो 'कुछ' उसके भी अस्तित्व के पहले से चला आ रहा है ।

५६. यदि ईश्वर के किसी भी चीज की रचना करने से पहले ही किसी ने 'कुछ' में से उस चीज की रचना कर दी है जिससे ईश्वर ने सृष्टि की रचना की है तो ईश्वर सृष्टि का आदि-कारण नहीं कहला सकता ।

५७. भगवान् बुद्ध का यह आखिरी तर्क ऐसा था कि जो ईश्वर-विश्वास के लिये सर्वथा मारक था, जिसका कुछ जवाब नहीं था ।

५८. मूल-स्थापना ही असत्य होने से ईश्वर को सृष्टि का रचयिता मानना अ-धर्म है । यह केवल 'झूठ' में विश्वास करना है ।

३. ब्रह्म-सायुज्य पर आधारित धर्म मिथ्या-धर्म है ।

१. जब बुद्ध अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे, उस समय एक मत प्रचलित था, जिसे अब हम 'वेदान्त' कहते हैं ।

२. इस धर्म के सिद्धान्त घोड़े से हैं और सरल हैं ।

३. इस विश्व की पृष्ठ-भूमि में एक सर्व-व्यापक जीवन-तत्त्व विद्यमान है, जिसे हम 'ब्रह्म' या 'ब्रह्मन्' कहते हैं ।

४. यह 'ब्रह्म' एक वास्तविकता है ।

५. 'आत्मा' और 'ब्रह्म' में कोई अन्तर नहीं, दोनों एक ही हैं ।

६. 'जीवात्मा' और 'ब्रह्मात्मा' को—जो वास्तव में एक हैं—एक मान लेने से ही आदमी को 'मोक्ष' लाभ हो सकता है ।

७. 'जवात्मा' और 'ब्रह्मात्मा' की एकता तभी स्थापित हो सकती है, जब इसका ज्ञान हो जाय कि दोनों एक हैं ।

८. और 'जीवात्मा' तथा 'ब्रह्मात्मा' की एकता का बोध प्राप्त करने के लिये संसार का त्याग आवश्यक है ।

९. यही सिद्धान्त 'वेदान्त' कहलाते हैं ।

१०—बुद्ध के मन में इस सिद्धान्त के लिये कोई आदर न था । उनको लगता था कि इसका आधार ही मिथ्या है, इसको कुछ उपयोगिता नहीं है और इसी लिये इसे योग्य नहीं ।

११. इसे भगवान् बुद्ध ने वासेट्ट और भारद्वाज नामक दो ब्राह्मण तथर्वों के साथ हुई बातचीत में स्पष्ट किया है।

१२. भगवान् बुद्ध का कहना था कि किसी बात को भी सत्य स्वीकार करने के लिये उसका कोई न कोई प्रमाण होना चाहिये।

१३. प्रमाण दो तरह के होते हैं, प्रत्यक्ष और अनुमान।

१४. भगवान् बुद्ध का सीधा प्रश्न था : "क्या किसी को भी 'ब्रह्म' का प्रत्यक्ष हुवा है ? क्या तुमने 'ब्रह्म' को देखा है ? क्या तुमने 'ब्रह्म' से बातचीत की है ? क्या तुमने 'ब्रह्म' को सूँघा है ?".

१५. वासेट्ट का उत्तर था—"नहीं।"

१६. ब्रह्म के अस्तित्व का दूसरा अनुमान प्रमाण भी असन्तोषजनक है।

१७. भगवान् बुद्ध का प्रश्न था—"हम किस चीज के होने से 'ब्रह्म' के होने का अनुमान लगाते हैं ?" इसका भी कोई उत्तर न था।

१८. कुछ लोगों का कहना है कि अदृश्य वस्तु का भी अस्तित्व हो सकता है। इसलिये वे कहते हैं कि अदृश्य होने पर भी 'ब्रह्म' का अस्तित्व है।

१९. यह कथन तो एक दम नंगा-कथन है और एक असम्भव स्थापना लिये हुए है।

२०. लेकिन तर्क के लिये मान लेते हैं कि अदृश्य होने पर भी किसी वस्तु का अस्तित्व हो सकता है।

२१. लोग कहते हैं कि इसका सबसे अच्छा उदाहरण बिजली है। यह अदृश्य है, लेकिन तब भी इसका अस्तित्व है।

२२. यह तर्क पर्याप्त नहीं है।

२३. किसी अदृश्य वस्तु को किसी दूसरे दृश्य रूप में अपने आपको प्रकट करना चाहिये। तभी हम उसकी वास्तविकता स्वीकार कर सकते हैं।

२४. लेकिन यदि कोई अदृश्य वस्तु किसी भी दूसरे दृश्य रूप में अपने को प्रकट नहीं करती तो हम उसकी वास्तविकता स्वीकार नहीं कर सकते।

२५. हम अदृश्य होने पर भी बिजली की वास्तविकता उसने उत्पन्न होने वाले परिणामों को देखा कर स्वीकार करते हैं।

२६. बिजली से प्रकाश पैदा होता है। प्रकाश के होने से ही हम अदृश्य होने पर भी बिजली की वास्तविकता को स्वीकार करते हैं।

२७. वह कौनसी दृश्य चीज है, जिसे यह अदृश्य 'ब्रह्म' उत्पन्न करता है ?

२८. उत्तर है—"कुछ नहीं।"

२९. एक दूसरा उदाहरण दिया जा सकता है। कानून में भी यह सामान्य बात है कि किसी एक बात को, किसी एक स्थापना को मान लिया जाता है, उसे सिद्ध नहीं किया जाता, वह केवल एक 'कानूनी कल्पना' होती है।

३०. इस तरह की 'कानूनी कल्पना' को हम सभी स्वीकार करते हैं।

३१. लेकिन इस तरह की 'कानूनी कल्पना' क्यों स्वीकार की जाती है ?

३२. इसका कारण यह है कि 'कानूनी कल्पना' इसलिये स्वीकार की जाती है कि उससे न्याय-संगत तथा उपयोगी परिणाम निकलता है।

३३. 'ब्रह्म' को भी एक 'कल्पना' मान लेते हैं। किन्तु इससे कौनसा उपयोगी परिणाम निकलता है ?

३४. वासेट्टु और भारद्वाज के पास कोई उत्तर न था।

३५. उनके दिमाग में अच्छी तरह कील ठोकने के लिये उन्होंने वासेट्टु को सम्बोधित करके उससे पूछा—क्या तुमने 'ब्रह्म' को देखा है ?

३६. "जया तीनों वेदों के जानकार ब्राह्मणों में कोई एक भी ऐसा है जिसने 'ब्रह्म' को आमने-सामने देखा है ?"

३७. "गौतम ! निश्चय से नहीं।"

३८. "वासेट्टु ! क्या इन तीनों वेदों के जानकार ब्राह्मणों के आचार्यों में कोई एक भी है, जिसने 'ब्रह्म' को आमने-सामने देखा हो ?"

३९. "गौतम ! निश्चय से नहीं।"

४०. "वासेट्टु ! क्या इन ब्राह्मणों की पहले की सात पीढ़ियों में भी कोई एक भी ब्राह्मण है, जिसने 'ब्रह्म' को आमने-सामने देखा हो ?"

४१. "गौतम ! निश्चय से नहीं।"

४२. "अच्छा तो वासेट्टु ? क्या ब्राह्मणों के पुराने ऋषियों ने कभी कहा है—'हम ब्रह्म' को जानते हैं, हमने 'ब्रह्म' को देखा है। हम जानते हैं कि वह कहाँ है, किधर है ?"

४३. "गौतम ! नहीं ही।"

४४. तत्पश्चात् ने उक्त दोनों ब्राह्मण-तत्त्वज्ञों से प्रश्न पुछना जारी रखा :—

४५. "तो वासेट्टु ! अब तुम्हें कैसा लगता है ? यदि ऐसा ही है तो क्या तुम्हें यह नहीं लगता कि 'ब्रह्म-सायुज्य' की ब्राह्मणों की यह सारी बात-चीत ही मूर्खता पूर्ण बात-चीत है ?

४६. "वासेट्टु ! जैसे कोई अंधों की कतार हो। न आगे-आगे चलने वाला अंधा देख सकता हो, न बीच में चलने वाला अंधा देख सकता हो और न पीछे चलने वाला अंधा देख सकता हो—इसी तरह वासेट्टु ! मुझे लगता है कि ब्राह्मणों का कथन केवल अंधा-कथन है। न आगे-आगे चलने वाला देखता है, न बीच में चलने वाला देखता है, और न पीछे चलने वाला देखता है। इन ब्राह्मणों की बात-चीत केवल उपहासास्पद है; शब्द-मात्र जितमें कुछ भी सार नहीं।

४७. "वासेट्टु ! क्या यह ठीक ऐसा ही नहीं है जैसे किसी आदमी का किसी

स्त्री से प्रेम हो गया हो, जिसे उसने कभी देखा न हो ?" वासेट्टु बोला—'हाँ ! यह तो ऐसा ही है ?'

४८. "वासेट्टु ! अब तुम बताओ कि यह कैसा होगा जब लोग उस आदमी से पूछेंगे कि मित्र ! तुम सारे प्रदेश की जिस सुन्दरतम स्त्री से इतना प्रेम करने की बात करते हो, वह कौन है ? वह क्षत्रिय जाति से है ? ब्राह्मण जाति से है ? वैश्य जाति से है ? अथवा शूद्र जाति से है ?

४९. "लेकिन जब उससे पूछा जायगा, उसका उत्तर होगा 'नहीं' ।

५०. "और जब लोग उससे पूछेंगे कि मित्र ! तुम सारे देश की जिस सुन्दरतम स्त्री से इतना प्रेम करने की बात करते हो, उसका नाम क्या है ? उसका गोत्र क्या है ? वह लम्बे कद की है, छोटे कद की है वा मझले कद की है ? क्या वह काले रंग की है, भूरे रंग की है वा गेहूँए रंग की है ? वह किस गाँव, नगर या शहर में रहती है ? लेकिन जब उससे ये सब प्रश्न पूछे जायेंगे उसका एक ही उत्तर होगा—'नहीं'

५१. "तो वासेट्टु ! तुम्हें कैसा लगता है ? क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि उस आदमी का कथन भ्रूखंता-पूर्ण कथन है ?

५२. दोनों ब्राह्मण तरुण बोले—"गौतम ! सचमुच, यह ऐसा ही है ।"

५३. इसलिये 'ब्रह्म' पदार्थ नहीं है और यदि कोई धर्म 'ब्रह्माश्रित' है तो वह व्यर्थ ।

४. आत्मा में विश्वास अ-धर्म है

१. भगवान् बुद्ध ने कहा कि जिस धर्म का सारा दारोमदार 'आत्मा' पर है वह कल्पनाश्रित धर्म है ।

२. आज तक किसी ने भी न तो 'आत्मा' को देखा है और न उससे बात-चीत की है ।

३. आत्मा अज्ञात है, अदृश्य है ।

४. जो चीज वास्तव में है वह मन या चित्त है, 'आत्मा' नहीं । मन 'आत्मा' से निष्प्र है ।

५. तथागत ने कहा—'आत्मा में विश्वास करना अनुपयोगी है ।'

६. इसलिये जो धर्म 'आत्मा' पर आश्रित है, वह अपनाते योग्य नहीं है ।

७. ऐसा धर्म केवल मिथ्या-विश्वास का जनक है ।

८. बुद्ध ने इस बात को यों ही नहीं छोड़ दिया है । तथागत ने इसकी अच्छी तरह चर्चा की है ।

९. 'आत्मा' में विश्वास भी वैसी ही सामान्य बात है जैसी 'परमात्मा' में विश्वास है ।

१०. 'आत्मा' में विश्वास रखना भी 'बाह्यणी' धर्म का अंग था ।

११. 'बाह्यणी' धर्म में 'रुह' को 'आत्मा' या 'आत्मन्' कहते हैं ।

१२. बाह्यणी धर्म में 'आत्मा' उस तत्त्व-विशेष को कहा गया है जो शरीर से पृथक्, किन्तु शरीर के ही भीतरी, अन्तर्गत के समय से लेकर लगातार बना रहता है ।

१३. 'आत्मा' के विश्वास के साथ तत्सम्बन्धी दूसरे विश्वास भी जुड़े हुए हैं ।

१४. शरीर के साथ 'आत्मा' का मरण नहीं होता । यह दूसरे जन्म के समय दूसरे शरीर के साथ जन्म ग्रहण करती है ।

१५. शरीर 'आत्मा' का एक और अतिरिक्त-परिधान है ।

१६. क्या भगवान् बुद्ध 'आत्मा' में विश्वास रखते थे ? नहीं, एकदम नहीं । 'आत्मा' के सम्बन्ध में उनका मत 'अनात्म-वाद' कहलाता है ।

१७. यदि एक अशरीरी 'आत्मा' को स्वीकार कर लिया जाय तो उसके सम्बन्ध में बहुत से प्रश्न पैदा होते हैं । 'आत्मा' क्या है ? 'आत्मा' का आगमन कहाँ से हुआ ? शरीर के मरने पर इसका क्या होता है ? यह कहाँ जाता है ? शरीर के न रहने पर यह 'परलोक' में कैसे रहता है ? वहाँ यह कब तक रहता है ? जो लोग 'आत्मा' के अस्तित्व के सिद्धान्त के समर्थक थे, भगवान् बुद्ध ने उनसे ऐसे प्रश्नों का उत्तर चाहा था ।

१८. पहले तो उन्होंने अपने जिरह करने के सामान्य क्रम से यह दिखाना चाहा कि 'आत्मा' का विचार कितना गोल-मटोल है ।

१९. जो 'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास रखते थे, उनसे भगवान् बुद्ध ने जानना चाहा कि 'आत्मा' का आकार कितना बड़ा या छोटा है ? 'आत्मा' की शक्ति कैसी है ?

२०. आनन्द स्वधिर को उन्होंने कहा था—“आनन्द ! आत्मा के सम्बन्ध में लोगों के अनगिनत मत हैं । कोई कहते हैं—‘मेरा ‘आत्मा’ रुपी है और बड़ा ही सूक्ष्म है ।’ कुछ दूसरों का कहना है कि आत्मा की शक्ति है, यह अनन्त है और यह सूक्ष्म है । कुछ दूसरे हैं जिनका कहना है कि यह निराकार है और अनन्त है ।

२१. “आनन्द ! ‘आत्मा’ के बारे में नाना तरह के मत हैं ।”

२२. “जो लोग ‘आत्मा’ के अस्तित्व में विश्वास करते हैं, उनको आत्मा की कल्पना क्या है ?” यह भी भगवान् बुद्ध का एक प्रश्न था । कोई कहते हैं—“हमारा आत्मा (सुख-दुःख) अनुभव-क्रिया है ।” दूसरे कहते हैं “नहीं आत्मा अनुभव-क्रिया नहीं, आत्मा अनुभव-क्रिया है ।” या फिर कोई-कोई कहते हैं, ‘मेरा आत्मा अनुभव-क्रिया नहीं है, न यह अनुभव-क्रिया है, बल्कि मेरा आत्मा अनुभव करता है, मेरे आत्मा का गुण है अनुभव करना ।’ आत्मा के बारे में इस तरह की नाना कल्पनाएँ हैं ।

२३. जो लोग 'आत्मा' में विश्वास रखते थे, उनसे भगवान् बुद्ध ने यह भी पूछा है कि मरणान्तर 'आत्मा' की क्या हालत होती है ?

२४. तथागत ने यह भी प्रश्न पूछा है कि क्या मरने के बाद 'आत्मा' देखा जा सकता है ?

२५. उन्हें अनगिनत गोल-मटोल जवाब मिले ।

२६. क्या शरीर का नाश हो जाने पर 'आत्मा' अपने आकार-प्रकार को बनाये रखता है ? उन्होंने देखा कि इस एक प्रश्न के आठ काल्पनिक उत्तर थे ।

२७. क्या 'आत्मा' शरीर के साथ मर जाता है ? इस पर भी अनगिनत कल्पनायें थीं ।

२८. तथागत ने यह भी पूछा है कि शरीर के मरने के बाद 'आत्मा' सुखी रहता है वा दुःखी रहता है ? क्या 'आत्मा' शरीर की मृत्यु के बाद सुखी रहता है ? इस विषय में भी अमणों और ब्राह्मों के भिन्न-भिन्न मत थे । कुछ का कहना था कि यह एकदम दुःखी रहता है । कुछ का कहना था सुखी रहता है । कुछ का कहना था कि यह सुखी भी रहता है, दुःखी भी रहता है । कुछ का कहना था कि न यह सुखी रहता है और न दुःखी रहता है ।

२९. 'आत्मा' के सम्बन्ध में इन सब मतों के बारे में तथागत का वही एक उत्तर था, जो उन्होंने बुद्ध को दिया ।

३०. बुद्ध को उन्होंने कहा था—'हे बुद्ध ! जो अमण या ब्राह्मण इन मतों में से कोई भी मत रखते हैं, मैं उनके पास जाता हूँ और उनसे पूछता हूँ, 'भिन्न ! क्या आपका यह कहना ठीक है ?' और यदि वे उत्तर देते हैं, 'हाँ ! मेरा मत ही ठीक है, शेष सब बेतुका है', तो मैं उनके इस मत को नहीं मानता । ऐसा क्यों ? क्योंकि इस विषय में लोगों के नाना मत हैं । मैं उनमें से किसी भी एक मत को अपने मत से श्रेष्ठ मानने की तो बात ही नहीं, अपने मत के समान स्तर पर भी नहीं मानता ।"

३१. अब महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि 'आत्मा' के अस्तित्व के सिद्धान्त के विरुद्ध भगवान् बुद्ध ने कौन-कौन से तर्क दिये हैं ?

३२. भगवान् बुद्ध ने 'आत्मा' के विरुद्ध भी सामान्य रूप से वे ही तर्क दिये हैं जो उन्होंने 'परमात्मा' के विरुद्ध दिये हैं ।

३३. उनका एक तर्क तो यही था कि 'आत्मा' की चर्चा उतनी ही बेकार व अनुपयोगी है, जितनी 'परमात्मा' की चर्चा ।

३४. उनका तर्क था कि 'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास सम्यक्-दृष्टि के विकास में उतना ही बाधक है, जितना 'परमात्मा' का विश्वास ।

३५. उनका तर्क था कि 'आत्मा' में विश्वास भी उतना ही मिथ्या-विश्वास का धर है जितना 'परमात्मा' में विश्वास । उनकी सम्मति में 'आत्मा' में विश्वास करना 'परमात्मा' में विश्वास करने की ओसा भी अधिक खतरनाक था । क्योंकि

इससे इतना ही नहीं होता कि पुरोहितों का जन्म पैदा हो जाता है, इससे इतना ही नहीं होता कि मिथ्या-विश्वासों के जन्म का रास्ता खुल जाता है बल्कि 'आत्मा' के विश्वास के फलस्वरूप आदमी के जन्म से मरण-पर्यन्त उसके समस्त जीवन पर पुरोहित-शाही का अधिकार हो जाता है।

३६. इन्हीं सामान्य तर्कों के कारण कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध ने 'आत्मा' के बारे में अपना कोई निश्चित मत अभिव्यक्त नहीं किया। कुछ दूसरे लोगों का कहना है कि उन्होंने 'आत्मा' के सिद्धान्त का खण्डन नहीं किया। कुछ औरों ने कहा है कि भगवान् बुद्ध हमेशा इस प्रश्न को बचा जाते थे।

३७. ये सभी मत एकदम सत्य हैं। क्योंकि महात्मा को भगवान् बुद्ध ने स्पष्ट रूप से निश्चित शब्दों में यह कहा था कि 'आत्मा' नाम का कोई पदार्थ नहीं है।^{*} इसीलिये 'आत्मा' के सम्बन्ध में तथागत का मत 'अनात्मवाद' कहलाता है।

३८. 'आत्मा' के विरुद्ध सामान्य तर्क के अतिरिक्त भगवान् बुद्ध ने विशेष तर्क भी दिया है जो कि उनके अनुसार 'आत्मा' के सिद्धान्त के लिए एकदम मारक तर्क ही था।

३९. 'आत्मा' के अस्तित्व की स्थापना के मुकाबले में भगवान् बुद्ध का अपना सिद्धान्त या नाम-रूप का सिद्धान्त।

४०. यह नाम-रूप का सिद्धान्त 'विभज्ज-वाद' द्वारा परीक्षण का परिणाम है, मानव-व्यक्तित्व अथवा मानव के बड़े ही सूक्ष्म कठोर विश्लेषण का परिणाम है।

४१. 'नाम-रूप' एक प्राणी का सामूहिक नाम है।

४२. भगवान् बुद्ध के अनुसार हर प्राणी कुछ भौतिक तत्वों तथा कुछ मानसिक तत्वों के सम्मिश्रण का परिणाम है। वे भौतिक तथा मानसिक तत्व 'स्कन्ध' कहलाते हैं।

४३. रूप-स्कन्ध प्रधान रूप से पृथ्वी, जल, वायु तथा अग्नि—इन चार भौतिक तत्वों का परिणाम है। वे 'रूप' अथवा शरीर है।

४४. रूप-स्कन्ध के अतिरिक्त (चित्त-चैतसिकों का समूह) नाम-स्कन्ध है, जिससे एक प्राणी की रचना होती है।

४५. इस नाम-स्कन्ध को हम विज्ञान (= चेतना) भी कह सकते हैं। यह इस नाम-स्कन्ध के अन्तर्गत, वेदना (छः इन्द्रियों तथा उनके विषयों के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाली अनुभूति), संज्ञा (संज्ञा) तथा संस्कार (संस्कार) है। विज्ञान भी इन तीनों के साथ शामिल किया जाता है। (इस प्रकार पूर्व के तीन चैतसिक और विज्ञान (= चित्त) को मिलाकर नाम-स्कन्ध होता है—अनु०)। एक आधुनिक मानस-शास्त्र-वेत्ता कदाचित् इसे इस रूप में कहना पसन्द करेगा कि चित्त ही वह मूल स्रोत है, जिससे सभी चैतसिक उत्पन्न होते हैं (अथवा चैतसिकों के समूह-

विशेष का नाम ही चित्त हो जाता है—अनु०) । विज्ञान (= चित्त) किसी भी प्राणी का केन्द्र-बिन्दु है ।

४६. पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु—इन चार तत्वों के सम्मिश्रण से 'विज्ञान' उत्पन्न होता है ।

४७. बुद्ध द्वारा प्रतिपादित 'विज्ञान' की उत्पत्ति के इस सिद्धान्त पर एक आपत्ति उठाई जाती है ।

४८. जो इस सिद्धान्त के विरोधी है, वे पूछते हैं "विज्ञान (= चित्त) की उत्पत्ति कैसे होती है ?"

४९. यह सत्य है कि आदमी के जन्म के साथ विज्ञान (= चित्त) की उत्पत्ति होती है और आदमी के मरण के साथ विज्ञान (= चित्त) का विनाश होता है । लेकिन साथ ही क्या यह कहा जा सकता है कि विज्ञान (= चित्त) चार तत्वों के सम्मिश्रण का परिणाम है ?

५०. भगवान् बुद्ध ने इसे इस रूप में नहीं कहा कि भौतिक तत्वों की सह-स्थिति अथवा उनके सम्मिश्रण से विज्ञान (= चित्त) की उत्पत्ति होती है । तथागत ने इसे इस रूप में कहा है कि जहाँ भी शरीर या रूप-काय है, वहाँ साथ-साथ नामकाय भी रहता है ।

५१. आधुनिक विज्ञान से एक उपमा लें । जहाँ-जहाँ विद्युत-क्षेत्र (electric field) होता है, वहाँ-वहाँ उसके साथ आकर्षण-क्षेत्र (magnetic field) रहता है । कोई नहीं जानता कि यह आकर्षण-क्षेत्र किस प्रकार उत्पन्न होता है, या किस प्रकार अस्तित्व में आता है ? लेकिन जहाँ-जहाँ विद्युत-क्षेत्र होता है, वहाँ वहाँ यह उसके साथ अनिवार्य-रूप से रहता है ।

५२. शरीर और विज्ञान (= चित्त) में भी हम कुछ-कुछ इसी प्रकार का सम्बन्ध क्यों न मान लें ?

५३. विद्युत-क्षेत्र की अपेक्षा से उसका आकर्षण-क्षेत्र विद्युत-क्षेत्र द्वारा प्रेरित क्षेत्र (induced field) कहलाता है । तो फिर हम विज्ञान (= चित्त) को भी रूप-काय (= शरीर) की दृष्टि से उसके द्वारा प्रेरित-क्षेत्र क्यों न कहें ?

५४. 'आत्मा' के विरुद्ध त्यागत का तर्क यहीं समाप्त नहीं होता । अभी विशेष महत्वपूर्ण वक्तव्य शेष है ।

५५. जब विज्ञान (= चित्त = चेतना) का उदय होता है तभी आदमी जीवित प्राणी बनता है । इसलिये विज्ञान (= चित्त = चेतनता) आदमी के जीवन में प्रधान वस्तु है ।

५६. विज्ञान की प्रकृति है ज्ञान-मूलक, भावना-मूलक, और क्रिया-शील ।

५७. विज्ञान को हम ज्ञान-मूलक उस समय कहते हैं जब यह हमें कुछ जानकारी देता है, कुछ ज्ञान प्रदान करता है—वह ज्ञान रुचिकार भी हो सकता है और अरुचि-

कर भी हो सकता है, वह अपने भीतर घटनेवाली घटनाओं का भी हो सकता है, बाह्य-घटनाओं का भी हो सकता है।

५८. 'विज्ञान' को हम भावना-मूलक उस समय कहते हैं जब वह चित्त की उन अवस्थाओं में उपस्थित रहता है जो अनुकूल-अनुभूतिवा भी हो सकती हैं और प्रतिकूल-अनुभूतिवा भी; जब भावना-मूलक ज्ञान वेदना (= अनुभूति) की उत्पत्ति का कारण बनता है।

५९. विज्ञान अपनी क्रिया-शील अवस्था में आदमी को उद्देश्य-विशेष की सिद्धि के लिए कुछ करने की प्रेरणा देता है। क्रिया-शील विज्ञान ही संकल्पों का या इरादों का जनक है।

६०. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि एक प्राणी की जितनी भी क्रियायें हैं वे या तो विज्ञान के द्वारा अथवा विज्ञान के परिणाम-स्वरूप पूरी होती हैं।

६१. इस विश्लेषण के बाद भगवान् बुद्ध प्रश्न करते हैं कि वह कौन सा कार्य है जो 'आत्मा' के करने के लिये बचा रहता है? 'आत्मा' के जो कार्य माने जाते हैं, वे सब तो विज्ञान (= चित्त) द्वारा हो जाते हैं।

६२. जिसका कुछ 'कार्य' ही नहीं, ऐसा 'आत्मा' एक बेहूदगी है।^x

६३. इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने 'आत्मा' का अस्तित्व असिद्ध किया है।

६४. यही कारण है कि 'आत्मा' का अस्तित्व स्वीकार करना अधर्म है।

५. यज्ञ (= बलि-कर्म) में विश्वास अधर्म है

(i)

१. ब्राह्मणी धर्म यज्ञों पर निर्भर करता था।

२. कुछ यज्ञ 'नित्य' कहलाते थे और कुछ यज्ञ 'नैमित्तिक' कहलाते थे।

३. 'नित्य' यज्ञ का मतलब था वे अनिवार्य कर्तव्य जो चाहे कोई फल मिले और चाहे न मिले करणीय ही थे।

४. 'नैमित्तिक' यज्ञ उस समय किये जाते थे जब यजमान किसी सांसारिक इच्छा-विशेष की पूर्ति के लिये, उसके निमित्त से, वह 'यज्ञ' कराता था।

५. ब्राह्मणी—यज्ञों में मुरा-पान, पशुओं की बलि और हर तरह का आमोद प्रमोद रहता था।

६. तब भी ये यज्ञ 'धार्मिक-कृत्य' समझे जाते थे।

७. ऐसे धर्म को जिसका आधार 'यज्ञ' थे—बुद्ध ने अपनाने योग्य नहीं समझा।

८. उन बहुत से ब्राह्मणों को जो भगवान् बुद्ध से विवाद करने पहुँचे, तथागत ने अपने कारण बता दिये थे कि वे क्यों 'यज्ञों' को 'धर्म' का अंग मानने के लिये तैयार न थे।

९. लिखा मिलता है कि इस विषय में तीन ब्राह्मणों ने तथागत से वाद-विवाद किया था।

१०. उनके नाम थे, कूटदन्त, उज्जय और उदायी ।

११. कूटदन्त ब्राह्मण ने भगवान् बुद्ध से पूछा था कि यज्ञ के बारे में उनका क्या मत था ?

१२. तत्काल बोले—“अच्छा तो, हे ब्राह्मण सुन, ध्यान दे और जो कुछ मैं कह रहा हूँ उसे सावधान रहकर सुन ।”

१३. “बहुत अच्छा”, कूटदन्त बोला । तब भगवान् बुद्ध ने कहा—

१४. “हे ब्राह्मण ! बहुत पुराने समय में महा-विजेता नाम का एक राजा था, बड़ा प्रतापी, बहुत धन वाला तथा बहुत सम्पत्ति वाला । उसके पास सोने-चांदी के भण्डार थे, सुख-भोग के सब सामान थे, धन-धान्य की कमी न थी । उसके खजाने धन से और उसके कोठे अनाज से भरे थे ।

१५. “अब, एक बार, जब राजा महाविजेता अकेला विचार-मग्न बैठा था, उसके मन में बड़े जोर से यह विचार पैदा हुआ : ‘आदमी के सुख-भोग के सामानों की मेरे पास कमी नहीं । मैं पृथ्वी का चक्रवर्ती राजा हूँ । यह अच्छा होगा यदि मैं एक महान् यज्ञ करूँ जो दीर्घकाल तक मेरे कल्याण के लिये हो ।’

१६. “तब उस ब्राह्मण ने, जो राजा का पुरोहित था, राजा से कहा— ‘राजन् ! इस समय आपकी प्रजा हैरान की जा रही है और लूटी जा रही है । बहुत से डाकू हैं जो गाँव और नगरों में लूट-मार करते हैं और जिनहीं रास्ते अरक्षित कर दिये हैं । जब तक ऐसी अवस्था है, तब तक यदि, महाराज ने प्रजा पर एक नया टैक्स और लगाया तो महाराज निश्चय से गलती करेंगे ।’

१७. “लेकिन हो सकता है कि महाराज यह सोचें कि मैं शीघ्र ही उन दुष्टों को सब कारबाइयाँ रोक दूँगा—उनको पकड़वा लूँगा, उन पर जुमनि करूँगा, उनको देश-निकाला दे दूँगा तथा उनको मरवा डालूँगा । लेकिन इस तरह से उनकी स्वच्छाचारिता नहीं रोकी जा सकती । जो अदृष्टित बच रहेंगे, वे प्रजा को हैरान करते रहेंगे ।

१८. “इस गड़बड़ी को जड़मूल से समाप्त करने का एक रास्ता है । आपके राज्य में जितने भी ऐसे हों जो पशु पालते हों या खेती करते हों, उन्हें महाराज ! आप खाने की दै और खेती में बीज देने के लिये बीज दें । आपके राज्य में जितने भी ऐसे हों जो व्योपार में लगे हों, उन्हें महाराज ! आप व्योपार करने के लिये पूँजी दें । आपके राज्य में जितने भी ऐसे हों जो सरकारी कर्मचारी हों, उन्हें महाराज ! आप भोजन और वेतन दें ।

१९. “तब जब सब कोई अपने अपने काम में लगे रहेंगे तो वे देश में उत्पात नहीं मचायेंगे, राजा को राज्यकर से अधिक आय होने लगेगी, देश सुख और शान्ति का अनुभव करेगा ; और जनता खुश-हाल हो जायगी । लोग अपने बच्चों को गोद में लेकर नाचेंगे और निर्भय होकर खुले दरवाजे सोयेंगे ।’

२०. "तब हे ब्राह्मण ! राजा महाविजेता ने अपने पुरोहित की बात मान वैसा ही किया । लोग अपने अपने काम में लग गये । उन्होंने देश में उत्पात मचाना छोड़ दिया । राजा को राज्य-कर से अधिक आय होने लगी । देश सुख और शान्ति का अनुभव करने लगा । जनता खुश-हाल हो गई । लोग अपने अपने बच्चों को गोद में लेकर नाचने लगे और निर्भय होकर खूले-दरवाजे सोने लगे ।

२१. "जब उत्पात शान्त हो गया, तो राजा महाविजेता ने फिर अपने पुरोहित से कहा—“अब उत्पात शान्त है । देश खुशहाल है । मैं अपने दीर्घकालीन कल्याण के लिये वह महान् यज्ञ करना चाहता हूँ । आप बतायें कि कैसे करूँ ?”

२२. पुरोहित ने राजा को उत्तर देते हुए कहा—“राजन् ! अब यज्ञ होने दें । राजन् ! अब आप राजधानी में और राजधानी के बाहर समस्त देश में ऐसे जितने भी क्षत्रिय हों जो आपके मालगुजार हों उन्हें निर्मग्न दे, जो मन्त्री हों, राजपाधिकारी हों या प्रतिष्ठित ब्राह्मण हों, या जो सम्पन्न गृहपति हों—उन सब को निर्मग्न भेजें और कहें कि मैं अपने दीर्घकालीन कल्याण के लिये महान् यज्ञ करना चाहता हूँ । आप उसकी स्वीकृति दे दें ।”

२३. "तब हे ब्राह्मण कूटवन्त ! जैसा पुरोहित ने कहा था, वैसा ही राजा ने किया । उन क्षत्रियों, मन्त्रियों, ब्राह्मणों तथा गृहपतियों ने भी वैसा ही उत्तर दिया—“राजन् ! आप महान् यज्ञ करें । राजन् ! वह समय महान् यज्ञ करने के लिये अनुकूल है ।

२४. "राजा महाविजेता बुद्धिमान था और अनेक बातों में बहुत कुशल था । उनका पुरोहित भी वैसा ही बुद्धिमान था और बहुत बातों में कुशल था ।

२५. "हे ब्राह्मण ! तब उस पुरोहित ने यज्ञ के आरम्भ होने से पहले राजा को बता दिया कि उसमें कितना धन व्यय हो सकता है ?

२६. पुरोहित ने कहा—“महाराज ! कहीं ऐसा न हो कि यज्ञ आरम्भ करने से पूर्व, या यज्ञ करते समय अथवा यज्ञ हो चुकने के अनन्तर आपके मन में यह विचार उत्पन्न हो कि 'अरे ! इस यज्ञ में तो मेरी सम्पत्ति का बड़ा हिस्सा लग गया', तो ऐसा विचार मन में नहीं आना चाहिये ।

२७. "और हे ब्राह्मण ! उस पुरोहित ने यज्ञ आरम्भ होने से ही पहले, बाद में राजा के मन में, यज्ञ में भाग लेने वालों को लेकर कोई पश्चात्ताप न हो, इसलिये राजा को कहा—“राजन् ! आपके यज्ञ में हर तरह के लोग आयें—ऐसे भी जो जीव-हत्या करते हैं, ऐसे भी जो जीव-हत्या नहीं करते । ऐसे भी जो चोरी करते हैं, ऐसे भी जो चोरी नहीं करते । ऐसे भी जो काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करते हैं, और ऐसे भी जो नहीं करते । ऐसे भी जो झूठ बोलते हैं, ऐसे भी जो झूठ नहीं बोलते । ऐसे भी जो झूठी चुगली खाते हैं, ऐसे भी जो झूठी चुगली नहीं खाते । ऐसे भी जो कठोर बोलते हैं, ऐसे भी जो कठोर नहीं बोलते । ऐसे भी

जो व्यर्थ बकवाद करते हैं, ऐसे भी जो व्यर्थ बकवाद नहीं करते, ऐसे भी जो लोभ करते हैं, ऐसे भी जो लोभ नहीं करते । ऐसे भी जो द्वेष करते हैं, ऐसे भी जो द्वेष नहीं करते । ऐसे भी जिनकी सम्पक्-दृष्टि होगी; ऐसे भी जिनकी मिथ्या-दृष्टि होगी । इनसे जो बुरे हों, उन्हें अपनी बुराई के साथ पृथक् रहने दें । और राजन् ! जो भले हों, उनके लिये आप यथायोग्य करें, उन्हें सन्तुष्ट करें, इससे आपके चित्त को आन्तरिक शान्ति प्राप्त होगी ।

२८. "और हे ब्राह्मण ! महाविजेता द्वारा कराये गये इस यज्ञ में वषभ-हत्या नहीं हुई थी, बकरियों से गले नहीं कटे थे, भुग्न-भुगियाँ नहीं मारी गयी थी, न मोटे सूअर और न अन्य किसी भी तरह के प्राणियों की बलि चढ़ाई गई थी । गूप (= वष-स्तंभ) बनाने के लिये कोई पेड़ नहीं काटे गये थे, और यज्ञ-स्थल पर बिछेरने के लिये दूब-घास नहीं काटी गई थी । और वहाँ जो घास, जो इधर-उधर आने-जाने वाले तथा जो अन्य कर्मों काम कर रहे थे, वे दण्ड या भय के कारण अब-मुख होकर काम नहीं कर रहे थे । जिसकी सहायता करने की इच्छा होती थी, काम करता था, जिसकी इच्छा नहीं होती थी, नहीं करता था । जो किसी ने करना चाहा, वह किया; जो नहीं करना चाहा वह बिना किये छोड़ दिया गया । उस यज्ञ में धी, तेल, मक्खन, दूध, मधु और शक्कर के अतिरिक्त और कुछ नहीं काम में आया ।

२९. "यदि आप कोई यज्ञ करना ही चाहते हैं, तो आपका 'यज्ञ' वैसा ही होना चाहिये जैसा महाराज महाविजेता का । अन्यथा यज्ञ व्यर्थ है । पशुओं की बलि निर्दयता मात्र है । 'यज्ञ' कभी धर्म का अंग हो ही नहीं सकते । यह 'धर्म' का निकृष्ट-तम रूप है जो कहता है कि पशुओं की बलि देने से आदमी स्वर्ग जा सकते हैं ।"

३०. तब कूटदन्त ब्राह्मण ने प्रश्न किया "हे गौतम ! तो क्या कोई दूसरा 'यज्ञ' है जिसमें पशुओं की बलि तो न देनी पड़े किन्तु जिसके करने से अधिक फल मिले, अधिक कल्याण हो ।"

३१. "हे ब्राह्मण ! हाँ, ऐसा है ।"

३२. "हे गौतम ! ऐसा 'यज्ञ' कैसे क्या होगा ?"

३३. "हे ब्राह्मण ! जब एक आदमी भ्रष्टायुक्त होकर (१) जीव-हत्या से विरत रहने का संकल्प करता है, (२) चोरी से विरत रहने का संकल्प करता है, (३) काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार से विरत रहने का संकल्प करता है, (४) झूठ से विरत रहने का संकल्प करता है, तथा (५) सुरा-मेरय—मद्य आदि नशीली चीजों के सेवन से विरत रहने का संकल्प करता है तो यह एक ऐसा यज्ञ है जो यज्ञों निमित्त बड़े खर्च करने से अच्छा है, जो भिक्षुओं के ठहरने के निमित्त बिहारादि बनवाने से भी अच्छा है, जो निरन्तर भिक्षा देते रहने से भी अच्छा है, जो (त्रि-) करण ग्रहण करने से भी अच्छा है ।"

३४. जब भगवान् बुद्ध ने यह कहा तो कूटदन्त ब्राह्मण को भी कहना पड़ा—
 “धम्म गौतम ! आपका कथन सर्वश्रेष्ठ है । धम्म गौतम ! आपका कथन सर्वश्रेष्ठ है ।”

(ii)

१. अब ब्राह्मण उज्जय ने तथागत से पूछा—

२. “धम्म गौतम ! क्या आप यज्ञों के प्रशंसक हैं ?”

३. “ब्राह्मण ! न मैं हर ‘यज्ञ’ को प्रशंसा करता हूँ, न मैं हर ‘यज्ञ’ को सदेव कहता हूँ । हे ब्राह्मण ! जिस किसी यज्ञ में भी गो-हत्या हो, बकरियाँ और भेड़ें मारी जायें, मुर्गे-मुर्गियाँ और सूअर मारे जायें और भी दूसरे नाना तरह के प्राणियों की हत्या हो—इस प्रकार का ‘यज्ञ’ जिसमें पशु-बलि दी जाती हो, हे ब्राह्मण ! मेरी प्रशंसा का पात्र नहीं ।” “ऐसा क्यों ?”

४. “हे ब्राह्मण ! इस प्रकार के ‘यज्ञ’ के—जिसमें पशुओं की हत्या होती है—न तो श्रेष्ठजन पास फटकते हैं और न श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाले ही पास फटकते हैं ।

“लेकिन हे ब्राह्मण ! जिस यज्ञ में गो-हत्या नहीं होती . . . पशुओं की हत्या नहीं होती—ऐसा यज्ञ जिसमें पशुओं की बलि नहीं दी जाती—ऐसा यज्ञ मेरी प्रशंसा का पात्र है । उदाहरण के लिये चिर-स्थापित दान या परिवार के सदस्यों के कल्याण के लिये त्याग ।” “ऐसा क्यों ?”

५. “क्योंकि ब्राह्मण ! जिस यज्ञ में पशुओं की बलि नहीं दी जाती, ऐसे यज्ञ के श्रेष्ठजन भी पास जाते हैं और वे भी जो श्रेष्ठमार्ग पर आसूढ़ हैं ।”

(iii)

१. उदायी ब्राह्मण ने भी तथागत से वही प्रश्न पूछा— जो उज्जय ब्राह्मण ने पूछा—

२. “धम्म गौतम ! क्या आप ‘यज्ञ’ की प्रशंसा करते हैं ?” तथागत ने जो उत्तर उज्जय को दिया था, वही उदायी ब्राह्मण को दिया—

३. तथागत बोले—

“ऐसे यज्ञ के—जो उचित समय पर किया जाय, ऐसे यज्ञ के—जिसमें पशुओं की बलि न दी जाय, वे निकट जाते हैं, जो श्रेष्ठ-जीवी हैं, जिनकी आँख पर से पदों हट गया है ।

जो कालातीत है;

जो जन्म-मरण के बंधन से मुक्त है, वे

तथा वैसे ही दूसरे प्राज्ञ तथा कुशलज यज्ञ की प्रशंसा करते हैं ।

“यज्ञ अथवा श्रद्धायुक्त-कर्म में,

श्रद्धायुक्त चित्त से,

पुण्य-श्रेय में,
जो बीज बोया जाता है;
अथवा जो अष्ट-जीवी है,
उन्हें जो दान दिया जाता है,
उससे देवता भी प्रसन्न होते हैं।
इस प्रकार के दान से विज्ञान विद्या का लाभ करते हैं,
तथा दुःख से मुक्त हो, सुखी अवस्था को प्राप्त होते हैं।”

६. कल्पनाश्रित विश्वास अधर्म है

(१)

१. ऐसे प्रश्नों का मन में उठना स्वाभाविक था जैसे (१) क्या मैं पहले था ? (२) क्या मैं पहले नहीं था ? (३) उस समय मैं क्या था ? (४) मैं क्या होकर क्या हुआ ? (५) क्या मैं भविष्य में होऊँगा ? (६) क्या मैं भविष्य में नहीं होऊँगा ? (७) तब मैं क्या होऊँगा ? (८) तब मैं कैसे होऊँगा ? (९) मैं क्या होऊँगा ? अथवा वह अपने वर्तमान के विषय में ही सन्देह-शील होता है—
(१) क्या मैं हूँ ? (२) क्या मैं नहीं हूँ ? (३) मैं हूँ क्या ? (४) मैं कैसे हूँ ?
(५) यह प्राणी, कहाँ से आया ? (६) यह किधर जायगा ?”

२. इसी प्रकार विश्व के बारे में बहुत से प्रश्न पूछे गये थे। कुछ इस प्रकार थे—

३. “यह संसार किस प्रकार उत्पन्न किया गया ? क्या संसार अनन्त है ?”

४. पहले प्रश्न के उत्तर में किसी का कहना था कि प्रत्येक वस्तु ब्रह्म द्वारा उत्पन्न की गई है—दूसरों का कहना था कि यह प्रजापति द्वारा उत्पन्न की गई है।

५. दूसरे प्रश्न के उत्तर में किसी का कहना था कि यह अनन्त है। किसी का कहना था, यह सान्त है। किसी का कहना था यह ससीम (= सीमा सहित) है, किसी का कहना था यह अससीम है।

६. इन प्रश्नों को बुद्ध ने अव्याकृत रखा। ऐसे प्रश्नों का स्वागत ही नहीं किया। उनका कहना था कि ऐसे प्रश्नों को पूछने वाले और उत्तर देने वाले—दोनों ही कुछ-कुछ विवृत-मस्तिष्क होने चाहिए।

७. इन प्रश्नों के उत्तर देने वा दे सकने का मतलब होगा कि आवसी को “सर्वज्ञ” होना चाहिये जो कि कोई होता ही नहीं।

८. उनका कहना था कि वह ऐसे ‘सर्वज्ञ’ नहीं कि इस तरह के प्रश्नों का उत्तर दें। कोई भी यह दावा नहीं कर सकता कि जो कुछ हम जानना चाहते हैं, वह सब कुछ जानता है और न कोई यह ही दावा कर सकता है कि किसी भी समय जो कुछ हम जानना चाहते हैं वह किसी को हर समय ज्ञात रहता है। हमेंना कुछ न कुछ अज्ञात रहता ही है।

९. इन्हीं कारणों से भगवान् बुद्ध ने ऐसी सब बातों को अपने धर्म से दूर ही दूर रखा ।

१०. उनकी दृष्टि में जो धर्म ऐसी बातों को धर्म का अंग माने वह अपनाने लायक नहीं है ।

(ii)

१. जिन सिद्धान्तों को बुद्ध के समकालीन कुछ आचार्यों ने अपने अपने धर्म का आधार बनाया था, उन सिद्धान्तों का सम्बन्ध दो बातों से था (१) 'आत्मा' से और (२) विश्व के आरम्भ से ।

२. वे 'आत्मा' के बारे में या अपने आपके बारे में कुछ प्रश्न उठाते थे । वे पूछते थे :— (१) क्या मैं पहले था ? (२) क्या मैं पहले नहीं था ? (३) उस समय मैं क्या था ? (४) मैं क्या होकर क्या हुआ ? (५) क्या मैं भविष्य में होऊँगा ? (६) क्या मैं भविष्य में नहीं होऊँगा ? (७) तब मैं क्या होऊँगा ? (८) तब मैं कैसे होऊँगा ? (९) मैं क्या होकर क्या होऊँगा ? अथवा वह अपने वर्तमान के ही विषय में सन्वेष्ट-शील होता है । (१) क्या मैं हूँ ? (२) क्या मैं नहीं हूँ ? (३) मैं हूँ क्या ? (४) मैं कैसे हूँ ? (५) वह 'प्राणी' कहाँ से आया ? (६) वह किधर जायगा ?^{१०}

३. दूसरों ने विश्व के आरम्भ के विषय में प्रश्न पूछे ।

४. कुछ ने कहा—इसे ब्रह्मा ने पैदा किया है ।

५. दूसरों ने कहा, इसे स्वयं प्रजापति ने अपने आपकी आहुति देकर उत्पन्न किया है ।

६. दूसरे आचार्यों ने कुछ दूसरे प्रश्न पूछे :— "संसार अनन्त है ? संसार अनन्त नहीं है ? संसार ससीम है ? संसार असीम है ? जो शरीर है, वही जीव है ? शरीर अन्य है, जीव अन्य है ? सत्य-ज्ञाता (= तत्त्वगत) मरने के बाद रहते हैं ? तत्त्वगत मरने के बाद नहीं रहते ? वे रहते भी हैं और नहीं भी रहते ? वे न रहते हैं और न नहीं रहते हैं ?"^{११}

७. भगवान् बुद्ध का कहना था कि ऐसे प्रश्न उन्हीं लोगों द्वारा पूछे जा सकते हैं कि जिनके मस्तिष्क कुछ विकृत हों ।

८. भगवान् बुद्ध ने ऐसे धार्मिक सिद्धान्तों का क्यों खण्डन किया, इसके तीन कारण थे ।

९. पहला कारण तो यही था कि इनको धर्म का अंग बनाने में कोई तुल्य नहीं था ।

१०. दूसरे इन प्रश्नों का उत्तर कोई "सर्वज्ञ" ही दे सकता है, जो कोई होता ही नहीं । उन्होंने अपने प्रवचनों में इसी बात पर जोर दिया है ।

११. उन्होंने कहा कि एक ही समय और उसी समय कोई भी सभी बातों

का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता । ज्ञान का कहीं अन्त नहीं है । कुछ न कुछ और अधिक जानने के लिये हमेशा रहेगा ।

१२. इन सिद्धान्तों के विरुद्ध तीसरा तर्क यह था कि ये सब सिद्धान्त केवल 'कल्पनाभित' थे । उनका 'सत्य' परीक्षित नहीं था और न उनके 'सत्य' की परीक्षा ही हो सकती थी ।

१३. ये केवल कल्पना के घोंड़ों की लगाम को ढीला छोड़ देने के परिणाम थे । उनके पीछे कहीं कोई तथ्य न था ।

१४. और फिर इन कल्पनाभित सिद्धान्तों का एक आदमी और दूसरे आदमी के आपसी सम्बन्ध में क्या प्रयोजन था ? एकदम कुछ भी नहीं ।

१५. तथागत ने यही नहीं माना था कि संसार का निर्माण हुआ है । तथागत की मान्यता थी कि संसार का विकास हुआ है ।

७. धर्म की पुस्तकों का वाचन मात्र अ-धर्म है

१. ब्राह्मणों ने सारा ओर (अपने लिये) 'विद्या' पर दिया है । उन्होंने शिक्षा दी है कि 'विद्या' ही 'अध' और 'विद्या' ही 'इति' है । इससे आगे और कुछ नहीं ।

२. इसके विरुद्ध भगवान् बुद्ध सभी के लिये 'विद्या' के पक्षपाती थे । इसके अतिरिक्त उन्हें इस बात की भी बड़ी चिन्ता थी कि 'विद्या' प्राप्त करके ब्राह्मणी उसका क्या उपयोग करता है ? उनकी 'विद्या', 'विद्या' के लिये न थी, उनकी विद्या उपयोग के लिये थी ।

३. इसलिये ये इस बात पर खास ओर देते ही थे कि जो विद्वान् हो उसे शीलवान् भी होना ही चाहिये । बिना 'शील' की 'विद्या' अशुभलक्षणक थी ।

४. भिक्षु पटिसेन को जो कुछ भगवान् बुद्ध ने कहा था उससे 'विद्या' के विरुद्ध 'शील' का महत्त्व स्पष्ट होता है ।

५. पुराने समय में जब भगवान् बुद्ध धावस्ती में विहार कर रहे थे, उस समय पटिसेन नाम का एक बूढ़ भिक्षु था, जो इतना अधिक क्रुद्ध-मगज था कि एक गाथा भी गाद न कर सकता था ।

६. बुद्ध ने दिन प्रति दिन पाँच सौ अर्हत्तों को उसे शिक्षा देने के लिये कहा । लेकिन तीन वर्ष के बाद भी उसे एक भी गाथा गाद न थी ।

७. तब उस जनपद के चारों प्रकार के लोग—भिक्षु, भिक्षुणियाँ, उपासक, उपासिकायें—उसकी हँसी उड़ाते लगे । भगवान् बुद्ध को उस पर दया आई । उन्होंने उसे पास बुलाया और बड़ी कोमलता के साथ यह गाथा कही—

कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो

मनसा संवरो साधु, साधु सम्पत्त्य संवरो

सम्पत्त संवृतो भिक्खु सम्म बुधत्ता पमुच्चति^१ ।

[अर्थ—जिसका मुंह संयत है, जिसके विचार-संयत हैं, और जो अपने शरीर से भी विकट्टाचरण नहीं करता, वह निर्वाण प्राप्त करता है।]

८. तथागत की कठुणा से जैसे पटिसेन के हृदय को कली खिल गई। बूढ़ भिक्षु पटिसेन ने भी वह गाथा दोहराई।

९. तब भगवान् बूढ़ ने उससे कहा :—“हे बूढ़ ! अब तुम केवल एक गाथा कह सकते हो, और लोग इसे जानते हैं। इसलिये अभी भी लोग तुम्हारा मजाक उड़ावेंगे। मैं अब तुम्हें इस गाथा का अर्थ भी समझाता हूँ। तुम ध्यान पूर्वक सुनो।”

१०. तब भगवान् बूढ़ ने शरीर के तीन अकुशल-कर्म, वाणी के चार अकुशल-कर्म और मन के तीन अकुशल-कर्म—दस अकुशल-कर्म समझाये। इन दस अकुशल कर्मों के त्याग से आदमी निर्वाण प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार समझाये जाने पर भिक्षु पटिसेन को सत्य का बोध हो गया और वह अहंत्व-पद का लाभी हुआ।

११. अब इस समय बिहार में पाँच सौ भिक्षुनिर्वाण रह रही थी। उन्होंने अपने में से एक को बूढ़ के पास भेजा कि वे किसी भिक्षु को उन्हें धर्मोपदेश देने के लिये भेज दें।

१२. उनकी प्रार्थना सुनकर भगवान् बूढ़ ने बूढ़ पटिसेन को ही उन्हें धर्मोपदेश देने के लिये भेजना चाहा।

१३. जब उन भिक्षुनिर्वाणों को यह पता लगा तो वे आपस में बहुत हँसी। उन्होंने तय किया कि दूसरे दिन बूढ़ पटिसेन के आने पर वे गाथा का उल्टा उच्चारण कर उसे गढ़बड़ा देंगी, और शर्मिन्दा करेंगी।

१४. दूसरे दिन जब बूढ़ पटिसेन आया, छोटी बड़ी सभी भिक्षुनिर्वाणों ने उसका स्वागत किया और तब उसे अभिवादन करते समय वे आपस में हँसने लगीं।

१५. तब बैठने पर उन्होंने बूढ़ पटिसेन को भोजन कराया। जब भोजन हो चुका और उसने हाथ धो लिये तब उन्होंने उसे अपना प्रवचन आरम्भ करने के लिये कहा। उनके प्रार्थना करने पर बूढ़ पटिसेन ने धर्मासन ग्रहण किया और अपना प्रवचन आरम्भ किया :—

१६. “बहनों ! मेरी बुद्धि अधिक नहीं है। मेरा ज्ञान और कम है। मैं केवल एक गाथा जानता हूँ। मैं वह पढ़ूँगा और उसका अर्थ भी समझाऊँगा। तुम ध्यान से सुनकर उसके अर्थ को धारण करो।”

१७. तब सभी भिक्षुनिर्वाणों ने उल्टे क्रम से उस गाथा को कहने का प्रयास किया। लेकिन यह क्या ! उसका मुँह ही नहीं खुल सका। वे लज्जा से भर गईं। उन्होंने अपने सिर नीचे सटका लिये।

१८. तब भगवान् बूढ़ से प्राप्त शिवाण के अनुसार बूढ़ पटिसेन ने उस गाथा को दोहरा कर उसकी व्याख्या करनी शुरू की।

१९. उसका प्रवचन सुनकर सब भिक्षुजियों को आश्चर्य हुआ। उस उपदेश को सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुई। उन्होंने उसे सिर-माथे स्वीकार किया। वे अर्हंत हो गई।

२०. इसके अगले दिन राजा प्रसेनजित ने बुद्धप्रमुख भिक्षु संघ को अपने यहाँ भोजन के लिये निमंत्रित किया।

२१. बुद्ध ने पटिसेन की विशेष उन्नत स्थिति पहचान, उसे अपना भिक्षा-पात्र ले कर साथ चलने के लिये कहा।

२२. लेकिन जब वे राज मङ्गल के द्वार पर पहुँचे, तो द्वारपाल ने जो उससे पूर्व-परिचित था, बुद्ध पटिसेन को अन्दर नहीं जाने दिया। बोला—“जो भिक्षु केवल एक गाथा जानता है, हमें उसका आतिथ्य नहीं करना है। तुम्हारे जैसे सामान्यों के लिये स्थान नहीं है। अपने से श्रेष्ठतर लोगों को रास्ता दो और स्वयं चल दो।”

२३. तदनुसार पटिसेन दरवाजे के बाहर ही बैठ गये।

२४. अब बुद्ध आसन पर विराजमान हुए। उन्होंने हाथ धोये। लेकिन यह क्या! भिक्षा-पात्र लिये हुए पटिसेन का हाथ वहाँ उपस्थित था।

२५. राजा, मन्त्रियों तथा अन्य उपस्थित जनों ने जब यह देखा तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे बोले—“ओह! वह कौन है?”

२६. तथागत ने उत्तर दिया—“यह भिक्षु पटिसेन है। इतने अभी बोधि प्राप्त की है। मैंने इसे अपना भिक्षापात्र लेकर पीछे पीछे आने के लिये कहा था, किन्तु द्वारपाल ने उसे नहीं जाने दिया।”

२७. तब पटिसेन को भी प्रवेश मिला और वह भी संघ में आ सम्मिलित हुआ।

२८. तब राजा प्रसेनजित् ने बुद्ध से पूछा :—“मैं सुनता हूँ कि इस पटिसेन की कुछ योग्यता नहीं। यह केवल एक ही गाथा जानता है। तो उसे बोधि कैसे प्राप्त हो गई?”

२९. तथागत ने उत्तर दिया—“ज्ञान अधिक न भी हो, शील मुख्य वस्तु है।

३०. “इस पटिसेन ने इस एक गाथा के मर्म को अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लिया है। इसका शरीर, वाणी और विचार पूर्णरूप से शान्त हो गये हैं। यदि किसी आदमी के पास ज्ञान अधिक भी हो, किन्तु यदि उसका आचरण तदनुसार नहीं है, तो फिर यह सारा ज्ञान उस आदमी को बिनाशोन्मुख होने से नहीं बचा सकता।”

३१. इसके बाद तथागत ने कहा :—

३२. “चाहे कोई आदमी एक हजार गाथाओं का वाचन करे, लेकिन यदि वह उन गाथाओं के अर्थ से अपरिचित है, तो उसका वह वाचन किसी भी एक गाथा के वाचन के समान नहीं जिसे सुन कर चित्त शान्ति को प्राप्त हो। बिना समझे हजारों शब्दों के उच्चारण का भी क्या प्रयोजन? लेकिन एक शब्द का सुनना समझना और तदनुसार आचरण करना मोक्ष-लाभ का कारण हो सकता है।”

३३. "एक आदमी अनेक ग्रन्थों का वाचन कर सकता है, लेकिन यदि वह उन्हें समझता नहीं तो उसका वाचन निष्प्रयोजन है। धर्म के एक ही पद को जानना और तदनुसार चलना मोक्ष का मार्ग है।" १५

३४. इन शब्दों को सुनकर उपस्थित दो सौ भिक्षु, राजा तथा उसके भन्नीमण सन्नी प्रमुदित हुए।

८. "धर्म" की पुस्तकों की गलती की सम्भावना से परे मानना अधर्म है

१. ब्राह्मणों की घोषणा थी कि वेद न केवल पवित्र ग्रन्थ ही हैं, बल्कि वे स्वतः प्रमाण हैं।

२. ब्राह्मणों ने वेदों के स्वतः प्रमाण होने की ही घोषणा नहीं की, बल्कि उन्होंने वेदों की गलती की सम्भावना से परे माना।

३. इस विषय में भगवान् बुद्ध ब्राह्मणों से सर्वथा विरोधी मत रखते थे।

४. उन्होंने वेदों को पवित्र नहीं माना। उन्होंने वेदों को स्वतः प्रमाण नहीं माना। उन्होंने वेदों की गलती की सम्भावना से परे नहीं माना।

५. उनके समकालीन कई दूसरे धर्मोपदेशकों का भी यही मत था। लेकिन, बाद में या तो उन्होंने अथवा उनके अनुयायियों ने अपने अपने मत को ब्राह्मणों की दृष्टि में आदृत बनाने के लिये, अपना बुद्धिवादी पक्ष छोड़ दिया। लेकिन भगवान् बुद्ध ने इस विषय में कभी समझौता नहीं किया।

६. तैविज्ज सुत्त^{१६} में भगवान् बुद्ध ने वेदों को जल-बिहीन कान्तार कहा है, पथविहीन जंगल कहा है, वास्तव में विनाश-पथ। कोई भी आदमी जिसमें कुछ बौद्धिक तथा नैतिक प्यास है, वह वेदों के पास जाकर अपनी प्यास नहीं बुझा सकता।

७. जहाँ तक वेदों के गलत होने की सम्भावना से परे होने की बात है, तथागत ने कहा, कोई ऐसी चीजें ही नहीं सकती जो गलत होने की सम्भावना से सर्वथा परे हों—वेद भी नहीं। इसीलिये भगवान् बुद्ध ने कहा कि हर चीज का परीक्षण और पुनर्परीक्षण होते रहना चाहिये।

८. यह बात उन्होंने कालाम लोगों को दिये गये अपने प्रवचन में स्पष्ट की है।

९. एक बार भिक्षु संघ सहित चारिका करते करते भगवान् बुद्ध कोसल जनपद के केश तुत्तित नगर में आ पहुँचे। वह नगर कालाम नामक क्षत्रियों की बस्ती थी।

१०. जब कालाम नामक क्षत्रियों की तथागत के आगमन की सूचना मिली, वे वहाँ पहुँचे जहाँ तथागत बिहार कर रहे थे और जाकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए कालाम क्षत्रियों ने भगवान् बुद्ध को इस प्रकार सम्बोधित किया:—

११. "हे भ्रमण गौतम ! हमारे गांव में कुछ भ्रमण-ब्राह्मण आते हैं, वे अपने मत की स्थापना करते हैं, अपने मत को ऊंचा उठाते हैं और दूसरे के मत का खण्डन करते हैं, दूसरे के मत को नीचा दिखाते हैं। इसी प्रकार कुछ दूसरे भ्रमण-ब्राह्मण आते हैं, वे भी अपने मत की स्थापना करते हैं, अपने मत को ऊंचा उठाते हैं और दूसरे के मत का खण्डन करते हैं, दूसरे के मत को नीचा दिखाते हैं।

१२. "इसलिये हे भ्रमण गौतम ! हम सन्देह में पड़ जाते हैं कि इन भ्रमण-ब्राह्मणों में कौन सत्य बोल रहा है और कौन झूठ ?"

१३. "हे कालामो ! तुम्हें योग्य विषय में सन्देह उत्पन्न हुआ है; तुम्हारे मन में योग्य विषय में शक उत्पन्न हुआ है।"

१४. "हे कालामो," तथागत ने कथन जारी रखा, "किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह तुम्हारे सुनने में आई है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह परम्परा से प्राप्त हुई है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि बहुत से लोग उसके समर्थक हैं, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह (धर्म-) ग्रन्थों में लिखी है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो, कि वह तर्क (-सास्त्र) के अनुसार है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह न्याय (-सास्त्र) के अनुसार है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि ऊपरी तौर पर वह मान्य प्रतीत होती है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह अनुकूल-विश्वास वा अनुकूल-दृष्टि की है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह ऊपरी तौर पर सच्ची प्रतीत होती है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह किसी आदरणीय आचार्य्य की कही हुई है।"

१५. "तो फिर हमें क्या करना चाहिये ? हमारी क्या कसौटी होनी चाहिये ?" कालाम-शत्रियों ने प्रश्न किया।

१६. तथागत बोले—'कालामो ! कसौटी यही है कि स्वयं अपने से प्रश्न करो कि क्या अमुक बात का करना हितकर है ? क्या अमुक बात निन्दनीय है ? क्या अमुक बात विज्ञानों द्वारा निषिद्ध है ? क्या अमुक बात के करने से कष्ट और दुःख होता है ?

१७. "कालामो ! इतना ही नहीं, तुम्हें यह भी देखना चाहिये कि क्या मत-विशेष घृणा, घृणा, मूढ़ता और द्वेष की भावना की वृद्धि में तो सहायक नहीं होता ?

१८. "कालामो ! इतना ही नहीं, तुम्हें यह भी देखना चाहिये कि मत-विशेष किसी को उसकी अपनी इन्द्रियों का गुलाम तो नहीं बनाता ? उसे हिंसा करने में प्रवृत्त तो नहीं करता ? उसे चोरी करने की प्रेरणा तो नहीं देता ? उसे कामभोग सम्बन्धी मिथ्याचार में प्रवृत्त तो नहीं करता ? उसे झूठ बोलने

में प्रवृत्त तो नहीं करता ? उसे दूसरों की वैसा ही करने की प्रेरणा देने में तो प्रवृत्त नहीं करता ?

१९. "और हे कालामो ! अंत में तुम्हें यही पूछना चाहिये कि यह दुःख के लिये, अहित के लिये तो नहीं है ?"

२०. "हे कालामो ! अब तुम क्या सोचते हो ?"

२१. "इन बातों के करने में आदमी का अहित है वा हित है ?"

२२. "भन्ते ! अहित है ।"

२३. "हे कालामो ! क्या ये बातें लाभप्रद है वा हानि-प्रद ?"

२४. "भन्ते ! हानि-प्रद ।"

२५. "क्या ये बातें निन्दनीय है ?"

२६. "भन्ते ! निन्दनीय है ?"

२७. "विज्ञ पुरुषों द्वारा निषिद्ध है वा समर्पित है ?"

२८. "विज्ञ पुरुषों द्वारा निषिद्ध ।"

२९. "इनके करने से कष्ट और दुःख होता है ?"

३०. "भन्ते ! इनके करने से कष्ट और दुःख होता है ।"

३१. "कोई धर्म-ग्रन्थ जो यह सब सिखाता हो क्या वह स्वतः प्रमाण माना जा सकता है ? क्या वह गलत होने की सम्भावना से परे माना जा सकता है ?"

३२. "भन्ते ! नहीं ।"

३३. "लेकिन कालामो ! यही तो मैंने कहा है । मैंने कहा है किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह तुम्हारे धुनने में आई है ; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह परम्परा से प्राप्त हुई है ; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि बहुत से लोग उसके समर्थक हैं ; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह (धर्म-) ग्रन्थों में लिखी है ; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह तर्क (-शास्त्र) के अनुसार है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह ग्याय (-शास्त्र) के अनुसार है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह ऊपरी तौर पर मान्य प्रतीत होती है ; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह अनुकूल-विश्वास वा अनुकूल-दृष्टि की है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह ऊपरी तौर पर सच्ची प्रतीत होती है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह किसी आदरणीय आचार्य की कही हुई है ।

३४. "केवल जब तुम आत्मानुभव से ही यह जानो कि 'ये बातें अहितकर हैं, ये बातें निन्दनीय हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निषिद्ध हैं, ये बातें करने से कष्ट होता है, दुःख होता है'—हे कालामो ! तब तुम्हें उनका त्याग कर देना चाहिये ।"

३५. "भन्ते ! अद्भुत है । गौतम ! अद्भुत है । हम आपकी, आपके धर्म की और संघ की शरण ग्रहण करते हैं । आज से प्राण रहने तक भगवान् हमें अपना शरणागत उपासक जानें ।" १४

३६. इस दलोल का सार स्पष्ट है । किसी आदमी की शिक्षा को प्रमाणित स्वीकार करते समय इस बात का विचार मत करो कि वह किसी (धर्म-) ग्रन्थ में लिखी हुई है, इस बात का विचार मत करो कि वह तर्क (-भास्त्र) अनुकूल है, इस बात का विचार मत करो कि वह ऊपरी दृष्टि से मान्य प्रतीत होती है, इस बात का विचार मत करो कि वह अनुकूल-विश्वास वा अनुकूल-दृष्टि की है, इस बात का विचार मत करो कि वह ऊपरी दृष्टि से सच्ची प्रतीत होती है तथा इस बात का विचार न करो कि वह किसी आदरणीय आचार्य की कही हुई प्रतीत होती है ।

३७. लेकिन इस बात का विचार करो कि जिन मतों का या जिस दृष्टि को तुम स्वीकार करना चाहते हो वे हितकर हैं वा नहीं, निन्दनीय हैं वा नहीं, कष्ट-प्रद तथा हानि-प्रद हैं वा नहीं ?

३८. केवल एक इसी आधार पर कोई किसी दूसरे की दी हुई शिक्षा को स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है ।

१. तेविज्जसुत्तन्त (दीर्घ निकाय—१।१३) ।
२. तेविज्जसुत्तन्त (दीर्घ निकाय—१।१३) ।
३. मज्झिम निकाय, सम्भासव सुत्त ।
४. महानि सुत्तन्त (दीर्घ निकाय १।६) ।
५. सम्भासव सुत्तन्त, (दीर्घ निकाय) ।
६. कूटवन्त सुत्त (दीर्घ निकाय १।४) ।
७. उज्जय सुत्तन्त (अंगुत्तर निकाय) ।
८. अंगुत्तर निकाय ।
९. सम्भासव सुत्त (मज्झिम निकाय) ।
१०. सम्भासव सुत्त (मज्झिम निकाय) ।
११. पोडठपाव सुत्तन्त (दीर्घ निकाय) ।
१२. भिक्खुवग्ग २५-३ (धम्मपद) ।
१३. सहसस्वग्ग १ (धम्मपद) ।
१४. सहसस्वग्ग—३ (धम्मपद) ।
१५. तेविज्जसुत्त—१—१३ (दीर्घनिकाय) ।
१६. अंगुत्तर निकाय—तिक निपात ।

पाँचवाँ भाग

सद्धर्म क्या है?

(क) सद्धर्म के कार्य

१. मन के मैल को दूर कर उसे निर्मल बनाना

१. एक समय जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में विहार कर रहे थे, तो कीर्तिशाली प्रसेनसित वहाँ आया जहाँ तपागत ठहरे हुए थे और अपने रथ से उतर अत्यन्त भक्ति-भाव से तपागत के समीप बैठा।

२. उसने तपागत से प्रार्थना की कि वे कल के लिये उसका निमंत्रण स्वीकार करें। उसने उनसे दूसरे दिन नगर में सार्वजनिक-धर्मोपदेश देने की भी प्रार्थना की ताकि लोग उनके दर्शन कर सकें और उनका उपदेश सुन, उसे ग्रहण कर सकें।

३. भगवान् बुद्ध ने स्वीकार किया। दूसरे दिन भिक्षु संघ सहित उन्होंने नगर में प्रवेश किया और नगर के चौरस्तों को पार कर वे वहाँ पहुँचे जो स्थान पूर्व निश्चित था, तथा वहाँ विराजमान हुए।

४. भोजनानन्तर राजा ने तपागत से प्रार्थना की कि वे उस खुली सभा में भाषण दें। उस समय उनका प्रवचन सुनने वाले बहुत थे।

५. उस समय उनके श्रोताओं में दो व्योपारी भी थे।

६. एक ने सोचा "महाराज ने यह कितनी बड़ी बुद्धिमानी की बात की है कि इस प्रकार का सार्वजनिक धर्मोपदेश करवाया है! वे उपदेश कितने व्यापक हैं और वे उपदेश कितने गहरे हैं!"

७. दूसरे ने सोचा, "महाराज ने यह क्या मूर्खता की है कि इस प्रकार इस जायमी से यहाँ उपदेश दिलवा रहे हैं!"

८. "जैसे कोई बछड़ा अपनी माँ के पीछे पीछे चलता है उस गाड़ी से बंधा हुआ जिसे वह खींचती है, उसी प्रकार यह बुद्ध राजा से बंधा हुआ है।" दोनों व्योपारी नगर से बिदा हो एक सराय में पहुँचे, जहाँ दोनों एक साथ ठहरे।

९. सुरा-पान करते समय, जो भला व्योपारी था, उसे चातुर्महाराजिक देवताओं ने संयत रखा और उसकी रक्षा की।

१०. दूसरे को किसी दुष्ट प्रेतात्मा ने पीते रहने की प्रेरणा दी, जब तक वह मरे और नींद से जेहोश नहीं हो गया। वह सराय के पास ही सड़क पर पड़ा था।

११. प्रातःकाल जब व्योपारियों की गाड़ियाँ वहाँ से बिदा होने लगी तो गाड़ीवानों ने सड़क के बीच पड़े उसे नहीं देखा। वह गाड़ी के पहियों के नीचे आकर मर गया।

१२. दूसरा व्योपारी एक दूर देश में जा पहुँचा। वहाँ वह एक पवित्र घोड़े के घुटने टकने के परिणामस्वरूप उस देश का राजा चुन लिया गया; और वह सिंहासन पर विराजमान हुआ।

१३. इसके बाद, इन घटनाओं की विचित्रता पर विचार करके, वह अपने देश लौट आया। तब उसने भगवान् बुद्ध को निर्ममित किया कि वे जनता को उपदेश दें।

१४. इस अवसर पर तत्काल ने उस दुष्ट-हृदय व्योपारी की मृत्यु का कारण बताया और दूसरे बुद्धिमान व्योपारी के ऐश्वर्यशाली बनने का भी। इसके बाद तत्काल ने यह भी कहा :—

१५. “मन ही सबका मूल है; मन ही मासिक है; मन ही कारण है।

१६. “यदि आदमी का मन दुष्ट होता है तो वह दुष्ट वाणी बोलता है और दुष्ट कर्म भी करता है। तब दुःख उस आदमी के पीछे-पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे गाड़ी के पहिये, लीचनेवाले बैल के पीछे-पीछे।

१७. “मन ही सबका मूल है, मन ही शासन करता है, मन ही योजना बनाता है।

१८. “यदि आदमी का मन शुद्ध होता है, तो वह शुद्ध वाणी बोलता है और अच्छे-अच्छे कर्म करता है। तब सुख आदमी के पीछे-पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे कभी साप न छोड़ने वाली छाया, वस्तु या व्यक्ति के पीछे-पीछे।”

१९. यह सुनते पर, राजा और उसके मन्त्री तथा अन्य अनगिनत लोगों ने धर्म-दीक्षा ग्रहण की और वे तत्काल के शिष्य हुए।

२. संसार को ‘धम-राज्य’ बनाना

१. धर्म का प्रयोजन क्या है ?

२. भिन्न-भिन्न धर्मों ने इस प्रश्न के भिन्न-भिन्न उत्तर दिये हैं।

३. आदमी को ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग पर लगाना और उसे अपने ‘आत्मा’ के ‘मोक्ष’ का महत्व समझाना—यह एक सामान्य उत्तर है।

४. बहुत से धर्म तीन राज्यों की बात करते हैं।

५. एक ‘स्वर्ग का राज्य’ कहलाता है, दूसरा ‘पृथ्वी का राज्य’ कहलाता है, तीसरा ‘नरक का राज्य’ कहलाता है।

६. कहा जाता है कि 'स्वर्ग के राज्य' पर ईश्वर का शासन है। 'नरक के राज्य' पर जैतान का एकाधिकार माना जाता है। 'पृथ्वी के राज्य' के बारे में शमड़ा है। इस पर जैतान का अधिकार नहीं है। साथ-साथ इसे 'ईश्वर के राज्य' के अन्तर्गत भी नहीं माना जा सकता। ज्ञाना की जाती है कि शायद किसी दिन हो जाय।

७. कुछ धर्मों में माना जाता है कि 'स्वर्ग का राज्य' 'धर्म-राज्य' है, क्योंकि वहाँ ईश्वर का सीधा शासन है।

८. कुछ दूसरे धर्मों में 'स्वर्ग का राज्य' पृथ्वी पर नहीं है। यह केवल 'स्वर्ग' का ही दूसरा नाम है। जो कोई ईश्वर और उसके पैगम्बर पर ईमान लाता है, वह ही वहाँ पहुँच सकता है। जब पहुँचने वाले स्वर्ग पहुँचते हैं तो जीवन के जितने भी भोग-विलास के साधन हैं वे सब उन्हें वहाँ प्राप्त हो जाते हैं।

९. सभी धर्मों का यही उपदेश है कि आदमी के जीवन का उद्देश्य इस 'स्वर्ग के राज्य' को प्राप्त करना और कैसे प्राप्त करना—यही होना चाहिये।

१०. "धर्म का उद्देश्य क्या है?" इस प्रश्न का बुद्ध ने सर्वथा भिन्न उत्तर दिया है।

११. भगवान् बुद्ध ने लोगों को यह नहीं कहा कि उनके जीवन का उद्देश्य किसी काल्पनिक 'स्वर्ग' की प्राप्ति होना चाहिये। उनका कहना था कि 'धर्म का राज्य' इस पृथ्वी पर ही है और वह धर्म-पथ पर चलकर प्राप्त किया जा सकता है।

१२. उन्होंने लोगों से कहा कि यदि तुम अपने दुःख का अन्त करना चाहते हो, तो हर किसी को दूसरे के साथ न्याय-संगत, धर्म-संगत व्यवहार करना होगा। तभी यह पृथ्वी 'धर्म का राज्य' बन सकेगी।

१३. अग्य सब धर्मों की अपेक्षा तत्तागत के धर्म की यही अपनी विशेषता है।

१४. तत्तागत के धर्म में पंचसीलों पर जोर दिया गया है, अष्टांगिक-मार्ग पर जोर दिया गया है और पारमिताओं पर जोर दिया गया है।

१५. भगवान् बुद्ध ने इन सबको अपने धर्म का आधार क्यों बनाया? क्योंकि ये एक ऐसी जीवन-विधि हैं कि केवल यह ही आदमी को सदाचारी बना सकती हैं।

१६. आदमी-आदमी के प्रति जो अनुचित व्यवहार करता है, उसी में से आदमी का सारा दुःख पैदा हुआ है।

१७. आदमी का आदमी के प्रति जो अनुचित व्यवहार है, उसका नाश केवल 'धर्म' ही कर सकता है और उससे उत्पन्न दुःख का भी।

१८. इसीलिए भगवान् बुद्ध ने कहा कि 'धर्म' का काम केवल 'उपदेश' देना नहीं है बल्कि जैसे भी हो आदमी के मन में यह बात जमाना है कि सर्वोपरि आवश्यकता सदाचारी बनने की है।

१९. लोगों में सदाचार की भावना भरने के लिये, धर्म के लिये आवश्यक है कि वह कुछ दूसरे कामों भी करे।

२०. धर्म को यह शिक्षा देनी होगी कि आदमी जान सके कि कुशल-कर्म (= शुभ-कर्म) कौन-सा होता है और वह उस कुशल-कर्म को कर सके।

२१. धर्म को यह भी शिक्षा देनी होगी कि आदमी जान सके कि अकुशल (= अशुभ) क्या है और जो अकुशल है, उससे वह बच सके।

२२. धर्म के इन दो कामों के अतिरिक्त, भगवान् बुद्ध ने धर्म के दूसरे भी काम बताये हैं और जिन्हें वे बहुत महत्वपूर्ण समझते थे।

२३. पहला है आदमी के स्वभाव और उसकी प्रवृत्तियों की ट्रेनिंग। यह प्रार्थना करने से भिन्न प्रक्रिया है। यह व्रत आदि रखने से भिन्न प्रक्रिया है। यह यज्ञ-बलि से भिन्न है।

२४. देवदह मुल^३ में 'जैन-धर्म' की चर्चा करते हुए भगवान् बुद्ध ने यह बात स्पष्ट की है।

२५. जैन-धर्म के संस्थापक माने जाने वाले तीर्थंकर महावीर का कहना था कि व्यक्ति जो कुछ भी दुःख या सुख अनुभव करता है, यह सब उसके पूर्वजन्म के कर्मों का परिणाम होता है।

२६. ऐसा होने पर, पूर्वजन्म के दुष्कर्मों की निर्जरा हो जाने से और नये दुष्कर्म न करने से भविष्य के लिये कुछ संग्रह नहीं होता, जब भविष्य के लिये कुछ संग्रह नहीं होता, तो दुष्कर्मों का क्षय हो जाता है; जब दुष्कर्मों का क्षय हो जाता है, तो दुःख का क्षय हो जाता है; जब दुःख का क्षय हो जाता है तो सुख दुःख अनुभव करने की शक्ति (= वेदना) का क्षय हो जाता है। जब वेदना का क्षय हो जाता है तो सारे दुःख का मूलोच्छेद हो जाता है।

२७. यही निमज्जनाय की शिक्षा (= जैन-धर्म) थी।

२८. इस पर लघावत ने यह प्रश्न किया—“क्या तुम जानते हो कि यहाँ ही और अब ही, अकुशल प्रवृत्तियों का मूलोच्छेद हो गया और कुशल-प्रवृत्ति की स्थापना हो गई?”

२९. उत्तर था—“नहीं।”

३०. तब बुद्ध ने आपत्ति की : “तो पूर्व-दुष्कर्मों की निर्जरा से और नये दुष्कर्मों के भी न करने से क्या लाभ है, यदि चित्त को इसका अम्मास नहीं है कि वह अकुशल-प्रवृत्ति को कुशल-प्रवृत्ति में बदल सके।”

३१. उनके मत में किसी भी धर्म की यह सबसे भारी कमी थी। शुभ-प्रवृत्ति या शुभ-संस्कार ही किसी के स्थायी रूप से अच्छा बने रहने की सबसे बड़ी गारण्टी है।

३२. यही कारण है कि बुद्ध ने चित्त की साधना को प्रथम स्थान दिया है, जो कि संस्कारों को सुधारने का ही दूसरा नाम है।

३३. दूसरी बात जिसे उन्होंने विशेष महत्व दिया वह यह है कि आदमी में इस बात का साहस हो कि चाहे वह अकेले ही हो तब भी उचित मार्ग से विचलित न हो।

३४. सत्तेज-मुक्त^३ में लघागत ने इसी बात पर जोर दिया है।

३५. उन्होंने कहा है :—

३६. "मुझे अपने मन को निर्मल बनाने के लिये निश्चय करना चाहिये कि चाहे दूसरे लोग हानि करें, मैं हानि नहीं करूँगा।

३७. "चाहे दूसरे लोग हिंसा करें, मैं हिंसा नहीं करूँगा।

३८. "चाहे दूसरे लोग चोरी करें, मैं चोरी नहीं करूँगा।

३९. "चाहे दूसरे लोग श्रेष्ठ जीवन व्यतीत न करें, मैं श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करूँगा।

४०. "चाहे दूसरे लोग झूठ बोलें, चुगली खावें, कठोर बोलें अथवा व्यर्थ बकवास करें, मैं नहीं करूँगा।

४१. "चाहे दूसरे लोग लोभी हों, मैं लोभ नहीं करूँगा।

४२. "चाहे दूसरे लोग द्वेष करें, मैं द्वेष नहीं करूँगा।

४३. "चाहे दूसरे लोग मिथ्या-दृष्टि हों, मिथ्या-संकल्प वाले हों, मिथ्या-वाणी वाले हों, मिथ्या-कर्मन्त वाले हों, मिथ्या-समाधि वाले हों; मैं सम्यक्-दृष्टि होऊँगा, सम्यक्-संकल्प वाला होऊँगा, सम्यक्-वाणी, सम्यक्-कर्मन्त, सम्यक्-आजीविका, सम्यक्-आयाम, सम्यक्-स्मृति तथा सम्यक्-समाधि वाला होऊँगा।

४४. "चाहे दूसरे सत्य के विषय में भी गलती पर हों, मुक्ति के विषय में भी गलती पर हों, मैं सत्य और मुक्ति दोनों विषयों में गलती पर न होऊँगा।

४५. "चाहे दूसरे आलस्य और तन्द्रा से मुक्त हों मैं आलस्य और तन्द्रा से मुक्त रहूँगा।

४६. "चाहे दूसरे उद्धत स्वभाव के हों, मैं विनम्र स्वभाव का रहूँगा।

४७. "चाहे दूसरे विचिकित्सा-युक्त हों, मैं विचिकित्सा से मुक्त रहूँगा।

४८. "चाहे दूसरे क्रोधी हों, द्वेषी हों, ईर्ष्यालु हों, कजूस हों, लोभी हों, दोगी हों, ठग हों, बाधक हों, उद्धत हों, दुस्साहसी हों, कुसन्तति वाले हों, डीले-डाले हों। अविश्वासी हों, निर्लज्ज हों, अधार्मिक हों, अशिथिल हों, सुस्त हों, चकित ही तथा मूर्ख हों, मैं इन सबके विरुद्ध होऊँगा।

४९. "चाहे दूसरे लोग लौकिक वस्तुओं से चिपटे रहें, मैं जो लौकिक वस्तुएँ नहीं हैं उनसे चिपटूँगा और परित्याग-शील रहूँगा।"

५०. "चुन्द ! वाणी और कर्म का तो कहना ही क्या, विज्ञान भी तेजना से प्रभावित होता है। इसलिये मैं कहता हूँ कि चुन्द ! इन सभी संकल्पों के सम्बन्ध में जो मैंने बताये हैं, दुर्द-निश्चयी होना चाहिये।"

५१. भगवान् बुद्ध के अनुसार यही धर्म का उद्देश्य है।

(ख) धर्म तभी सद्धर्म कहला सकता है, जब वह प्रजा की वृद्धि करे

१. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह सभी के लिये ज्ञान का द्वार खोल दे

१. ब्राह्मणी सिद्धान्त था कि सभी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। यह अनिवार्य तौर पर चन्द्र लोगों के लिये ही सीमित रहना चाहिये।

२. उन्होंने केवल ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के लिये ज्ञान-प्राप्त का द्वार खुला रखा। लेकिन इन तीन-वर्गों के भी केवल पुरुष-वर्ग के ही लिये ज्ञान-प्राप्ति का द्वार खुला था।

३. तमाम स्त्रियाँ, चाहे वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ग की ही क्यों न हों और तमाम शूद्र—पुरुष तथा स्त्रियाँ दोनों—ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते थे। वे साक्षर तक नहीं हो सकते थे।

४. भगवान् बुद्ध ने ब्राह्मणों के इस अत्यन्त निर्दयता पूर्ण सिद्धान्त के विरुद्ध विद्रोह किया।

५. उनका कहना था कि ज्ञान-प्राप्ति का द्वार सभी के लिये खुला रहना चाहिये—पुरुषों के लिये भी और स्त्रियों के लिये भी।

६. बहुत-से ब्राह्मणों ने उनसे शास्त्रार्थ करने का प्रयास किया। ब्राह्मण लोहिच्च के साथ तथागत का जो वाद-विवाद हुआ उससे उनके विचारों पर बड़ा प्रकाश पड़ता है।*

७. महान् निक्षुब्ध सहित चारिका करते करते भगवान् बुद्ध जब एक बार कोसल जनपद में से गुजर रहे थे, तो वे एक बार साल-वृक्षों से घिरे हुए साल-वतिका नामक ग्राम में पहुँचे।

८. उस समय सालवतिका खूब आबाद था। पास, जंगल और घन-धान्य की कमी न थी। कोसल नरेश प्रसेनजित् ने वह गाँव लोहिच्च ब्राह्मण को दे रखा था। उस गाँव पर उसका वैसा ही अधिकार था, मानो वह वहाँ का राजा हो।

९. लोहिच्च ब्राह्मण का मत था कि यदि कोई धमण या ब्राह्मण विद्या प्राप्त कर ले तो उसे किसी स्त्री या शूद्र को उस विद्या का दात नहीं करना चाहिये।

१०. तब लोहिच्य ब्राह्मण ने सुना कि तथागत सालवतिका में ठहरे हुए हैं।

११. यह सुनकर उसने भेसिक नामक नाई को बुलाया और कहा :—“भले भेसिक ! आ और जहाँ श्रवण गीतम ठहरे हैं वहाँ जा और जाकर उनका कुशल-समाचार पूछ। तदनन्तर भिक्षुसंघ सहित तथागत को कल के भोजन के लिये लोहिच्य ब्राह्मण का निमंत्रण दे आ।”

१२. नाई ने कहा—“बहुत अच्छा।”

१३. लोहिच्य ब्राह्मण का कथन स्वीकार कर भेसिक नाई ने वही किया जो उसे करने के लिये कहा गया था। तथागत ने मीन रहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार की।

१४. दूसरे दिन प्रातःकाल चौबेर धारण कर, पाप-चौबेर ले, भिक्षुसंघ सहित तथागत सालवतिका पधारे।

१५. लोहिच्य ब्राह्मण ने भेसिक नाई को ही तथागत को लाने के लिये भेजा था। वह कदम-ब-कदम तथागत के पीछे पीछे चला आ रहा था। रास्ते में उसने तथागत को बताया कि लोहिच्य ब्राह्मण की यह मिथ्या-दृष्टि है कि किसी स्त्री या शूद्र को बिद्या नहीं देनी चाहिये।

१६. “भेसिक ! ऐसा ही सकता है। भेसिक ! ऐसा ही सकता है,” तथागत ने कहा।

१७. भगवान् बुद्ध लोहिच्य ब्राह्मण के निवासस्थान पर पहुंचे और बिछे आसन पर बैठे।

१८. तब लोहिच्य ब्राह्मण ने भिक्षुसंघ सहित तथागत को अपने हाथ-भोजन से—सब प्रकार के मधुर खाद्य-भोज्य से संतर्पित किया।

१९. जब तथागत भोजन कर चुके और भोजनानन्तर उनके हाथ तथा उनका पाप भी धोया जा चुका, तो लोहिच्य ब्राह्मण एक नीचा आसन लेकर तथागत के पास बैठ गया।

२०. इस प्रकार बैठे हुए उस लोहिच्य ब्राह्मण से तथागत ने पूछा—“क्या यह सत्य है, जैसा लोग कहते हैं कि तुम्हारा यह मत है कि स्त्रियों तथा शूद्रों को बिद्या नहीं पढ़ानी चाहिये ?”

२१. लोहिच्य का उत्तर था—“गीतम ! ऐसा ही है।”

२२. “अच्छा लोहिच्य ! अब तुम क्या सोचते हो ? क्या तुम सालवतिका के मालिक नहीं हो ?” “गीतम ! ऐसा ही है।”

२३. “लोहिच्य ! अब उदाहरण के लिये समझो कि एक आदमी कहे—‘लोहिच्य ब्राह्मण का सालवतिका पर अधिकार है। उसे ही सालवतिका से प्राप्त तमाम कर और सालवतिका की समस्त उपज का आनन्द लेना चाहिये। किसी दूसरे के लिये कुछ नहीं छोड़ना चाहिये।’ तो इस प्रकार की बात कहने

वाला आदमी क्या उन लोगों के लिये खतरनाक नहीं होगा, जो तुम पर निर्भर करते हैं ?”

२४. “गौतम ! वह उनके लिये खतरनाक होगा ।”

२५. “तो क्या ऐसा खतरनाक आदमी उनका हितचिन्तक समझा जायगा ?”

२६. लोहिष्ण बोला :—“नहीं, ऐसा आदमी उनका हितचिन्तक नहीं होगा ।”

२७. “अब वह उनकी उनकी हितचिन्ता नहीं करेगा, तो क्या वह उनका मित्र होगा वा शत्रु ?”

२८. “गौतम ! शत्रु ।”

२९. “तो जो किसी को किसी का शत्रु बनाये, ऐसा सिद्धान्त ठीक है वा गलत ?”

३०. “गौतम ! यह गलत सिद्धान्त है ।”

३१. “लोहिष्ण ! अब तुम क्या सोचते हो ? क्या काशी और कोसल जनपद राजा प्रसेनजित् के अधिकार में नहीं है ?”

३२. “गौतम ! है ।”

३३. “लोहिष्ण ! अब उदाहरण के लिये समझो कि एक आदमी कहे: ‘कोसल-नरेश प्रसेनजित् का काशी और कोसल पर अधिकार है । उसे ही काशी-कोसल से प्राप्त तमाम कर और काशी-कोसल की समस्त उपज का आनन्द लेना चाहिये । किसी दूसरे के लिये कुछ नहीं छोड़ना चाहिये ।’ तो इस प्रकार की बात कहने वाला आदमी क्या उन सब लोगों के लिये जो राजा प्रसेनजित् पर निर्भर करते हैं—तुम और दूसरे सब लोग—खतरनाक नहीं होगा ?”

३४. “गौतम ! वह खतरनाक होगा ।”

३५. “तो क्या ऐसा खतरनाक आदमी उनका हितचिन्तक समझा जायगा ?”

३६. लोहिष्ण बोला—“नहीं, ऐसा आदमी उनका हितचिन्तक नहीं होगा ।”

३७. “अब वह उनकी हितचिन्ता नहीं करेगा, तो क्या वह उनका मित्र होगा वा शत्रु ?”

३८. “गौतम ! शत्रु ।”

३९. “तो जो किसी को किसी का शत्रु बनाये, ऐसा सिद्धान्त ठीक है वा गलत है ?”

४०. “गौतम ! ऐसा सिद्धान्त गलत है ।”

“लोहिष्ण ! तो तुम यह बात स्वीकार करते हो कि जो यह कहे कि क्योंकि सालवतिका पर तुम्हारा अधिकार है, इसलिये सालवतिका के तमाम कर और सारी उपज का तुम्हें ही उपभोग करना चाहिये, किसी दूसरे के लिये कुछ नहीं छोड़ना चाहिये; और जो यह कहे कि क्योंकि काशी और कोसल जन-पद

पर राजा प्रसेनजित् का अधिकार है, इसलिये राजा प्रसेनजित् को ही काशी कोसल के तमाम कर और सारी उपज का उपभोग करना चाहिये, किसी दूसरे के लिये कुछ नहीं छोड़ना चाहिये; तो ऐसा आदमी उन सब लोगों के लिये जो तुम पर निर्भर करते हैं, अथवा उन सब लोगों के लिये जो तुम्हारे सहित कोसल-जरेण प्रसेनजित् पर निर्भर करते हैं खतरनाक नहीं होगा? जो दूसरों के लिये खतरनाक होंगे वे उनके हितचिन्तक नहीं हो सकते। वे उनके शत्रु हो सकते हैं। और जो सिद्धान्त किन्हीं को किसी का शत्रु बनाये, वह मलल सिद्धान्त है।

४२. "तो सोहिच्छ ! जो आदमी यह कहता है कि स्त्रियों और शूद्रों को विद्या नहीं देनी चाहिये, वह आदमी भी उस आदमी के ही समान है।

४३. "इसी प्रकार ऐसा आदमी उन दूसरों के पक्ष में रोड़े अटकाने वाला होगा और उनका हितचिन्तक नहीं होगा।

४४. "इसी प्रकार ऐसा आदमी उनका हितचिन्तक न होने के कारण उनका शत्रु हो जायगा; और जो सिद्धान्त किसी को किसी का शत्रु बनाये यह मलल सिद्धान्त है।"

२. धर्म तभी सद्बन्ध है जब वह यह भी शिक्षा देता है कि केवल 'विद्वान' होना पर्याप्त नहीं, इससे आदमी 'पण्डिताऊपन' की ओर अग्रसर हो सकता है

१. एक बार जब भगवान् बुद्ध कोसाम्बी के "गुस्वर" विहार में ठहरे हुए एकचित्त लोगों को धर्मोपदेश दे रहे थे, उस समय वहीं कोसाम्बी में ही एक ब्रह्मचारी रहता था।

२. उस ब्रह्मचारी को अभिमान था कि उस जैसा शास्त्रों का ज्ञानकार कोई नहीं। क्योंकि वह किसी दूसरे को शास्त्रार्थ करने में अपने जैसा नहीं समझता था, इसलिये वह जहाँ कहीं जाता अपने साथ एक जलती हुई मशाल ले जाता था।

३. एक दिन किसी नगर के एक साधारण आदमी ने उसके इस विचित्र आचरण का कारण पूछा। उसका उत्तर था :—

४. "संसार में इतना अधिक अन्धकार है, लोग इतने अधिक पथ-भ्रष्ट हैं कि मैं जहाँ तक उन्हें रास्ता दिखा सकता हूँ, वहाँ तक रास्ता दिखाने के लिये यह मशाल साथ लिये घूमता हूँ।"

५. तत्पश्चात् ने यह सुना तो उस ब्रह्मचारी को सम्बोधित किया "अरे! यह मशाल किस मतलब के लिये है? यह मशाल लिये तुम कहाँ घूमते हो?"

६. ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया :— "सभी आदमी अज्ञान और अन्धकार से इतने घिरे हैं कि मैं उन्हें रास्ता दिखाने के लिए यह मशाल लिये फिरता हूँ।"

७. तब भगवान् बुद्ध ने उसे पूछा—“तो क्या धर्म ग्रन्थों में जिन चार प्रकार की विद्याओं—शब्द-विद्या, मत्तव-विद्या, राज-विद्या तथा बुद्ध-विद्या—का उल्लेख है, तुम उन सबके जानकार हो ?”

८. ब्राह्मचारी को मजबूर होकर वह मानना पड़ा कि उसे इनकी जानकारी नहीं है। उसने अपनी मशाल फेंक दी। तब भगवान् बुद्ध ने कहा—

९. “यदि कोई आदमी चाहे पण्डित हो और चाहे अपण्डित, दूसरों को मूर्ख समझकर उनसे घृणा करता है तो वह उस अन्धे की तरह है जो स्वयं अन्धा होकर दूसरों को मशाल दिखाता फिरता है।”

३. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह सिखाता है कि जिस चीज की आवश्यकता है वह ‘प्रज्ञा’ है

१. ब्राह्मण ‘विद्या’ को ही बहुत बड़ी बात समझते थे। आदमी चाहे शीलवान हो और चाहे न हो किन्तु यदि वह ‘विद्वान’ है, तो उनकी दृष्टि में वह ‘पूज्य’ था।

२. उन्होंने कहा है कि राजा तो अपने देश में ही पूजा जाता है किन्तु विद्वान सर्वत्र पूजित होता है^१, इसका मतलब था कि ‘विद्वान’ राजा से बड़कर है।

३. तथागत ने ‘प्रज्ञा’ को ‘विद्या’ से भिन्न वस्तु माना है।

४. कहा जा सकता है कि ब्राह्मणों ने भी ‘प्रज्ञा’ और ‘विद्या’ को एक नहीं माना।

५. यह सही हो सकता है किन्तु भगवान् बुद्ध की ‘प्रज्ञा’ की कल्पना में और ब्राह्मणों की ‘प्रज्ञा’ की कल्पना में जमीन-आसमान का अन्तर है।

६. तथागत ने अंगुत्तर-निकाय में आये अपने एक प्रवचन में इस भेद को बहुत अच्छी तरह स्पष्ट किया है।

७. एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह के समीप वेलुवनाराम के ‘कलन्दक-निवाप’ में ठहरे हुए थे।

८. उस समय मगध का एक बड़ा अमात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ आया। कुत्तल-श्लेम पूछ चुकने पर वह जाकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर वर्षकार ब्राह्मण ने भगवान् बुद्ध को कहा—

९. “श्रमण गौतम ! यदि किसी आदमी में ये चार गुण हैं, तो हम उसे बड़ा विद्वान समझते हैं, बड़ा आदमी मानते हैं। कौन से हैं ये चार गुण ?

१०. “श्रमण गौतम ! वह (१) विज्ञ होता है। जो कुछ वह सुनता है, सुनते ही वह उसके अर्थ को जानता है। वह कह सकता है कि ‘इस कथन का यह अर्थ है। (२) उसकी स्मरण-शक्ति अच्छी होती है। वह बहुत पुरानी कहीं गई या की गई बात को याद रख सकता है।

११. "वह (३) अपने गृहस्थी के कार्यों में कुशल होता है, (४) वह यह जानता है कि क्या करना योग्य होगा, क्या व्यवस्था उचित होगी ?

१२. "श्रमण गौतम ! यदि किसी आदमी में ये चार गुण हैं, तो हम उसे बड़ा विद्वान समझते हैं, बड़ा आदमी मानते हैं। अब हे श्रमण गौतम ! यदि आप मेरे कथन का समर्थन करना योग्य समझें तो समर्थन करें, खंडन करना योग्य समझें तो खण्डन करें।

१३. "ब्राह्मण ! मैं न तुम्हारा समर्थन करता हूँ और न विरोध करता हूँ। मैं उस आदमी को बड़ा विद्वान समझता हूँ, जिसमें ये चार गुण हैं जो कि तुम्हारे बताये चार गुणों से सर्वथा भिन्न हैं।

१४. "हे ब्राह्मण ! एक आदमी बहुत जनों के हित के लिये होता है, बहुत जनों के कल्याण के लिये होता है। उसके कारण बहुत से आदमी सुन्दर, हितकर आर्ष-पथ के अनुगामी बनते हैं।

१५. "वह जिस विषय में मन को लगाना चाहता है, उस विषय में वह मन को लगा सकता है; जिस विषय में मन को नहीं लगाना चाहता उस विषय में वह मन को उधर जाने से रोक सकता है।

१६. "जिस संकल्प को वह मन में उत्पन्न होने देना चाहता है, उस संकल्प को मन में उत्पन्न होने देता है, जिस संकल्प को मन में उत्पन्न होने देना नहीं चाहता उस संकल्प को मन में उत्पन्न होने नहीं देना। इस प्रकार उसे अपने विचारों पर अधिकार होता है।

१७. "वह जब चाहे बिना कठिनाई के, बिना तकलीफ के चारों लोकोत्तर ध्यानों को प्राप्त कर सकता है जो इसी जीवन में भी सुख-विहार के लिये हैं।

१८. "और हे ब्राह्मण ! वह इसी जन्म में आसवों का क्षय कर, आसव-क्षय ज्ञान को प्राप्त हो, चित्त की विमुक्ति को प्राप्त करता है, प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को प्राप्त कर वह इसमें विहार करता है।

१९. "इसलिये हे ब्राह्मण ! न मैं तुम्हारा समर्थन करता हूँ और न विरोध करता हूँ। मैं उस आदमी को बड़ा 'विद्वान' आदमी समझता हूँ, मैं उस आदमी को 'बड़ा' आदमी समझता हूँ जिसमें कि ये चार गुण हों, जो तुम्हारे बताये गुणों से सर्वथा भिन्न हैं।"

२०. "श्रमण गौतम ! यह अद्भुत है। श्रमण गौतम ! यह अद्भुत है। आपने यह कितनी सुन्दर व्याख्या की है।

२१. "मैं स्वयं समझता हूँ कि श्रमण गौतम में ये चारों गुण हैं। श्रमण गौतम बहुत जनों का हित करने में रत है। श्रमण गौतम बहुत जनों के कल्याण में रत है। श्रमण गौतम द्वारा बहुत से आदमी सुन्दर, हितकर आर्ष-मार्ग में प्रतिष्ठित हुए हैं।

२२. "श्रमण गौतम जिस विषय में अपने मन को लगाना चाहते हैं, उस विषय में मन को लगा सकते हैं.....इस प्रकार उन्हें अपने विचारों पर अधिकार होता है।

२३. "निश्चय से श्रमण गौतम जब चाहें बिना कठिनाई के, बिना तकलीफ के चारों ध्यानों को निश्चय से श्रमण गौतम इसी जन्म में आसवों का क्षय कर, आसव क्षय ज्ञान को प्राप्त हो, चित्त की विमुक्ति को प्राप्त करते हैं, प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसे प्राप्त कर वह इसमें बिहार करते हैं।"

२४. यह बिल्कुल साफ शब्दों में भगवान् बुद्ध द्वारा प्रतिपादित 'प्रज्ञा' में और ब्राह्मणों द्वारा प्रतिपादित 'प्रज्ञा' में भेद स्पष्ट कर दिया गया है।

२५. यहाँ यह भी स्पष्ट हो गया कि भगवान् बुद्ध 'विज्ञा' की अपेक्षा 'प्रज्ञा' को क्यों अधिक महत्व देते थे।

(ग) धर्म तो तभी सद्धर्म कहला सकता है,
जब वह मंत्री की वृद्धि करे

१. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह यह शिक्षा देता
है कि केवल 'प्रज्ञा' भी अपर्याप्त है :
इसके साथ शील अनिवार्य है

१. प्रज्ञा आवश्यक है। लेकिन शील अधिक आवश्यक है। शील के बिना प्रज्ञा खतरनाक है।

२. अकेली 'प्रज्ञा' खतरनाक है।

३. प्रज्ञा आदमी के हाथ की दुधारी तलवार है।

४. शीलवान आदमी के हाथ में होने पर यह खतरे में पड़े हुए किसी आदमी की रक्षा कर सकती है।

५. लेकिन शील-रहित आदमी के हाथ में होने पर यह किसी की हत्या भी करा सकती है।

६. इसीलिये प्रज्ञा से भी शील का महत्व अधिक है।

७. प्रज्ञा विचार-धर्म है, सम्यक् विचार करना। शील आचार-धर्म है सम्यक् आचरण करना।

८. भगवान् बुद्ध शील के पाँच मूलाधार स्वीकार किये हैं।

१. एक का सम्बन्ध जीव-हिंसा से है।

२. दूसरे का सम्बन्ध चोरी से है।

३. तीसरे का सम्बन्ध काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार से है।

४. चौथे का सम्बन्ध झूठ बोलने से है।

१३. पाँचवें का सम्बन्ध मञ्जीले पदार्थ सेवन करने से है।

१४. इन पाँचों मृताधारों को लेकर तवागत ने लोगों को जीव-हत्या से विरत रहने के लिये कहा, चोरी से विरत रहने के लिये कहा, कामभोग सम्बन्धी मिथ्याचार से विरत रहने के लिये कहा, झूठ बोलने से विरत रहने के लिये कहा तथा शराब आदि तबीले पदार्थ ग्रहण करने से विरत रहने के लिये कहा।

१५. भगवान् बुद्ध ने 'शील' को 'विद्या' के भी ऊपर क्यों स्थान दिया—यह स्पष्ट ही है।

१६. ज्ञान का उपयोग आदर्शों के शील के अनुसार ही होकर रहेगा। शील के बिना ज्ञान का कोई मूल्य नहीं। यही उनके कथन का सार है।

१७. एक दूसरे स्थान पर उन्होंने कहा है "संसार में शील के समान कुछ नहीं।

१८. "शील ही आरम्भ है, शील ही शरण-स्थान है, शील ही समस्त कल्याण की जननी है। शील ही सर्वप्रथम है। इसलिये अपने शील को शुद्ध करो।"

२. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह यह शिक्षा देता है
कि प्रजा और शील के साथ-साथ करुणा
का होना भी अनिवार्य है

१. इस प्रश्न पर कि बौद्ध-धर्म की आधार-शिला क्या है, कुछ मतभेद रहा है।

२. क्या अकेली प्रजा बौद्ध-धर्म की आधार-शिला है? क्या अकेली करुणा बौद्ध-धर्म की आधार-शिला है?

३. इस मत-भेद के कारण भगवान् बुद्ध के अनुयायी दो पक्षों में विभक्त हो गये थे। एक पक्ष का मत था कि अकेली 'प्रजा' ही भगवान् बुद्ध के धर्म की आधार-शिला है। दूसरे पक्ष का कहना था कि अकेली 'करुणा' ही बौद्ध-धर्म की आधार-शिला है।

४. ये दोनों पक्ष अभी भी विभक्त हैं।

५. यदि 'बुद्ध-वचनों' को लेकर विचार किया जाय तो दोनों पक्ष गलत प्रतीत होते हैं।

६. इसमें कोई मतभेद नहीं है कि बुद्ध-धर्म के दो स्तम्भों में से एक 'प्रजा' है।

७. प्रश्न यही है कि करुणा भी दूसरा स्तम्भ है वा नहीं?

८. करुणा भी भगवान् बुद्ध के धर्म का एक स्तम्भ है—यह विवाद से परे की बात है।

९. इसके समर्थन में 'बुद्ध-वचन' उद्धृत किया जा सकता है।

१०. पुराने समय में मान्यार देश में एक बहुत ही भयानक बीमारी से पीड़ित होई साधु था । वह जहाँ कहीं बैठता, उसी जगह को संदा कर देता ।

११. वह एक ऐसे विहार में था, जहाँ कोई उसकी सहायता न करता था ।

१२. पाँच सौ भिक्षुओं के साथ तथागत आवश्यक बर्तन तथा गर्म पानी आदि लेकर वहाँ पहुँचे ।

१३. वह स्थान इतना दुर्गन्धपूर्ण था कि सभी भिक्षुओं को उस साधु से भी घृणा हो गई । लेकिन तथागत ने शक्रदेव से पानी आदि डलवाकर उस रोगी को अपने हाथ से स्नान कराया और उसकी सेवा की ।

१४. उस समय पृथ्वी काँरी और वह सारा स्थान एक अलौकिक प्रकाश से भर गया । तब राजा, उसके मंत्री, आकाश-स्थित देवता, नाग आदि सभी वहाँ एकाग्रित हुए और तथागत की पूजा की ।

१५. जितने भी वहाँ एकत्रित हुए थे, उन सभी को आश्चर्य्य हुआ, इसलिये उन्होंने पूछा कि इतने ऊँचे होकर आपने इतना सामान्य काम क्यों किया ?
तथागत ने समझाया :—

१६. “संसार में आने का तथागत का उद्देश्य ही यह है कि दरिद्रों, असहायों और अरक्षितों का मित्र बनना । जो रोगी हों — धमण हों वा दूसरे कोई भी हों—उनकी सेवा करना । दरिद्रों, अनाथों और बूढ़ों की सहायता करना तथा दूसरों को ऐसा करने की प्रेरणा देना ।”

३. धर्म तभी सद्धर्म हो सकता है, जब यह शिक्षा दे कि करुणा से भी अधिक मैत्री की आवश्यकता है

१. बुद्ध ने ‘करुणा’ को ही धर्म की ‘इति’ नहीं कहा ।

२. ‘करुणा’ का अर्थ दुखी आदमियों के प्रति दया किया जाना है । बुद्ध ने और आगे बढ़कर ‘मैत्री’ की शिक्षा दी । ‘मैत्री’ का मतलब है प्राणि-मात्र के प्रति दया ।

३. तथागत चाहते थे कि आदमी दुःखी मनुष्यों के प्रति ‘करुणा’ की भावना रखने से भी और आगे बढ़कर प्राणि-मात्र के प्रति मैत्री की भावना रखे ।

४. जिस समय भगवान् बुद्ध आवस्ती में विराजमान थे, उस समय अपने प्रवचन में उन्होंने यह बात अच्छी तरह से स्पष्ट कर दी है ।

५. मैत्री के बारे में बोलते हुए भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को कहा—

६. “मान लो एक आदमी पृथ्वी खोदने के लिये जाता है, तो क्या पृथ्वी उसका विरोध करती है ?”

७. भिक्षुओं ने उत्तर दिया—“भगवान् ; नहीं ।”

८. मान लो एक आदमी लाख और दूसरे रंग लेकर आकाश में चित्र बनाना चाहता है। क्या तुम समझते हो कि वह बना सकेगा ?”

९. “भगवान् ! नहीं।”

१०. “क्यों ?” भिक्षु बोले—“क्योंकि आकाश काला नहीं है।”

११. “इसी प्रकार तुम्हारे मन में भी कुछ कालिख नहीं चाहिये, जो कि तुम्हारे राग-द्वेष का परिणाम है।”

१२. “मान लो एक आदमी जलती हुई मशाल लेकर गंगा नदी में आग लगाने जाता है, तो क्या वह आग लगा सकेगा ?”

१३. “भगवान् ! नहीं।”

१४. “क्यों ?” भिक्षुओं ने उत्तर दिया—“क्योंकि गंगा-जल में जलने का गुण नहीं है।”

१५. अपना प्रवचन समाप्त करते हुए तथागत ने कहा—“भिक्षुओ ! जैसे पृथ्वी आघात अनुभव नहीं करती और विरोध नहीं करती, जिस प्रकार हवा में किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं होती, जिस प्रकार गंगा नदी का जल अग्नि से अप्रभावित रहकर बहता रहता है; इसी प्रकार हे भिक्षुओ ! यदि तुम्हारा कोई अपमान भी कर दे, यदि तुम्हारे साथ कोई अन्याय भी करे तो भी तुम अपने विरोधियों के प्रति मैत्री की भावना अपनाये रखो।

१६. “भिक्षुओ ! मैत्री की धारा हमेशा प्रवाहित रहनी चाहिये। तुम्हारा मन पृथ्वी की तरह दृढ़ हो, वायु की तरह स्वच्छ हो और गंगा नदी की तरह गम्भीर हो। यदि तुम मैत्री का अभ्यास रखोगे तो कोई तुम्हारे साथ कौता भी अप्रीतिकर व्यवहार करे, तुम्हारा चित्त विचलित नहीं होगा। क्योंकि विरोधी लोग जोघ्र ही घट जायेंगे।

१७. “तुम्हारी मैत्री विश्व की तरह व्यापक होनी चाहिये और तुम्हारी भावनायें असीम होनी चाहिये, जिनमें कहीं द्वेष का लेश भी न हो।

१८. “मेरे धर्म के अनुसार ‘करुणा’ ही पर्याप्त नहीं है, आदमी में ‘मैत्री’ होनी चाहिये।”

१९. अपने प्रवचन में भगवान् कुछ ने एक कथा सुनाई जो याद रखने के लायक है।”

२०. “एक समय आवस्ती में विदेशिका नाम की एक सम्पन्न-स्त्री रहती थी, जिसकी क्वाति भी कि वह बड़ी सुशील है, बड़ी आन्त है। उसकी एक नौकरानी थी, जिसका नाम काली था, बड़ी दक्ष, बहुत सुबह उठकर अपना काम करने वाली। एक दिन काली ने सोचा, ‘क्या मेरी मालकिन को, जिसकी इतनी क्वाति है, क्रोध आता ही नहीं, या वह अपना क्रोध प्रकट नहीं करती ? अथवा मैं अपना काम इतनी अच्छी तरह करती हूँ कि उसका क्रोध अप्रकट रहता है ?

२१. इसलिये दूसरे दिन वह बिलम्ब से उठी। मालकिन बोली—“काली ! काली !” लड़की बोली—“हां, मालकिन !” “तू इतनी देर करके क्यों उठी ?” “मालकिन ! कुछ बात नहीं है।” “दुष्ट लड़की ! कहती है, कुछ बात नहीं” कहते हुए मालकिन मुस्से के मारे धुषवाने लगी।

२२. “वद्यपि यह क्रोध को प्रकट नहीं होने देती, किन्तु भीतर क्रोध तो है। क्योंकि मैं अपना काम बहुत अच्छी तरह करती हूँ, इसीलिये इसका क्रोध अप्रकट रहता है। मैं इसकी ओर परीक्षा करूँगी”—लड़की ने सोचा। इसलिये दूसरे दिन वह और भी अधिक देर करके उठी। मालकिन बोली—“काली ! काली !” उत्तर दिया—“हां मालकिन !” “तू इतनी देर करके क्यों उठी ?” “मालकिन ! कुछ बात नहीं है।” “दुष्ट लड़की ! कहती है कुछ बात नहीं” कहते हुए मालकिन और भी अधिक भितभिनाई।

२३. “हां ! क्रोध तो निश्चित रूप से है। लेकिन क्योंकि मैं अपना काम अच्छी तरह से करती हूँ, इसीलिये वह अप्रकट रहता है। मैं इसकी ओर परीक्षा करूँगी।” इसलिये अगले दिन वह और भी विशेष देर करके उठी। मालकिन चिल्लाई—“काली ! काली !” लड़की बोली—“हां मालकिन !” “तू इतनी देर से क्यों उठी ?” “मालकिन ! यह कुछ बात नहीं है।”

२४. “दुष्ट लड़की ! इतनी अधिक देर से उठना, कुछ बात ही नहीं है”—इतना कहा और मुस्से में आकर मालकिन ने दरवाजे की जगह निकाल कर लड़की के सिर में दे मारी। लड़की के सिर से लून बहने लगा।

२५. रक्त बहते हुए अपने फूटे सिर को लेकर लड़की चिल्ला चिल्लाकर पड़ोसियों को बुना रही थी—“देखो रे लोगों, अपनी जान्त मालकिन को। देखो रे लोगों, अपनी क्रोध-रहित मालकिन को। इतनी सी बात पर कि उसका काम करने वाली लड़की देर से उठी, वह क्रोध से इतनी पागल हो गई कि दरवाजे की जगह निकाल कर मेरे सिर में दे मारी और उसे फोड़ दिया।”

२६. “परिणाम-स्वरूप विदेसिका मशहूर हो गई कि बड़ी अमान्त है, बड़े क्रोधी स्वभाव की है—जान्त और विनम्र तो है ही नहीं।

२७. “इसी तरह से कोई भिक्षु भी बड़ा शान्त और विनम्र रह सकता है, जब तक उसे अप्रसन्न करने वाली बात न कही जाय। लेकिन किसी भिक्षु में मैत्री है या नहीं, इसकी परीक्षा तभी होती है जब उसके विरुद्ध कोई कुछ कहता है।”

२८. इसके आगे तथागत ने कहा—“मैं उन भिक्षु को मैत्री-भाव-सम्पन्न नहीं कहता, जो केवल भोजन-वस्त्र प्राप्त करने के लिये मैत्री प्रदर्शित करता है। मैं उसे ही सच्चा भिक्षु कहता हूँ जिस की मैत्री का मूल स्रोत उसका धर्म है।

२९. “भिक्षुओ ! कोई भी पुण्य-कर्म मैत्री-भावना के स्रोतहर्षे हिस्से के भी बराबर नहीं है। मैत्री जो कि चित्त की विमुक्ति है, उन सबको अपने

अन्तर्गत ले लेती है—यह प्रकाशमान होती है, यह प्रदीप्त होती है, यह प्रज्ज्वलित होती है ।

३०. "इसी प्रकार भिक्षुओं ! जैसे सभी तारों का प्रकाश मिलकर भी अकेले चन्द्रमा के प्रकाश के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं; चन्द्रमा का प्रकाश प्रकाशमान होता है, प्रदीप्त होता है, प्रज्ज्वलित होता है । इसी प्रकार भिक्षुओं ! कोई भी पुण्य-कर्म मैत्री-भावना के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं है । मैत्री, जो कि चित्त की विमुक्ति है, उन सबको अपने अन्तर्गत ले लेती है—यह प्रकाशमान होती है, यह प्रदीप्त होती है, यह प्रज्ज्वलित होती है ।

३१. "और भिक्षुओं ! जैसे वर्षा ऋतु की समाप्ति पर स्वच्छ, अनल आकाश में उगने वाला सूर्य, तमाम अन्धकार को विदीर्ण कर देता है; यह प्रकाशित होता है, प्रदीप्त होता है तथा प्रज्ज्वलित होता है; और जैसे रात्रि की समाप्ति पर भोर का तारा प्रकाशित होता है, प्रदीप्त होता है तथा प्रज्ज्वलित होता है; ठीक उसी प्रकार कोई भी पुण्य-कर्म मैत्री-भावना के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं है । मैत्री, जो कि चित्त की विमुक्ति है, उन सबको अपने अन्तर्गत ले लेती है—यह प्रकाशमान होती है, यह प्रदीप्त होती है, यह प्रज्ज्वलित होती है ।"

(ख) धर्म तभी सद्धर्म कहला सकता है, जब वह तमाम सामाजिक भेद-भावों को मिटा दे

१. धर्म तभी सद्धर्म हो सकता है, जब एक आदमी और दूसरे आदमी के बीच तमाम दीवारों को गिरा दे

१. एक 'आदर्श-समाज' क्या है ? ब्राह्मणों के अनुसार वेदों ने आदर्श-समाज की परिभाषा की है, और क्योंकि वेद स्वतः प्रमाण हैं और उनमें कभी कोई गलती हो ही नहीं सकती, इसलिये आदमी का 'आदर्श-समाज' वही है जो वेदों में वर्णित है ।

२. वेदों में जिस 'आदर्श-समाज' का विधान किया गया है, वह 'वातुर्वर्ष्य' कहलाता है ।

३. वेदों के अनुसार इस प्रकार के समाज में तीन बातें अवश्य होनी चाहिये ।

४. इसमें चार वर्ग होने चाहिये—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ।

५. इन वर्गों का आपसी सम्बन्ध क्रमिक-असमानता के सिद्धान्त पर आश्रित होना चाहिये । दूसरे शब्दों में ये तमाम वर्ग एक दूसरे के समान नहीं हो सकते । उन्हें एक दूसरे के ऊपर-नीचे होना चाहिये—सामाजिक दर्जे के बारे में, अधिकारों के बारे में तथा सुविधाओं के बारे में ।

६. सबसे ऊपर ब्राह्मण; उनके नीचे क्षत्रिय किन्तु वैश्यों से ऊपर, उनके भी नीचे वैश्य किन्तु शूद्रों से ऊपर। सबसे नीचे शूद्र।

७. चातुर्वर्ण्य से सम्बन्ध रखने वाली तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि हर वर्ग को अपने-अपने पेशे में लगा रहना होगा। ब्राह्मण का काम है पढ़ना, पढ़ाना और धार्मिक संस्कार करना। क्षत्रिय का काम है शस्त्र धारण करना और लड़ना। वैश्य का काम है व्यापार तथा दूसरे कारोबार करना। शूद्र का काम है ऊपर के तीनों वर्गों की सेवा करना—उनके सभी मँले-कुर्चले काम करना।

८. कोई एक वर्ग दूसरे वर्गों का पेशा नहीं कर सकता। वह उसके पेशे की सीमा में पैर नहीं रख सकता।

९. इस 'आदर्श-समाज' के सिद्धान्त को ब्राह्मणों ने ऊँचा दर्जा दिया और लोगों में इसका प्रचार किया।

१०. यह स्पष्ट ही है कि इस चातुर्वर्ण्य के सिद्धान्त की "आत्मा" ही है असमानता। यह सामाजिक असमानता किसी सामाजिक-क्षेत्र की अनायात उभरी हुई उपज नहीं है। असमानता ब्राह्मणवाद का शास्त्र-समस्त सिद्धान्त है।

११. भगवान् बुद्ध ने इसका जड़-मूल से विरोध किया।

१२. भगवान् बुद्ध जाति-वाद के सबसे बड़े विरोधी थे। वे समानता के सबसे बड़े समर्थक थे।

१३. जातिवाद और असमानता का समर्थन करने वाला एक भी तर्क ऐसा नहीं है, जिसका उन्होंने खण्डन नहीं किया।

१४. ऐसे ब्राह्मण बहुत थे, जिन्होंने इस विषय में बुद्ध से विवाद करने का प्रयास किया। लेकिन तथामत ने उन्हें एकदम मौन कर दिया।

१५. अश्वलायन मुनि^१ में कहा है कि एक बार सभी ब्राह्मणों ने इकट्ठे होकर अश्वलायन ब्राह्मण को भगवान् बुद्ध के पास भेजा कि वह जाकर उनसे जातिवाद के बारे में शास्त्रार्थ करे।

१६. अश्वलायन भगवान् बुद्ध के सामने उपस्थित हुआ और ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का पक्ष भगवान् बुद्ध के सामने रखा।

१७. उसने कहा—“अमण गौतम ! ब्राह्मणों का कहना है कि ब्राह्मण ही ऊँचे वर्ग के हैं, शेष सब उनके नीचे हैं; ब्राह्मण ही शुक्ल-वर्ण हैं, शेष सब कृष्ण-वर्ण हैं, पवित्र या शुचिता का वास केवल ब्राह्मणों में ही है, अबाह्मणों में नहीं है; केवल ब्राह्मण ही बड़्या के औरत-पुत्र हैं, उसके मुख से उत्पन्न, उसके रचे हुए, उसके पैदा किये हुए तथा उसके उत्तराधिकारी। अमण गौतम का इस विषय में क्या कहना है?”

१८. तथामत के उत्तर ने अश्वलायन को एक बार तो हतप्रभ ही कर दिया।

१९. बुद्ध ने कहा—“अश्वलायन ! क्या ब्राह्मणों की ब्राह्मण-यत्निगी शत्रु-

मती नहीं होती, गर्भ धारण नहीं करती और संतान का प्रसव नहीं करती ? यह होते हुए भी क्या ब्राह्मणों का कहना है कि ब्राह्मण ही ऊँचे वर्ण के हैं..... ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस-पुत्र हैं..... ब्राह्मण ही उसके उत्तराधिकारी हैं ?”

अश्वलायन—“यह तो ऐसा ही है, लेकिन तब भी ब्राह्मण कहते हैं कि वे ही ऊँचे वर्ण के हैं..... वे ही ब्रह्मा के औरस-पुत्र हैं..... वे ही ब्रह्मा के उत्तराधिकारी हैं ।”

२१. तब तथागत ने अश्वलायन से दूसरा प्रश्न पूछा—

२२. “अश्वलायन ! यदि एक क्षत्रिय एक ब्राह्मण कन्या से सहवास करे तो संतान मानव-संतान ही होगी अथवा उन दोनों के संयोग से कोई जानवर जन्म ग्रहण करेगा ?”

२३. अश्वलायन के पास कोई उत्तर न था ।

२४. “जहाँ तक नैतिक उत्पत्ति कर सकने की बात है तो क्या एकमात्र ब्राह्मण ही अपने आप को राम-रूप से मुक्त कर सकता है, एक क्षत्रिय नहीं ? एक वैश्य नहीं ? एक शूद्र नहीं ?”

२५. अश्वलायन बोला—“नहीं, चारों वर्ण के लोग कर सकते हैं ।”

२६. “अश्वलायन ! क्या तुमने कभी सुना है कि यवन और कम्बोज देश में तथा अन्य पड़ोसी देशों में भी दो ही तरह के वर्ण होते हैं, एक आर्य (= स्वामी) दूसरे दास” (= गुलाम) ; और एक आर्य दास बन सकता है, तथा एक दास आर्य ?”

२७. अश्वलायन—“हाँ, मैंने ऐसा सुना है ।”

२८. “यदि तुम्हारा चातुर्वर्ण्य एक आदर्श-समाज है तो फिर यह सभी देशों में क्यों नहीं ?”

२९. इनमें से किसी भी एक बात को लेकर अश्वलायन अपने जातिवाद और असमानता के पक्ष का समर्थन न कर सका । उसे एकदम मौन ही रह जाना पड़ा । अंत में अश्वलायन को बुद्ध का एक मिथ्य ही धनना पड़ा ।

३०. वासेट्ट नाम के एक ब्राह्मण ने तथागत की शरण ग्रहण कर ली थी । दूसरे ब्राह्मण इस बात के लिये उसे बुरा-बला कहते थे ।

३१. एक दिन वह भगवान् बुद्ध के पास गया और उन्हें जाकर वह सब सुना दिया, जो ब्राह्मण उसके बारे में कहते-सुनते थे ।

३२. वासेट्ट ने कहा—“भगवान् ! ब्राह्मण कहते हैं कि ब्राह्मण का ही सामाजिक स्तर ध्येष्ठ है, बाकी सबका निकृष्ट है । केवल ब्राह्मण ही शुक्ल-वर्ण होता है; दूसरे वर्ण कृष्ण-वर्ण होते हैं । केवल ब्राह्मण ही शुद्ध बंशोत्पन्न है, अब्राह्मण नहीं, केवल ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस-पुत्र हैं, उसके मुँह से उत्पन्न ब्रह्मा की संतान, ब्रह्मा द्वारा रचे गये, ब्रह्मा के उत्तराधिकारी ।

३३. “जहाँ तक तुम्हारी बात है तुमने अपने अभिजात वर्ग का स्थापन करके

उस नीचे वर्गों की संगति की है। तुम उन सिरमुण्डों में शामिल हो गये हो, उन संवारों में, उन कृष्णवर्णी लोगों में, उन धूर्तों में। तुम्हारे लिये ऐसा करना उचित नहीं। तुम्हारे लिये ऐसा करना ठीक नहीं। यह क्या है जो तुमने अपने आभिजात वर्ग का स्थापन कर उस नीचे वर्गों की संगति की है? तुम उन सिरमुण्डों में शामिल हो गये हो, उन संवारों में, उन कृष्ण-वर्ण के लोगों में, उन धूर्तों में—हमारी जाति की जातियों से उत्पन्न वर्णों में।

३४. “भगवान् ! इन शब्दों में ब्राह्मण मुझे बुरा-भला कहते हैं, गाली देते हैं, किसी तरह की कोई कसर नहीं छोड़ते।”

३५. “बासेट्टु ! तो निश्चय से यदि ब्राह्मण ऐसा कहते हैं तो वह अपनी प्राचीन परम्परा को भूल गये हैं। सभी दूसरे वर्णों की स्त्रियों की तरह, ब्राह्मणियाँ भी सन्तान उत्पन्न करती तथा उसका पालन-पोषण करती देखी जाती हैं। ऐसा होने पर भी वह सभी, पाता की मोति से उत्पन्न ब्राह्मण ही कहते हैं कि ब्राह्मण ब्रह्मा के औरस-पुत्र हैं, ब्रह्मा के मूँह से उत्पन्न हुए हैं, ब्राह्मण ब्रह्मा की सन्तान हैं, ब्राह्मण ब्रह्मा की रचना हैं तथा ब्राह्मण ब्रह्मा के उत्तराधिकारी हैं।”

३६. एक बार एमुकारी ब्राह्मण तीन बातों को लेकर बुद्ध से शास्त्रार्थ करने गया।^{१२}

३७. पहला प्रश्न जो उसने उठाया, वह पेशों के स्थायी वर्गीकरण के बारे में था। वर्गीकरण के पक्ष में बोलते हुए उसने कहा :—“मैं आप से एक प्रश्न पूछने आया हूँ। ब्राह्मणों का कहना है कि क्योंकि वे सर्वोपरि हैं, इसलिये वे किसी की सेवा नहीं करेंगे। सभी उन्हीं की सेवा करने के लिये उत्पन्न हुए हैं।

३८. “श्रमण गौतम ! सेवा (= पेशों) के चार विभाग किये गये हैं—(१) ब्राह्मणों द्वारा की जाने वाली सेवा, (२) क्षत्रियों द्वारा की जाने वाली सेवा, (३) वैश्यों द्वारा की जाने वाली सेवा तथा (४) धूर्तों द्वारा की जाने वाली सेवा; किन्तु एक धूर्त की तो कोई दूसरा धूर्त ही सेवा कर सकता है। दूसरा कौन धूर्त की सेवा करेगा? श्रमण गौतम का इसके बारे में क्या मत है?”

३९. भगवान् बुद्ध ने एमुकारी ब्राह्मण से एक प्रति-प्रश्न पूछकर उसके प्रश्न को उत्तर दिया। तथागत ने कहा ‘क्या सारा संसार ब्राह्मणों के इस वर्गीकरण से सहमत है?’

४०. “जहाँ तक मेरी बात है न मैं यही कहता हूँ कि सभी सेवाएँ (= पेशे) की ही जानी चाहिये, न यही कहता हूँ कि सभी सेवाएँ (= पेशे) नहीं ही की जानी चाहिये। यदि किसी सेवा (= पेशे) के करने से आदमी की स्थिति अच्छी न होती हो, खराब होती हो तो वह सेवा (= पेशा) नहीं की जानी चाहिये; यदि किसी सेवा (= पेशे) के करने से आदमी की स्थिति खराब होने की बजाय बेहतर होती हो तो वह सेवा (= पेशा) की जानी चाहिये।

४१. इसी एक कसौटी पर क्षत्रियों, ब्राह्मणों, वैश्यों, शूद्रों सभी की सेवा कसी जानी चाहिये; हर व्यक्ति को ऐसी सेवा (=पेशा) करने से इनकार करना चाहिये जो उसकी स्थिति को खराब बनाती हो, किन्तु हर व्यक्ति को ऐसी सेवा (=पेशा) करनी चाहिये जो उसकी स्थिति को अच्छा बनाती हो।

४२. चर्चा का दूसरा विषय जो एमुकारी ब्राह्मण ने उपस्थित किया, वह यही था कि आदमी के दर्जे का विचार करते समय उसकी वंश-परम्परा का भी विचार क्यों नहीं किया जाना चाहिये ?

४३. इस प्रश्न का तत्प्राप्त ने य. उत्तर दिया—“जहाँ तक वंश-परम्परा के अभिमान की बात है, एक आदमी जिस वंश में जन्म ग्रहण करता है, उससे उसका नाम-करण मान ही होता है कि यह क्षत्रिय-वंश में पैदा हुआ है, यह ब्राह्मण-वंश में पैदा हुआ है, यह वैश्य-वंश में पैदा हुआ है और यह शूद्र-वंश में पैदा हुआ है। जैसे, जिस प्रकार के ईंधन से आग उत्पन्न होती है, उससे उसका नाम-करण हो जाता है—यह लकड़ी की आग है, यह चैली की आग है, यह लकड़ी की गाँठ की आग है और यह गोबर की आग है; इसी प्रकार आदमी के लिये सद्धर्म ही उसका वास्तविक धन है, जन्म से तो आदमी की चारों वर्णों में से किसी न किसी एक वर्ण में मिलती मान होती है।

४४. “न वंश-परम्परा से, न अच्छी शक्त होने से और न धन होने से कोई आदमी अच्छा या बुरा होता है। अच्छे वंश में उत्पन्न हुआ एक आदमी भी हस्वारा होता है, चोर होता है, व्यभिचारी होता है, झूठा होता है, चुगलखोर होता है, कठोर बोलने वाला होता है, बकवास करने वाला होता है, लोभी होता है, द्वेषी होता है और मिथ्या-दृष्टि वाला होता है। इसीलिये मैं कहता हूँ कि अच्छे वंश में उत्पन्न होने से ही कोई आदमी अच्छा नहीं होता। और अच्छे वंश में उत्पन्न होने पर भी एक आदमी इन सभी दोषों से युक्त होता है। इसलिये मैं यह भी नहीं कहता हूँ कि अच्छे वंश में उत्पन्न होने से ही कोई आदमी अच्छा नहीं होता।”

४५. एमुकारी ब्राह्मण का तीसरा प्रश्न प्रत्येक वर्ग के पेशे वा जीविका के साधन के सम्बन्ध में था।

४६. एमुकारी ब्राह्मण ने तत्प्राप्त से कहा—“ब्राह्मण चार तरह के जीविका के साधनों का विधान करते हैं—(१) ब्राह्मणों के लिये भिक्षा, (२) क्षत्रियों के लिये तीर-कमान, (३) वैश्यों के लिये व्यापार तथा पशु-पालन और (४) शूद्रों के लिये बँहँसों पर (दुसरों का) धान डोना। यदि इनमें से कोई अपना पेशा छोड़ कर किसी दूसरे का पेशा करता है तो वह उसके लिये अच्छा नहीं, ठीक वैसे ही जैसे कोई चौकीदार किसी दूसरे की सम्पत्ति पर अधिकार कर ले। अमण गौतम का इस बारे में क्या मत है ?”

४७. “क्या सारा संसार इस ब्राह्मणी-वर्गीकरण से सहमत है ?”

४८. एमुकारी ब्राह्मण का उत्तर था—“नहीं।”

४९. बासेट्टु को तथागत ने कहा था—“ऊँचे आदर्शों का महत्व है, ऊँची जाति में जन्म ग्रहण करने का नहीं।”

५०. जाति नहीं, असमानता नहीं, ऊँच-नीच नहीं—यही तथागत की देशना थी।

५१. “दूसरे के साथ अपने आप को एक कर दो। यही सोचो जैसे वे हैं, वैसे मैं हूँ, जैसा मैं हूँ, वैसे वे हैं।”

२. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह यह शिक्षा दे कि किसी आदमी के ‘जन्म’ से नहीं, बल्कि उसके ‘कर्म’ से ही उसका मूल्यांकन किया जाना चाहिए

१. ब्राह्मण जिस चातुर्वर्ण्य का उपदेश देते थे, उसका आधार जन्म था।

२. जो ब्राह्मण माता-पिता के घर पैदा हो गया, वह ब्राह्मण है। जो क्षत्रिय माता-पिता के घर पैदा हो गया है, वह क्षत्रिय है। जो वैश्य माता-पिता के घर पैदा हो गया, वह वैश्य है। जो शूद्र माता-पिता के घर पैदा हो गया, वह शूद्र है।

३. ब्राह्मणों के अनुसार आदमी अपने जन्म के ही हिसाब से छोटा-बड़ा होता है—और किसी दूसरी बात से नहीं।

४. यह जन्माश्रित ऊँच-नीच का सिद्धान्त तथागत को उतना ही अप्रिय था, जितना चातुर्वर्ण्य का सिद्धान्त।

५. भगवान् बुद्ध का सिद्धान्त ब्राह्मणों के सिद्धान्त से सर्वथा विरोधी था। उनका सिद्धान्त था कि किसी आदमी के ‘जन्म’ से नहीं, बल्कि उसके ‘कर्म’ से ही उसका मूल्यांकन किया जाना चाहिये।

६. जिस अवसर पर भगवान् बुद्ध ने अपने इस सिद्धान्त का उपदेश दिया, वह अवसर भी विशेष था।

७. एक समय भगवान् बुद्ध जनाशपिण्डक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे। एक दिन पूर्वाह्न में उन्होंने अपना भिक्षा-पात्र लिया और भिक्षार्थ आवस्ती में प्रवेश किया।

८. उस समय यज्ञाग्नि प्रज्ज्वलित थी और यज्ञ की तैयारी हो रही थी। भिखाटन करते-करते भगवान् बुद्ध उस अग्नि के घर पर आ पहुँचे।

९. तथागत को कुछ दूरी पर आता देख अग्नि के आग-बबुला हो गया। बोला—“मुण्डक वहीं रह। दरिद्र अमण वहीं रह। वृषल वहीं रह।”

१०. जब ब्राह्मण को इस प्रकार बोलते सुना, तो तथागत ने उसे सम्बोधित

करके पूछा—“हे ब्राह्मण ! क्या तू जानता है कि वृषल (= अछूत) कौन होता है ? क्या तू जानता है कि क्या करने से आदमी वृषल (= अछूत) बनता है ?”

११. “नहीं श्रमण गौतम ! मैं नहीं जानता कि वृषल कौन होता है ? अथवा क्या करने से आदमी वृषल (= अछूत) होता है ?”

१२. भगवान् बुद्ध ने कहा कि यदि तুম यह जान लोगे कि वृषल कौन होता है, तो इससे तुम्हारी कुछ हानि नहीं होगी। “अच्छा जब आप चाहते हैं कि मैं जान ही लूँ तो बतायें।”

१३. ब्राह्मण के सुनने की इच्छा प्रकट करने पर तत्प्राप्त ने कहा^{१३} :—

१४. “जो आदमी क्रोधी हो, लोभी हो, अनैतिक हो, चुरलखोर हो, मिथ्या-दृष्टि हो और बंधक हो—उसे ‘वृषल’ समझना।

१५. “जो भी चाहे एकज हों, चाहे द्विज (पक्षी आदि) हों प्राणियों को हानि पहुंचाता है, जिसके मन में प्राणियों के लिये दया नहीं है—उसे ‘वृषल’ करके जानना।

१६. “जो भी कोई धर्मों और शोषणियों को नष्ट करता है, जो अत्याचारी है—उसे ‘वृषल’ करके जानना।

१७. “चाहे गाँव में, चाहे गाँव के बाहर जंगल में, जो भी किसी दूसरे की चीज को बिना दिये लेता है अर्थात् चुराता है—उसे ‘वृषल’ करके जानना।

१८. “जो किसी का ‘श्रृण’ लेकर बिना लौटाये, यह कह कर कि मुझे तुम्हारा कुछ नहीं देना है, भाग जाता है—उसे ‘वृषल’ करके जानना।

१९. “जो भी किसी वस्तु की कामना से, सड़क पर चलते हुए किसी को मार डालता है या लूट लेता है—उसे ‘वृषल’ करके जानना।

२०. “जो भी कोई, अपने हित में, या किसी दूसरे के हित में, अथवा धन के लोभ से पूछे जाने पर झूठी गवाही देता है—उसे ‘वृषल’ करके जानना।

२१. “जो कोई जबरदस्ती या रजामन्दी से अपने मित्रों या सम्बन्धियों की पत्नी से अनाचार करता है—उसे ‘वृषल’ करके जानना।

२२. “जो अपने पास पैसा होने पर भी, गत-बीबन अपने बूढ़ माता-पिता का पालन-पोषण नहीं करता—उसे ‘वृषल’ करके जानना।

२३. “जो कोई ‘कुशल’ धर्म पूछे जाने पर “अकुशल” धर्म की शिक्षा देता है और ‘रहस्य’ बनाकर शिक्षा देता है—उसे ‘वृषल’ जानना।

२४. “जन्म से न कोई ब्राह्मण होता है, जन्म से न कोई शूद्र होता है।”^{१४}

२५. यह सब सुना तो अग्निगर्क ब्राह्मण ने जो कुछ चुरा-भला तत्प्राप्त को कहा था, उसके लिये वह बहुत लज्जित हुआ।

३. धर्म तभी सद्धर्म है जब वह आदमी और आदमी के बीच समानता के भाव को अभिवृद्धि करे

१. आदमी असमान ही जन्म लेते हैं।
२. कुछ मजबूत होते हैं, कुछ कमजोर।
३. कुछ अधिक बुद्धिमान होते हैं, कुछ कम, कुछ एकदम नहीं।
४. कुछ अधिक सामर्थ्यवान् होते हैं, कुछ कम।
५. कुछ धनी होते हैं, कुछ गरीब।
६. सभी को "जीवन-संघर्ष" में प्रवेश करना पड़ता है।
७. इस "जीवन-संघर्ष" में यदि असमानता को स्वाभाविक स्थिति स्वीकार कर लिया जाय तो जो कमजोर है, उसका तो कहीं ठिकाना ही नहीं रहेगा।
८. क्या यह 'असमानता' का नियम जीवन का नियम बन जाना चाहिये ?
९. कुछ कहते हैं "हां" ! उनका तर्क है कि जो 'जीवन-संघर्ष' में टिकने के अधिक योग्य होगा, वह टिका रहेगा।
१०. प्रश्न यह है कि जो आदमी 'जीवन-संघर्ष' में टिके रहने के लिये योग्यतम है, क्या समाज के दृष्टि-कोण से भी वही आदमी श्रेष्ठतम है ?
११. कोई भी इस का निष्कर्षात्मक उत्तर नहीं दे सकता।
१२. इसी सन्देह के कारण धर्म "समानता" का उपदेशक है। हो सकता है कि "समानता" के कारण जो "श्रेष्ठतम" व्यक्ति है वह भी बना रह सके, चाहे वह 'जीवन-संघर्ष' की दृष्टि से योग्यतम न भी हो।
१३. समाज को "श्रेष्ठतम" आदमी चाहिये, "योग्यतम" नहीं।
१४. यही प्राथमिक कारण है जिस से धर्म 'समानता' का समर्थक है।
१५. भगवान् बुद्ध का यही दृष्टिकोण था और इसीलिये उनका यह कहना था कि जो धर्म 'समानता' का समर्थक नहीं है, अपनाने योग्य नहीं है।
१६. क्या आप किसी ऐसे धर्म में विश्वास कर सकते हैं या उसके लिये मन में आदर का भाव रख सकते हैं, जो दूसरों को दुखी बनाकर स्वयं सुखी बनने की शिक्षा देता हो, अथवा अपने को दुःखी बनाकर दूसरों को सुखी बनाने की शिक्षा देता हो अथवा अपने को और दूसरों को—दोनों को—दुःखी बनाने की शिक्षा देता हो ?
१७. क्या वह धर्म अधिक श्रेष्ठतर नहीं है जो अपने सुख के साथ साथ दूसरों के सुख में भी वृद्धि करता है और किसी प्रकार के अत्याचार को सहन नहीं करता ?

१८. जो ब्राह्मण 'असमानता' के विरोधी थे, भगवान् बुद्ध ने उनसे कई बड़े खास प्रश्न पूछे हैं ।

१९. भगवान् बुद्ध का धर्म आदमी की अपनी पुण्य-परक प्रवृत्ति में से उत्पन्न होने वाला अत्यन्त न्याय-संगत धर्म है ।

१. यमकवग्गा १—२ (धम्मपद) ।

२. वेववह सुत्तन्त—मज्झिम निकाय (३।१।१) ।

३. सत्तेल सुत्तन्त (मज्झिम निकाय १।१।८) ।

४. लोहिच्च सुत्तन्त (दीर्घनिकाय—१२) ।

५. स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ।

६. वस्सकार सुत्त (अंगुत्तर-निकाय—चतुक्क निपात) ।

७. देखो पूतिगत तिस्स की कथा (धम्मपदट्ठकथा) ।

८. कफचूपम सुत्तन्त (मज्झिम निकाय—२१) ।

९. अरवत्तापन-सुत्त (मज्झिम निकाय ९३) ।

१०. 'दास' का प्राचीन अर्थ 'गुलाम' नहीं है । 'दास' का प्राचीन अर्थ 'दाता' भी किया जाता है । (देखो भगवान् बुद्ध—धम्ममन्द कोसम्बी (पृष्ठ २५) ।

११. सुत्तनिपात (पृष्ठ ११५) ।

१२. एमुकारि सुत्तन्त (मज्झिम निकाय २।५।६) ।

१३. देखो अग्गिअ-भारुआअ सुत्त (सुत्त निपात) ।

१४. 'न जच्चा वसलो होति, न जच्चा हाति ब्राह्मणो ।'

चतुर्थ काण्ड

मज्झिम और धर्म

- | | | |
|-----------|---|--|
| पहला भाग | — | मज्झिम और धर्म |
| दूसरा भाग | — | किस प्रकार शाब्दिक समानता तात्त्विक भेद को छिपाये रखती है ? |
| तीसरा भाग | — | घोड़ जीवन-पथ |
| चौथा भाग | — | तथागत के प्रवचन |

पहला भाग

मज़हब और धर्म

१. 'मज़हब' क्या है ?

१. 'मज़हब' एक अनिश्चित शब्द है, जिसका कोई स्थिर अर्थ नहीं।
२. यह शब्द तो एक है, किन्तु इसके अर्थ अनेक हैं।
३. इसका कारण है कि 'मज़हब' बहुत सी अवस्थाओं में से होकर गुज़रा है। हर अवस्था में हम उस मान्यता विशेष को 'मज़हब' ही कहते रहे हैं। निस्सन्देह हर एक समय की मान्यता अपने से पूर्व की मान्यताओं से भी भिन्न रही है और अपने बाद में आने वाली मान्यताओं से भी भिन्न रही है।
४. 'मज़हब' की कल्पना कभी स्थिर नहीं रही है।
५. वह हर समय बदलती चली आई है।
६. एक समय या जब बिजली, वर्षा और बाद की घटनाएँ आदिम-आदमी की समझ में सर्वथा परे की बातें थीं। इन सब पर काबू पाने के लिये जो भी कुछ टोना-टोटा किया जाता था, 'जादू' कहलाता था। उस समय 'मज़हब' और 'जादू' एक ही चीज़ के दो नाम थे।
७. तब 'मज़हब' के विकास में दूसरा समय आया। इस समय 'मज़हब' का मतलब था—आदमी के विश्वास, धार्मिक कर्म-काण्ड, रीति-रिवाज, प्राथेनाएँ और बलियाँ वाले यज्ञ।
८. लेकिन 'मज़हब' का यह स्वरूप व्युत्पन्न है।
९. मज़हब का केन्द्र-बिन्दु इस विश्वास पर निर्भर करता है कि कोई शक्ति विशेष है जिसके कारण ये सभी घटनाएँ घटती हैं और जो आदिम आदमी की समझ से परे की बातें थीं। अब इस अवस्था को पहुँच कर 'जादू' का प्रभाव जाता रहा।
१०. आरम्भ में यह शक्ति 'जैतान' का ही रूप थी। किन्तु बाद में यह माना जाने लगा कि यह 'शिव' रूप भी हो सकती है।
११. तरह तरह के विश्वास, कर्म-काण्ड और यज्ञ शिव स्वरूप शक्ति को प्रसन्न करने के लिये और क्रोधरूप शक्ति को संतुष्ट रखने के लिये भी आवश्यक थे।
१२. आगे चलकर वही शक्ति 'ईश्वर', 'परमात्मा' या दुनिया का बनाने वाला कहलाई।

१३. तब 'मज्झहव' की मान्यता ने तीसरी जगल ग्रहण की, जब यह माना जाने लगा कि इस एक ही शक्ति ने 'आदमी' और 'दुनिया' दोनों को पैदा किया है।

१४. इसके बाद मज्झहव की मान्यता में एक यह बात भी शामिल हो गई कि हर आदमी की देह में एक 'आत्मा' है, वह 'आत्मा' नित्य है, और आदमी जो कुछ भी भला-बुरा काम करता है, उस 'आत्मा' को ईश्वर के प्रति उसके लिये उत्तरदायी रहना पड़ता है।

१५. यही थोड़े में 'मज्झहव' की मान्यता के विकास का इतिहास है।

१६. अब 'मज्झहव' का यही अर्थ हो गया है और अब 'मज्झहव' से यही भावार्थ ग्रहण किया जाता है—ईश्वर में विश्वास, आत्मा में विश्वास, ईश्वर की पूजा, आत्मा का गुधार, प्रार्थना आदि करके ईश्वर को प्रसन्न रखना।

२. 'धर्म' 'मज्झहव' से कैसे भिन्न है ?

१. भगवान् बुद्ध जिसे 'धर्म' कहते हैं वह 'मज्झहव' से सर्वथा भिन्न है।

२. यूँ जिसे भगवान् बुद्ध 'धर्म' कहते हैं, वह उसके समानान्तर है जिसे यूरोप के देववादी 'रिलीजन' कहते हैं।

३. लेकिन दोनों में कोई खास 'समानता' नहीं है। बल्कि दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है।

४. इसी लिये कुछ यूरोपीय देव-वादी भगवान् बुद्ध के 'धर्म' को 'मज्झहव' स्वीकार करने से इन्कार करते हैं।

५. हमें इसके लिये कोई अफसोस नहीं है। नुकसान उन्हीं का है। इससे बुद्ध-धर्म की कोई हानि नहीं। बल्कि इससे 'रिलीजन' की कमियाँ स्पष्ट रूप से प्रगट में आ जाती है।

६. इस विवाद में पहने की अपेक्षा यह अच्छा है कि हम यह बतायें कि धर्म क्या है और फिर यह दिखायें कि यह 'मज्झहव' या 'रिलीजन' से कैसे भिन्न है ?

७. कहा जाता है कि 'मज्झहव' या 'रिलीजन' व्यक्तिगत चीज है और आदमी को इसे अपने तक ही सीमित रखना चाहिये। इसे सार्वजनिक जीवन में बिल्कुल दखल नहीं देना चाहिये।

८. इसके संबंध में बिल्कुल 'धर्म' एक सामाजिक वस्तु है। यह प्रधान रूप से और आवश्यक रूप से सामाजिक है।

९. धर्म का मतलब है सदाचरण, जिस का मतलब है जीवन के सभी क्षेत्रों में एक आदमी का दूसरे आदमी के प्रति अच्छा व्यवहार।

१०. इससे स्पष्ट है कि यदि कहीं एक आदमी अकेला ही हो तो उसे किसी 'धर्म' की आवश्यकता नहीं।

११. लेकिन यदि कहीं परस्पर सम्बन्धित दो आवृत्तियाँ भी एक साथ रहते हों, तो चाहे वे चाहें और चाहे न चाहें उन्हें 'धर्म' के लिये जगह बनानी होगी। दोनों में से कोई एक भी बचकर नहीं जा सकता।

१२. दूसरे शब्दों में बिना 'धर्म' के समाज का काम चल ही नहीं सकता।

१३. समाज को तीन बातों में से एक का चुनाव करना ही पड़ेगा।

१४. समाज चाहे तो अपने 'अनुशासन' के लिये धर्म का चुनाव नहीं कर सकता। यदि धर्म 'अनुशासन' नहीं करता तो वह 'धर्म' ही नहीं है।

१५. इसका मतलब है कि समाज 'अराजकता' के पथ पर आगे बढ़ना ठीक समझता है।

१६. दूसरे समाज पुलिस को अर्थात् डिप्टेटर को 'अनुशासन' के लिये चुन सकता है।

१७. तीसरे समाज 'धर्म' और 'मजिस्ट्रेट' दोनों का चुनाव कर सकता है; जितने अंश में समाज 'धर्म' का पालन करे उतने अंश में 'धर्म' और वहाँ 'धर्म' का पालन न करे, वहाँ मजिस्ट्रेट।

१८. न अराजकता में स्वतन्त्रता है और न डिप्टेटर-राज्य में स्वतन्त्रता है।

१९. केवल तीसरी व्यवस्था में ही स्वतन्त्रता जीवित रहती है।

२०. इसलिये जो स्वतन्त्रता चाहते हैं, उनके लिये 'धर्म' अनिवार्य है।

२१. 'धर्म' क्या है? 'धर्म' की अनिवार्य आवश्यकता क्यों है? भगवान् बुद्ध के अनुसार धर्म के दो प्रधान तत्त्व हैं—प्रज्ञा तथा करुणा।

२२. प्रज्ञा क्या है? प्रज्ञा किस लिये? प्रज्ञा का मतलब है बुद्धि (= निर्मल बुद्धि)। भगवान् बुद्ध ने प्रज्ञा को अपने धर्म के दो स्तम्भों में से एक माना है, क्योंकि वह नहीं चाहते थे कि 'मिथ्या-विश्वासों' के लिये कहीं कोई गुंजायश बची रहे।

२३. करुणा क्या है? और करुणा किस लिये? करुणा का मतलब है (दया) प्रेम, (मैत्री)। इसके बिना न समाज जीवित रह सकता है और न समाज की उन्नति हो सकती है—इसीलिये भगवान् बुद्ध ने करुणा को अपने धर्म का दूसरा स्तम्भ बताया।

२४. भगवान् बुद्ध के 'धर्म' की यही परिभाषा है।

२५. 'मज्झिम्मा' या 'रिलीजन' की परिभाषा से यह कितनी भिन्न है?

२६. कितनी प्राचीन और कितनी आधुनिक है यह भगवान् बुद्ध द्वारा दी गई 'धर्म' की परिभाषा।

२७. कितनी अलौकिक और कितनी मौलिक।

२८. किसी से उधार नहीं ली गई। कितनी सच्ची।

२९. 'प्रज्ञा' और 'करुणा' का एक अलौकिक सम्मिश्रण ही तथागत का 'धर्म' है।

३०—‘मज्झिम्ब’ अथवा ‘रिलीजन’ और ‘धर्म’ में इतना अन्तर है।

३. ‘मज्झिम्ब’ का उद्देश्य और ‘धर्म’ का उद्देश्य

१. ‘मज्झिम्ब’ वा ‘रिलीजन’ का उद्देश्य क्या है ? धर्म का उद्देश्य क्या है ? क्या वे दोनों एक ही समान हैं और एक ही हैं ? अथवा वे दोनों दो हैं और भिन्न-भिन्न हैं ?

२. इन प्रश्नों का उत्तर दो सूक्तों में है, एक जिसमें भगवान् बुद्ध और सुनस्सत्त की बातचीत का उल्लेख है, और दूसरा जिसमें भगवान् बुद्ध और पोद्दपाद ब्राह्मण की बातचीत का वर्णन है।

३. तत्थागत एक बार मल्लों के नगर अनुपिय में बिहार कर रहे थे।

४. उन समय पूर्वाह्न में तत्थागत ने चीवर पहना तथा पाश और चीवर ग्रहण किया और अनुपिय नगर में भिक्षाटन के लिए निकले।

५. रास्ते में उन्हें लगा कि कदाचित् भिक्षाटन के लिये अभी थोड़ी देर रुकना चाहिये। इसलिये वह भगव परिव्राजक के आश्रम पर चले गये।

६. उन्हें आता देखकर भगव परिव्राजक उठ खड़ा हुआ, अभिवादन किया और बोला—“आप कृपया आसन ग्रहण करें। आपके लिये आसन सज्जित है।”

७. तब तत्थागत वहाँ विराजमान हुए। भगव परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर पास ही बैठ गया। इस प्रकार बैठकर भगव परिव्राजक ने भगवान् बुद्ध को कहा—

८. “कुछ दिन हुए, काफी दिन हुए हे अमण सौतम ! सुनस्सत्त लिच्छवी मेरे पास आया था। कहता था कि अब मैंने अमण सौतम का शिष्यत्व त्याग दिया है। क्या जैसा उसने कहा, वैसा ठीक है ?”

९. “भगव ! यह ऐसा ही है जैसा सुनस्सत्त लिच्छवी ने कहा।”

१०. इसके आगे तत्थागत बोले—“कुछ दिन हुए, काफी दिन हुए, सुनस्सत्त लिच्छवी मेरे पास आया था और कहने लगा—“अब मैं तत्थागत के शिष्यत्व का त्याग करता हूँ। अब मैं तत्थागत का शिष्य नहीं रहूँगा।” जब उसने मुझे यह कहा, तब मैंने उससे पूछा—‘सुनस्सत्त ! क्या मैंने तुझे कभी कहा था कि सुनस्सत्त ! तू आ और मेरा शिष्य बनकर मेरे पास रह ?’”

११. “भगवान् ! नहीं, ऐसा आपने कभी नहीं कहा।”

१२. “अथवा तू ने ही मुझे कभी कहा था कि मैं तत्थागत को अपना ‘गुरु’ स्वीकार करता हूँ।”

१३. “भगवान् ! नहीं। ऐसा मैंने कभी नहीं कहा।”

१४. “तब मैंने उससे पूछा ‘जब तू मैंने ही तुझे कहा और तू ने ही मुझे कहा

तो क्या तो मैं हूँ और क्या तू है, जो तू त्यागने की बात कर रहा है ? भूलें कहीं के, क्या इसमें तेरा अपना ही दोष नहीं है ?”

१५. मुनक्खत्त बोला—“लेकिन भगवान् ! आप मुझे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे कोई प्रातिहार्य (= चमत्कार) नहीं दिखाते ।”

१६. “मुनक्खत्त ! क्या मैंने कभी तुझे कहा था कि मुनक्खत्त तू आकर मेरा शिष्य बन जा, मैं तुझे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे कोई प्रातिहार्य दिखाऊंगा ?”

१७. “भगवान् ! ऐसा आपने कभी नहीं कहा ।”

१८. “अथवा मुनक्खत्त ! तू ने ही मुझे कभी कहा था कि मैं भगवान का ‘शिष्यत्व’ स्वीकार करता हूँ, क्योंकि भगवान् मुझे सामान्य आदमियों की शक्ति से परे कोई ‘प्रातिहार्य’ दिखायेंगे ?”

१९. “भगवान् ! नहीं, मैंने ऐसा नहीं कहा था ।”

२०. जब न मैंने ही तुझे कहा और न तूने ही मुझे कहा तो क्या मैं हूँ और क्या तू है, जो तू त्यागने की बात कर रहा है ? मुनक्खत्त ! तू क्या सोचता है, चाहे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे चमत्कार दिखाये जायें और चाहे न दिखायें जायें, क्या मेरे धर्म का यही उद्देश्य नहीं है कि जो मेरे धर्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ?”

२१. “भगवान् ! चाहे प्रातिहार्य दिखाई जायें और चाहे न दिखाई जायें, निश्चय से त्थागत की धर्म-देशना का यही उद्देश्य है कि जो कोई भी त्थागत के धर्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ।”

२२. “मुनक्खत्त ! जब धर्म के उद्देश्य की दृष्टि से इसका कोई महत्व ही नहीं कि कोई प्रातिहार्य दिखाई जाय अथवा न दिखाई जाय, तो तेरे लिये ही प्रातिहार्य-प्रदर्शन का क्या मूल्य है ? हे मूर्ख ! अब तू देख कि इसमें तेरा अपना ही कितना कमूर है ।”

२३. “लेकिन भगवान् ! आप मुझे सृष्टि के आरम्भ का भी पता नहीं देते ?”

२४. “अच्छा तो मुनक्खत्त ! मैंने तुझे कब कहा था कि आ मुनक्खत्त, तू मेरा शिष्य बन जा, मैं तुझे सृष्टि के आरम्भ का पता बताऊंगा ।”

२५. “भगवान् ! आपने नहीं कहा था ।”

२६. “अथवा तू ने ही मुझे कभी कहा था कि मैं आपका शिष्य बनूँगा क्योंकि आप मुझे सृष्टि के आरम्भ का पता देंगे ?”

२७. “भगवान् ! मैंने नहीं कहा था ।”

२८. “जब न मैंने ही तुझे कहा और न तूने ही मुझे कहा तो क्या तो मैं हूँ और क्या तू है, जो तू त्यागने की बात कर रहा है ? मुनक्खत्त ! तू क्या सोचता है चाहे मैं सृष्टि के आरम्भ का पता बताऊँ और चाहे न बताऊँ, क्या मेरे धर्म का यही

उद्देश्य नहीं है कि जो मेरे धर्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ?”

२९. “भगवान् ! चाहे आप सृष्टि के आरम्भ का पता बतायें और चाहे न बतायें, निश्चय से तथागत की धर्म-देखना का यही उद्देश्य है कि जो कोई भी तथागत के धर्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ।”

३०. “मुनश्चत्त ! जब धर्म के उद्देश्य की दृष्टि से इसका कोई महत्व ही नहीं कि चाहे सृष्टि के आरम्भ का पता बताया जाय और चाहे न बताया जाय, तो तेरे लिये ही इसका क्या मूल्य है कि सृष्टि के आरम्भ का पता बताया जाय ?”

३१. इसका यह प्रकट होता है कि ‘मज्झिम्’ या ‘रिलीजन’ को तो सृष्टि के आरम्भ से सरोकार है, ‘धर्म’ का एकदम नहीं ।

(२)

‘मज्झिम्’ अथवा ‘रिलीजन’ और धर्म में जो दूसरे फर्क हैं वे उस चर्चा से स्पष्ट हो जाते हैं जो भगवान् बुद्ध और पोद्दुपाद के बीच हुई थी ।^१

१. एक समय भगवान् बुद्ध अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे उस समय पोद्दुपाद परिवाजक मल्लिका के महाप्रासाद में ठहरा हुआ था । उसका उद्देश्य दार्शनिक चर्चा करना था ।

२. उसके साथ बहुत से अनुयायी परिवाजक थे—कोई तीन सौ । भगवान् बुद्ध और पोद्दुपाद के बीच बातचीत हुई । पोद्दुपाद ने पूछा—

३. “भगवान् ! यदि यह ऐसा ही है, तो कम से कम, मुझे इतना तो बता दें कि क्या यही मत ठीक है कि ‘संसार अनन्त है’ और शेष मत मृषा है ?”

४. तथागत बोले—“पोद्दुपाद ! मैंने यह कब कहा है कि यही मत ठीक है कि ‘संसार अनन्त है’ और सब मत मृषा है ? मैंने इस विषय में कभी अपना मत व्यक्त ही नहीं किया है ।”

५. तब, इसी तरह से पोद्दुपाद ने इन सभी प्रश्नों को क्रमशः पूछा—

(क) क्या संसार अनन्त नहीं है ?

(ख) क्या संसार ससीम है ?

(ग) क्या संसार असीम है ?

(घ) क्या आत्मा और शरीर एक ही है ?

(ङ) क्या आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न है ?

(च) क्या तथागत मरणान्तर रहते हैं ?

(छ) क्या तथागत मरणान्तर नहीं रहते हैं ?

(ज) क्या वे रहते भी हैं और नहीं भी रहते हैं ?

६. और इस प्रकार के हर प्रश्न का तथागत ने एक ही उत्तर दिया ।

७. "पोट्टपाद ! इस विषय में भी मैंने अपना मत कभी व्यक्त नहीं किया।"

८. "लेकिन तथ्यागत ने इन विषयों में अपना मत क्यों व्यक्त नहीं किया?"

९. "क्योंकि इन प्रश्नों का उत्तर देने से किसी को कुछ लाभ नहीं, इनका धर्म से कुछ भी सम्बन्ध नहीं, इनसे आदमी को अपना आवरण सुधारने में कुछ भी सहायता नहीं मिलती, इनसे विराग नहीं बढ़ता, इनसे राग-द्वेष से मुक्ति लाभ नहीं होता, इनसे शान्ति नहीं मिलती, इनसे शमय लाभ नहीं होता, इनसे विद्या प्राप्त नहीं होती, इनसे प्रज्ञा का लाभ नहीं होता और न ये निर्वाण की ओर अप्रसर करते हैं। उसी लिये मैंने इन विषयों पर अपना कोई मत व्यक्त नहीं किया है।

१०. "तो तथ्यागत ने किन विषयों का व्याख्यान किया है?"

११. "मैंने बताया है कि दुःख क्या है? मैंने बताया है कि दुःख का समुदय (= मूल कारण) क्या है? मैंने बताया है कि दुःख का निरोध क्या है? मैंने बताया है कि दुःख के निरोध (= अन्त) का मार्ग क्या है?"

१२. "और तथ्यागत ने इन विषयों पर व्याख्यान क्यों दिया है?"

१३. "क्योंकि पोट्टपाद ! इनसे लोगों को लाभ है, इनका धर्म से सम्बन्ध है, इनसे आदमी को अपना आवरण सुधारने में सहायता मिलती है, इनसे विराग बढ़ता है, इनसे राग-द्वेष से मुक्ति मिलती है, इनसे शान्ति मिलती है, इनसे शमय होता है, इनसे विद्या प्राप्त होती है, इनसे प्रज्ञा का लाभ होता है और ये निर्वाण की ओर अप्रसर करते हैं। इसीलिये पोट्टपाद ! मैंने इन विषयों का व्याख्यान किया है।"

१४. इस संवाद से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'मज्झ' और 'रिलीजन' के लिये कौन से प्रश्न विचारणीय हैं, और 'धर्म' के लिये कौन से प्रश्न विचारणीय हैं। दोनों का जमीन-आसमान का अन्तर है।

१५. 'धर्म' का उद्देश्य है संसार का पुनर्निर्माण करना।

४. मज्झ और नैतिकता

१. 'मज्झ' या 'रिलीजन' में नैतिकता का स्थान क्या है?

२. सच्ची बात तो यही है कि नैतिकता का 'मज्झ' या 'रिलीजन' में कोई स्थान ही नहीं।

३. 'मज्झ' या 'रिलीजन' के अन्तर्गत आते हैं 'ईश्वर', 'आत्मा', 'प्रायश्चित्त', 'पूजा', 'कर्म-काण्ड', 'सीति-रिवाज', 'यज्ञ' 'यति-कर्म'।

४. नैतिकता का सम्बन्ध वहीं आता है जहाँ एक आदमी का सम्बन्ध दूसरे से आरम्भ होता है।

५. 'मज्झ' या 'रिलीजन' में तो 'नैतिकता' बाहर से आने वाले हवा के एक

लोक की तरह है, ताकि व्यवस्था और ज्ञान्ति की स्थापना में उपयोगी सिद्ध हो।

६. 'मज्झिम्' या 'रिलीजन' एक त्रिकोण है।

७. अपने पड़ोसी के साथ अच्छा व्यवहार करो क्योंकि तुम दोनों एक ही पिता-परमात्मा के पुत्र हो।

८. यही 'मज्झिम्' या 'रिलीजन' का तर्क है।

९. प्रत्येक 'मज्झिम्' या 'रिलीजन' नैतिकता का उपदेश देता है, किन्तु नैतिकता 'मज्झिम्' या 'रिलीजन' का मूलधार नहीं है।

१०. यह एक रेल के उस हिस्से की तरह है जो रूँ ही साथ जोड़ दिया गया है। यह बचावसर साथ जोड़ भी दिया जाता है; और पृथक् भी कर दिया जाता है।

११. इसलिये 'मज्झिम्' या 'रिलीजन' की क्रिया-परिपाटी में नैतिकता का स्थान आकस्मिक है और कभी-कभी उसका भी प्रयोजन रहता है।

१२. इसीलिये 'मज्झिम्' या 'रिलीजन' में नैतिकता प्रभावोत्पादक नहीं है।

५. धर्म और नैतिकता

१. धर्म में नैतिकता का स्थान क्या है ?

२. सीधा सरल उत्तर है कि नैतिकता ही धर्म है और धर्म ही नैतिकता है।

३. दूसरे शब्दों में यद्यपि धर्म में 'ईश्वर' के लिये कहीं कुछ स्थान नहीं है तो भी धर्म में 'नैतिकता' का वही स्थान है जो 'मज्झिम्' या 'रिलीजन' में 'ईश्वर' का।

४. धर्म में प्रार्थनाओं के लिये, तीर्थ-यात्राओं के लिये, कर्मकाण्डों के लिये, रीति-रिवाजों के लिये तथा बलि-कर्मों के लिये कोई जगह नहीं।

५. नैतिकता ही धर्म का सार है। नैतिकता नहीं, तो धर्म भी नहीं।

६. धर्म में जो नैतिकता है उसका सीधा मूल-स्रोत आदमी को आदमी से मैत्री करने की जो आवश्यकता है, वही है।

७. इसमें ईश्वर की मंजूरी की आवश्यकता नहीं। ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये आदमी को नैतिक बनने की आवश्यकता नहीं। अपने भले के लिये ही आदमी के लिये यह आवश्यक है कि वह आदमी से मैत्री करे।

६. केवल सदाचार भी पर्याप्त नहीं है, यह

पवित्र और व्यापक होना चाहिये

१. कोई भी चीज या बात कब पवित्र बनती है ? क्यों पवित्र बनती है ?

२. हर मानव-समाज में—चाहे वह आदिम अवस्था में हो और चाहे वह उन्नत अवस्था में हो—कुछ चीजें या विश्वास ऐसे होते हैं जो 'पवित्र' माने जाते हैं और कुछ चीजें या विश्वास ऐसे हैं जो 'पवित्र' नहीं माने जाते।

३. जब कोई चीज या विषय 'पवित्रता' की सीमा में प्रवेश कर गया इसका मतलब है कि उसके विरुद्ध आचरण नहीं किया जा सकता। ठीक बात तो यह है कि उसे स्पर्श ही नहीं किया जा सकता। ऐसा करना सर्वथा निषिद्ध हो जाता है।

४. इससे भिन्न जो चीज या बात "पवित्र" नहीं मानी जाती, उसके विरुद्ध आचरण किया जा सकता है, अर्थात् आदमी बिना किसी भय के अथवा आत्म-प्रताड़ना के उस विषय में जैसा चाहे कर सकता है।

५. 'पवित्र' का मतलब है 'धार्मिकता' लिये हुए। इस प्रकार की चीज या बात के विरुद्ध जाने का मतलब है मजहब की मर्यादा का उल्लंघन करना।

६. किसी भी चीज को 'पवित्र' क्यों बनाया जाता है। अपने प्रश्न को विषय के भीतर रखने के लिये, पूछा जा सकता है कि नैतिकता को 'पवित्र' क्यों बनाया गया ?

७. नैतिकता के पवित्र बनाये जाने में, लगता है कि तीन बातों का प्रभाव पड़ा है।

८. पहली बात तो यह है कि जो श्रेष्ठ है, सामाजिक हित की दृष्टि से उसे सुरक्षित रहना चाहिये।

९. इस प्रश्न की पृष्ठ-भूमि का सम्बन्ध है उस बात से जिसे हम 'जीवन-संघर्ष' और उसमें 'योग्यतम का जीवित बने रहना' कहते हैं।

१०. यह प्रश्न 'विकास-वाद के सिद्धान्त' से सम्बन्धित है। सब कोई जानता है कि मानव-समाज में जो विकास हुआ है वह 'जीवन-संघर्ष' के कारण हुआ है, क्योंकि आरम्भिक युग में भोजन-सामग्री बड़ी सीमित मात्रा में प्राप्त थी।

११. भयानक संघर्ष रहा है। प्रकृति के पंजे और दाँत रक्त-रंजित रहे हैं।

१२. ऐसे 'जीवन-संघर्ष' में जो भयानक और रक्त-रंजित होता है केवल 'योग्यतम' ही बचा रहता है।

१३. समाज की मूल-अवस्था ऐसी ही रही है।

१४. बहुत प्राचीन काल में किसी न किसी ने यह प्रश्न अवश्य उठाया होगा कि क्या योग्यतम (= सबसे अधिक शक्ति सम्पन्न) ही श्रेष्ठतम भी माना जाना चाहिये ? क्या जो निर्बलतम है, उसे भी संरक्षण देकर यदि बचाया जाय तो क्या यह आगे चलकर समाज के हित की दृष्टि से अच्छा सिद्ध न होगा ?

१५. लगता है कि उस समय के समाज की जो स्थिति थी, उस समय उसने एक स्वीकारात्मक उत्तर अवश्य दिया होगा।

१६. तब प्रश्न पैदा होता है कि कमजोरों के संरक्षण का क्या उपाय है ?

१७. जो योग्यतम (= सबसे अधिक शक्तिशाली) हो उस पर कुछ प्रतिबन्ध लगाने से कम और किसी भी तरह काम चल ही नहीं सकता था।

१८. इसी स्थिति में नैतिकता का मूल और आवश्यकता छिपी हुई है।

१९. इस नैतिकता के लिये 'पवित्र' बताया जाना आवश्यक था, क्योंकि पहले-पहले ये पाबन्दीयाँ (= प्रतिबन्ध) योग्यतम (= सर्वाधिक शक्तिशाली) व्यक्तियों पर ही लगायी गई थीं ।

२०. इसके बड़े सम्भीर परिणाम हो सकते थे ।

२१. पहला प्रश्न तो यही पैदा होता है कि नैतिकता जब सामाजिक रूप ग्रहण करती है, तब कहीं यह असामाजिक (= सामाजिक हितों की विरोधिनी) तो नहीं हो जाती है ?

२२. ऐसा नहीं है कि चोरों में अपनी कुछ 'नैतिकता' ही न हो । व्यापारियों में भी नैतिकता होती ही है । एक जातिवालों में भीतरी नैतिकता रहती ही है और डाकुओं के झुण्ड में भी अपनी भीतरी नैतिकता रहती ही है ।

२३. लेकिन यह नैतिकता पार्श्विक की भावना लिये हुए है, इस नैतिकता में दूसरों के बहिष्कार की भावना निहित है । यह नैतिकता दल-विशेष के स्वार्थों का संरक्षण करने के लिये है । इसलिये यह नैतिकता समाज-हित-विरोधिनी है ।

२४. यह इस प्रकार की नैतिकता की पार्श्विक और अपने में ही सीमित रहने की भावना ही है, जिससे इसकी समाज-हित-विरोधिनी प्रवृत्ति को क्रियाशील होने का अवसर मिलता है ।

२५. यही बात उस समय लागू होती है जब कोई भी एक दल अपने स्वार्थों की रक्षा करने के लिये नैतिकता का आश्रय लेता है ।

२६. समाज की इस दल-बन्धी का असर बड़ी दूर तक पहुँचता है ।

२७. यदि समाज में इस प्रकार के अ-सामाजिक दल बने रहेंगे, तो समाज हमेशा असंगठित रहेगा और टुकड़े-टुकड़े रहेगा ।

२८. एक असंगठित और टुकड़े-टुकड़े समाज का सबसे बड़ा खतरा यही है कि यह कई तरह के जीवन-मापों और आदर्शों को जन्म दे देता है ।

२९. जब तक लोगों के जीवन के माप-दण्ड समान न हों और जब तक लोगों के जीवन-आदर्श समान न हों तब तक समाज परस्पर मिल-जुलकर रहने वाला समाज बन ही नहीं सकता ।

३०. जब इतने तरह के जीवन के मापदण्ड रहेंगे और इतनी तरह के जीवन-आदर्श रहेंगे तो व्यक्ति के लिये मन का अविरोधी-भाव बनाये रखना असम्भव है ।

३१. बुद्धिपूर्वक विचार करने से किसी की जनसंख्या आदि की दृष्टि से जो और जितना जिसका अधिकार होता चाहिये वह न होकर यदि किसी समाज के एक हिस्से की किसी दूसरे हिस्से पर अनुचित प्रधानता बनी रहेगी तो इसका अवश्यम्भावी परिणाम परस्पर का कलह होगा ।

३२. कलह को रोकने का एक ही उपाय है कि सभी के लिये नैतिकता के समान नियम हों और सभी उन्हें पवित्र मानें ।

३३. एक तीसरा कारण भी है जिसके कारण नैतिकता पवित्र मानी जानी चाहिये और इसको सर्वमान्य होना चाहिये; व्यक्ति की उन्नति के संरक्षण के हित में।

३४. जहाँ 'जीवन-संधर्ष' है अथवा जहाँ वर्ग-विशेष का शासन है, वहाँ व्यक्ति का हित सुरक्षित नहीं है।

३५. दलबन्दी व्यक्ति को चित्त की वह अविरोधी-भावना प्राप्त करने ही नहीं देती जो तभी सम्भव है जब समाज में समान 'जीवन-माप' हों और समान 'जीवन-आदर्श' हों। व्यक्ति के विचार बहक जाते हैं और वह एकता देख ही नहीं सकता।

३६. दूसरे दलबन्दी में पक्षपात रहता है और न्याय की आशा नहीं रहती।

३७. दलबन्दी से वर्ग में जड़ोभूत हो जाते हैं। मालिक हमेशा मालिक बने रहते हैं, गुलाम हमेशा गुलाम बने रहते हैं। मालिक हमेशा मालिक बने रहते हैं, मजदूर हमेशा मजदूर बने रहते हैं। विशिष्ट अधिकारी हमेशा विशिष्ट अधिकारी ही रहते हैं और गुलाम हमेशा गुलाम ही रहते हैं।

३८. इसका मतलब है कि कुछ लोगों के लिये तो स्वतन्त्रता हो सकती है, किन्तु सभी के लिये नहीं। इसका मतलब हुआ कि चन्द लोगों के लिये समानता हो सकती है, किन्तु अधिकांश के लिए नहीं हो सकती।

३९. इसका इलाज क्या है? एक ही इलाज है कि भ्रातृ-भावना को सर्वमान्य और प्रभावशाली बनाया जाय।

४०. भ्रातृ-भाव क्या है? आदमी हर आदमी को अपना भाई समझे—यही नैतिकता है।

४१. इसीलिये भगवान् बुद्ध ने कहा कि धर्म नैतिकता है और जिस प्रकार धर्म पवित्र है; उसी प्रकार नैतिकता भी पवित्र है।

१. पाठिक सुत (बीघ निकाय—२४ वाँ सुत्तन्त)।

२. पोठुपाय सुत्तन्त (बीघ निकाय—१ : ९)।

दूसरा भाग

किस प्रकार शाब्दिक समानता तात्त्विक भेद को छिपाये रखती है

पुनर्जन्म

१. प्रास्ताविक

१. यह प्रश्न प्रायः पूछा जाता है कि मरने बाद के क्या होता है ?

२. बुद्ध के समकालीन आचार्यों के दो भिन्न तरह के मत थे । एक वर्ग 'आत्मवादी' या 'शाश्वतवादी' कहलाता था, दूसरा कहलाता था 'उच्छेदवादी' ।

३. जो 'शाश्वतवादी' था, उसका कहना था कि 'आत्मा' का मरण होता ही नहीं; इसलिये जीवन शाश्वत है ! पुनर्जन्म द्वारा इसका नवीकरण होता रहता है ।

४. उच्छेदवादियों का मत इस एक शब्द 'उच्छेदवाद' से ही स्पष्ट हो जाता था । 'उच्छेदवाद' का मतलब है हर वस्तु का सम्पूर्ण विनाश । मृत्यु के बाद कुछ भी शेष नहीं ।

५. भगवान् बुद्ध 'शाश्वतवादी' नहीं थे, क्योंकि इसका मतलब था कि एक बार पृथक् नित्य 'आत्मा' में विश्वास करना, जिसके वे विरोधी थे ।

६. तो क्या तत्काल उच्छेदवादी थे ? जब वे 'आत्मा' का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते थे, तो स्वाभाविक तौर पर उन्हें 'उच्छेदवादी' मानने की प्रवृत्ति हो सकती है ।

७. लेकिन अलगदूषम सुत्तन्त में भगवान् बुद्ध ने शिकायत की है कि वे 'उच्छेदवादी' नहीं हैं, किन्तु उन्हें 'उच्छेदवादी' समझा जाता है ।

८. उन्होंने कहा है—'यद्यपि मैं इस मत को स्थापित करता हूँ, और इसी की देशना करता हूँ, तो भी कुछ अमन-बाह्य मूल से, गलती से मुझ पर झूठा इलजाम लगता है जो कि वास्तविकता के विरुद्ध है कि मैं उच्छेदवाद की देशना करता हूँ कि मैं आदमियों के टुकड़े-टुकड़े हो जाने की, नाश की, सम्पूर्ण विनाश की देशना करता हूँ ।

९. 'यह ऐसा मत है जो कि मेरा मत नहीं, जिस मत का मैं समर्थन नहीं करता, जो कि भूत से, गलती से और झूठी तौर पर ऐसे भले लोगों द्वारा मेरे निरमदा जाता है जो मुझे उच्छेदवादी बनाना चाहते हैं।'

१०. यदि यह कथन यथार्थ है और ऐसे लोगों द्वारा जो बौद्ध धर्म को ब्राह्मणी रंग में रंग देना चाहते थे, प्रक्षिप्त नहीं है, तो इस कथन से मन में एक गम्भीर बुद्धिचा पैदा हो जाती है।

११. यह कैसे हो सकता है कि भगवान् बुद्ध 'आत्मा' को भी नहीं मानें और तब भी कहें कि मैं 'उच्छेदवादी' नहीं हूँ?

१२. इससे प्रश्न पैदा होता है कि क्या भगवान् बुद्ध 'पुनर्जन्म' मानते थे?

२. पुनर्जन्म किस (चीज) का ?

१. क्या भगवान् बुद्ध पुनर्जन्म मानते थे ?

२. उत्तर "हाँ" में है।

३. यह अच्छा है कि इस प्रश्न को दो हिस्सों में बाँट लिया जाय; (१) किस चीज का जन्म ? और (२) किस व्यक्ति का जन्म ?

४. यह अच्छा है कि इन दोनों प्रश्नों को एक-एक करके लिया जाय।

५. पहले हम पहले प्रश्न को ही लें, पुनर्जन्म किस चीज का ?

६. प्रायः हमेशा इस प्रश्न की उपेक्षा की जाती है। यह दोनों प्रश्नों को एक बना देने का ही परिणाम है कि पुनर्जन्म की बात को लेकर इतनी गड़बड़ों है।

७. भगवान् बुद्ध के अनुसार चार भौतिक पदार्थ हैं, चार महाभूत हैं जिनसे शरीर बना है—(१) पृथ्वी, (२) जल, (३) अग्नि, (४) वायु।

८. प्रश्न है कि जब शरीर का मरण होता है तो इन चारों महाभूतों का क्या होता है ? क्या वे भी शरीर के साथ मर जाते हैं ? कुछ लोगों का कहना है कि वे भी मर जाते हैं।

९. भगवान् बुद्ध ने कहा कि "नहीं"। आकाश में जो समान भौतिक पदार्थ सामूहिक रूप से विद्यमान हैं, वे उनमें मिल जाते हैं।

१०. इस विद्यमान (= तैरती हुई) राशि में से जब इन चारों महाभूतों का पुनर्मिलन होता है, तो पुनर्जन्म होता है।

११. भगवान् बुद्ध का पुनर्जन्म से यही अभिप्राय था।

१२. इन भौतिक पदार्थों के लिये यही आवश्यक नहीं है कि वे उसी शरीर के हों जिसका मरण हो चुका है, वे नाना भूत-शरीरों के भौतिक अंग हो सकते हैं।

१३. यही बात ध्यान देने की है कि शरीर का मरण होता है लेकिन भौतिक पदार्थ बने रहते हैं।

१४. भगवान् बुद्ध इसी प्रकार के पुनर्जन्म को मानते थे।

१५. सारिपुत्र ने महाकोट्टित के साथ जो बातचीत की उसमें इस विषय पर बहुत प्रकाश पड़ा है।

१६. लिखा है कि एक समय जब भगवान् बुद्ध धावस्ती में अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में गये थे, तो महाकोट्टित ध्यान कर चुकने पर सारिपुत्र के पास गये और उनसे कुछ ऐसे प्रश्नों को स्पष्ट कर देने की प्रार्थना की जो उन्हें हैरान कर रहे थे।

१७. उन प्रश्नों में एक यह था :—

१८. “प्रथम-ध्यान की प्राप्ति होने पर कितने संयोजनों का प्रहाण होता है और प्रथम-ध्यान में कौन-कौन से अंग शेष रहते हैं ?”

१९. सारिपुत्र का उत्तर था—“दोनों के पाँच-पाँच। कामच्छन्द, व्यापाद, धीनमिद (= जालस्य), उदच्च-कौकप तथा विचिकित्सा का प्रहाण हो जाता है। वितर्क, विचार, प्रीति, मुख तथा एकाग्रता शेष रहते हैं।”

२०. महाकोट्टित—“वक्षु, श्रोत, घ्राण, जिह्वा और स्पर्श—इन पाँचों इन्द्रियों को मैं। प्रत्येक का विषय पृथक् है, क्षेत्र पृथक् है; प्रत्येक एक दूसरी इन्द्रिय से पृथक्-पृथक् है और स्पष्ट रूप से पृथक् है। इनका अन्तिम आधार क्या है ? कौन है जो पाँचों इन्द्रियों के विषयों और क्षेत्रों का उपभोग करता है ?”

२१. सारिपुत्र—“मन।”

२२. महाकोट्टित—“ये पाँचों इन्द्रियाँ किस पर निर्भर करती हैं ?”

२३. सारिपुत्र—“चेतना (= जीवित इन्द्रिय) पर।”

२४. महाकोट्टित—“चेतना किस पर निर्भर करती है ?”

२५. सारिपुत्र—“ऋणता पर।”

२६. महाकोट्टित—“ऋणता किस पर निर्भर करती है ?”

२७. सारिपुत्र—“चेतना पर।”

२८. महाकोट्टित—“आप कहते हैं कि चेतना ऋणता पर निर्भर करती है और ऋणता चेतना पर निर्भर करती है। इसका ठीक-ठीक क्या अर्थ समझा जाय ?”

२९. सारिपुत्र—“एक उदाहरण द्वारा समझाता हूँ। जैसे प्रदीप के प्रकाश से प्रदीप की लौ प्रकट होती है और प्रदीप की लौ से प्रदीप का प्रकाश प्रकट होता है, उसी प्रकार चेतना ऋणता पर निर्भर करती है, और ऋणता चेतना पर निर्भर करती है।”

३०. महाकोट्टित—“ऐसी कितनी चीजें हैं जिनसे मुक्त होने पर ही शरीर मरा हुआ समझा जाकर सूखे काठ की तरह फँक दिया जाता है ?”

३१. सारिपुत्र—“जीवित-इन्द्रिय, ऋणता और विज्ञान।”

३२. महाकोटिठ—‘मृत देह में और उस ध्यानी भिक्षु में जिसने संज्ञा और वेदना का निरोध कर रखा है, क्या अन्तर है?’

३३. सारिपुत्र—‘मृत देह में न केवल शरीर, वाणी और मन की क्रिया शान्त हो जाती है, बल्कि चेतना (= जीवित-इन्द्रिय) भी नहीं रहती, ऊष्णता भी नहीं रहती तथा इन्द्रियों का भी मूलोच्छेद हो जाता है; जबकि ध्यानी भिक्षु की चेतना बनी रहती है, ऊष्णता बनी रहती है तथा इन्द्रियाँ भी बनी रहती हैं; हाँ श्वास-प्रश्वास बंद हो जाता है, इन्द्रियों की वितर्क-विचार, संज्ञा आदि क्रियाएँ शान्त हो जाती हैं।’

३४. सम्भवतः यह मृत्यु या उच्छेद की सर्वाधिक श्रेष्ठ तथा सर्वाधिक सम्पूर्ण व्याख्या है।

३५. इस संवाद में केवल एक कड़ी की कमी है। महाकोटिठ को चाहिये था कि वह सारिपुत्र से यह भी पूछते कि ‘ऊष्णता’ से क्या मतलब है?

३६. सारिपुत्र ने क्या उत्तर दिया होता, इसकी कल्पना आसान नहीं। लेकिन इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि ‘ऊष्णता’ का मतलब है ‘शक्ति’।

३७. इस तरह से यदि उत्तर को थोड़ा अधिक स्पष्ट कर दिया जाय तो इस प्रश्न का कि मरने पर क्या होता है, यही उत्तर हो सकता है कि शरीर शक्ति उत्पन्न करना बन्द कर देता है।

३८. लेकिन, यह तो केवल उत्तर का एक हिस्सा ही है। क्योंकि मृत्यु का एक मतलब यह भी है कि शरीर में से जो शक्ति निकल कर गई है, वह उस सारे शक्ति-समूह के साथ मिलकर एक हो गई है जो विश्व में संचार कर रहा है।

३९. इसलिये मृत्यु के दो अर्थ हैं। एक ओर तो इसका अर्थ है कि नई शक्ति की उत्पत्ति रुक जाना, दूसरी ओर इसका अर्थ है कि विश्व में जो शक्ति-युग्म संचरण कर रहा है उसमें कुछ बूढ़ हो जाना।

४०. सम्भवतः मृत्यु के इन दोनों पहलुओं के ही कारण भगवान् बुद्ध ने कहा कि वे ‘उच्छेदवादी’ नहीं थे। जहाँ तक ‘आत्मा’ की बात है, वे उच्छेदवादी थे। किन्तु जहाँ ‘(नाम-) रूप’ की बात है वे उच्छेदवादी नहीं थे।

४१. इस व्याख्या को स्वीकार कर लेने पर यह समझना कठिन नहीं है कि भगवान् बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा कि वे ‘उच्छेदवादी’ नहीं हैं। वे (नाम-) रूप की पुनर्त्पत्ति में विश्वास रखते थे, ‘आत्मा’ के पुनर्जन्म में नहीं।

४२. इस प्रकार व्याख्यात होने पर भगवान् बुद्ध का मत वर्तमान विज्ञान के सर्वथा अनुकूल है।

४३. केवल इसी अर्थ में कहा जा सकता है कि भगवान् बुद्ध पुनर्जन्म में विश्वास रखते थे।

४४. शक्ति कभी ‘शून्य’ में परिणित नहीं होती। विज्ञान का यह पक्का सिद्धान्त

है। यदि 'मृत्यु' का यह अर्थ किया जाय कि मृत्यु के अनन्तर कुछ नहीं रहता, तो यह बात विज्ञान के विरुद्ध होगी। क्योंकि इसका मतलब यह होगा कि सामूहिक रूप से शक्ति में सातत्य नहीं है।

४५. यही एक ऐसा तरीका है जिससे पुनर्जन्म सम्बन्धी दुविधा का अंत हो सकता है।

३. पुनर्जन्म किस (व्यक्ति) का ?

१. सबसे कठिन प्रश्न है पुनर्जन्म किस (व्यक्ति) का ?

२. क्या वही मरा हुआ आदमी एक नया जन्म ग्रहण करता है ?

३. क्या भगवान् बुद्ध इस सिद्धान्त को मानते थे ?

उत्तर है, "इसकी कम से कम सम्भावना है।"

४. यदि मृत आदमी के देह के सभी भौतिक-अंश पुनः नये सिरे से मिलकर एक नये शरीर का निर्माण कर सकें, तभी यह मानना सम्भव है कि उसी आदमी का पुनर्जन्म हुआ।

५. यदि भिन्न भिन्न मृत शरीरों के अंशों के मेल से एक नया शरीर बना तो यह पुनर्जन्म तो हुआ, लेकिन यह उसी आदमी का पुनर्जन्म नहीं हुआ।

६. भिक्षुणी शेमा ने राजा प्रसेनजित् को यह बात अच्छी तरह समझा दी थी।^१

७. एक बार तत्काल आवस्ती के पास अनाथपिण्डक के जेतवनाराम विहार में ठहरे हुए थे।

८. अब उस समय कोशल जनपद में चारिका कर चुकने के अनन्तर भिक्षुणी शेमा आवस्ती और साकेत के बीच तोरणवत्यु नामक स्थल पर ठहरी हुई थी।

९. उस समय कोशल-नरेश प्रसेनजित् साकेत से आवस्ती जा रहा था। साकेत और आवस्ती के रास्ते में वह एक रात के लिये तोरणवत्यु में रुका।

१०. कोशल-नरेश राजा प्रसेनजित् ने एक आदमी को बुलाकर कहा—“अरे भले आदमी! किसी श्रमण-ब्राह्मण का पता लगा जिसकी हम आज दिन संगति कर सकें।”

११. “महाराज! बहुत अच्छा” उस आदमी ने कहा। वह सारी तोरणवत्यु में घूमा किन्तु उसे एक भी श्रमण-ब्राह्मण ऐसा नहीं मिला, जिसकी महाराज संगति कर सकें।

१२. तब उस आदमी ने भिक्षुणी शेमा को देखा, जो तोरणवत्यु में ठहरी हुई थी। उसे देखकर वह कोशल-नरेश प्रसेनजित् के पास वापस गया और बोला—

१३. “महाराज! तोरणवत्यु में कोई ऐसा श्रमण-ब्राह्मण नहीं है जिसकी आप संगति कर सकें। लेकिन महाराज! भिक्षुणी शेमा नाम की तत्काल की एक शिष्या है। उसकी क्वालि सुनी है कि वह अर्हंत है, योग्य है, कुशल है, पण्डित है,

बात-चीत में पटु है और प्रत्युत्पन्न-मति है। महाराज ! आज दिन आप उसकी संगति करें।”

१४. तब कोशल-नरेश राजा प्रसेनजित् भिक्षुणी सेमा के पास गया। पास जाकर अभिवादन किया और एक ओर बैठ गया। बैठकर उसने भिक्षुणी सेमा से कहा—

१५. “आपका इस विषय में क्या कहना है ? क्या तथागत मरणानन्तर रहते हैं ?”

१६. “महाराज ! यह बात भी तथागत द्वारा अव्याकृत ही है।”

१७. “तो यह कैसी बात है कि जब मैं पूछता हूँ कि क्या तथागत मरणानन्तर रहते हैं, तो आपका उत्तर होता है कि यह बात भी तथागत ने अव्याकृत रखी है, और जब मैं दूसरे प्रश्न पूछता हूँ तब भी आपका यही उत्तर होता है कि यह बात भी तथागत ने अव्याकृत रखी है। कृपया, यह बतायें कि क्या हेतु है, क्या कारण है कि तथागत ने यह बात अव्याकृत रखी है ?”

१८. “महाराज ! अब मैं आपसे एक प्रश्न पूछती हूँ। जैसा आपको लगे, वैसा उत्तर देना। अब आप क्या कहते हैं ? क्या आपके पास कोई गणक, कोई हिसाब लगाकर बता सकने वाला है जो हिसाब लगाकर बता सके कि गंगा में इतने सौ, इतने हजार वा इतने लाख बालू के कण हैं ?”

१९. “नहीं।”

२०. “तो कोई ऐसा गणक है, जो ऐसा हिसाब लगाकर बता सकने वाला है जो यह बता सके कि समुद्र में इतना जल है, इतने सौ (गैलन) है, इतने हजार (गैलन) हैं या इतने लाख (गैलन) है ?”

२१. “नहीं।”

२२. “तो यह कैसे है ?”

२३. “समुद्र असीम है, बहुत गहरा है इसके तल तक नहीं पहुँचा जा सकता।”

२४. “इसी प्रकार महाराज ! यदि कोई तथागत के रूप से तथागत को मापना चाहे, तो तथागत का वह रूप परित्यक्त है, वह जड़मूल से कट चुका है, वह कटे ताड़-वृक्ष की तरह हो गया है, वह अनाव प्राप्त हो गया है और अब उसकी पुनरुत्पत्ति की सम्भावना नहीं रही है। महाराज ! तथागत के रूप से तथागत की तह तक नहीं पहुँचा जा सकता। तथागत गम्भीर है, तथागत असीम है और तथागत की तह तक नहीं पहुँचा जा सकता, ठीक वैसे ही जैसे समुद्र की। इसीलिये यह भी नहीं कहा जा सकता कि ‘तथागत मरणानन्तर रहते हैं।’ यह भी नहीं कहा जा सकता कि ‘तथागत मरणानन्तर नहीं रहते।’ यह भी नहीं कहा जा सकता कि ‘तथागत रहते भी हैं और नहीं भी रहते’ और यह भी नहीं कहा जा सकता कि ‘तथागत नहीं रहते हैं और नहीं नहीं भी रहते हैं।’

२५. "इसी प्रकार महाराज ! यदि कोई तषागत की वेदना से तषागत को मापना चाहे, तो तषागत को वह वेदना परित्यक्त है, वह जड़मूल से कट चुका है, वह कटे ताड़-बूझ की तरह हो गयी है" सम्भावना नहीं रही है। महाराज ! तषागत की वेदना से तषागत की वह तक नहीं जैसे समुद्र की। इसलिये यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'तषागत मरणानन्तर रहते हैं'—नहीं नहीं भी रहते हैं।"

२६. इसी प्रकार महाराज ! यदि कोई तषागत की संज्ञा से, तषागत के संस्कारों से, तषागत के विज्ञान से तषागत को मापना चाहे, तो तषागत का वह विज्ञान परित्यक्त है, वह जड़मूल से कट चुका है, वह कटे ताड़-बूझ की तरह हो गया है" सम्भावना नहीं रही है। महाराज ! तषागत के विज्ञान से तषागत की वह तक नहीं जैसे समुद्र की। इसलिये यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'तषागत मरणानन्तर रहते हैं'—नहीं नहीं भी रहते हैं।"

२७. तब राजा प्रसेनजित् भिक्षुणी शेमा के शब्दों से प्रसन्न हुआ, आह्लादित हुआ। वह अपने स्थान से उठा, उसे अभिवादन किया और चला गया।

२८. अब एक ओर अवसर पर राजा प्रसेनजित् तषागत के दर्शनार्थ गया। पास पहुँचकर अभिवादन किया और एक ओर बैठ गया। उसने तषागत से निवेदन किया—

२९. "भगवान् ! कृपया बतायें कि क्या तषागत मरणानन्तर रहते हैं ?"

३०. "महाराज ! मैंने इस बात को अव्यक्त रखा है।"

३१. "भगवान् ! तो क्या तषागत मरणानन्तर नहीं रहते हैं ?"

३२. "महाराज ! यह भी मैंने अव्यक्त रखा है।"

३३. तब राजा ने ऐसे ही दूसरे प्रश्न पूछे और सभी का ऐसा ही उत्तर मिला।

३४. "भगवान् ! यह कैसे है, जब मैं पूछता हूँ कि क्या तषागत मरणानन्तर रहते हैं, तो आपका उत्तर होता है कि यह बात तषागत द्वारा अव्याकृत है; और जब मैं यह पूछता हूँ कि क्या तषागत मरणानन्तर नहीं रहते तो भी आपका उत्तर है कि यह बात तषागत द्वारा अव्याकृत है। भगवान् ! कृपया यह बतायें कि क्या हेतु है, क्या कारण है कि यह बात भी तषागत ने अव्याकृत रखी है ?"

३५. "तो महाराज ! मैं आपसे प्रश्न पूछता हूँ, जैसा आपको ठीक लगे वैसा उत्तर देना। क्या आपके पास कोई गणक है" (सारा पूर्ववत्) ?"

३६. "अद्भुत है गौतम ! अद्भुत है सुगत ! यह कितने बड़े आश्चर्य की बात है कि शास्ता और आधिका के उत्तर में न अर्थ की दृष्टि से और न व्यञ्जन की दृष्टि से, कहीं कुछ भी अन्तर नहीं। एकदम समान उत्तर है, एकदम मेत खाता हुआ उत्तर है, उच्चतम बात के बारे में।

३७. "भगवान् ! एक समय मैं भिक्षुणी शेमा के पास गया और उससे यही

प्रबल पूछा। उसने मुझे ठीक इन्हीं शब्दों में, ठीक इन्हीं अक्षरों में उत्तर दिया। अद्भुत है गौतम ! अद्भुत है सुगत ! यह कितने बड़े आश्चर्य की बात है कि शास्ता और श्राविका के उत्तर में न अर्थ की दृष्टि से और न व्यंजन की दृष्टि से कहीं कुछ भी अन्तर नहीं। एकदम समान उत्तर है, एकदम मेल खाता हुआ उत्तर है, उच्चतम बात के बारे में।

३८. "अच्छा ! भगवान् ! अब आज्ञा दें। हम जाना चाहते हैं। हमें बहुत कार्य है।"

३९. "महाराज ! इस समय आप जो करना उचित समझें वह करें।"

४०. तब कोसल-नरेश राजा प्रसेनजित् तथगत के वचनों से प्रसन्न हुआ आल्हादित हुआ। वह अपने स्थान से उठा और तथगत को अभिवादन पर चला गया।

कर्म

१. क्या 'बुद्ध' का 'कर्म' का सिद्धान्त ब्राह्मणी 'कर्म' के सिद्धान्त के समान ही है ?

१. बुद्धधर्म का कोई भी दूसरा ऐसा सिद्धान्त नहीं है जिसने इतनी 'गलत-फहमी' पैदा की हो, जितनी इस 'कर्म' के सिद्धान्त ने।

२. बुद्धधर्म में 'कर्म' का क्या स्थान है और क्या वास्तविक महत्व है ?

३. अज्ञ हिन्दु वेसमझी के ही कारण केवल शब्दों की समानता की ओर देखकर कहते हैं कि ब्राह्मणवाद वा हिन्दू-धर्म तथा बौद्धधर्म एक ही हैं।

४. ब्राह्मणों का पढ़ा-लिखा और कट्टर वर्ग भी यही कहता है। वह अज्ञ जनता को गलत रास्ते पर ले चलने के लिये जान-बूझकर कहता है।

५. पढ़े-लिखे ब्राह्मण भली प्रकार जानते हैं कि बुद्ध का 'कर्म' का सिद्धान्त ब्राह्मणी 'कर्म' के सिद्धान्त से सर्वथा भिन्न है। लेकिन तब भी वे यही कहे जाते हैं कि बुद्ध-धर्म यही है जो ब्राह्मणवाद वा हिन्दू-धर्म है।

६. शब्दों की समानता के कारण उनको अपना झूठा तथा दुष्ट प्रचार करने में आसानी हो जाती है।

७. इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि स्थिति की पूर्ण परीक्षा की जाय।

८. भगवान् बुद्ध का 'कर्म' का सिद्धान्त—शाब्दिक समानता कितनी ही हो—अपने अर्थ में ब्राह्मणी 'कर्म' के सिद्धान्त के समान हो ही नहीं सकता।

९. दोनों की मूल स्थापनामें एक दूसरे से परस्पर इतनी अधिक भिन्न है कि परिणाम एक हो ही नहीं सकता। दोनों के दो भिन्न परिणाम होने ही चाहिये।"

१०. सुविधा के लिये 'हिन्दू 'कर्म' की मान्यताओं को क्रमशः इस प्रकार मिला जा सकता है :—

११. हिन्दू 'कर्म' का सिद्धान्त 'आत्मा' की मान्यता पर निर्भर करता है। बौद्ध नहीं। क्योंकि बौद्ध धर्म में तो 'आत्मा' है ही नहीं।

१२. ब्राह्मणी 'कर्म' का सिद्धान्त वंशानुगत है।

१३. यह एक जन्म से दूसरे जन्म तक चलता रहता है। यह इसलिये क्योंकि 'आत्मा' का संवरण होता है।

१४. 'कर्म' के बौद्ध-सिद्धान्त के बारे में यह भी बात सत्य नहीं है। यह भी इसलिये कि बौद्धधर्म में 'आत्मा' नहीं है।

१५. 'कर्म' का हिन्दू-सिद्धान्त शरीर से पृथक् एक 'आत्मा' पर आधारित है। शरीर मरता है, तो 'आत्मा' उसके साथ नहीं मरता। 'आत्मा' फुरें से उड़ जाता है।

१६. 'कर्म' के बौद्ध-सिद्धान्त के बारे में यह बात भी सत्य नहीं है।

१७. 'कर्म' के हिन्दू-सिद्धान्त के अनुसार जब आदमी कोई कर्म करता है तो उसके 'कर्म' के दो परिणाम होते हैं। एक तो उस 'कर्म' से वह करने वाला प्रभावित होता है, दूसरे उस 'कर्म' का उसके 'आत्मा' पर प्रभाव पड़ता है।

१८. वह जो भी 'कर्म' करता है, उसके 'आत्मा' पर उसका प्रभाव पड़ता ही है।

१९. जब आदमी मरता है, और जब 'आत्मा' उसका शरीर छोड़ कर निकल भागती है (या निकल भागता है) तो 'आत्मा' उन संस्कारों से संस्कृत रहता है।

२०. यह संस्कार ही हैं जो उसके भावी जन्म और स्थिति का निर्णय करते हैं।

२१. हिन्दू 'आत्मवाद' का बौद्ध 'अनात्मवाद' से कुछ भी मेल नहीं।

२२. इन कारणों से 'कर्म' का बौद्ध-सिद्धान्त और 'कर्म' का हिन्दू-सिद्धान्त न एक है और न एक हो सकता है।

२३. इसलिये 'कर्म' के बौद्ध-सिद्धान्त और 'कर्म' के ब्राह्मणी-सिद्धान्त को एक ही बताना महज मूर्खता है।

२४. अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि इस आध्मिक माया-जाल से सावधान रहना चाहिये।

२. क्या भगवान् बुद्ध यह मानते थे कि पूर्व-कर्म का भविष्य-जन्म पर प्रभाव पड़ता है ?

१. भगवान् बुद्ध ने 'कर्म' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। सर्वप्रथम उन्होंने ही कहा था : "जैसा बोओगे, वैसा काटोगे।"

२. उन्होंने 'कर्म' के सिद्धान्त पर इतना अधिक जोर दिया है कि उनका कहना

या कि यदि 'कर्म' के सिद्धान्त को दृढ़ता पूर्वक न माना जाय तो नैतिक-अनुशासन निभ ही नहीं सकता ।

३. बुद्ध के कर्म के सिद्धान्त का सम्बन्ध मात्र 'कर्म' से या और वह भी वर्तमान जन्म के 'कर्म' से ।

४. तो 'कर्म' का एक वृद्धि-प्राप्त सिद्धान्त भी है । इसके अनुसार 'कर्म' का मतलब है पूर्वजन्म का 'कर्म' अथवा पूर्व-जन्मों के 'कर्म' ।

५. यदि आदमी का जन्म गरीब परिवार में हुआ है तो यह उसके पूर्वजन्म के बुरे कर्म का परिणाम है । यदि एक आदमी धनी घर में पैदा हुआ है तो यह उसके पूर्वजन्म के अच्छे कर्मों का परिणाम है ।

६. यदि किसी में कोई जन्म-जात दोष है तो इसका कारण उसके पूर्वजन्म का बुरा कर्म है ।

७. यह एक बड़ा ही सस्तरमाक सिद्धान्त है । क्योंकि यदि 'कर्म' की यह व्याख्या स्वीकार कर ली जाय तो मानव-प्रयास के लिये कहीं कुछ गुंजायमान नहीं रह जाती । पूर्वजन्म के कर्म से ही सभी कुछ पूर्व-निश्चित रहता है ।

८. यह वृद्धि-प्राप्त सिद्धान्त भी बहुधा भगवान् बुद्ध के सिर मड़ दिया गया है ।

९. क्या भगवान् बुद्ध ऐसे सिद्धान्त को मानते थे ?

१०. इस वृद्धि-प्राप्त सिद्धान्त की भली प्रकार परीक्षा करने के लिये, जिस भाषा में इसका प्रायः उल्लेख किया जाता है, उसमें थोड़ा परिवर्तन कर देना होगा ।

११. यह कहने की जगह कि पूर्वजन्म के 'कर्म' का संसरण होता है, हम यह कहें कि पूर्वजन्म का 'कर्म' बंश-परम्परा से प्राप्त होता है ।

१२. इस भाषा के परिवर्तन से हम 'बंशपरम्परा' के कानून के अनुसार इसकी परीक्षा कर सकते हैं । ऐसा करने से न इसके कानूनी अर्थ में ही कोई अन्तर आता है और न वास्तविक अर्थ में ।

१३. इस भाषा के परिवर्तन से दो ऐसे प्रश्न हैं जो आसानी से पूछे जा सकते हैं और जो कदाचित् अन्यथा न पूछे जा सकते और जिनका बिना उत्तर दिये बात स्पष्ट नहीं होती ।

१४. पहला प्रश्न यह है कि पूर्वजन्म का कर्म बंशानुगत-क्रम से कैसे प्राप्त होता है ? उसकी क्या विधि है ?

१५. दूसरा प्रश्न है कि बंशानुगत-क्रम के हिसाब से पूर्व-जन्म के उस कर्म की अपनी स्थिति क्या है ? क्या यह बंशानुगत क्रम से प्राप्त कोई 'गुण' है, अथवा स्वयं अर्जित किया हुआ कोई 'गुण' है ?

१६. बंशानुगत क्रम के हिसाब से हमें अपने माता-पिता से क्या प्राप्त होता है ?

१७. विज्ञान के अनुसार सोचें तो नये प्राणी का आरम्भ उस समय से होता है जब बीर्य और रज का संयोग होता है। प्राणी की उत्पत्ति तभी होती है जब बीर्य-कण रज-कण में प्रवेश करता है।

१८. हर मानव का अधिष्ठाण तभी होता है जब दो जीवित कण मिलकर एक होते हैं—माता का रज-कण और पिता का बीर्य-कण।

१९. इस विषय की बर्चा करने के लिये जो यक्ष, भगवान् बुद्ध के पास आया था, उसे भगवान् बुद्ध ने कहा था कि आदमी की उत्पत्ति माता-पिता पर निर्भर करती है।^१

२०. उस समय भगवान् बुद्ध राजगृह में इन्द्रकूट पर्वत पर ठहरे हुए थे।

२१. तब एक यक्ष, भगवान् बुद्ध के पास आया और उसने उन्हें इस प्रकार सम्बोधित किया :—

“आपका कहना है

कि केवल ‘कण’ जीव नहीं है,

तो जीव सशरीर कैसे होता है ?

जीव को यह हृदयों और आतों का डेर कैसे प्राप्त होता है ?

माता के गर्भ में जीव किस प्रकार लटकता रहता है ?”

२२. इसका तत्पात ने उत्तर दिया :—

सर्वप्रथम कलस होता है,

तब अर्बुद होता है,

तब पेशी होती है,

तब घन होता है,

और घन में ही बाल और नाखून आदि उत्पन्न होते हैं और माँ जो कुछ भी खाना-पीना खाती है, उससे बालक माँ के गर्भ में बढ़ता है।

२३. हिन्दु सिद्धान्त इससे सर्वथा भिन्न है।

२४. इसका कहना है कि शरीर तो वंशानुगत अथवा माता-पिता से प्राप्त है। किन्तु ‘आत्मा’ नहीं। यह शरीर में बाहर से प्रवेश करती है या करता है। कहाँ से ?—यह बात इस सिद्धान्त में स्पष्ट नहीं की गई है।

२५. दूसरा प्रश्न है कि पूर्वजन्म के उस कर्म की अपनी स्थिति क्या है ? क्या यह वंशानुगत क्रम से प्राप्त कोई ‘गुण’ है अथवा स्वयं अर्जित किया हुआ कोई ‘गुण’ है ?

२६. जब तक इस प्रश्न का उत्तर न मिले तब तक वंशानुक्रम के वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार इसका परीक्षण नहीं हो सकता।

२७. लेकिन यदि मान भी लिया जाय कि इस प्रश्न का उत्तर या उधर कुछ भी उत्तर सम्भव है, तो भी हम विज्ञान की सहायता से यह कैसे निर्णय कर सकते हैं कि यह सिद्धान्त कुछ बुद्धिसंगत है अथवा एकदम भूर्वैतापूर्ण ?

२८. विज्ञान के अनुसार बालक बंश-परम्परा से अपने माता-पिता के गुण प्राप्त करता है।

२९. 'कर्म' के हिन्दु सिद्धान्त के अनुसार अपने माता-पिता से शरीर के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्राप्त करता। 'कर्म' के हिन्दु सिद्धान्त के अनुसार बालक का पूर्व-कर्म उसका अपना किया हुआ 'कर्म' है, और वह उसे अपने द्वारा ही, अपने लिये ही स्वयं करता है।

३०. माता-पिता बालक को कुछ नहीं देते। बालक ही सब कुछ साथ लेकर जाता है।

३१. इस तरह का सिद्धान्त बेहूदगी से कम कुछ नहीं है।

३२. जैसे ऊपर दिखाया गया है, भगवान् बुद्ध इस प्रकार की बेहूदगी में विश्वास नहीं करते थे।

[इसकी चर्चा चलने पर कि क्या जादमी अपने भले-बुरे कर्मों के परिणाम से मुक्त हो जाता है, स्वाविर नागसेन ने राजा मिलिन्द को उत्तर दिया था :—]

३३. "यदि पुनरुत्पत्ति न हो तो वह अपने कर्मों के फल से मुक्त हो जाता है, यदि हो, तो नहीं।"

३४. राजा मिलिन्द ने कहा—"मुझे एक उदाहरण दें।"

३५. "राजन् ! उदाहरण के लिये एक जादमी किसी के आम चुराये, तो क्या चोर दण्ड का अधिकारी होगा ?

३६. "हाँ ?"

३७. "लेकिन जो आम (के बीज) उसने जमीन में बोये थे, वे तो उसने चुराये नहीं, तब उसे दण्ड क्यों मिले ?"

३८. "क्योंकि जो उसने चुराये वे उन्हीं से से उत्पन्न हुए थे, जो जमीन में बोये गये थे।"

३९. "ठीक इसी प्रकार यह नाम-रूप कर्म करता है—भले या बुरे—और उस कर्म से दूसरा नाम-रूप जन्म ग्रहण करता है। इसीलिये वह अपने कर्म के फल से मुक्त नहीं होता।"

४०. "नागसेन ! बहुत अच्छा।"

४१. तब फिर राजा मिलिन्द ने पूछा—"नागसेन ! जब एक नाम-रूप से कार्य किसे जाते हैं तो उन कार्यों का क्या होता है ?"

४२. "राजन् ! वे कर्म छाया की तरह पीछा करते रहेंगे।"

४३. "क्या कोई उन कर्मों में बारे में बता सकता है कि वे कर्म यहां हैं थपका वहां हैं ?"

४४. "नहीं !"

४५. "मुझे एक उपमा दें।"

४६. "तो हे राजन् ! क्या कोई किसी वृक्ष के उन फलों को दिखा सकता है और यह बता सकता है कि :—

४७. "ये यहाँ हैं अथवा वहाँ हैं ?"

४८. "निश्चय से नहीं !"

४९. "इसी प्रकार राजन् ! जब तक जीवन-स्रोत का उच्छेद नहीं होता तब तक कृत-कर्मों को बता सकना असम्भव है ।"

६०. "नागसेन ! बहुत अच्छा ।"

३. क्या भगवान् बुद्ध यह मानते थे कि पूर्व कर्मों का भविष्य-जन्मों पर प्रभाव पड़ता है ?

(२)

१. इस तरह से भगवान् बुद्ध का पूर्व-कर्म का सिद्धान्त विज्ञान से बेमेल नहीं है ।

२. भगवान् बुद्ध पूर्व-जन्मों के कर्मों के संसरण में विश्वास नहीं करते थे ।

३. जब वे यह मानते थे कि जन्म माता-पिता से प्रदत्त होता है और बालक में जो कुछ भी गुण-दोष होते हैं वह वंशानुगत क्रम से माता-पिता के माध्यम से ही प्राप्त होते हैं, तो वे कर्मों के संसरण में विश्वास ही कैसे कर सकते थे ?

४. तर्क के अतिरिक्त इस बात का सीधा प्रमाण भी उस सूक्त में विद्यमान है जो 'चूल-पुक्ख-खम्भ-सूक्त' * कहलाता है और जिसमें भगवान् बुद्ध तथा जैनों की बातचीत का वर्णन है ।

५. इस संवाद में भगवान् बुद्ध ने कहा :—"निगण्ठों ! तुम्हारा यही कहना है न कि हमें यह शिक्षा अच्छी लगती है और कि हम इसे मानते हैं कि हमने पूर्व जन्म में जो पाप-कर्म किया है, उसे हम इन कठोर तपस्याओं द्वारा समाप्त करते हैं । शरीर, बाणों और मन का वर्तमान संघम पूर्व-जन्म के पाप-कर्मों को समाप्त कर देगा । इस प्रकार तपस्या द्वारा अपने पुराने सभी पाप-कर्मों को समाप्त कर देने से और नये पाप-कर्म न करने से भविष्य स्वच्छ हो जाता है, भविष्य के स्वच्छ हो जाने के साथ पूर्व भी साफ हो जाता है; पूर्व के साफ हो जाने के साथ दुःख नहीं रहता; दुःख न रहने से दुःखद वेदना नहीं रहती; और अब दुःखद वेदनाओं के एकदम न रहने से समस्त दुःख का ही क्षय हो जाता है ?"

६. उन निगण्ठों के 'हाँ' करने पर मैंने कहा कि "क्या तुम जानते हो कि इससे पूर्व तुम्हारा पूर्व-जन्म था, और यह जानते हो कि ऐसा नहीं था कि तुम्हारा पूर्व-जन्म न हो ?"

७. "नहीं जानते ।"

८. "क्या तुम जानते हो कि अपने पूर्व-जन्म में तुम निश्चयात्मक रूप से सद्योप थे; तुम यह जानते हो कि तुम निर्दोष नहीं थे?"

९. "नहीं!"

१०. "क्या तुम जानते हो कि उस पूर्व-जन्म में तुमने अमुक पाप-कर्म किया था या नहीं किया था?"

११. "नहीं!"

१२. अब भगवान् बुद्ध यह भी जोर देकर कहते हैं कि एक आदमी की स्थिति उसके वंशपरम्परागत जागत गुणों पर उतनी निर्भर नहीं करती, जितनी उसकी परिस्थिति पर निर्भर करती है।"

१३. भगवान् बुद्ध ने देवदह-मुत्त^५ में कहा है:—"कुछ श्रमण-ब्राह्मणों का मत है कि जो कुछ भी आदमी भूगतता है, यह सब उसके पूर्व जन्मों के कर्मों का परिणाम है—चाहे सुख हो, चाहे दुःख हो, चाहे अदुःख हो। इसलिये (उनका कहना है) कि पूर्व-कर्मों की निजरा द्वारा और नये अशुभ कर्मों से विरत रहने से पाप-कर्मों का क्षय हो जाता है, जब पाप-कर्मों का क्षय हो जाता है तो दुःख का क्षय हो जाता है; जब दुःख का क्षय हो जाता है (दुःखद) वेदनाओं का क्षय हो जाता है; और जब वेदनाओं का क्षय हो जायगा तो तमाम दुःख का समूल उच्छेद हो जायगा।" यह निगण्ठी (= जनों) का मत है।

१४. "यदि प्राणिमों के (पूर्व-) जन्म की परिस्थिति उनके दुःख-सुख भोगने का कारण है तब भी निगण्ठी यहाँ के भाज्य हैं; यदि परिस्थिति कारण नहीं है तब भी वे यहाँ के भाज्य हैं।"

१५. भगवान् बुद्ध के ये वचन प्रस्तुत विषय से सम्बन्धित हैं। यदि भगवान् बुद्ध पूर्व-कर्म में विश्वास रखते तो वे यहाँ इस समय पूर्व-कर्म के बारे में सन्देह क्यों प्रकाशित करते? और यदि भगवान् बुद्ध यह मानते कि सुख-दुःख पूर्व-जन्म का परिणाम है तो वे यह क्यों कहते कि वर्तमान जीवन का सुख-दुःख परिस्थिति का परिणाम होता है।

१६. पूर्व-कर्म (सुख-दुःख का कारण होते हैं) का सिद्धान्त शुद्ध ब्राह्मणी सिद्धान्त है। पूर्व-कर्म का वर्तमान जीवन पर प्रभाव पड़े—इसका ब्राह्मणी 'आत्मा' के सिद्धान्त से पूर्णतया मेल बैठता है, क्योंकि वे मानते हैं कि 'कर्म' का 'आत्मा' पर प्रभाव पड़ता है। लेकिन बुद्ध-धर्म के 'अनात्मवाद' से इसका किसी भी तरह मेल नहीं बैठ सकता।

१७. लगता है कि यह सारा का सारा (वाद के) बौद्धधर्म में प्रक्षिप्त कर दिया गया है—या तो किसी ऐसे द्वारा जो बौद्धधर्म को हिन्दु धर्म सदन ही बनाना चाहता था, या किसी ऐसे द्वारा जो मध्याह्न बुद्ध-धर्म से अपरिचित था।

१८. यह एक कारण है जिससे यह मानना चाहिये कि बुद्ध ने कभी इस सिद्धान्त की देशना नहीं की होगी।

१९. एक दूसरा और अधिक सामान्य कारण भी है जिससे यह मानना चाहिये कि भगवान् बुद्ध कभी इस सिद्धान्त की देशना नहीं कर सकते थे।

२०. भारी-जन्म के संचालक के रूप में पूर्व-जन्म को स्वीकार करने के हिन्दु सिद्धान्त का आधार अन्यायपूर्ण है। इस प्रकार के सिद्धान्त का आविष्कार करने का आखिर क्या प्रयोजन हो सकता था ?

२१. इसका एक ही उद्देश्य हो सकता है कि राज्य अथवा समाज को गरीबों और दरिद्रों की दुरवस्था की जिम्मेदारी से संबंध मुक्त कर दिया जाए।

२२. अन्यथा इस प्रकार के अत्याचारपूर्ण तथा बेहूदा सिद्धान्त का कभी आविष्कार न होता।

२३. यह कल्पना कर सकता असम्भव है कि महाकारुणिक बुद्ध ने कभी इस प्रकार के सिद्धान्त का समर्थन किया हो।

अहिंसा

१. अहिंसा के नाना अर्थ और व्यवहार

१. अहिंसा अथवा जीव-हिंसा न करना बुद्ध की शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है।

२. इसका करुणा तथा मैत्री से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है।

३. तो भी प्रश्न है कि क्या अपने व्यवहार में भगवान् बुद्ध की अहिंसा सापेक्ष थी वा निरपेक्ष थी ? क्या यह एक शील मात्र थी अथवा एक नियम भी ?

४. जो लोग भगवान् बुद्ध के उपदेशों को मानते हैं उन्हें अहिंसा को एक निरपेक्ष बन्धन के रूप में स्वीकार करने में कठिनाई होती है। उनका कहना है कि ऐसी अहिंसा से बुराई के लिये भलाई का बलिदान हो जाता है अथवा दुर्गुण के लिये सद्गुण का।

५. इस प्रश्न को स्पष्ट करने की जरूरत है। यह 'अहिंसा' का प्रश्न सर्वाधिक गड़बड़ी पैदा करने वाला प्रश्न है।

६. बौद्ध देशों के लोगों ने अहिंसा को किस रूप में समझा है और किस प्रकार व्यवहार किया है ?

७. यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिसका विचार करना ही होगा।

८. सिंहाल के भिक्षु स्वयं लड़े और उन्होंने लोगों को विदेशी आक्रमण-कारियों के विरुद्ध लड़ने के लिये कहा।

९. दूसरी ओर बर्मा के भिक्षुओं ने विदेशी आक्रमणकारियों से लड़ने से इनकार किया और लोगों को भी न लड़ने के लिये कहा।

१०. वर्मा के लोग अण्डा खा लेते हैं, मछली नहीं ।^६

११. अहिंसा इसी प्रकार समझी जाती है और व्यवहार में आती है ।

१२. कुछ समय पूर्व जर्मन बौद्ध समिति ने एक प्रस्ताव पास किया कि वे पांच शीलों में से (जीव-हिंसा से विरत रहने के प्रथम शील को छोड़कर) शेष चार शीलों को ही स्वीकार करेंगे ।

१३. अहिंसा के सिद्धान्त को लेकर ऐसी स्थिति है ।

२. 'अहिंसा' का अर्थ

१. अहिंसा का क्या मतलब है ?

२. भगवान् बुद्ध ने कहीं भी 'अहिंसा' की परिभाषा नहीं की है । ठीक बात तो यह है कि उन्होंने बहुत ही कम अवसरों पर, निश्चित शब्दावलि में इस विषय की चर्चा की है ।

३. इसलिये यह आवश्यक है कि परिस्थितिजन्य साक्षी से ही भगवान् बुद्ध क्या चाहते थे, इसका पता लगाया जाय ।

४. पहली परिस्थितिजन्य साक्षी यह है कि यदि भिक्षा में मिले तो भगवान् बुद्ध को मांस ग्रहण करने पर कोई आपत्ति नहीं थी ।

५. यदि भिक्षु किसी प्रकार से भी किसी जानवर की हत्या से सम्बन्धित नहीं है, तो वह भिक्षा में प्राप्त मांस ग्रहण कर सकता है ।

६. भगवान् बुद्ध ने देवदत्त के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया जो चाहता था कि भिक्षा में दिये जाने पर भी भिक्षु मांसाहार ग्रहण न करें ।

७. इस विषय में यह भी एक साक्षी का ब्रज है कि वह मत्तों में (ही) पशु-हिंसा के विरोधी थे । यह उन्होंने स्वयं कहा है ।

८. 'अहिंसा परमो धर्मः' यह एक दूसरे सिरे पर पहुँचा हुआ सिद्धान्त है । यह एक जैन-सिद्धान्त है^७ । यह बौद्ध सिद्धान्त नहीं ।

९. एक और साक्षी है जो परिस्थितिजन्य साक्षी की अपेक्षा सीधी साक्षी है और जो एक प्रकार से "अहिंसा" की परिभाषा ही है । उन्होंने कहा है—“सबसे बेची करो, ताकि तुम्हें किसी प्राणी को मारने की आवश्यकता न पड़े ।” यह अहिंसा के सिद्धान्त के कहने का स्वीकारात्मक ढंग है ।

१०. इससे ऐसा लगता है कि 'अहिंसा' का बौद्ध सिद्धान्त यह नहीं कहता कि 'मारो नहीं' बल्कि यह कहता है कि "सभी प्राणियों से मैत्री रखो ।"

११. उक्त कथनों के प्रकाश में यह समझ सकना कठिन नहीं है कि 'अहिंसा' से भगवान् बुद्ध का क्या अभिप्राय था ?

१२. यह एकदम स्पष्ट है कि भगवान् बुद्ध 'जीव-हत्या करने की चेतना' और 'जीव-हत्या करने की आवश्यकता' में भेद करना चाहते थे ।

१३. जहाँ 'जीव-हत्या करने की आवश्यकता थी', वहाँ उन्होंने जीव-हत्या करना मना नहीं किया।

१४. उन्होंने बौद्ध जीव-हत्या को मना किया जहाँ केवल "जीव-हत्या की चेतना" है।

१५. इस तरह समझ लेने पर "अहिंसा" के बौद्ध सिद्धान्त में कहीं कुछ गड़बड़ी नहीं है।

१६. यह एक मोनह आने पक्का, स्थिर नैतिक सिद्धान्त है, जिसका हर किसी को आदर करना चाहिये।

१७. इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने इस बात का निर्णय व्यक्ति पर ही छोड़ दिया है कि 'जीव-हत्या की आवश्यकता' है या नहीं? व्यक्ति के अतिरिक्त और किस पर यह निर्णय छोड़ा भी जा सकता था? आदमी के पास प्रज्ञा है और उसे इसका उपयोग करना चाहिये।

१८. एक नैतिक आदमी पर यह भरोसा किया जा सकता है कि वह स विभाजक रेखा खींच सकेगा।

१९. ब्राह्मणी-धर्म में 'जीव-हिंसा करने की चेतना' है।

२०. जैन-धर्म में 'जीव-हिंसा न करने की चेतना' है।

२१. भगवान् बुद्ध का सिद्धान्त उनके मध्यम मार्ग के अनुरूप है।

२२. इसी बात को दूसरे शब्दों में कहा जाय तो भगवान् बुद्ध ने नीति (Principle) और विनय = नियम (rule) में भेद किया है। उन्होंने अहिंसा को नियम नहीं बनाया। उन्होंने इसे जीवन का एक पथ माना है।

२३. इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसा करके भगवान् बुद्ध ने बड़ी ही प्रज्ञा-सहगुण बात की है।

२४. एक नीति (Principle) तुम्हें कार्य करने के लिये स्वतन्त्र छोड़ता है। एक नियम (rule) स्वतन्त्र नहीं छोड़ता। या तो तुम नियम को तोड़ते हो, या नियम तुम्हें तोड़ डालता है।

संस्करण

१. आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना

१. भगवान् बुद्ध ने पुनर्जन्म की देशना की है। किन्तु भगवान् बुद्ध ने यह भी कहा है कि संस्करण नहीं है।

२. ऐसे लोगों की कमी नहीं थी जो भगवान् बुद्ध पर यह दोषारोपण करते थे कि वे दो परस्पर विरोधी सिद्धान्तों की देशना करते हैं।

३. आलोचक प्रश्न करते थे—बिना संस्करण के पुनर्जन्म ही ही कैसे सकता है?

४. वे कहते थे—यह बिना संसरण के पुनर्जन्म की बात है। भला क्या अभी यह सम्भव है ?

५. इसमें कहीं कुछ भी विरोध नहीं है। बिना संसरण के पुनर्जन्म हो सकता है।

६. राजा मिलिन्द के प्रश्नों के उत्तर में भदन्त नागसेन ने इसे अच्छी तरह समझा दिया है।^८

७. वैद्यटोरया-नरेण मिलिन्द ने स्वविर नागसेन से प्रश्न किया—“क्या भगवान् कुछ पुनर्जन्म (संसरण) मानते थे ?”

८. स्वविर नागसेन का उत्तर था—“हाँ”

९. “तो क्या इसमें परस्पर विरोध नहीं ?”

१०. नागसेन—“नहीं।”

११. “क्या बिना ‘आत्मा’ के पुनर्जन्म संभव है ?”

१२. स्वविर नागसेन बोले, “हाँ, ऐसा निश्चय से हो सकता है।”

१३. “कृपया समझाएँ कि यह कैसे हो सकता है ?”

१४. राजा बोला—“नागसेन ! जहाँ संसरण नहीं है, क्या वहाँ पुनर्जन्म हो सकता है।”

१५. “हाँ, हो सकता है।”

१६. “लेकिन यह कैसे हो सकता है, मुझे एक उदाहरण देकर समझाएँ।”

१७. “राजन् ! यदि एक बादमी एक दीपक से दूसरा दीपक जलाये तो क्या यह कहा जायगा कि एक का संसरण दूसरी जगह हो गया ?”

१८. “निश्चय से नहीं।”

१९. “राजन् ! इसी प्रकार बिना संसरण के पुनर्जन्म होता है।”

२०. “मुझे एक और उदाहरण दें।”

२१. “महाराज ! क्या आपको कोई छन्द (= कविता का चरण) याद है जो आपने बचपन में अपने आचार्य से सीखा हो ?”

२२. “हाँ, मुझे याद है।”

२३. “तो क्या वह छन्द आप के आचार्य के मुँह में से निकलकर आपके मुँह में आया ?”

२४. “निश्चय से नहीं।”

२५. “राजन् इसी प्रकार बिना संसरण के पुनर्जन्म होता है।”

२६. “नागसेन ! बहुत अच्छा।”

२७. राजा बोला—“नागसेन ! क्या ‘आत्मा’ जैसी कोई चीज है ?”

२८. “यद्यपि द्रष्टि से सोचा जाय तो ‘आत्मा’ जैसी कोई वस्तु नहीं है।”

२९. “नागसेन ! बहुत अच्छा।”

२. गलत-कहमी के कारण

१. भगवान् बुद्ध ने जो उपदेश दिये थे ओताओं द्वारा सुने जाते थे जो कि अधिकांश में भिक्षु थे ।

२. किसी भी विषय में भगवान् बुद्ध का क्या कहना था, उसे जनसाधारण तक पहुंचाने वाले भिक्षुगण ही थे ।

३. लेखनकला अभी विकसित नहीं हुई थी । जो कुछ सुनते थे वह भिक्षुओं को कण्ठ कर लेना होता था । प्रत्येक भिक्षु जो जो वह सुनता था, उसे कण्ठ करने की चिन्ता न करता था । लेकिन कुछ भिक्षु थे, जिन्होंने कण्ठस्थ करना अपना काम ही बना लिया था । वे 'भाणक' कहलाते थे ।

४. बौद्ध त्रिपिटक और उसकी अट्ठकयामें समुद्र की तरह विनाश है । उन्हें कण्ठस्थ कर सकना सचमुच एक बड़ी असाधारण बात थी ।

५. एक से अधिक बार ऐसा हुआ है कि भगवान् बुद्ध ने जो कुछ कहा उसको 'रिपोर्ट' ठीक ठीक नहीं हुई ।

६. भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में ही कई बार उनके वचनों की 'गलत-रिपोर्ट' की बात उन तक पहुंची थी ।

७. उदाहरण के तौर पर ऐसे पांच अवसरों का उल्लेख किया जा सकता है । एक उल्लेख तो अलङ्गदुपम सुत्त^१ में आया है, दूसरा महाकम्मविभंग सुत्त^२ में, तीसरा कण्णकट्टल सुत्त^३ में, चौथा महातण्हा-संखय सुत्त^४ में और पांचवां जीवक सुत्त^५ में ।

८. शायद इन तरह के और भी अनेक अवसर आये हों जब तत्काल के वचनों की ठीक 'रिपोर्ट' न हुई हो । क्योंकि हम देखते हैं कि भिक्षु भी भगवान् बुद्ध के पास गये हैं और प्रश्न किया है कि ऐसी परिस्थिति में उन्हें क्या करना चाहिये ?

९. 'कर्म' और 'पुनर्जन्म' के बारे में जब जब गलत रिपोर्ट हुई है, उसके अनेक अवसर हैं ।

१०. इन सिद्धान्तों को ब्राह्मणी 'धर्म' में भी स्थान प्राप्त है । इसलिये भाणकों के लिये अपेक्षाकृत सुगम था कि वह बौद्ध-धर्म में ब्राह्मणी-धर्म की भी खिचड़ी पका दें ।

११. इसलिये त्रिपिटक में भी जो 'बुद्ध-वचन' करके माना गया है, उसे भी 'बुद्ध-वचन' स्वीकार करने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है ।

१२. लेकिन इसकी एक कसौटी विद्यमान है ।

१३. भगवान् बुद्ध के बारे में एक बात बड़े ही विश्वास के साथ कही जा सकती है; वे कुछ नहीं थे, यदि उनका कथन बुद्धिसंगत, तर्कसंगत नहीं होता था । दूसरी

बातों का प्रयायोग्य मूल्योक्तन करते हुए यह बात कही जा सकती है कि जो बात बुद्धिसंगत है, जो बात तर्कसंगत है, वह 'बुद्ध-वचन' है।

१४. दूसरी बात यह है कि भगवान् बुद्ध ने कभी ऐसी बेकार की चर्चा में नहीं पड़ना चाहा जिसका आदमी के कल्याण से कोई सम्बन्ध न हो। इसलिये कोई भी ऐसी बात जिसका आदमी के कल्याण से कोई सम्बन्ध नहीं, यदि भगवान् बुद्ध के सिर मढ़ी जाती है, तो उसे 'बुद्ध-वचन' नहीं स्वीकार किया जा सकता।

१५. एक तीसरी कसौटी भी है। वह यह कि भगवान् बुद्धने सभी विषयों को दो वर्गों में विभक्त रखा था। ऐसे विषय जिनके बारे में वे निश्चित थे और ऐसे विषय जिनके बारे में वे निश्चित नहीं थे। जो विषय पहली श्रेणी में आते हैं उनके बारे में उन्होंने अपने विचार निश्चयात्मक रूप से और अन्तिम रूप से व्यक्त किये हैं। जो विषय दूसरी श्रेणी में आते हैं उनके बारे में उन्होंने अपनी राय भर व्यक्त कर दी है। लेकिन उनके वे विचार ऐसे हैं जो बदल भी सकते हैं।

१६. जिन तीन प्रश्नों के बारे में सन्देह है और मतभेद है उनके बारे में यह निश्चय करने से पहले कि भगवान् बुद्ध का निश्चित मत क्या था, यह आवश्यक है कि हम इन कसौटियों को न भूलें।

१. अलगवृपम सुत्तन्त (मज्झिम निकाय १३।२)।
२. खेमा तथा प्रसेनजित के प्रसंग के लिये देखो संयुक्त-निकाय।
३. इन्दुक सुत्त (संयुक्त निकाय)।
४. बुल-पुल्ल-वत्तन्ध-सुत्तन्त (१।२।४)।
५. देववह सुत्त (मज्झिम निकाय १०१)।
६. सिंहल-भिक्खु मछली खा लेते हैं। अज्ज्ञा नहीं।
७. अहिंसा परमो धर्मः—यह महाभारत का भी वचन है।
८. मित्तिन्द-प्रश्न।
९. अलगवृपम सुत्तन्त—मज्झिम निकाय (२२)।
१०. महाकम्मविभंग सुत्त—मज्झिम निकाय (१३६)।
११. कण्णकदठल सुत्त—(मज्झिम निकाय १०)।
१२. महातण्हा संख्य—(मज्झिम निकाय ३४)।
१३. जीवक—(मज्झिम निकाय ५५)।

तीसरा भाग

बौद्ध जीवन-मार्ग

१. शुभ-कर्म अशुभ-कर्म तथा पाप

१. शुभ कर्म करो। अशुभ कर्मों में सहयोग न दो। कोई पाप-कर्म न करो।

२. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।^१

३. यदि आदमी अशुभ कर्म करे तो उसे उसे पुनः-पुनः करना चाहिये। उसी में चित्त लगाना चाहिये। शुभ कर्मों का संभव सुखकर होता है।^२

४. भलाई के बारे में यह मत सोचो कि मैं इसे प्राप्त न कर सकूँगा। बूँद-बूँद पानी करके षड़ा भर जाता है। इसी प्रकार थोड़ा-थोड़ा करके बुद्धिमान आदमी बहुत शुभ-कर्म कर सकता है।^३

५. जिस काम को करके आदमी को पछताना न पड़े और जिसके फल को वह आनन्दित मन से भोग सके उस काम का करना अच्छा है।^४

६. जिस काम को करके आदमी को अनुताप न हो और जिसके फल को प्रफुल्लित मन से भोग सके, उस काम का करना अच्छा है।^५

७. यदि आदमी कोई शुभ कर्म करे तो उसे वह शुभ कर्म बार-बार करना चाहिये। उसे इसमें आनन्दित होना चाहिये। शुभ कर्म का करना आनन्ददायक होता है।^६

८. अच्छे आदमी को भी बुरे दिन देखने पड़ जाते हैं जब तक उसे अपने शुभ कर्मों का फल मिलना आरम्भ नहीं होता; लेकिन जब उसे अपने शुभ कर्मों का फल मिलना आरम्भ होता है, तब अच्छा आदमी अच्छे दिन देखता है।^७

९. भलाई के बारे में यह कभी न सोचे कि मैं इसे प्राप्त न कर सकूँगा। जिस प्रकार बूँद-बूँद करके पानी का षड़ा भर जाता है, उसी प्रकार थोड़ा-थोड़ा करके भी भला आदमी भलाई से भर जाता है।^८

१०. शील (= सदाचार) की सुगन्ध चन्दन, तगर तथा मल्लिका—सबकी सुगन्ध से बढ़कर है।^९

११. धूप और चन्दन की सुगन्धि कुछ ही दूर तक जाती है, किन्तु शील की सुगन्धि बहुत दूर तक जाती है।^{१०}

१२. बुराई के बारे में भी वह न सोचे कि यह मुझ तक नहीं पहुँचगी। जिस

प्रकार बूँद बूँद करके पानी का घड़ा भर जाता है, उसी प्रकार थोड़ा थोड़ा करके अशुभ-कर्म भी बहुत हो जाते हैं ।^१

१३. कोई भी ऐसा काम करना अच्छा नहीं, जिसके करने से पछताना हो और जिन का फल अशु-मुख होकर रोते हुए भोगना पड़े ।^२

१४. यदि कोई आदमी दुष्ट मन से कुछ बोलता है वा कोई काम करता है तो दुःख उसके पीछे पीछे ऐसे हो हो लेता है जैसे गाढ़ी का पहिया खींचने वाले (पशु) के पीछे पीछे ।^३

१५. पाप-कर्म न करे । अप्रमाद से न रहे । मिथ्या-दृष्टि न रखे ।^४

१६. शुभ कर्मों में अप्रमादी हो । बुरे विचारों का दमन करे । जो कोई शुभ कर्म करने में डील करता है, उसका मन पाप में रमण करने लगता है ।^५

१७. जिस काम के कर चुकने के बाद पछताना पड़े उसका करना अच्छा नहीं, जिसका फल अशु-मुख होकर सेवम करणा पड़े ।^६

१८. पापी भी सुख भोगता रहता है, जब तक उसका पापकर्म नहीं पकता; लेकिन जब उसका पापकर्म पकता है तब वह दुःख भोगता है ।^७

१९. कोई आदमी बुराई को 'छोटा' न समझे और अपने दिल में यह न सोचे कि यह मुझ तक नहीं पहुँच सकेगी । पानी की बूँदों के गिरने से भी एक पानी का घड़ा भर जाता है । इसी प्रकार थोड़ा थोड़ा पापकर्म करने से भी मूर्ख आदमी पाप से भर जाता है ।^८

२०. आदमी को शुभ कर्म करने में जल्दी करनी चाहिये और मन को बुराई से दूर रखना चाहिये । यदि आदमी शुभ कर्म में डील करता है तो उसका मन पाप में रमण करने लग जाता है ।^९

२१. यदि एक आदमी पाप करे ; तो उसे बार बार न करे । वह पाप में आनन्द न माने । पाप इकट्ठा होकर दुःख देता है ।^{१०}

२२. कुशल कर्म करे, अकुशल कर्म न करे । कुशल कर्म करने वाला इस भोक में सुखपूर्वक रहता है ।^{११}

२३. कामुकता से दुःख पैदा होता है, कामुकता से भय पैदा होता है । जो कामुकता से एकदम मुक्त है, उसे न दुःख है और न भय है ।^{१२}

२४. मूल सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सब से बड़ा दुःख है । जो इस मर्यादा बात को जान लेता है उसके लिये निर्वाण सबसे बड़ा सुख है ।^{१३}

२५. स्वयं-कृत, स्वयं-उत्पन्न तथा स्वयं-पोषित पापकर्म करने वाले को ऐसे ही पीस डालता है जैसे लज्ज मूल्यवान् मणि को भी ।^{१४}

२६. जो आदमी अत्यन्त दुःशील होता है, वह अपने आप को उस स्थिति में पहुँचा देता है, जहाँ उसका वशु उसे चाहता है, ठीक वैसे ही जैसे आकाश-जेल उस वृक्ष को जिसे वह घेरे रहती है ।^{१५}

२६. अकुशल कर्मों का तथा अहितकर कर्मों का करता आसान है। कुशल कर्मों का तथा हितकर कर्मों का करना कठिन है।^१

२. लोभ और तृष्णा

१. लोभ और तृष्णा के बशीभूत न हो।

२. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।

३. घन की वर्षा होने से भी आदमी की कामना की पूर्ति नहीं होती। बुद्धिमान आदमी जानता है कि कामनाओं की पूर्ति में अल्प-स्वाद्य है और दुःख है।^२

४. वह दिव्य काम-भोगों में भी आनन्द नहीं मानता। वह तृष्णा के क्षय में ही रत रहता है। वह सम्पत्त-सम्बुद्ध का आवक है।^३

५. लोभ से दुःख पैदा होता है, लोभ से भय पैदा होता है। जो लोभ से मुक्त है, उसके लिये न दुःख है न भय है।^४

६. तृष्णा से दुःख पैदा होता है, तृष्णा से भय पैदा होता है। जो तृष्णा से मुक्त है, उसके लिये न दुःख है न भय है।^५

७. जो अपने आप को मान के समर्पित कर देता है, जो जीवन के उपार्थ उद्देश्य को भूल कर काम-भोगों के पीछे पड़ जाता है, वह बाद में प्यानी की ओर ईर्ष्या-भरी दृष्टि से देखता है।

८. आदमी किसी भी वस्तु के प्रति आसक्त न हो, वस्तु-विशेष की हानि से दुःख होता है। जिन्हें न किसी से प्रेम है और न घृणा है, वे बंधन-मुक्त हैं।^६

९. काम-भोग से दुःख पैदा होता है, काम-भोग से भय पैदा होता है, जो काम-भोग से मुक्त है, उसे न दुःख है और न भय है।^७

१०. आसक्ति से दुःख पैदा होता है, आसक्ति से भय पैदा होता है, जो आसक्ति से मुक्त है, उसे न दुःख है और न भय है।^८

११. राग से दुःख पैदा होता है, राग से भय पैदा होता है, जो राग से मुक्त है, उसे न दुःख है और न भय है।^९

१२. मोह से दुःख पैदा होता है, मोह से भय पैदा होता है, जो मोह से मुक्त है, उसे न दुःख है और न भय है।^{१०}

१३. जो शीतवान है, जो प्रसाधान है, जो ग्यायी है, जो सत्यवादी है तथा जो अपने कर्तव्य को पूरा करता है—उससे लोग प्यार करते हैं।^{११}

१४. जो आदमी चिरकाल के बाद प्रवास से सकृदाल सौदता है, उसके रिश्तेदार तथा मित्र उसका अभिनन्दन करते हैं।^{१२}

१५. इसी प्रकार शुभ कर्म करने वाले के गुण-कर्म परलोक में उसका स्वागत करते हैं।^{१३}

३. क्लेश और द्वेष

१. किसी को क्लेश मत दो; किसी से द्वेष मत रखो।
२. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।
३. क्या संसार में कोई आदमी इतना निर्दोष है कि उसे दोष दिया ही नहीं जा सकता, जैसे शिक्षित घोड़ा वायुक की मार की अपेक्षा नहीं रखता ?^१
४. श्रद्धा, शील, बोध्य, समधि, धर्मे-विषय (= सत्य की खोज), विद्या तथा आचरण की पूर्णता तथा स्मृति (= जागरूकता) से इस महान् दुःख का अन्त करो।^२
५. जमा गयने जड़ा तप है, 'निर्वाण' सबसे बड़ा सुख है—ऐसा बुद्ध कहते हैं। जो दूसरों को आघात पहुंचाने वह प्रयत्नित नहीं; जो दूसरों को पीड़ा न दे—वही श्रमण है।^३
६. वाणी से बुरा वचन न बोलना, किसी को कोई कष्ट न देना, धितयपुर्वक (= नियमानुसार) संगत रहना—यही बुद्ध की देशना है।^४
७. न जीर्वाहता करो और न कराओ।^५
८. अपने लिये सुख चाहने वाला जो, सुख चाहने वाले प्राणियों को न कष्ट देता है और न जान से मारता है, वह सुख प्राप्त करेगा।^६
९. यदि एक टूटे धारन की तरह तुम निःसन्द हो जाओ, तो तुमने निर्वाण प्राप्त कर लिया, तुम्हारा क्रोध से कोई सम्बन्ध नहीं।^७
१०. जो निर्दोष और अहानिकर व्यक्तियों को कष्ट देता है, वह स्वयं कष्ट भोगता है।^८

११. चाहे वह जलजल हो, तो भी यदि उसकी जड़ों विषम नहीं, यदि वह शान्त है, दान्त है, स्थिरचित्त है, ब्रह्मचारी है, दूसरों के छिद्रान्वेष करता नहीं फिरता—वह सच्चमुत्त एक श्रमण है, एक भिक्षु है।^९

१२. क्या कोई आदमी लज्जा के मारे ही इतना संयत रहता है कि उसे कोई दुःख कह न सके, जैसे अच्छा घोड़ा वायुक की अपेक्षा नहीं रखता ?^{१०}

१३. यदि कोई आदमी किसी अहानिकर, शुद्ध और निर्दोष आदमी के विरुद्ध कुछ करता है तो उसकी बुराई आकर उसी आदमी पर पड़ती है, ठीक वैसे ही जैसे हवा के विरुद्ध फेंकी हुई धूल फेंकने वाले पर ही आकर पड़ती है।^{११}

४. क्रोध और शत्रुता

१. क्रोध न करो। शत्रुता को भूल जाओ। अपने शत्रुओं को मैंभी से भोत लो।
२. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।
३. क्रोधामि शान्त होनी ही चाहिये।

४. जो यही सोचता रहता है 'उसने मुझे गाली दी, उसने मेरे साथ बुरा व्यवहार किया, उसने मुझे हरा दिया, उसने मुझे लूट लिया' उसका बैर कभी शान्त नहीं होता ।^१

५. जो ऐसे विचार नहीं रखता उसी का बैर शान्त होता है ।

६. मनु मनु की हानि करता, घृणा करने वाला घृणा करने वाले को, लेकिन अन्त में यह जिस की हानि होती है ?

७. आदमी को चाहिये कि क्रोध को अक्रोध से जीते, बुराई को भलाई से जीते, लोभी को उदारता से जीते और झूठे को सच्चाई से जीते ।^२

८. सत्य बोले, क्रोध न करे; मोड़ा होने पर भी दे ।^३

९. आदमी को चाहिये कि क्रोध का त्याग करदे, मान को छोड़ दे, सब बन्धनों को तोड़ दे; जो आदमी नाम-रूप में आसक्त नहीं है, जो किसी भी चीज को "मेरी" नहीं समझता है, उसे कोई कष्ट नहीं होता ।^४

१०. जो कोई उत्पन्न क्रोध को उसी प्रकार रोक लेता है जैसे सारथी भ्रान्त रथ को, उसे ही मैं (जीवन-रथ का) सच्चा सारथी कहता हूँ; शेष तो रस्सी पकड़ने वाले ही हैं ।^५

११. जय से बैर पैदा होता है । पराजित आदमी दुखी रहता है । शान्त आदमी जय-पराजय की चिंता छोड़कर सुखपूर्वक सोता है ।^६

१२. कामाग्नि के समान आग नहीं, घृणा के समान दुर्भाग्य नहीं । उपादान-स्त्रान्धों के समान दुःख नहीं, निर्वाण से बढ़कर सुख नहीं ।^७

५. मान मन, और मन के मैल

१. आदमी वही कुछ होता है, जो कुछ उसका मन उसको बना देता है ।

२. सम्मार्ग पर आगे बढ़ने के लिये मन की साधना पहला कदम है ।

३. बौद्ध जीवन-मार्ग में यह मुख्य शिक्षा है ।

४. हर बात में मन ही पूर्वगामी है, मन ही मुख्य है ।

५. यदि कोई आदमी दुष्ट मन से कुछ बोलता है या करता है तो दुःख उसके पीछे-पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे गाड़ी के पहिये गाड़ी खींचने वाले पशु के पीछे-पीछे ।^८

६. यदि आदमी स्वच्छ मन से कुछ बोलता है या करता है तो सुख उसके पीछे-पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे कभी चाय न छोड़ने वाली छाया आदमी के पीछे-पीछे ।^९

७. इस चंचल, अस्थिर, दुःख, दुःनिवार्य मन को मेधावी आदमी ऐसे ही सीखा करता है जैसे बाण बनाने वाला बाण को ।^{१०}

८. जिस प्रकार पानी से बाहर स्थल पर फेंकी हुई मछली तड़पता है, उसी प्रकार मार के बंधन से मुक्त होता हुआ वह मन तड़पता है ।^१

९. जिसे काबू में रखना कठिन है, जो बंचल है, जो हमेशा 'मोय' ही खोजता रहता है—ऐसे मन को काबू में रखना अच्छा है। काबू में रहा हुआ मन सुख को देने वाला होता है ।^२

१०. अपने आप को एक प्रदीप (या दीप) बनाओ, परिरक्ष्य करो, जब तुम्हारे चित्त-मनों का नाश हो जायगा और तुम निर्दोष हो जाओगे तो तुम दिव्यभूमि को प्राप्त होओगे ।^३

११. जिस प्रकार सुनार क्षण-क्षण करके, थोड़ा-थोड़ा करके चाँदी के मूल को दूर कर देता है, उसी प्रकार बुद्धिमान आदमी को चाहिये कि क्षण-क्षण करके, थोड़ा-थोड़ा करके अपने चित्त के मूल को दूर कर दे ।^४

१२. जिस प्रकार लोहे से उत्पन्न हुआ मोर्चा लोहे को ही खा जाता है, उसी प्रकार पापी के अपने कर्म उसे दुर्गति तक ले जाते हैं ।^५

१३. लेकिन सब मलों से भी बढ़कर मन है। अविद्या सबसे बढ़कर मल है। हे भिक्षुओ ! इस मल का त्याग कर निर्मल हो जाओ ।^६

१४. जो आदमी कोपे की तरह निर्लेख है, शरारती है, दुस्साहसी है, दुष्ट है—उसके लिये जीवन मुकुर है ।^७

१५. लेकिन जो आदमी विनम्र है, सदैव पवित्रता की खोज में रहता है, अनासक्त है, शान्त है, निर्मल है, बुद्धि-युक्त है—ऐसे आदमी के लिये जीवन मुकुर नहीं होता ।^८

१६-१७. जो आदमी जीर्वाहिसा करता है, जो झूठ बोलता है, जो चोरी करता है, जो वर-स्त्री गमन करता है, जो आदमी शराब आदि नशीली चीजें पीता है—वह यही इसी संसार में अपनी ऊँचर अपने आप खोदता है ।^९

१८. हे आदमी ! इस बात को जान ले कि असंमत की हालत अच्छी नहीं रहती। सावधान रह कि लोभ और पाप-कर्म तुम्हें चिरकाल तक दुःख में ही न डाले रहें ।^{१०}

१९. संसार किसी को कुछ देता है तो या तो थड़ा से देता है या खुशी से देता है; यदि आदमी दूसरे को मिलने वाले पानीय या भोजन को देनाकर जलता है तो उसकी न दिन को शान्ति मिल सकती है न रात को ।^{११}

२०. जिसके मन में ऐसी भावना नहीं रहती है, जड़-मूल से जाती रही है वह दिन को भी शान्ति से रहता है और रात को भी शान्ति से रहता है ।^{१२}

२१. राम के समान जान नहीं और जोष के समान जोष (=बाढ़) नहीं ।^{१३}

२२. दूसरों के दोष आसानी से दिखाई देते हैं, अपने कठिनाई से। आदमी

दूसरों के दोषों को तो भुस की तरह उड़ाता है, किन्तु अपने दोषों को तो बैसे ही छिपाता है जैसे दुष्ट जुबारी गोटी को ।^१

२३. जो आदमी दूसरों के दोष ही देखता रहता है और अपने सदा शिक्षा ही रहता है, उसके आश्रम बढ़ते ही जाते हैं । वह चित्त-मनो के अर्थ से बहुत दूर है ।^२

२४. सभी पापों से बचो, कुशल-कर्म करो, अपने विचारों को शुद्ध रखो—यही बुद्ध की शिक्षा है ।^३

६. अपना-आप और आत्म-विजय

१. यदि अपना-आप है तो आदमी को आत्मविजयी होना चाहिये ।

२. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है ।

३. आदमी का अपना-आप ही उसका मानिक है, दूसरा कौन मानिक हो सकता है ? यदि आदमी अपने-आप को संयत रखता है तो वह दुर्लभ स्थानित्य को प्राप्त करता है ।^४

४. जो मूर्ख अहंता के, आर्थों के अथवा शीलवानों के शासन की उपेक्षा की दृष्टि से देखता है और बूढ़े सिद्धान्तों का अनुकरण करता है, तो जिस प्रकार काष्ठ (= बाँस) के फल उसके अपने विनाश का ही कारण बनते हैं, उसी प्रकार उस आदमी के कर्म उसके अपने विनाश का ही कारण बनते हैं ।^५

५. आदमी अपने आप ही पाप-कर्म करता है, अपने आप ही उससे मैला होता है । अपने आप ही पाप-कर्म से विरत रहता है, अपने आप ही उससे शुद्ध होता है । बुद्धि-अबुद्धि प्रत्येक की व्यक्तिगत बात है । एक दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता ।^६

६. जो 'सुन्दर ही सुन्दर' देखता रहता है, जो इन्द्रियों में असंयत है, जो भोजन में मादक नहीं है जो निषिद्ध होता है और जो हीन-वीर्य होता है उस आदमी को उसके अपने असंयत कर्म ही ऐसे पछाड़ देते हैं जैसे वायु दुर्बल पेड़ को ।^७

७. जो 'सुन्दर ही सुन्दर' नहीं देखता रहता, जिस की इन्द्रियाँ संयत हैं, जो भोजन में मादक है, जो अद्वैतवान है तथा वीर्यवान है वह उसी प्रकार पछाड़ नहीं जा सकता जैसे वायु से पर्वत ।^८

८. यदि आदमी को अपना-आप प्रिय है तो उसे अपने-आप पर कड़ी नज़र रखनी चाहिये ।^९

९. सबसे पहले अपने-आप को ही ठीक मार्ग पर लगाये, तब दूसरों की उपदेश दे । बुद्धिमान आदमी को चाहिये कि कोई ऐसा अवसर न दे कि दूसरे ही उसे कुछ कह-सुन सकें ।^{१०}

१०. अपने-आप को ही काबू में रखना कठिन है । यदि आदमी जैसा उपदेश दूसरों को देता है, स्वयं उसके अनुसार चले तो वह दूसरों को काबू में रख सकता है । अपना-आप ही काबू में रखना कठिन है ।^{११}

११. आदमी स्वयं पाप करता है और स्वयं भोगता है। स्वयं ही वह पाप से विरत रहता है और स्वयं ही परिशुद्ध होता है। बुद्धि और अशुद्धि दोनों ही व्यक्तिगत हैं। कोई एक किसी दूसरे को परिशुद्ध नहीं कर सकता।^१

१२. एक आदमी युद्ध में हजारों-लाखों को जीत ले, एक आदमी अपने-आप को जीत ले, वही सच्चा संग्राम-विजयी है।^२

१३. सबसे पहले अपने आप को ही ठीक मार्ग पर लगाये, तब दूसरों को उपदेश दे। बुद्धिमान आदमी को चाहिये कि कोई ऐसा अवसर न दे कि दूसरे ही उसे कुछ कह-सुन सकें।^३

१४. यदि आदमी जैसा उपदेश दूसरों को देता है, स्वयं उसके अनुसार चले तो वह दूसरों को काबू में रख सकता है। अपना-आप ही काबू में रखना कठिन है।^४

१५. निश्चय से आदमी आप अपना रक्षक है। दूसरा कौन रक्षक हो सकता है? यदि आदमी आप अपनी रक्षा करता है तो वह ऐसे रक्षक को प्राप्त करता है, जिसके समान रक्षक मिलना दुर्लभ है।^५

१६. यदि आदमी को अपना-आप प्रिय है तो उसे अपने-आप पर कड़ी नजर रखनी चाहिये।^६

१७. आदमी स्वयं पाप करता है और स्वयं भोगता है। स्वयं ही वह पाप से विरत रहता है और स्वयं ही परिशुद्ध होता है। बुद्धि और अशुद्धि दोनों ही व्यक्तिगत हैं। कोई एक किसी दूसरे को परिशुद्ध नहीं कर सकता।^७

१८. निश्चय से आदमी आप अपना संरक्षक है। दूसरा कौन संरक्षक हो सकता है? यदि आदमी आप अपना संरक्षण करता है तो वह ऐसे संरक्षक को प्राप्त करता है, जिसके समान संरक्षक मिलना दुर्लभ है।^८

७. बुद्धि, न्याय और संगति

१. बुद्धिमान बनो, न्यायशील रहो और संगति अच्छी रखो।

२. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।

३. यदि कोई ऐसा आदमी मिले जो ब्रजने-योग्य से वर्जित करे, जो ताड़ना भी दे और जो बुद्धिमान हो; तो उस आदमी का कहना ऐसे ही माने जैसे किसी मज्जाना बताने वाले का। जो उसका अनुकरण करेगा, उसके लिये यह अच्छा ही होगा, बुरा नहीं होगा।^९

४. जो सकल-मुक्त कहता है, जो शिक्षा देता है, जो अनुचित कर्म से रोकता है—उससे सत्यप्यार करते हैं, असत्यप्यार घृणा।^{१०}

५. पापी पुरुषों की संगति न करे। नीच पुरुषों की संगति न करे। सदा-चारियों की मित्र बनाये, श्रेष्ठ पुरुषों की मित्र बनाये।^{११}

६. जो धर्ममृत का पान करता है, वह विप्रसन्न चित्त से सुखपूर्वक रहता है। श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा उपदिष्ट धर्म में पण्डित आदमी सदा सुखी रहता है।^१

७. पानी से जाने वाले जहाँ चाहते हैं वहाँ पानी को ले जाते हैं, जो बाण बनाने वाले हैं वे बाण को सीधा करते हैं, बड़े लोग लकड़ी को सीधा करते हैं और पण्डितजन अपने आप को विनीत (= नियमानुसार चलने वाला) बनाते हैं।^२

८. जिस प्रकार एक घन पर्वत वायु के झोंके से हिलता-डोलता नहीं, उसी प्रकार पण्डितजन निन्दा-प्रशंसा से विचलित नहीं होते।^३

९. धर्म सुन चुकने के अनन्तर पण्डितजन गहरी, गम्भीर झील की तरह शान्त हो जाते हैं।^४

१०. सत्पुरुष सभी परिस्थितियों में सम बने रहते हैं। सत्पुरुष इच्छाओं की तृप्ति के निमित्त कभी मुँह नहीं खोलते, वे सुख या दुःख का अनुभव होने पर ऊँचा-नीचा भाव प्रदर्शित नहीं करते।^५

११. जब तक पाप-कर्म पकता नहीं तब तक मूर्ख आदमी इसे मधु की तरह मधुर समझता है। लेकिन जब पाप-कर्म पकता है तब मूर्ख आदमी दुःखी होता है।^६

१२. जब मूर्ख आदमी पाप-कर्म करता है, तो वह नहीं जानता है (कि मैं पाप-कर्म कर रहा हूँ), लेकिन वह आग से जले की तरह अपने पाप-कर्मों से जलता है।^७

१३. जागने वाले की रात लम्बी होती है, शान्त आदमी का जीवन लम्बा होता है, धर्म न जानने वाले मूर्ख आदमी का जीवन लम्बा होता है।^८

१४. यदि आदमी को अपने से श्रेष्ठ वा अपने समान साथी न मिले, तो उसे अकेले ही अपने जीवन-वध पर आगे बढ़ना चाहिये, मूर्ख आदमियों की संगति (अच्छी) नहीं।^९

१५. 'यह मेरा पुत्र है, यह मेरा घन है' यही सोच-सोच कर मूर्ख आदमी दुःखी होता रहता है। अपना-आप ही अपना नहीं है, कहाँ पुत्र और कहाँ घन।^{१०}

१६. जो मूर्ख आदमी अपने को मूर्ख समझता है, उतने अंश में वह भी पण्डित है; असली मूर्ख यह है जो मूर्ख होकर भी अपने-आप को पण्डित समझता है।^{११}

१७. यदि एक मूर्ख आदमी जन्म भर भी किसी पण्डित की संगति करे तो भी वह सद्धर्म को नहीं जान सकता जैसे कड़खी दाल के रस को।^{१२}

१८. लेकिन कोई मेधावी यदि मुहूर्त भर भी पण्डित की संगति करे तो भी वह सद्धर्म को जान ले सकता है, जैसे जिल्हा दाल के रस को।^{१३}

१९. दुर्मेधा मूर्ख स्वयं अपना शत्रु आप होता है, क्योंकि वह ऐसे पाप-कर्म करता है जिनका फल कटु होता है।^{१४}

२८. उस कार्य का करना अच्छा नहीं जिसके लिये आदमी को पछताना पड़े जिसका फल रोते हुए भोगना पड़े ।^१

२९. उस कार्य का करना अच्छा है, जिसके कर धुक्ने के बाद पछताना न पड़े और जिसका फल आदमी प्रफुल्लित मन से प्रीतिपुक्त होकर भोग सके ।^२

३०. जब तक पाप-कर्म पकता नहीं, तब तक मूर्ख आदमी उसे मधु की तरह मधुर समझता रहता है । लेकिन जब पाप-कर्म पकता है, तब मूर्ख आदमी दुःखी होता है ।^३

३१. छिपा हुआ पाप-कर्म प्रकट होकर जब मूर्ख के लिये दुःख का कारण बनता है, तो वह उसके शुक्ल अंग का नाश कर देता है, बल्कि उसके सिर के टुकड़े टुकड़े कर देता है ।^४

३२. लुटेरों की कामना, भिक्षुओं और बिहारों में अपनी प्रधानता की इच्छा, दूसरों से सत्कृत पूजित होने की भावना—एक मूर्ख के लिये छत्र दो ।^५

३३. आदमी के बाल पक जाने से ही वह 'बूढ़' नहीं होता । उसके बाल भस्म हो सड़े हो गये हों, वह 'व्यर्थ बूढ़ा हुआ' कहलाता है ।^६

३४. जिसमें सत्य है, नीति है, करुणा है, संयम है, बुद्धि है, तथा बुद्धि है—वही वास्तविक 'बूढ़' है ।^७

३५. अधिक बोलने से व सुवर्ण होने से ही कोई ईर्ष्यालु, कंजूस, बेईमान आदमी 'आदरणीय' नहीं बनता ।^८

३६. जिसके से सब दुर्युक्त जड़-मूल से जाते रहे हैं, जो धृष्ट से मुक्त हैं तथा जो बुद्धिमान है—वही आदरणीय कहलाता है ।^९

३७. एक आदमी यदि और अवदंती किसी से कोई काम करा लेता है तो उससे वह 'न्यायी' नहीं माना जाता । ऐसा नहीं, जो 'धर्म' और 'अधर्म' की पहचान रखता है, जो बुद्धिमान है और जो और-अवदंती से नहीं, बल्कि धर्मानुसार दूसरों का मार्ग-प्रदर्शन करता है ऐसे विद्वान्, धर्मरत्न को ही 'न्यायी' कह सकते हैं ।^{१०}

३८. बहुत बोलने से ही कोई आदमी 'पण्डित' नहीं होता । जो क्षमाशील होता है, जो धृष्ट और भय से मुक्त होता है, वही पण्डित कहलाता है ।^{११}

३९. बहुत बोलने से आदमी धर्म-धर नहीं होता, बल्कि जो चाहे सोचा धर्म मुने किन्तु जो उसे कार्य रूप में परिणित करता है, जो धर्म के विषय में कभी प्रमाद नहीं करता, वही 'धर्मधर' कहलाता है ।^{१२}

४०. यदि आदमी को कोई बुद्धिमान साथी मिले, धैर्यवान्, तो वह सब व्यथों से बचकर, सुखपूर्वक किन्तु निर्विक-मुक्त, उसके साथ रह सकता है ।^{१३}

४१. लेकिन यदि आदमी को कोई बुद्धिमान साथी न मिले, धैर्यवान्, तो उसे चाहिये कि उस राजा की तरह जिसने अपने विजित देश को पीछे छोड़ दिया है या जंगल में हाथी की तरह अकेला ही रहे ।^{१४}

३४. अकेला रहना अच्छा है, मूर्ख आदमी की संगति अच्छी नहीं; आदमी अकेला रहे, कोई पाप-कर्म न करे; थोड़ी सी इच्छाएँ रखे; जैसे जंगल में हाथी ।^१

३५. समय पड़ने पर, मित्रों का होना सुखकर होता है, भोग की सामग्री सुखकर होती है, शुभ कर्म का करना सुखकर होता है, अन्त समय आ पड़ने पर पुण्यों का किया रहना सुखकर होता है, सारे दुःख का नाश सुखकर है ।^२

३६. मातृत्व सुखकर है, पितृत्व सुखकर है तथा भ्रमणत्व सुखकर है ।^३

३७. बुद्ध होने तक शीत-पालन सुखकर है, दुर्द्धतापूर्वक प्रतिष्ठित श्रद्धा सुखकर है, प्रज्ञा का लाभ सुखकर है तथा पापों का न करना सुखकर है ।^४

३८. मूर्ख की संगति देर तक कष्ट देती है, मूर्ख की संगति शत्रु की संगति के समान सदा दुःखद है, बुद्धिमान की संगति सगे-सम्बन्धियों की संगति के समान सदा सुखद है ।^५

३९. इसलिये आदमी को चाहिये कि वह प्रज्ञावान्, बुद्धिमान, विज्ञ, क्षमाशील, धर्मधर तथा श्रेष्ठ आदमी का ऐसे ही अनुसरण करे जैसे चन्द्रमा नक्षत्र-पथ का ।^६

४०. प्रमाद में न पड़े और काम भोगों के पीछे भी न पड़े । अप्रमादी को विपुल सुख प्राप्त होता है ।^७

४१. जब बुद्धिमान आदमी प्रमाद को अप्रमाद से दबा देता है तो प्रज्ञा के प्रसाद पर चढ़कर, स्वयं शोक-रहित होता हुआ वह धैर्यवान् शोकग्रस्त मूर्ख जनता को ऐसे देखता है जैसे पर्वत पर चढ़ा हुआ कोई धैर्यवान्, नीचे जमीन पर खड़ी हुई जनता को ।^८

४२. प्रमादियों में अप्रमादी, सोने बालों में जागरूक बुद्धिमान् आदमी दूसरों को पीछे छोड़कर स्वयं इस प्रकार आगे बढ़ जाता है जैसे किसी दुर्बल घोड़े को पीछे छोड़कर शीघ्रगामी घोड़ा ।^९

८. चित्त की जागरूकता और एकाग्रता

१. प्रत्येक कार्य करते समय जागरूक रहो, प्रत्येक काम में सोच-विचार से काम लो; हर विषय में अप्रमादी और उत्साही रहो ।

२. यही बौद्ध जीवन मार्ग है ।

३. जो कुछ हम हैं, यह सब कुछ हमारे विचारों का ही परिणाम है; यह हमारे विचारों पर ही आधारीक है, यह हमारे विचारों से ही निमित्त है । यदि आदमी गुरे विचारों से कुछ भी बोलता या करता है, तो वह दुःख भोगता है । यदि आदमी पवित्र विचारों से कुछ भी बोलता या करता है, तो उसे सुख मिलता है । इसलिये पवित्र विचार महत्त्वपूर्ण हैं ।^{१०}

४. विचारहीन मत बनो, विचारवान् बनो। दलदल में फँसे हुए हाथी की तरह अपने आप को पाप में से उबारो।^१

५. आदमी को चाहिये कि अपने चित्त की रक्षा करे, इसकी रक्षा करना आसान नहीं, यह जहाँ चाहें वहाँ जाने वाला है; किन्तु चित्त की रक्षा सुख-दायिनी है।^२

६. जिस प्रकार ठीक से न छाई गई छत में पानी बस जाता, उसी प्रकार यदि चित्त साधना-विहीन है, तो उसमें राग प्रवेश कर जाता है।^३

७. जिस प्रकार ठीक से छाई हुई छत में पानी नहीं प्रवेश कर पाता है; उसी प्रकार साधनायुक्त चित्त में राग का प्रवेश नहीं हो पाता है।^४

८. पहले तो यह चित्त जहाँ चाहें वहाँ गया; लेकिन अब मैं इस चित्त को वैसे ही काबू में रखूँगा जैसे अंकुश-धारी हयवान् मस्त हाथी को।^५

९. जहाँ चाहें वहाँ जाने वाले चित्त को साधना अच्छा है, इसे काबू में रखना कठिन है। किन्तु साधना-युक्त चित्त सुख वह होता है।

१०. जो इस दूर-नामी चित्त को संयत रखेंगे, वे मार (=कामराग) के बन्धन से मुक्त रहेंगे।^६

११. यदि आदमी का चित्त अस्थिर है, यदि वह धर्म का जानकार नहीं है, यदि उसका चित्त ज्ञान्त नहीं है तो उसकी प्रज्ञा कभी पूर्णता को प्राप्त नहीं होगी।^७

१२. एक द्वेषी अपने द्वेषी की जितनी हानि कर सकता है, एक शत्रु अपने शत्रु को जितना नुकसान पहुँचा सकता है, गलत रास्ते पर गया हुआ चित्त आदमी को उससे कहीं अधिक हानि कर सकता है।^८

१३. इसी प्रकार, ठीक रास्ते पर गया हुआ चित्त आदमी को जितनी भलाई कर सकता है उतनी भलाई न माता-पिता ही कर सकते हैं और न अन्य रिश्तेदार ही कर सकते हैं।^९

६. अप्रमाद और वीर्य

१. जब अप्रमादी, प्रमाद को जीत-लेता है तो शोक-मुक्त हुआ वह स्वयं शोक-ग्रस्त मानव-जाति को प्रज्ञास्वी प्रासाद पर चढ़ा हुआ ऐसे देखता है जैसे कोई पर्वत-शिखर पर चढ़ा हुआ बुद्धिमान् आदमी नीचे तलहटी में खड़े हुए मूखों को देखता है।^१

२. प्रमादियों को अप्रमादी, सोते हुएों को जागते वाला ऐसे ही पीछे छोड़-कर चला जाता है जैसे शीघ्रगामी अश्व-दुर्वल अश्व को।^२

३. प्रमाद में मत पड़ो। काम-भोगों में मत फँसो। अप्रमादी ही ध्यान-साम करता है।^३

४. अप्रमाद अमृत पद है, प्रमाद तो मृत्यु के ही समान है। जो अप्रामादी है वे नहीं मरते हैं और प्रमादी तो मरे समान ही होते हैं।^१

५. अपने (जीवन के) उद्देश्य को, दूसरे के बड़े अर्थ के लिये भी न छोड़े। जब एक बार अपना उद्देश्य स्पष्ट हो जाय तो दृढ़तापूर्वक उसे ही पकड़े रहे।^२

६. अप्रमादी बनो। प्रमाद को दूर भगाओ। सत्य पर चलो, जो आदमी सत्य पर चलता है, वह दुनिया में सुख से रहता है।

७. प्रमाद एक कलंक है, सतत् प्रमाद एक कात्सा धन्वा है। निरन्तर प्रयास और प्रज्ञा की सहायता से प्रमाद रूपी विषैले तीर को निकास बाहर करो।

८. प्रमाद में मत पड़ी। काम-भोगों में मत पड़ो। अप्रामादी तथा ध्यानी ही जसीम सुख लाभ करते हैं।^३

९. यदि कोई अप्रमाद-मुक्त आदमी जागरूक रहता है, यदि वह विस्मरण-शील नहीं है, यदि उसकी चर्या सुद्ध है, यदि वह विवेक से काम लेता है, यदि वह संयत है तथा उसका आचरण धर्मानुसार है तो उसका यश बढ़ता है।^४

१०. दुःख और सुख, दान तथा दया

१. गरीबी से दुःख पैदा होता है।

२. लेकिन यह आवश्यक नहीं कि गरीबी दूर-होने से आदमी सुखी भी हो जाय।

३. ऊँचा जीवन-स्तर नहीं, बल्कि ऊँचा आचरण सुख का मूलमंत्र है।

४. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।

५. मूख सबसे बड़ा रोग है।

६. आरोग्य सबसे बड़ा लाभ है, संतोष सबसे बड़ा धन है, विश्वास सबसे बड़ा रिश्तेदार है और निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।^५

७. वैरियों के बीच में भी अवेरी बनकर हम सुखपूर्वक जीयेंगे।^६

८. अनाुरों के बीच में भी अनाुर बनकर हम सुखपूर्वक जीयेंगे।^७

९. शत्रुओं में निर्लोभी बनकर हम सुखपूर्वक जीयेंगे।^८

१०. जिस प्रकार बेकार की घास खेतों को हानि पहुंचाती है उसी प्रकार काम-राग जनता को कष्ट देता है। इसलिए जो राग-मुक्त है उन्हें दान देने का महान् फल है।^९

११. जिस प्रकार बेकार की घास खेतों को हानि पहुंचाती है उसी प्रकार प्रमाद जनता को कष्ट देता है। इसलिए जो प्रमाद-मुक्त है उन्हें दान देने का महान् फल है।

१२. जिस प्रकार बेकार की घास खेतों को हानि पहुंचाती है, उसी प्रकार

तृष्णा अतता को कष्ट देती है। इसलिये जो तृष्णा-मुक्त हैं उन्हें दान देने का महान् फल है ।^१

१३. धर्म का दान सब दानों से बड़कर है। धर्म का माधुर्य सब माधुर्यों से बड़कर है। धर्म आ आनन्द सब आनन्दों से बड़कर है ।^२

१४. जब से बैर पैदा होता है, पराजित दुःखी रहता है। जिसने जब और पराजय की भावना का त्याग कर दिया है वह सतोंप से सुखी रहता है ।^३

१५. रागादि के समान अंग नहीं, पुणा के समान पराजय नहीं, इस शरीर के समान कोई दुःख (का कारण) नहीं, शान्ति के समान कोई सुख नहीं ।^४

१६. दूसरों की कमियों की ओर या दूसरों के कुत-आकृत की ओर मत देखो। अपनी ही कमियों या अपने ही कुत-आकृत की ओर देखो ।^५

१७. जो विनम्र है, जो गूढ़ि-मनोपक है, जो आशक्ति रहित है, जो एकान्त का इच्छुक है, जो पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहता है तथा जो विवेक-प्रिय है —उसके लिये जीवन कठिन है ।^६

१८. क्या संसार में कोई आदमी ऐसा है जो ऐसा अवसर ही नहीं देता कि उसे कोई कुछ कह-सुन सके, जैसे अच्छा घोड़ा अपने सवार को कभी चाबुक चलाने का अवसर नहीं देता ?

१९. किसी से कठोर वचन मत बोलो। दूसरे भी वैसा प्रत्युत्तर देंगे। शोध-मुक्त वाणी दुःख है। किसी पर भी प्रहार करो तो तुम पर भी प्रहार होगा।

२०. स्वतन्त्रता, उदारता, सदाशयता और निःस्वार्थपरता का संसार के लिये वैसा ही महत्त्व है जैसा पहिले की धुरी का पहिले के लिये।

२१. यही बौद्ध जीवन मार्ग है।

११. डोंग

१. कोई झूठ न बोलें। कोई दूसरे को झूठ बोलने की प्रेरणा न करे और कोई दूसरे के झूठ बोलने का समर्थन न करे। सभी प्रकार का मिथ्याभाषण दूर दूर रहे।

२. जैसे तथागत बोलते हैं तदनुसार आचरण करते हैं। जैसा आचरण करते हैं, वैसा ही बोलते हैं। क्योंकि वे तथागायी तथा कारी और तथाकारी तथा भागी हैं, इसीलिये वे तथागत कहलाते हैं।

३. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।

१२. सम्यक् मार्ग का अनुसरण

१. सम्मार्ग की चुनो। उस पथ से विचलित न हो।

२. यूँ पथ बहुत हैं, किन्तु सभी सम्मार्ग की ओर नहीं जाते।

३. सम्मार्ग छोड़ से ही लोगों को सुखी बनाने के लिये नहीं है, बल्कि सभी को सुखी बनाने के लिये है।

४. यह आदि में कल्याणकारी होना चाहिये, मध्य में कल्याणकारी होना चाहिये और अन्त में कल्याणकारी होना चाहिये।

५. सम्मार्ग पर चलने का मतलब है बौद्ध जीवन-मार्ग पर चलना।

६. सर्वश्रेष्ठ मार्ग आर्य-अष्टांगिक मार्ग है, सर्वश्रेष्ठ सत्य चार आर्य-सत्य हैं, सर्वश्रेष्ठ धर्म विराग है, सर्वश्रेष्ठ पुण्य यह है जो चतुर्मानु (= बुद्ध) है।^१

७. यही एक मार्ग है, प्रज्ञा की विवृद्धि का दूसरा मार्ग ही नहीं है। इस-लिये इसी पर चलो।^२

८. यदि तुम इस मार्ग पर चलोगे, तो तुम दुःख का अन्त कर सकोगे। मैंने दुःखकी शून्य की सम्यक् जानकारी प्राप्त करने के अनन्तर इस मार्ग का उपदेश दिया है।^३

९. प्रज्ञा तो तुम्हें स्वयं करना होगा। उपागत तो केवल पथ-प्रदर्शक है।^४

१०. 'सभी संसार अनित्य है' जब प्रज्ञा की आंख से कोई इसे देख-लेता है, तो वह दुःख का अन्त कर सकता है।^५

११. 'सभी धर्म अनात्म हैं' जब कोई प्रज्ञा से इसे देखता है तो उसे दुःख से मुक्ति प्राप्त होती है।^६

१२. जो उत्साहपूर्वक कार्य करने के समय उत्साहपूर्वक कार्य नहीं करता, जो तरुण और सशक्त होने पर भी अत्यन्त आलसी रहता है, जिसकी संकलन-शक्ति दृढ़ नहीं है—ऐसा सुस्त आदमी कभी प्रज्ञावान नहीं हो सकता।^७

१३. बाणी पर ध्यान दे, विचारों को संयत रखे तथा शरीर से कोई बुरा कर्म न करे। आदमी यदि केवल तीन कर्म-पथों को निर्मल रखे तो वह बुद्ध-उपदिष्ट पथ को प्राप्त कर लेता।^८

१४. वास्तविक ज्ञान लाभ है, ज्ञान का अभाव हानि है—इन दोनों बातों को जानकर आदमी को चाहिये कि ऐसा व्यवहार करे कि ज्ञान में वृद्धि हो।^९

१५. अपने ही हाथ से, शरद्-हालीन कुमुद की तरह, स्नेह-सूत्र को काट जाओ।^{१०} शान्ति-पथ पर आरुढ़ हो। सुगत (= बुद्ध) ने निर्वाण की देशना की है।

१६. असद्धर्म का सेवन न करे। अविवारवान् बनकर न रहे। मिथ्या मत में वृद्धि करने वाला न हो।^{११}

१७. उठ कर खड़ा हो जाये। प्रमाद न करे। सद्धर्म का पातन करे। शीत-वान् संसार में सुखी रहता है।^{१२}

१८. जो पहले मने प्रमादी रहा हो, किन्तु बाद में जो प्रमाद को छोड़ देता है वह बादलों से मुक्त चन्द्रमा की तरह इस संसार को प्रभावित करता है।^{१३}

१६. जिसके अच्छे कर्म उसके बुरे कर्मों को डक लेते हैं, वह बादलों से मुक्त चन्द्रमा की तरह इस लोक को प्रकाशित करता है ।^१

२०. जो आदमी धर्म का अतिक्रमण करता है और जो मृषावादी है, वह कोई भी पाप कर्म कर सकता है ।^२

२१. जो सदा जागरूक है, जो दिन रात अपने आप को अधिकाधिक शिक्षित करते रहते हैं और जो निर्वाणामिमुख हैं, उनके आसव अस्त हो जाते हैं ।^३

२२. वह पुरानी बात है जो झुप रहता है उसकी भी निन्दा होती है, जो अधिक बोलता उसकी भी निन्दा होती है, जो कम बोलता उसकी है उसकी भी निन्दा होती है; इस पृथ्वी पर कोई ऐसा नहीं जिसकी कोई न कोई निन्दा न करता हो ।^४

२३. न कोई ऐसा आदमी हुआ है, न होगा और न है, जिसकी निरन्तर निन्दा ही निन्दा होती हो अथवा निरन्तर प्रशंसा ही प्रशंसा होती हो ।^५

२४. वाणी के क्रोध के प्रति सावधान रहो । अपनी विज्ञा पर संयम रखो । मन के कोप के प्रति सावधान रहो । अपने मन पर संयम रखो ।^६

२५. अप्रमाद अमृत (निर्वाण) का पथ है; प्रमाद मृत्यु का पथ है । जो अप्रमादी है वे मरते नहीं जो प्रमादी हैं वे तो मरे हुए ही हैं ।^७

१३. सद्धर्म के साथ मिथ्या धर्म को मत मिलाओ

१. जो झूठ को सच और सच को झूठ समझ बैठते हैं—ऐसे मिथ्या-दृष्टि-सम्पन्न लोगों को कभी सत्य की प्राप्ति नहीं होती ।^८

२. जो सच को झूठ और झूठ को सच समझ बैठते हैं—ऐसे मिथ्या-दृष्टि-सम्पन्न लोगों को कभी सत्य की प्राप्ति नहीं होती ।^९

३. जो सत्य को सत्य और झूठ को झूठ समझ लेते हैं—ऐसे सम्पक्-दृष्टि-सम्पन्न लोगों को ही सत्य की प्राप्ति होती है ।^{१०}

४. जैसे ठीक से न छाई गई छत में पानी प्रवेश कर जाता है, उसी प्रकार साधना रहित चित्त में राग प्रवेश कर जाता है ।^{११}

५. जैसे ठीक से छाई गई छत में पानी प्रवेश नहीं करता, उसी प्रकार साधनायुक्त चित्त में राग प्रवेश नहीं करते ।^{१२}

६. उठे । प्रमाद न करे । सम्मार्ग पर चले । सम्मार्ग पर चलने वाला इस लोक तथा दूसरे सभी लोकों में सुखी रहती है ।^{१३}

७. सम्मार्गवासी बने । कुमार्गवासी न बने । सम्मार्ग पर चलने वाला इस लोक तथा दूसरे सभी लोकों में सुखी रहता है ।^{१४}

पृष्ठ २८०—१. धम्मपद, बुद्धवग्गो (५), २. धम्मपद, पापवग्गो (३), ३. धम्मपद, पापवग्गो (७), ४. धम्मपद, बालवग्गो (८), ५. धम्मपद, बालवग्गो (६), ६. धम्मपद, पापवग्गो (३), ७. धम्मपद, पापवग्गो (५), ८. धम्मपद, पापवग्गो (७), ९. धम्मपद, पुष्पवग्गो (१२), १०. पुष्पवग्गो (१३) ।

पृष्ठ २८१—१. पापवग्गो (६), २. बालवग्गो (८), ३. धम्मपद वग्गो (१), ४. लोकवग्गो (१), ५. निरपवग्गो (८), ६. बालवग्गो (८), ७. पापवग्गो—४, ८. पापवग्गो—६, ९. पापवग्गो—१, १०. पापवग्गो—२, ११. लोकवग्गो—३, १२. पिपवग्गो—७, १३. सुखवग्गो—७, १४. अत्तवग्गो—५, १५. अत्तवग्गो—६ ।

पृष्ठ २८२—१ से १३ तक; अत्तवग्गो (७), बुद्धवग्गो (८), बुद्धवग्गो (६), पिपवग्गो (६), पिपवग्गो (८), पिपवग्गो (३), पिपवग्गो (७), पिपवग्गो (६), पिपवग्गो (५), पिपवग्गो (८), पिपवग्गो (६), पिपवग्गो (११), पिपवग्गो (१२) ।

पृष्ठ २८३—१ से ११ तक; वण्डवग्गो (१५), वण्डवग्गो (१६), बुद्धवग्गो (६), बुद्धवग्गो (७), वण्डवग्गो (१), वण्डवग्गो (४), वण्डवग्गो (६), वण्डवग्गो (६), वण्डवग्गो (१४), वण्डवग्गो (१५), पापवग्गो (१०) ।

पृष्ठ २८४—१ से १० तक; धम्मपदवग्गो (३), कोधवग्गो (३), कोधवग्गो ४, कोधवग्गो (१), कोधवग्गो (२), सुखवग्गो (५), सुखवग्गो (६), धम्मपदवग्गो (१), धम्मपदवग्गो (२), चित्तवग्गो (१) ।

पृष्ठ २८५—१ से १३ तक; चित्तवग्गो (२), चित्तवग्गो (३), मलवग्गो (२), मलवग्गो (५), मलवग्गो (६), मलवग्गो (६), मलवग्गो (१०), मलवग्गो (११), मलवग्गो (१२, १३), मलवग्गो (१४), मलवग्गो (१५), मलवग्गो (१६), मलवग्गो (१७) ।

पृष्ठ २८६—१ से ११ तक; मलवग्गो (१८), मलवग्गो (१९), बुद्धवग्गो (५), अत्तवग्गो (४), अत्तवग्गो (८), अत्तवग्गो (६), धम्मपदवग्गो (७), धम्मपदवग्गो (८), अत्तवग्गो (१), अत्तवग्गो (२), अत्तवग्गो (३) ।

पृष्ठ २८७—१ से ११ तक; अत्तवग्गो (६), सहस्रवग्गो (४), अत्तवग्गो (२), अत्तवग्गो (३), अत्तवग्गो (४), अत्तवग्गो (१), अत्तवग्गो (६), अत्तवग्गो (५), पण्डितवग्गो (१), पण्डितवग्गो (२), पण्डितवग्गो (३) ।

पृष्ठ २८८—१ से १४ तक; पण्डितवग्गो (५), पण्डितवग्गो (५), पण्डितवग्गो (६), पण्डितवग्गो (७), पण्डितवग्गो (८), बालवग्गो (१०), बालवग्गो (१२), बालवग्गो (१), बालवग्गो (२), बालवग्गो (३), बालवग्गो (४), बालवग्गो (५), बालवग्गो (६), बालवग्गो (७) ।

पृष्ठ २८६—१ से १४ तक; बालवग्गो (८), बालवग्गो (६), बालवग्गो (१०), बालवग्गो (१३), बालवग्गो (१४), धम्मट्ठवग्गो (५), धम्मट्ठवग्गो (६), धम्मट्ठवग्गो (७) धम्मट्ठवग्गो (८), धम्मट्ठवग्गो (१२), धम्मट्ठवग्गो (३), धम्मट्ठवग्गो (४), नागवग्गो (६), नागवग्गो (१०) ।

पृष्ठ २८७—१ से १० तक; नागवग्गो (११), नागवग्गो (१२), नागवग्गो (१३), नागवग्गो (१४), सुखवग्गो (११), सुखवग्गो (१२), अप्पमादवग्गो (७), अप्पमादवग्गो (८), अप्पमादवग्गो (६), यमकवग्गो (१, २) ।

पृष्ठ २८९—१ से १३ तक; नागवग्गो (८), वित्तवग्गो (३), यमकवग्गो (१३), यमकवग्गो (१४), नागवग्गो (७), वित्तवग्गो (३), वित्तवग्गो (५), वित्तवग्गो (६), वित्तवग्गो (१०), वित्तवग्गो (११), अप्पमादवग्गो (८), अप्पमादवग्गो (६), अप्पमादवग्गो (७) ।

पृष्ठ २९२—१ से ६ तक; अप्पमादवग्गो (१), अत्तवग्गो (१०), अप्पमादवग्गो (७), अप्पमादवग्गो (४), सुखवग्गो (८), सुखवग्गो (१), सुखवग्गो (२), सुखवग्गो (३), तण्हावग्गो (२३) ।

पृष्ठ २९३—१ से ६ तक; तण्हावग्गो (२६), तण्हावग्गो (२९), सुखवग्गो (५), सुखवग्गो (६), पुप्फवग्गो (७), मलवग्गो (११) ।

पृष्ठ २९४—१ से १३ तक; मग्गवग्गो (१), मग्गवग्गो (२), मग्गवग्गो (३), मग्गवग्गो (४) मग्गवग्गो (५), मग्गवग्गो (७), मग्गवग्गो (८), मग्गवग्गो (६), मग्गवग्गो (१०), मग्गवग्गो (१३), लोकवग्गो (१), लोकवग्गो (२), लोकवग्गो (६) ।

पृष्ठ २९५—१ से १४ तक; लोकवग्गो (७), लोकवग्गो (१०), कोधवग्गो (६), कोधवग्गो (७), कोधवग्गो (८), कोधवग्गो (१२, १३), अप्पमादवग्गो (१), यमकवग्गो (११), यमकवग्गो (११), यमकवग्गो (१२), यमकवग्गो (१३), यमकवग्गो (१४), लोकवग्गो (२), लोकवग्गो (३) ।

चौथा भाग

बुद्ध-प्रवचन

गृहस्थों के लिए प्रवचन

१. सुखी-गृहस्थ

१. एक बार अनाथपिण्डक जहाँ भगवान् बुद्ध थे, वहाँ आया। अभिवादन किया और एक ओर बैठ गया।

२. अनाथपिण्डक जानना चाहता था कि गृहस्थ कैसे सुखी रह सकता है ?

३. तदननुसार अनाथ पिण्डक ने भगवान् बुद्ध से प्रार्थना की कि वे उसे गृहस्थ जीवन के सुख का रहस्य समझाये।

४. भगवान् बुद्ध ने कहा कि गृहस्थ को पहला सुख तो सम्पत्ति का मालिक होने का होता है एक गृहस्थ के पास धार्मिक तरीके से, न्यायतः, बड़े परिश्रम से, बाहुबल से, पत्नीना बहाकर कमाया हुआ धन होता है। इस विचार से कि मेरे पास न्यायतः अर्जित धन है, उसे प्रसन्नता होती है।

५. दूसरा सुख सम्पत्ति के भोगने का सुख है। एक गृहस्थ के पास धार्मिक तरीके से, न्यायतः, बड़े परिश्रम से, बाहुबल से, पत्नीना बहाकर कमाया हुआ धन होता है। वह अपने धन का उपभोग करता है और पुण्य-कर्म करता है। इस विचार से कि मैं अपने न्यायतः अर्जित धन से पुण्य कर्म करता हूँ, उसे प्रसन्नता होती है।

६. तीसरा सुख 'ऋण' शून्य होने का है। एक गृहस्थ के सिर पर किसी का भी कम या ज्यादा 'ऋण' नहीं होता। इस विचार से कि मेरे सिर पर किसी का भी कम या ज्यादा 'ऋण' नहीं है, उसे प्रसन्नता होती है।

७. चौथा सुख दोष-रहित होने का है। एक गृहस्थ के जारिरीक कर्म निर्दोष होते हैं, वाणी के कर्म निर्दोष होते हैं और मन के कर्म निर्दोष होते हैं। उसे निर्दोषता का सुख प्राप्त होता है।

८. अनाथपिण्डक ! निश्चय से ये चार सुख ऐसे हैं जिन्हें यदि गृहस्थ प्रयास करे तो प्राप्त कर सकता है।'

२. पुत्री पुत्र से अच्छी हो सकती है

१. जिस समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में ठहरे हुए थे, कोशल-नरेश प्रसेनजित् उनके दर्शनार्थ आया।

२. जिस समय कोशल-नरेश प्रसेनजित् भगवान् बुद्ध से बातचीत कर रहा था, राजमहल से एक दूत आया और उसने आकर राजा की कान में सूचना दी कि मल्लिका ने एक पुत्री को जन्म दिया है।

३. राजा बड़ा दुःखी और खिन्न-मन हो गया गया। भगवान् बुद्ध ने राजा से उसकी खिन्नता का कारण पूछा।

४. राजा बोला कि उसे अभी अभी यह अवसर करने वाला समाचार मिला है कि रानी ने एक पुत्री को जन्म दिया है।

५. तब उस समय भगवान् बुद्ध ने इसी की तर्ज करते हुए कहा—“महाराज! यह हो सकता है कि पुत्री पुत्र से भी अच्छी निकले। वह बुद्धिमति हो, सुशीला हो और पति के माता-पिता की सेवा करने वाली हो—एक अच्छी मङ्गली।

—और हो सकता है कि जिस पुत्र को वह जन्म दे वह बड़े काम करे, बड़े राज्यों का शासक हो। श्रेष्ठ माता का इस प्रकार का पुत्र अपने देश का नेता हो।”

३. पति और पत्नि

१. एक समय भगवान् बुद्ध मधुरा (= मधुरा) और नेरञ्जा के बीच के महापथ से चले जा रहे थे। बहुत से गृहस्थ तथा उनकी पत्नियाँ मधुरा (= मधुरा) और नेरञ्जा के बीच के महापथ से चली जा रही थीं।

२. उस समय भगवान् बुद्ध सड़क छोड़कर एक वृक्ष के नीचे जा विराजमान हुए। इन गृहस्थों और उनकी पत्नियों ने भी भगवान् बुद्ध को एक वृक्ष के नीचे बैठे देखा।

३. मह देख वे जहाँ तबामत विराजमान थे, वहाँ आये। जाकर अभिवादन किया और एक ओर बैठ कर उन्होंने तबामत से पूछा कि पति पत्नि का आपस का ठीक व्यवहार कैसा होना चाहिये? इस प्रकार बैठे हुए उन गृहस्थों तथा उनकी पत्नियों को भगवान् बुद्ध ने कहा—

४. “गृहपतियों! पति पत्नि के इकट्ठे रहने के चार रूप हैं। एक दुष्ट पुरुष एक दुष्ट स्त्री के साथ रहता है, एक दुष्ट पुरुष एक देवी के साथ रहता है, एक देवता एक दुष्ट स्त्री के साथ रहता है, और एक देवता एक देवी के साथ रहता है।

५. “गृहपतियों! एक पति हत्या करता है, चोरी करता है, व्यवहार करता है, झूठ बोलता है, मशौली चीजें पीता है, दुष्ट है, पापी है, लोभ-मुक्त मन

से गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, सदाचारियों को कटु-वचन बोलता है और गालियाँ देता है। उसकी पत्नि भी हत्या करती है, चोरी करती है, व्यभिचार करती है, झूठ बोलती है, नशीली चीजें पीती है, दुष्ट है, पापी है, लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत करती है, सदाचारियों को कटु-वचन बोलती है और गालियाँ देती है। हे गृहपतियों ! इस प्रकार एक दुष्ट पुरुष, एक दुष्ट स्त्री के साथ रहता है।

६. 'गृहपतियों ! एक पति हत्या करता है, चोरी करता है, व्यभिचार करता है, झूठ बोलता है, नशीली चीजें पीता है, दुष्ट है पापी है, लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, सदाचारियों को कटु-वचन बोलता है और गालियाँ देता है। लेकिन उसकी पत्नि न हत्या करती है, न चोरी करती है, न व्यभिचार करती है, न झूठ बोलती है, न नशीली चीजें पीती है, न दुष्ट है, न पापी है, न लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत करती है, न सदाचारियों को कटु-वचन बोलती है और न गालियाँ देती है। इस प्रकार गृहपतियों ! निश्चय एक दुष्ट आदमी एक स्त्री के साथ रहता है।

७. 'गृहपतियों ! एक पति हत्या नहीं करता, चोरी नहीं करता, व्यभिचार नहीं करता, झूठ नहीं बोलता, नशीली चीजें नहीं पीता, दुष्ट नहीं है, पापी नहीं है, लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत नहीं करता, सदाचारियों को कटु-वचन नहीं बोलता और गालियाँ नहीं देता। लेकिन, उसकी पत्नि हत्या करती है, चोरी करती है, व्यभिचार करती है, झूठ बोलती है, नशीली चीजें पीती है, दुष्ट है, पापी है, लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत करती है, सदाचारियों को कटु-वचन बोलती है और गालियाँ देती है। इस प्रकार गृहपतियों ! निश्चय से एक देवता एक स्त्री के साथ रहता है।

८. 'गृहपतियों ! एक पति पत्नि न हत्या करते हैं, न चोरी करते हैं, न व्यभिचार करते हैं, न झूठ बोलते हैं, न नशीली चीजें पीते हैं, न दुष्ट हैं, न पापी हैं, न लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हैं, न सदाचारियों को कटु-वचन बोलते हैं और न गालियाँ देते हैं। इस प्रकार गृहपतियों ! निश्चय से एक देवता एक दुष्ट स्त्री के साथ रहता है।

९. 'गृहपतियों ! पति-पत्नि के दकदूँ रहने के ये चार रूप हैं।'^३

सुचरित्र बने रहने के लिये प्रवचन

१. आदमी का पतन कैसे होता है ?

१. एकबारभगवान् बुद्ध धावस्ती में अनापिण्डक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे।^४

२. अब जब रात काफी बीत चुकी थी, तो एक देवता, जिसके प्रकाश ने

सारे जैतवन को प्रकाशित कर दिया था, तथागत के पास आया और पास आकर थड़ापूर्वक अभिवादन किया और एक ओर खड़ा हो गया। इस प्रकार खड़े होकर उसने तथागत से निवेदन किया—

३. “तथागत ! मैं आपकी सेवा में प्रणत पृच्छने के लिये उपस्थित हुआ हूँ। कृपया बताएं कि आदमी का पतन कैसे होता है।” भगवान् बुद्ध ने आदमी के पतन के कारणों का वर्णन करना स्वीकार किया—

४. “उन्नतिशील आदमी के लक्षण भी आसान हैं और पतनोन्मुख आदमी के लक्षण भी आसान हैं। जो धर्म से प्रेम करता है वह उन्नत होता है, जो धर्म से घृणा करता है, उसका पतन होता है।

५. “असत्पुरुष उसे अच्छे लगते हैं, सत्पुरुष उसे अच्छे नहीं लगते, असत्पुरुषों का धर्म अच्छा लगता है—यह पतनोन्मुख आदमी का दूसरा लक्षण है।

६. वह तन्द्रालु होता है, उसे मर्त्य मारना अच्छा लगता है, वह परिश्रमी नहीं होता, सुस्त होता है और कोधी होता है—यह पतनोन्मुख का तीसरा लक्षण है।

७. “जो पास में पैसा रख कर भी अपने मत-वीचन बुद्ध माता-पिता का पालन पोषण नहीं करता—यह पतनोन्मुख का चौथा लक्षण है।

८. “जो झूठ बोलकर किसी भले आदमी (= ब्राह्मण) को, किसी धर्मज को वा किसी अन्य साधु को ठगता है—यह पतनोन्मुख का पाँचवाँ लक्षण है।

९. जो आदमी बहुत सम्पत्ति रखता है, जिसके पास बहुत धन-धान्य है; लेकिन जो उसे अकेला ही भोगता है—यह पतनोन्मुख का छठा लक्षण है।

१०. “जिस आदमी को अपने जन्म का, धन का वा जाति का अभिमान है और अपने सम्बन्धियों से ही दूर दूर रहता है—यह पतनोन्मुख आदमी का सातवाँ लक्षण है।

११. “जो आदमी ध्वमिचारी है, शरापी है, जुआरी है और जो कुछ पास है उसे ऐसीआराम में सुटाता है—यह पतनोन्मुख आदमी का आठवाँ लक्षण है।

१२. “जो अपनी पत्नि से ही सन्तुष्ट न रहकर, वेश्याओं तथा पर-स्त्रियों के पास जाता है—यह पतनोन्मुख आदमी का नवाँ लक्षण है।

१३. “जो आदमी किसी असंयत फजूल-खर्च आदमी वा स्त्री को अधिकारी बना देता है—यह पतनोन्मुख आदमी का ग्यारहवाँ लक्षण है।

१४. “जो क्षत्रिय, अल्प साधन रखते हुए किन्तु बड़ी महत्वाकांक्षा होने के कारण राजा बनने की अकांक्षा रखता है—यह पतनोन्मुख आदमी का बारहवाँ लक्षण है।

१५. “हे देव ! पतन के इन कारणों को जान ले। यदि तू इनसे बचा रहेगा, तो तू सुरक्षित रहेगा।”

२. बुरा आदमी

१. चारिका करते समय भगवान् बुद्ध ने उन भिक्षुओं को जो साथ चल रहे थे, यह उपदेश दिया—

२. भिक्षुओं को सम्बोधित करके भगवान् बुद्ध ने कहा—

“क्या तुम जानते हो कि बुरे आदमी की पहचान क्या है?”

“भन्ते ! नहीं ।”

३. “मैं तुम्हें एक बुरे आदमी की पहचान बतलाता हूँ ।”

४. “कोई कोई आदमी होता है जो पूछे जाने पर तो कहना ही क्या बिना पूछे ही दूसरों के दुर्गुणों का वर्णन करता है । लेकिन पूछे जाने पर, प्रश्न किये जाने पर, वह दूसरों के दुर्गुण बिना बके, बिना छिपाये, बड़े विस्तार से कहता है । भिक्षुओं ऐसा आदमी बुरा आदमी होता है ।

५. “कोई कोई आदमी होता है, जो न पूछे जाने पर तो कहना ही क्या, पूछे जाने पर भी दूसरे आदमियों के गुण नहीं कहता । पूछे जाने पर, प्रश्न किये जाने पर, वह दूसरों के गुण कहता है ।

६. “कोई कोई आदमी होता है, जो न पूछे जाने पर तो कहना ही क्या, पूछे जाने पर भी अपने दुर्गुण प्रकट नहीं करता । पूछे जाने पर, प्रश्न किये जाने पर वह अपने दुर्गुण प्रकट करता है, लेकिन उन्हें डकता है और छिपाता है और उनका पूरा व्योरा नहीं बताता । भिक्षुओं, ऐसा आदमी बुरा आदमी होता है ।

७. “कोई कोई आदमी होता है, जो पूछे जाने की तो बात ही क्या, बिना पूछे जाने पर ही अपने गुणों का वर्णन करता है । पूछे जाने पर, प्रश्न किये जाने पर, वह अपने सद्गुणों का वर्णन करता है । वह उनको डकता नहीं, छिपाता नहीं । वह उनका पूरा निवरण देता है । भिक्षुओं, ऐसा आदमी बुरा आदमी होता है ।”

३. सर्वश्रेष्ठ आदमी

१. चारिका करते समय भगवान् बुद्ध ने उन भिक्षुओं को जो साथ चल रहे थे, यह उपदेश दिया—

२. भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए भगवान् बुद्ध ने कहा—

“भिक्षुओं ! इस संसार में चार तरह के लोग हैं ।”

३. “(१) जिसने न अपना भला किया और न किसी दूसरे को भला किया, (२) जिसने दूसरों का भला किया, किन्तु अपना भला नहीं किया, (३) जिसने अपना भला किया, किन्तु दूसरों का भला नहीं किया तथा (४) जिसने अपना भी भला तथा दूसरों का भला भी किया ।

४. जिस आदमी ने न अपना भला करने का प्रयास किया और न दूसरों

का भला करने का प्रयास किया, वह समान की उस लकड़ी की तरह है जो दोनों सिरों पर जल रही है, और जिसके बीच में मैला लगा है। वह न पाँव में ही जलावन के काम आती है और न जंगल में। इस तरह का आदमी न संसार के किसी काम का होता है, न अपने किसी काम का।

५. “जो अपनी हानि करके दूसरों का उपकार करता है, वह दोनों में अधिक अच्छा है।

६. “किन्ति भिक्षुओं ! चारों तरह के आदमियों में सबसे अच्छा तो वही है जिसने दूसरों का भला करने का भी प्रयास किया है और अपना भला करने का भी प्रयास किया है।” ५

४. जानी आदमी

१. एक बार भगवान् बुद्ध उकटुठ और सेतब्ब नामक दो नगरों के बीच के महापथ पर जा रहे थे। उसी समय दोन नामक ब्राह्मण भी उकटुठ और सेतब्ब नामक दो नगरों के बीच के महापथ पर जा रहा था।

२. उस समय तत्थागत ने सड़क छोड़ दी और एक वृक्ष के नीचे जाकर पचासस लगा कर बैठे। तब दोन ब्राह्मण भी उनके चरण-चिन्हों को देखता हुआ वहाँ जा पहुँचा जहाँ तत्थागत उस वृक्ष के नीचे ज्ञान्त-मुद्रा में, संयतेन्द्रिय, प्रसन्न-वदन और एकाग्रचित बैठे थे। यह देख दोन ब्राह्मण तत्थागत के पास पहुँचा।

३. पास पहुँचकर उसने प्रश्न किया—

“क्या आप देवता नहीं हैं?”

“ब्राह्मण ! मैं निश्चय से देवता नहीं हूँ।”

“क्या आप गन्धर्व नहीं हैं?”

“ब्राह्मण ! मैं निश्चय से गन्धर्व नहीं हूँ।”

“आप यक्ष नहीं हैं?”

“ब्राह्मण ! मैं निश्चय से यक्ष नहीं हूँ।”

“आप आदमी नहीं हैं?”

“ब्राह्मण मैं निश्चय से (सामान्य) आदमी नहीं हूँ।”

४. तत्थागत के ये उत्तर सुने तो दोन ब्राह्मण बोला—

“आप से देवता है, पूछे जाने पर आपका उत्तर है नहीं,

आप से गन्धर्व है, पूछे जाने पर आपका उत्तर है नहीं,

आपसे यक्ष है, पूछे जाने पर आप का उत्तर है नहीं,

आपसे मनुष्य है, पूछे जाने पर आपका उत्तर है नहीं,

तो आखिर आप क्या हैं?”

१. 'ब्राह्मण ! मैं निश्चय से एक देव, एक गन्धर्व, एक यक्ष, एक मानव सब कुछ था, जब तक मैंने अपने आस्रवों का त्याग नहीं किया था। अब मैं इन आस्रवों से मुक्त हूँ, ये कटे ताड़-वृक्ष के समान हो गये हैं, ये अबूमूल से जाते रहे हैं।' इनकी पुनरुत्पत्ति की सम्भावना नहीं रही है।

६. 'जिस प्रकार एक कौबल पानी में उत्पन्न होता है, पानी में बढ़ता है, पानी से बाहर निकल आता है और फिर पानी से अस्पृष्ट होकर रहता है; इसी प्रकार हे ब्राह्मण ! मैं संसार में उत्पन्न हुआ हूँ, संसार में बढ़ा हुआ हूँ किन्तु अब संसार को जीत कर संसार से अस्पृष्ट होकर रहता हूँ।

७. 'इसलिए ब्राह्मण ! अब तुम मुझको तवागत (= जानी आदमी) जानो।'

५. मनुष्य-न्यायी तथा सज्जन

१. भिक्षुओं को सम्बोधित करके भगवान् बुद्ध ने कहा—'चार प्रकार के लोगों का भेद जानना चाहिये, यदि तुम न्यायी और सज्जन आदमी को पहचान करना चाहते हो।'

२. 'भिक्षुओ, कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपनी भलाई करने की कोशिश करते हैं, दूसरों की नहीं।

३. 'भिक्षुओ, एक आदमी अपने कामच्छन्द को दूर करने की कोशिश करता है, किन्तु दूसरों के कामच्छन्द को दूर करने की प्रेरणा नहीं करता; अपने व्यापाद (= क्रोध) को दूर करने की कोशिश करता है, किन्तु दूसरों के क्रोध को दूर करने की प्रेरणा नहीं करता; अपनी अविद्या को दूर करने की कोशिश करता है, किन्तु दूसरों की अविद्या दूर करने की प्रेरणा नहीं करता।

४. 'भिक्षुओ ! यह आदमी निश्चय से अपनी भलाई करने की कोशिश करता है दूसरों की नहीं।

५. भिक्षुओ, कुछ लोग ऐसे होते हैं जो दूसरों की भलाई करने की कोशिश करते हैं, अपनी नहीं।

६. 'भिक्षुओ, एक आदमी अपने कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या को दूर करने की कोशिश नहीं करता, किन्तु दूसरों के कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या दूर करने की प्रेरणा देता है।

७. 'भिक्षुओ ! यह आदमी निश्चय से दूसरों की भलाई करने की कोशिश करता है, अपनी नहीं।

८. 'भिक्षुओ, कुछ लोग ऐसे होते हैं जो न अपनी भलाई करने की कोशिश करते हैं और न दूसरों की भलाई करने की कोशिश करते हैं।

९. भिक्षुओ, एक आदमी न अपने कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या को दूर

बौद्ध धर्म

करने की कोशिश करता है न दूसरों के कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या के दूर करने की प्रेरणा देता है।

१०. 'भिक्षुओ ! यह आदमी निश्चय से न अपनी भलाई करने की कोशिश करता है और न दूसरों की।

११. 'भिक्षुओ ! कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपनी भलाई करने की कोशिश भी करते हैं तथा दूसरों की भलाई करने की कोशिश भी करते हैं।

१२. 'भिक्षुओ ! एक आदमी अपने कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या को दूर करने की भी कोशिश करता है तथा दूसरों के भी कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या दूर करने की प्रेरणा करता है।

१३. 'भिक्षुओ ! यह आदमी निश्चय से अपनी भलाई करने की भी कोशिश करता है तथा दूसरों की भलाई करने की भी कोशिश करता है।'

१४. यह अन्तिम आदमी ही न्यायी और सम्मन माना जाना चाहिये।

६. शुभ-कर्म करने की आवश्यकता

१. एक अवसर पर भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को इस प्रकार सम्बोधित किया—

२. 'भिक्षुओ कुशल-कर्म करने में मत शिथिलो। यह जो 'कुशल-कर्म' शब्द है यह एक प्रकार से 'सुख' का, या जिसकी हम इच्छा करते हैं उसका, या जो कुछ हमको प्रिय है उसका अर्थवा जो कुछ हमें आनन्द देने वाला है उसका पर्याय ही है। भिक्षुओ ! मैं स्वयं साक्षी हूँ कि मैंने स्वयं चिरकाल तक शुभ-कर्मों के इच्छित, शचिकर, प्रिय तथा आनन्द-दायक फल का उपभोग किया है।'

३. 'मैं प्रायः अपने आप से पूछता हूँ कि यह किस कुशल-कर्म का परिणाम है, यह किस कुशल-कर्म का फल है कि मैं इस समय इतना सन्तुष्ट और सुखी हूँ ?

४. 'जो उत्तर मुझे मिलता है वह यह है कि यह तीन कुशल-कर्मों का फल है— दान का, नील का तथा संयम का।

५. 'वह षड़ी संसल षड़ी होती है, वह षड़ी उत्सव मनाने की षड़ी होती है, वह षड़ी आनन्द मनाने की षड़ी होती है, वह षड़ी संसलमय-मुहूर्त होती है जब दान के योग्य अधिकारियों को दान दिया जाता है, जब शुभ-कर्म, शुभ-वचन तथा शुभ-विचारों के परिणाम-स्वरूप इन का अभ्यास करने वालों को शुभ-फल की प्राप्ति होती है।

६. 'भगवान् हैं ने जिन्हें इस लाभ की प्राप्ति होती है, जिन्हें इस समृद्धि की प्राप्ति होती है। इसलिये तुम भी अपने सब सगे-सम्बन्धियों सहित निरोग और सुखी रहते हुए सत्यपथ की समृद्धि की प्राप्ति करो।'

७. शुभ संकल्प करने की आवश्यकता

१. एक बार श्रावस्ती में जेतवन में विहार करते समय भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को कहा—

२. "भिक्षुओं, पवित्र और सुखी जीवन व्यतीत करने के लिये शुभ-संकल्पों की निरन्तर आवश्यकता है।

३. "मैं तुम्हें बताता हूँ कि तुम्हारे शुभ-संकल्प कैसे होने चाहिए।

४. (१) संकल्प होना चाहिये कि हम जीवन भर माता-पिता की सेवा करेंगे। (२) संकल्प होना चाहिये कि हम अपने बड़ों का आदर करेंगे। (३) संकल्प होना चाहिये कि हम मधुर-भाषी रहेंगे। (४) संकल्प होना चाहिये कि हम किसी की बुराई नहीं करेंगे, (५) संकल्प होना चाहिये कि हम अपने हृदय को स्वार्थपरता से मुक्त कर, दान-शील होकर रहेंगे। (६) संकल्प होना चाहिये कि हमें जो कुछ प्राप्त होगा, वह हम दूसरों में बाँट कर ग्रहण करेंगे।

५. "संकल्प होना चाहिये कि हम जीवन भर शान्त रहेंगे और यदि क्रोध उत्पन्न होगा तो हम उसे शान्त कर देंगे।

६. भिक्षुओं, ये सात संकल्प हैं जिन्हें तुम अपने मन में जगह देने से और जिनके अनुसार आचरण करने से जीवन को सुखी और पवित्र बना सकोगे।"

सदाचरण सम्बन्धी प्रवचन

१. सदाचरण क्या है ?

१. एक बार जब भगवान् बुद्ध महान् भिक्षु संघ सहित चारिका कर रहे थे तो वह शाला नाम के एक ब्राह्मण-ग्राम में पहुँचे। यह ग्राम कोशल-जनपद में था।

२. शाला ग्राम के ब्राह्मण-मुनियों ने सुना कि चारिका करते करते भगवान् बुद्ध उनके कोशल जनपद स्थित गाँव में आये हैं।

३. उनको लगा कि भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ जाना अच्छा है। इसलिये शाला ग्राम के ब्राह्मण भगवान् बुद्ध के पास गये और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये।

४. उन्होंने तथामत से प्रार्थना की कि वे बतायें कि सदाचरण का क्या मतलब है ?

५. श्रुति देकर सुनने के लिये उद्यत ब्राह्मणों को भगवान् बुद्ध ने कहा—
"शरीर के तीन दुराचरण होते हैं, वाणी के चार दुराचरण होते हैं और मन के तीन दुराचरण होते हैं।

६. जहाँ तक शरीर के दुराचरण की बात है एक आदमी (१) रक्त-रंजित हाथों

से, हटारा होने के कारण, प्राणियों के प्रति किसी भी प्रकार की दया न होने के कारण-जीव हत्या कर सकता है, (२) वह गांव या जंगल में जो वस्तु उसकी नहीं है, उसे चोरी की नियत से बिना दिये गये ले सकता है; अथवा वह व्याभिचारकर सकता है, माता, पिता, भाई, बहुत अथवा अन्य सम्बन्धियों की अधीनता में रहने वाली (अविवाहित) लड़कियों से, ऐसी लड़कियों से भी जिनकी मंगनी हो गई है, जिनके गले में मंगनी की माला पड़ी है।

७. जहाँ तक वाणी के दुराचरण की बात है कि (१) आदमी झूठ बोल सकता है, जब उसे समा के सामने या ग्राम-पंचायत के सामने या परिवार-परिषद के सामने या राजकीय-परिषद के सामने या अपनी श्रेणी के सामने साक्षी देने के लिये कहा जाय तो वह न जानते हुए कह सकता है कि मैं जानता हूँ, जानता हुआ कह सकता है कि मैं नहीं जानता हूँ; न देखते हुए कह सकता है कि मैंने देखा है और देखते हुए कह सकता है कि मैंने नहीं देखा, वह अपने हित में, किसी दूसरे के हित में अथवा किसी लोभ के कारण जानबूझ कर झूठ बोल सकता है। अथवा (२) वह एक चुगल-खोर हो सकता है, यहाँ सुनी और वहाँ जाकर कह दी ताकि यहाँ के लोगों और वहाँ के लोगों का झगड़ा हो जाय, अथवा वहाँ सुनी और यहाँ कह दी ताकि वहाँ के लोगों और यहाँ के लोगों का झगड़ा हो जाय, वह मान्तिको भंग करने वाला और अशान्ति को उत्तेजित करने वाला होता है, झगड़ा लगाने की नीयत से ही वह बोलता है, झगड़ा लगाने में ही उसे आनन्द आता है, मजा आता है, प्रसन्नता होती है। अथवा (३) वह जवान का कटुबा हो सकता है, जो कुछ वह बोलता है वह अभ्रिय और कठोर होता है, दूसरों के दिलों को बचमी करने वाला, दूसरों को दुःख पहुंचाने वाला, क्रोध को उत्तेजित करने वाला और एकाग्रता को भंग करने वाला। अथवा (४) वह एक बकवासी हो सकता है, व्यर्थ बिना मतलब की बात करते रहने वाला, कभी धर्म की बात न करने वाला, कभी नीति की बात न करने वाला, हमेशा ही तुच्छ, असामयिक, निरुद्देश्य तथा निष्प्रयोजन बात करने वाला।

८. जहाँ तक मन के दुराचरण की बात है एक आदमी (१) लोभी हो सकता है, वह यह इच्छा कर सकता है कि दूसरे सभी लोगों की सम्पत्ति उसी की हो; अपना (२) वह द्वेष-बहुल हो सकता है, वह यह इच्छा कर सकता है कि उसके आस-पास के प्राणी मारे जायें, नष्ट हो जायें, किसी तरह न रहें; अथवा (३) वह मिथ्या दृष्टि हो सकता है, मिथ्या-धारणाओं वाला, वह यह सोच सकता है कि दान, त्याग (= यज्ञ) और दक्षिणा जैसी कोई चीज नहीं, शुभाशुभ कर्मों के फल जैसी कोई चीज नहीं, लोक-परलोक जैसी कोई चीज नहीं, माता-पिता या दूसरे सम्बन्धी जैसी कोई चीज नहीं और कि संसार में कोई ऐसे अमण-ब्राह्मण नहीं हैं जिन्होंने सम्पत्-मार्ग ग्रहण कर या सम्पत्-मार्ग पर चल कर इस लोक तथा परलोक का यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया हो और दूसरों को भी कराया हो।

६. इनके विरुद्ध तीन शरीर के सदाचरण हैं, चार बाणी के सदाचरण हैं और तीन मन के सदाचरण हैं।

१०. जहाँ तक शारीरिक सदाचरण की बात है, एक आदमी (१) जीव-हिंसा से विरत होता है, हर तरह की प्राणी-हिंसा से विरत रहता है; दण्ड-त्यागी, खड्ग-त्यागी; वह निरपराधी होता है, वह दयालु होता है, उसके मन में हर प्राणी के लिये करुणा और अनुकम्पा रहती है। (२) वह चोरी का त्याग करता है, वह दूसरों की किसी ऐसी चीज का ग्रहण नहीं करता, जो उसे दी न गई हो। वह ईमानदारी का जीवन व्यतीत करता है। (३) वह काम-भोग सम्बन्धी मिथ्या-चार से दूर रहता है। वह ऐसी लड़कियों से सहवास नहीं करता जो माता-पिता, भाई-बहन अथवा अन्य सम्बन्धियों की अधीनता में रहने वाली (अविवाहिता) लड़कियाँ हों और ऐसी लड़कियों से भी जिनकी संगत हो गई है वा जिनके गले में संगमी की माला पड़ गई है।

११. जहाँ तक बाणी के सदाचरण की बात है एक आदमी (१) झूठ का त्याग करता है, मृषावाद से विरत रहता है, जब उसे सभा के सामने या धाम-पंचायत के सामने या परिवार-परिषद के सामने या राजकीय-परिषद के सामने या अपनी श्रेणी के सामने साक्षी देने के लिए कहा जाता है तो वह न जानते हुए कहता है कि मैं नहीं जानता हूँ, जानते हुए कहता है कि मैं जानता हूँ, नहीं देखता होता तो कहता है कि मैंने नहीं देखा, देखा होता है तो कहता है कि देखा है; वह अपने हित में, वा दूसरे के हित में अथवा किसी लाभ के कारण जातबूझ-कर झूठ नहीं बोलता। (२) वह चूगल-खोरी नहीं करता, यहाँ सुनो और वहाँ कह दी ताकि यहाँ के लोगों और वहाँ के लोगों का झगड़ा हो जाय, अथवा वहाँ सुनो और यहाँ कह दी कि वहाँ के लोगों का झगड़ा हो जाय, वह शांति को भंग करने वाला और अशांति को उत्तेजित करने वाला नहीं होता, घान्ति कराने की नीयत से ही वह बोलता है, मत-मिलाव कराने में ही उसे आनन्द आता है, मजा आता है अथवा प्रसन्नता होती है। (३) वह जवान का कटुवा नहीं होता, जो कुछ वह बोलता है बिना कटुता के होता है, प्रिय होता है, मैत्री-भाव लिये होता है, दिल से बोलता है, जिष्ट बोलता है, अनुकूल बोलता है तथा सब को अच्छा लगने वाला बोलता है। (४) वह बकवासी नहीं होता, बिना मतलब की व्यर्थ बात करने वाला नहीं होता। हमेशा धर्म की बात, नीति की बात करने वाला होता है, ऐसी बात जो समयानुकूल है, ऐसी बात जो याद रहे, ऐसी बात जो जान-भरी हो, ऐसी बात जो ठीक से कही गई हो तथा ऐसी बात जो हितकर हो।

१२. जहाँ तक मन के सदाचरण की बात है वह आदमी (१) निर्लोभी होता है, वह कभी यह नहीं चाहता कि दूसरे लोगों की सारी सम्पत्ति पर उसका अपना अधिकार हो जाय, (२) वह कभी अपने मन में द्वेष को स्थान नहीं देता,

उसकी मही इच्छा रहती है कि उसके आसपास के सभी प्राणी शान्ति और सुख के साथ रहें, हर प्रकार की सत्ता और अत्याचार से मुरझित रहें। (३) उसकी दृष्टि सम्यक् होती है तथा उसके संकल्प और धारणायें भी ठीक होती हैं।”

१३. “दुराचरण तथा सदाचरण से मेरा यही अभिप्राय है।”

२. सदाचरण की आवश्यकता

१. तब तवागस्त ने पाटलिपाम के उपासकों को सम्बोधित किया—

२. “हे गृहपतिगो ! दुःशील दुष्ट आदमी को यह दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं।

३. दुःशील दुष्ट आदमी प्रमाद के कारण धन की बहुत हानि उठाता है।

४. उसका अपयज्ञ होता है, जो उसे दुनिया की तज्जों में गिरा देता है।

५. वह किसी भी जमात में जाये, चाहे वह क्षत्रिय-परिषद हो, चाहे ब्राह्मण-परिषद हो, चाहे गृहपति-परिषद हो अथवा चाहे अमण-परिषद हो—वह हर जगह बड़े संकोच से जाता है, व्यग्र-चित्त हो जाता है। वह निर्भय नहीं होता। यह तीसरी हानि है।

६. फिर उसे मरते समय शान्ति नहीं होती, वह मरण-काल में दुःखी रहता है। यह चौथी हानि है।

७. हे गृहपतिगो ! दुःशील दुष्ट आदमी को ये दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं।

८. हे गृहपतिगो ! अब उन लोगों का विचार करो जो सज्जन शीलवान् आदमी को प्राप्त होते हैं।

९. “सज्जन शीलवान् आदमी अप्रमाद के कारण बहुत धन-संग्रह कर लेता है।

१०. “उसका सुपण फैल जाता है। वह जहाँ जाता है सम्भावित होता है।

११. वह किसी भी जमात में जाये, चाहे वह क्षत्रिय-परिषद हो, चाहे ब्राह्मण-परिषद हो, चाहे गृहपति-परिषद हो अथवा चाहे अमण-परिषद हो—वह हर जगह निस्संकोच जाता है, निर्भय हो प्रवेश करता है।

१२. फिर, उसे मानसिक शान्ति प्राप्त रहती है, मरते समय वह चित्त की शान्ति के साथ शरीर त्यागता है।

१३. सज्जन आदमी पाप करते समय यह तक नहीं जानता कि वह पाप कर रहा है। अग्नि के समान उसके पाप-कर्म उसे जला देते हैं।

१४. जो कोई ऐसे व्यक्ति को—जो अहानिकर है, जो निर्दोष है—दुःख देता है, वह या तो किसी बड़ी दुर्घटना का शिकार हो जाता है या उसका चित्त हो विक्षिप्त हो जाता है या उसके धन की बड़ी हानि होती है।”

३. सदाचरण और दुनिया की जिम्मेदारियाँ

१. एक बार जब भगवान् बुद्ध राजगृह के वेलुवनाराम में उस जगह ठहरे हुए थे, जहाँ मिलहरियों को घाना चुगाया जाता था, उसी समय बहुत से भिक्षुओं को साथ लिये आमुष्मान सारिपुत्र दक्षिण की पहाड़ियों में चारिका कर रहे थे।^{१२}

२. रास्ते में उनकी एक भिक्षु से मुलाकात हुई जिसने राजगृह में वपविास किया था। शिष्टाचार की बात हो चुकी तब सारिपुत्र ने भगवान् बुद्ध का तथा संघ का कुशल-समाचार पूछा। उन्हें बताया गया कि वे अच्छी तरह हैं। तब सारिपुत्र ने राजगृह के तण्डुलताल-झार के धानज्जानी ब्राह्मण का कुशल-समाचार पूछा। उन्हें बताया गया कि वह भी अच्छी तरह है।

३. तब सारिपुत्र ने उस भिक्षु से प्रश्न किया:—“और क्या धानज्जानी ब्राह्मण अप्रमादपूर्वक रह रहा है?”

४. भिक्षु का उत्तर था:—“धानज्जानी ब्राह्मण अप्रमादपूर्वक कैसे रह सकता है? वह ब्राह्मणों और गृहपतिओं को मूण्डने के लिये राजा का उपयोग करता है और राजा को मूण्डने के लिये ब्राह्मणों और गृहपतिओं का उपयोग करता है। और बड़े सुशील कुल से आई हुई जो उसकी सुशील पत्नी थी, वह भी अब मर गई है। उसने अब एक दूसरी पत्नी रखी है जो न सुशील-कुल से आई है और न स्वयं सुशील है।”

५. सारिपुत्र बोले:—“धानज्जानी के प्रमाद के बारे में यह तो सचमुच बुरा समाचार, बहुत बुरा समाचार सुनने के लिये मिला। शायद कहीं कभी उससे भेंट हो तो मैं उससे बातचीत करना पसन्द करूँगा।”

६. दक्षिण की पहाड़ियों में गयेच्छ रह चुकने के बाद सारिपुत्र चारिका करते करते राजगृह आये और वेलुवनाराम में निवास किया।

७. दूसरे दिन प्रातःकाल, चीवर पहन और पात्र हाथ में ले सारिपुत्र मिश्राटन के लिये नगर में गये। वह ऐसे समय गये जब धानज्जानी ब्राह्मण नगर से बाहर अपनी गौओं का दुहा जाना देख रहा था।

८. मिश्राटन के अनन्तर भिक्षा ग्रहण कर चुकने पर सारिपुत्र ने उस ब्राह्मण को डूँड लिया। सारिपुत्र को आता देख वह ब्राह्मण उन्हें मिलने के लिये आया और आते ही पहले दूध पीने का निमन्त्रण दिया।

९. “ब्राह्मण! नहीं आज का भोजन मैं समाप्त कर चुका और अब मध्याह्न के समय एक वृक्ष की छाया के नीचे विश्राम करूँगा। मुझे मिलने के लिये वहाँ आना।”

१०. धानज्जानी ने स्वीकार किया और अपना खाना खा चुकने के बाद सारिपुत्र के पास आया और अभिवादन कर बैठ गया।

११. सारिपुत्र ने ही बात-चीत आरम्भ की — “ध्यानस्थानी ! क्या मैं विश्वास करूँ कि तु पहले जैसे ही अप्रमादी तथा सदाचरण की विन्ता करने वाले हो ?”

१२. “यह कैसे हो सकता है जब अपनी खाने-पीने की चिन्ता करने के अतिरिक्त अपने माता-पिता का पालन करना पड़ता है; अपनी पत्नी और परिवार का पोषण करना पड़ता है; अपने दासों और नौकर-चाकरों को खाना देना पड़ता है, अपने परिचितों, मित्रों, रिश्तेदारों और अतिथियों का अतिथ्य करना पड़ता है, अपने मृत-पितरों का आढ़ भी करना पड़ता है, देवताओं को भी बलि देनी पड़ती है और राजा को भी कर चुकाना पड़ता है ?”

१३. “ध्यानस्थानी ! तुम क्या सोचते हो ? मान लो की एक जादूमी ने अपने माता-पिता के कारण त्याग और औचित्य का मार्ग छोड़ दिया है और अब वह पकड़ा जा रहा है, तो क्या इससे उसे कोई लाभ होगा यदि वह कहे कि उसने अपने माता-पिता के लिये ग्याग और औचित्य के पथ का त्याग कर दिया था और इसलिये उसे न पकड़ा जाये ?”

१४. “नहीं, सब प्रार्थनाओं के बावजूद, जेलर उसे जेल में डाल देगा ।”

१५. “क्या इससे उसे कोई लाभ होगा यदि वह स्वयं कहे अथवा उसकी पत्नी और परिवार के सदस्य कहें कि उसने उनकी खातिर ग्याग और औचित्य के पथ का त्याग किया था ?”

१६. “नहीं ।”

१७. “क्या इससे उसे कोई लाभ होगा यदि उसके दास या दूसरे नौकर-चाकर उसकी बकालत करें ।”

१८. “बिलकुल नहीं ।”

१९. “अथवा उसके मित्रों या परिचितों ने उसकी बकालत की ?”

२०. “बिलकुल नहीं ।”

२१. “अथवा उसके रिश्तेदारों या अतिथियों ने उसकी बकालत की ?”

२२. “बिलकुल नहीं ।”

२३. “अथवा उसके मृत-पितरों ने ही उसकी बकालत की कि इसने देवताओं को ‘बलि’ देने के लिये या राजा को ‘कर’ देने के लिये ग्याग और औचित्य के मार्ग का त्याग किया था ?”

२४. “बिलकुल नहीं ।”

२५. “अथवा इससे उसे कोई लाभ होगा यदि या तो वह स्वयं कहे या उसकी ओर से दूसरे कहें कि इसने अपने खाने-पीने के लिये ही ग्याग और औचित्य का मार्ग छोड़ा है ?”

२६. “नहीं ।”

२७. धानञ्जलि ! तुम क्या सोचते हो ? दोनों में कौन अच्छा आदमी है ? क्या वह जो अपने माता-पिता के लिये न्याय और औचित्य का पथ त्याग देता है अथवा वह जो उनकी चिन्ता न कर न्याय और औचित्य के पथ को नहीं त्यागता ?”

२८. धानञ्जलि का उत्तर था:—“दूसरा, क्योंकि न्याय और औचित्य के पथ को त्यागने में न्याय और औचित्य के पथ को न त्यागना अच्छा है।”

२९. “और फिर धानञ्जलि ! दूसरे रास्ते हैं, जिनसे बिना न्याय और औचित्य का त्याग किये, बिना कुमार्ग पर चले वह अपने माता-पिता का पालन कर सकता है। तो क्या स्त्री, परिवार और सभी दूसरों के सम्बन्ध में यही बात नहीं है ?”

३०. “सारिपुत्र ! यही बात है।”

३१. तब सारिपुत्र के कथन से प्रसन्न हो धानञ्जलि ब्राह्मण ने सारिपुत्र को धन्यवाद दिया और उठकर चला गया।

४. सदाचरण में सम्पूर्णता कैसे प्राप्त की जाय ?

१. एक बार जब भगवान् बुद्ध आवस्ती में जेतवनाराम में विराजमान थे, उनके पास पाँच सौ उपासक आये। उनमें से एक का नाम ‘धामिक’ था।

२. धामिक ने तयागत से पूछा:—“आपके श्रावक सदाचरण में पूर्णता कैसे प्राप्त करते हैं ?

३. “मैं आपसे यह प्रश्न इसलिये पूछता हूँ क्योंकि आप मानव-कल्याण के अनुपम मास्ता हैं।

४. “समर्थ तैयिक और परिव्राजक आप से पार नहीं पा सके। आयु-प्राप्त बुद्ध ब्राह्मण और दूसरे भी शास्वार्थ-प्रिय लोग आपके अनुयायी बन जाते हैं। आप के द्वारा उपदिष्ट सत्य बड़ा सूक्ष्म है, किन्तु बड़ा सु-आवृत्त है। सब लोग इसके लिये तरसते हैं। भगवान् ! कृपा करके हमें इस प्रश्न का उत्तर दें।”

५. भगवान् ! हम उपासकों को आप का परिशुद्ध धर्म भवण करना मिले।

६. तयागत ने उन (व्रती) उपासकों पर दया करके कहा:—“ध्यान दो। मैं तुम्हें शूद्राचरण के नियम कहता हूँ। सुनो और तदनुसार आचरण करो।”

७. “जात से पारो नहीं, हत्या न करो, हत्या का अनुमोदन न करो। सबल या दुर्बल किसी भी प्राणी हो—उसकी हिंसा न करो।”

८. “कोई उपासक जानबूझ कर न चोरी करे, न चोरी कराये और न चोरी का अनुमोदन करे—दूसरे जो दें वही ले।”

९. अब्रह्मचर्य्य को आग के गर्दे के समान समझे। अब्रह्मचारी बनकर विवाहिता स्त्री से भी संसर्ग न करे।”

१०. “निजो परिपद में, अदालत या बात-चीत में झूठ न बोलें, न वह किसी

को झूठ बोलने को प्रेरित करे और न उसका समर्थन करे। उसे चाहिये कि वह असत्य का त्याग कर दे।

११. "उपासक को चाहिये कि इस नियम को माने, नशीले पदार्थों को ग्रहण न करे। किसी को पान न कराये। किसी के पान करने का अनुमोदन न करे। देखें कि शराब आदमी को कैसा पागल बना देती है।

१२. शराब के नशे में उपासक पाप कर बैठते हैं तथा दूसरे प्रमादी उपासकों को पाप में प्रवृत्त करते हैं। इसलिये इस पागल बनाने वाले व्यसन का, इस मूर्खता का, इस "मूर्खों के स्वर्ग" का परित्याग करे।

१३. "प्राणी-हिंसा न करे, चोरी न करे, झूठ न बोले, नशीले पेय पदार्थों से दूर रहे, अवज्ञाव्यय से विरत रहे तथा रात को विकाल भोजन न करे।

१४. "सुगन्धियों तथा पुष्प-मालाओं आदि का त्याग करे तथा ऊँची-बड़ी बैय्या पर न सोये—इस प्रकार सभी उपोसव दिनों में वह व्रत ग्रहण करे; और पवित्र मन से इस अध्यात्मिक व्रत का पालन करे।

१५. "प्रातःकाल इन व्रतों को ग्रहण करे और शुद्ध, अद्वामुक्त चित्त से भिक्षुओं को यथा-सामर्थ्य भोजन तथा पेय पदार्थों का दान करे।

१६. "माता-पिता की सेवा करे। धार्मिक-ग्रन्था करे। इस प्रकार दुष्ट अद्वैतान उपासक ऊँचे पद को प्राप्त करता है।"

५. सन्मार्ग पर चलने के लिये साथी की प्रतीक्षा अनावश्यक

१. जिस प्रकार हाथी, मुड़ में बाण से गिरे हुए तीरों को सहन करता है, उसी प्रकार मुझे दुष्टों के दुश्चर्चों को सहन करना चाहिये; क्योंकि संसार में दुश्चर्चों की कमी नहीं।^१

२. जो हाथी शान्त-दान्त होता है, उसी को मुड़ में ले जाया जाता है; जो हाथी शान्त दान्त है उसी पर राजा चढ़ता है; इसलिये प्राणियों में वह शान्त-दान्त व्यक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है जिसे कोई कटु-वचन विचलित नहीं करता।^२

३. शिथिल खञ्जर अच्छा होता है, सिन्धु का शिथिल श्रेष्ठ-अश्व अच्छा होता है, शिथिल बल-सम्पन्न हाथी अच्छा होता; आदमियों में आत्म-संयत सबसे अच्छा होता है।^३

४. "ऐसे श्रेष्ठ वाहन भी हमें निर्वाण-पथ पर आगे नहीं ले जा सकते। हम स्वयं आत्म-निर्भर, आत्म-संयत होकर ही निर्वाण-पथ पर अग्रसर हो सकते हैं।"^४

५. "अप्रमाद में अनन्द मनाओ। स्मृति-सम्प्रजन्म युक्त रहो। कभी प्रमाद

मत करो। अपने आप को कुपय से हटाकर सुगम पर लाओ; हाथी को दलदल में से निकालो।^१

६. यदि तुम्हें कोई एक श्रेष्ठ, बुद्धिमान, दृढ़ साथी मिला है तो सब चिन्ताओं को छोड़कर उसके साथ प्रसन्नतापूर्वक विवरण करो।^२

७. यदि तुम्हें कोई श्रेष्ठ, बुद्धिमान साथी नहीं मिला है, तो जिस प्रकार राजा अपने विजित प्रदेश को छोड़कर जंगल में अकेले विचरने वाले हाथी की तरह अकेला चल देता है, उसी प्रकार अकेले ही विवरण करो।^३

८. अकेले रहना अच्छा है। मूर्खों का साथ हो ही नहीं सकता। अकेला रहे। कोई पाप-कर्म न करे। अल्पेच्छ रहे। एकान्त में रहे—जैसे जंगल में चल-सम्पन्न हाथी।^४

९. तमाम अकुशल-वैतनाओं का त्याग करे।

१०. अकुशल-वैतनाओं से मुक्ति-प्राप्त करने की विधि यह है:—

११. तुम्हें यह संकल्प करना होगा कि चाहे दूसरे लोग हानि करने वाले हों, तुम्हें किसी को नुकसान नहीं पहुँचाना होगा।

१२. चाहे दूसरे हिसक हों, तुम कभी हिसा नहीं करोगे।

१३. चाहे दूसरे चोरी करें, तुम नहीं करोगे।

१४. चाहे दूसरे पवित्र जीवन व्यतीत न करें, तुम करोगे।

१५. दूसरे चाहे किसी की निन्दा करें, विरुद्ध बोलें, व्यर्थ बोलें, तुम नहीं बोलोगे।

१६. चाहे दूसरे लोभ-जालच करें, तुम नहीं करोगे।

१७. चाहे दूसरे द्वेषी हों, तुम द्वेष नहीं करोगे।

१८. चाहे दूसरे मिथ्या-दृष्टि हों, तुम नहीं होगे। चाहे दूसरों के मिथ्या-संकल्प हों, तुम सम्यक्-संकल्प वाले रहोगे। चाहे दूसरों की मिथ्या-वाणी हो, तुम अपनी वाणी सम्यक् रखोगे। चाहे दूसरों के कर्म मिथ्या हों, तुम अपने कर्म सम्यक् रखोगे। चाहे दूसरों के जीविका के साधन मिथ्या हों, तुम अपने जीविका के साधन सम्यक् रखोगे। चाहे दूसरों का प्रयास (=साधना) असम्यक् हो, तुम अपना प्रयास सम्यक् करोगे। चाहे दूसरों की स्मृति और समाधि असम्यक् हो, तुम अपनी स्मृति और समाधि सम्यक् रखोगे।

१९. चाहे दूसरे (आर्य-) सत्त्यों और मुक्ति के बारे में गलत हों, तुम सत्त्यों और मुक्ति के (पथ के) बारे में ठीक होगे।

२०. चाहे दूसरे आलस्य और तन्द्रा से मुक्त हों, तुम आलस्य और तन्द्रा से मुक्त रहोगे।

२१. चाहे दूसरे अभिमानी हों, तुम विनम्र रहोगे।

२२. चाहे दूसरे विचिकित्सा-मुक्त हों, तुम विचिकित्सा-मुक्त रहोगे।

२३. चाहे दूतरे कोधी हों, दुष्ट हों, इर्ष्यालू हों, कंजूस हों, लोभी हों, डोंगी हों ठग हों, बंबक हों, उद्बल हों, दुस्ताहसी हों, किसी नीति के मानने वाले न हों, असिद्ध हों, जड़ हों, अभिमत हों, तथा अज्ञ हों—तुम नहीं होगे, अर्थात् तुम इन सब के विरुद्ध होगे ।

निर्वाण-सम्बन्धी प्रवचन

१. निर्वाण क्या है ?

१. एक बार भगवान बुद्ध धावस्ती में अनापरिणिक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे । वहीं सारिपुत्र भी थे ।

२. तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा—“भिक्षुओ ! तुम्हें धर्म का वायात (=उत्तराधिकारी) बनना चाहिये, भौतिक वस्तुओं का नहीं । क्योंकि मेरे मन में तुम सब के लिये अनुकम्पा है, इसलिये मैं तुम्हें यह कह रहा हूँ ।”^{१५}

३. इतना कहा और तथागत उठकर अपनी कुटी में चले गये ।

४. सारिपुत्र पीछे रह गये । तब भिक्षुओं ने सारिपुत्र से प्रार्थना की कि वे बतायें कि निर्वाण क्या है ?

५. तब सारिपुत्र ने भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा—“भिक्षुओ ! तुम जानते हो कि लोभ अकुशल-धर्म है, द्वेष अकुशल-धर्म है ।”

६. “इस लोभ और द्वेष से मोक्ष लाभ करने के हेतु मध्यम-मार्ग है, जो हमें आँख देने वाला है, ज्ञान देने वाला है, शान्ति, प्रज्ञा, बोधि तथा निर्वाण की ओर ले जाने वाला है ।

७. “यह मध्यम-मार्ग क्या है ? यह अष्टांगिक मार्ग के अतिरिक्त और कुछ नहीं, यही सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वाणी, सम्यक्-कर्मोत्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक्-व्यापार (=चित्त की साधना), सम्यक्-स्मृति तथा सम्यक् समाधि । भिक्षुओ ! यही मध्यम-मार्ग है ।

८. “हां भिक्षुओ ! क्रोध अकुशल-धर्म है, वटिष (=विरोधी-भाव) अकुशल-धर्म है, ईर्ष्या और मात्सर्य अकुशल-धर्म है, कंजुसपन और सलस अकुशल-धर्म है, डोंग, ठगी और उद्धतपन अकुशल-धर्म है, अनिमान अकुशल-धर्म है तथा प्रसाद अकुशल-धर्म है ।

९. “अभिमान और प्रसाद के त्याग के लिये मध्यम-मार्ग है जो आँख देने वाला है, ज्ञान देने वाला है तथा शान्ति, प्रज्ञा और बोधि की ओर ले जाने वाला है ।

१०. “आर्य अष्टांगिक मार्ग का ही दूसरा नाम निर्वाण है ।”

११. इस प्रकार महास्वविर सारिपुत्र ने कहा तो सभी भिक्षुओं ने आनन्दित हो उनका अनुमोदन किया।

२. निर्वाण का मूल

१. एक बार राघ स्वविर तथागत के पास आये। आकर तथागत को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। इस प्रकार बैठे हुए राघ स्वविर ने तथागत से निवेदन किया—“भगवान् ! निर्वाण किस लिये ?”

२. भगवान् बुद्ध ने उत्तर दिया—“निर्वाण का मतलब है राम-द्वेष से मुक्ति।”

३. “लेकिन भगवान् ! निर्वाण का उद्देश्य क्या है ?”

४. “राघ ! श्रेष्ठ जीवन निर्वाणाश्रित है। निर्वाण ही लक्ष्य है। निर्वाण ही उद्देश्य है।”^{१५}

(२)

१. एक बार तथागत श्रावस्ती में अनापिण्डिक के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। तब तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया—“भिक्षुओ !”
“भदन्त !” कहकर भिक्षुओं ने प्रत्युत्तर दिया। तब तथागत ने कहा—

२. “भिक्षुओ, क्या तुम्हें मेरे बताये उन पांच बन्धनों का ध्यान है जो आवर्मी को नीचे की ओर घसीट ले जाते हैं ?”^{१६}

३. इतना पूछने पर स्वविर मालुक्क-पुत्र ने तथागत से निवेदन किया :—

४. “भगवान् ! मुझे उन पांच बंधनों का ध्यान है।”

५. “मालुक्क पुत्र ! तुझे उन पांच बंधनों का कैसे ध्यान है ?”

६. “भगवान् ! मुझे ध्यान है कि आपने बताया है कि (छोटे बालक को) सककाय-विट्ठि (= लरीरात्म-दृष्टि), विचिकित्सा, शील-व्रतों पर निर्भर रहने की दृष्टि, काम-राग तथा द्वेष—ये पांच बंधन नीचे की ओर घसीट ले जाते हैं। भगवान् ! इन पांच बंधनों का मुझे ध्यान है।”

७. “मालुक्कपुत्र ! तू ये पांच बंधन किसके लिये बताये गये मानता है ? क्या दूसरे मतों के अनुयायी छोटे बालक को ही उपमा देकर तुझे यह कह कर दोष नहीं देमें कि—

८. “मालुक्कपुत्र ! आकाश की ओर मुंह करके लेटे हुए अबोध छोटे बालक की अभी काया ही अविकसित होती है। उसमें सककाय-विट्ठि कहां से उत्पन्न हो सकती है ? हां ! उसमें भी सककाय-विट्ठि का अंकुर तो मौजूद है।

९. “इसी प्रकार मालुक्क-पुत्र ! आकाश की ओर मुंह करके लेटे हुए अबोध छोटे बालक का अभी चित्त ही अविकसित होता है। तो फिर अभी उसमें चित्त की विचिकित्सा कहां से उत्पन्न होगी ? हां, विचिकित्सा का अंकुर अवश्य मौजूद है।

१०. "इसी प्रकार मानुष्य-पुत्र ! अभी इस अवस्था में उसका कुछ शील ही नहीं हो सकता । तब शील-वत् पर निर्भरता कहाँ से आयगी ? हाँ शील-वत्-सम्बन्धी निर्भरता का अंकुर अवश्य मौजूद है ।

११. "इसी प्रकार मानुष्य-पुत्र ! उस अबोध बालक में अभी काम-राग ही अविकसित रहता है । तो उसमें काम-राग की उत्तेजना कहाँ से आयगी ? हाँ ! उसमें भी काम-राग का अंकुर तो अवश्य रहता है ।

१२. "इसी प्रकार मानुष्य-पुत्र ! उस अबोध बालक के लिये अभी प्राणियों का अस्तित्व ही नहीं है । तब उसके मन में प्राणियों का द्वेष कहाँ से आयेगा ? हाँ उसमें भी द्वेष का अंकुर तो अवश्य है ।

१३. "तो क्या मानुष्य-पुत्र ! दूसरे मत्तों के अनुयायी छोटे अबोध बालक की ही उपमा देकर तुझे दीप नहीं देने ?"

१४. जब यह कहा जा चुका तब महास्वविर आनन्द ने तथागत से निवेदन किया—“मुगत ! अब आप के लिये विधाम करने का समय है । मुगत ! अब आपके लिये विधाम करने का समय है ।”

सद्धर्म सम्बन्धी प्रवचन

१. सम्यक्-दृष्टि का पहला स्थान क्यों है ?

१. आपं आदौगिक मार्ग में सम्यक्-दृष्टि श्रेष्ठतम है ।
२. सम्यक्-दृष्टि श्रेष्ठ जीवन की प्रत्येक बात को भूमिका है, चाबी है ।
३. और सम्यक्-दृष्टि का न होना सभी बुराइयों की जड़ है ।
४. सम्यक्-दृष्टि के विकास के लिये आवश्यक है कि आदमी जीवन की प्रत्येक घटना को प्रतीत समुत्पाद जाने । सम्यक्-दृष्टि का मतलब ही है प्रतीत्य समुत्पाद के नियम को जान लेना ।

५. "भिक्खुओ ! जो कोई भी व्यक्ति मिथ्या-दृष्टि रखता है, मिथ्या-संकल्प रखता है, मिथ्या-वाणी रखता है, मिथ्या-कर्मोत्त रखता है, मिथ्या-जीविका रखता है, मिथ्या-प्रवास करता है, मिथ्या-भूमि तथा मिथ्या-समाधि रखता है, जिस का ज्ञान और विमुक्ति मिथ्या रहती है, उसका हर कर्म, उसका हर कर्म, उसका हर विचार, उसकी हर चेतना, उसकी हर आकांक्षा, उसका हर निश्चय, उसकी हर प्रक्रिया— ये सभी चीजें उसे ऐसी स्थिति की ओर ले जाती हैं जो कि जलबिकर होती है, अप्रतीक होती है, बुरी लगती है, अलाभ-प्रद होती है तथा दुःखद होती है । ऐसा क्यों ? मिथ्या-दृष्टि के कारण ।

६. "ठीक आचरण हो ग-प्लि नहीं है । एक छोटा बालक ठीक आचरण कर सकता है, लेकिन इस का यह मतलब नहीं कि उसे इसका ज्ञान है कि

उसका आचरण ठीक है । ठीक आचरण के लिये ठीक आचरण का ज्ञान आवश्यक है ।

७. "आनन्द ! यथार्थं भिक्षु, किसे कहते हैं ? यथार्थं भिक्षु, उसे ही कहते हैं जो बुद्धिपूर्वक संभव और असंभव के भेद को समझ लेता है ।"

२. मृत्यु के बाद के जीवन की चिन्ता व्यर्थ

१. एक बार स्वविर महाकाश्यप तथा स्वविर सारिपुत्र बनारस के पास, ऋषिपत्तन के मृग-दाय में ठहरे हुए थे ।^{१०}

२. स्वविर सारिपुत्र, शाम के समय, ध्यानावस्था से उठ, स्वविर महाकाश्यप के पास गये और एक ओर बैठ गये ।

३. इस प्रकार बैठे हुए सारिपुत्र ने स्वविर महाकाश्यप से कहा: "काश्यप ! क्या तत्थागत मरणान्तर रहते हैं ?"

४. "भगवान् बुद्ध ने यह व्याकृत नहीं किया कि तत्थागत मरणान्तर रहते हैं ।" "तो क्या तत्थागत मरणान्तर नहीं रहते ?"

"भगवान् बुद्ध ने यह व्याकृत नहीं किया कि तत्थागत मरणान्तर नहीं भी रहते हैं ।"

५. "तो क्या तत्थागत मरणान्तर रहते भी हैं और नहीं नहीं भी रहते हैं ?"

६. "भगवान् बुद्ध ने यह भी व्याकृत नहीं किया कि तत्थागत रहते भी हैं और नहीं भी रहते हैं ।"

७. "तो क्या तत्थागत मरणान्तर नहीं भी रहते हैं और नहीं नहीं भी रहते हैं ?" "भगवान् बुद्ध ने यह भी व्याकृत नहीं किया कि तत्थागत मरणान्तर नहीं भी रहते हैं और नहीं नहीं भी रहते हैं ।"

८. "लेकिन तत्थागत ने इसे व्याकृत क्यों नहीं किया ?"

९. "यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर देने से मनुष्य का कुछ भी लाभ नहीं । यह श्रेष्ठ-जीवन का आरम्भ भी नहीं । इससे न प्रज्ञा की प्राप्ति होती है और न यह निर्वाण की ओर ले जाता है । यही कारण है कि तत्थागत ने इसको अव्याकृत रखा है ।"

३. 'ईश्वर' से प्रार्थनायें और याचनायें करना बेकार

१. एक बार भगवान् बुद्ध ने वासेट्ठ से बातचीत करते हुए कहा:—

२. "यदि यह अचिरवती नदी किनारे तक नवातल भरी हो और एक आदमी जिसे नदी के दूसरे तट पर काम हो, इसे पार करना चाहे;

३. "और किनारे पर खड़ा होकर वह दूसरे किनारे को पुकार लगाये: 'हे उधर के किनारे ! इधर आओ ! हे उधर के किनारे ! इधर आओ !'

४. 'हे वासेट्ठ ! अब वह सोचो कि क्या उस आदमी के प्रायश्चित्त करने से पाचना करने से, आशा लगाने से, स्तुति करने से वह दूसरा किनारा उधर से इधर चला जायगा ?

५. "ठीक इसी तरह वासेट्ठ ! तीन वेदों के जानकार—ब्राह्मण—उन दुर्गुणों की अपेक्षा करके जो वास्तव में किसी को सच्चा ब्राह्मण बनाते हैं, उन दुर्गुणों का अभ्यास करते हैं जो किसी को भी अ-ब्राह्मण बनाते हैं—ऐसी प्रायश्चित्त करते हैं—

६. "हे इन्द्र ! हम तेरा आह्वान करते हैं । हे ब्रह्मा ! हम तेरा आह्वान करते हैं । हे ईशान ! हम तेरा आह्वान करते हैं । हे प्रजापति ! हम तेरा आह्वान करते हैं । हे ब्रह्मा ! हम तेरा आह्वान करते हैं ।

७. "वासेट्ठ ! यह निश्चित है कि ऐसा हो नहीं सकता कि अपनी प्रायश्चित्तों अपनी पापदाओं, अपनी आशाओं और अपनी स्तुति के कारण यह ब्राह्मण अपनी मृत्यु के बाद 'ब्रह्म' में तीन हो जाय; ऐसा निश्चय से हो नहीं सकता ।"^६

४. आदमी का भोजन उसे 'पवित्र' नहीं बनाता

१. एक ब्राह्मण भगवान् बुद्ध के पास आया और उसने प्रश्न उठाया कि भोजन का आदमी के चरित्र पर प्रभाव पड़ता है या नहीं ?

२. "ब्राह्मण बोला ! जो, गिरि, दाल, फलियाँ, कोपलें—इस तरह का भोजन यदि ठीक से मिले तो सदाचरण का सहायक होता है । 'मुद्गार-मांस' का खाना खराब है ।"

३. भगवान् ! यद्यपि आप कहते हैं कि आप 'मुद्गार-मांस' नहीं खाते, लेकिन आप पशुओं के मांस का बना हुआ एक से एक बढ़िया भोजन कर लिये हैं—मैं आप से पूछता हूँ कि 'मुद्गार-मांस' किस कहा जाता है ?"

४. तत्प्राप्त ने उत्तर दिया—'किसी प्राणी की हत्या करना, किसी का अंग-छेद करना, मारना—पीटना—बध—बधन, चोरी, झूठ बोलना, ठगना, बड़बा, व्यभिचार—ये सब 'मुद्गार-मांस' हैं, मांस भोजन नहीं ।

५. "काम-भोगों के पीछे पड़े रहना, पैदु-पन अपवित्र-भोजन, वैर-विरोध—ये सब मुद्गार-मांस हैं, मांस-भोजन नहीं ।

६. "चुनत-खोरी, निर्दयता, विश्वास-घात, अल्पमत्त-अभिमान तथा कमीना-कंजूसपन—ये सब मुद्गार-मांस हैं, मांस भोजन नहीं ।

७. क्रोध, मान, विद्रोह, चालाकी, ईर्ष्या, उबात, अहंकार, कुसंगति ये सब मुद्गार-मांस हैं, मांस-भोजन नहीं ।

८. नीच-जीवन, किसी को झूठ-भूठ बदनाम करना, धोखा देना, बंधक होना, धोखा-धड़ी, बदनामी—ये सब मुद्गार-मांस हैं, मांस भोजन नहीं ।

दं. ये हत्या करने तथा चोरी करने का व्यसन—ये अग्राध—ये खतरों से भरे हैं, ये नरक के द्वार हैं—ये सब मुर्दार-मांस हैं, मांस भोजन नहीं।

१०. जो आदमी शक्की है, उसके शक्क को न मत्स्य-मांस से विरत रहना दूर कर सकता है, न नग्न रहना, न जटाये, न मुण्डन, न (भूग—) छाल, न अग्नि-पूजा, न भावी सुख प्राप्ति के उद्देश्य से की गई कठोर-तपस्या, न जल द्वारा सफाई, न यज्ञ-हवन और न कोई दूसरी ऐसी ही संस्कार-क्रिया।

११. अपनी इन्द्रियों को संयत रखो, अपने ऊपर काबू रखो, सत्य का आग्रह रखो और दयावान बनो। जो शान्त-पुरुष सब बन्धनों को तोड़ देता है और सब दुःखों को जीत लेता है, वह फिर देखते-मुनते रहने के बावजूद (अनाशक्त) रहने के बावजूद (अनाशक्त रहने के कारण) निर्मल रहता है।

१२. तथामत से इस ऊँचे, आण करने वाले धर्म को देशना मुन—जिसमें 'मुर्दार-मांस' की निन्दा की गई थी, और जो दुःख का क्षय करने वाली थी—ब्राह्मण ने विनम्रतापूर्वक बंदना की और तरुण प्रयत्न की मानना की।

५. भोजन नहीं 'पवित्र कर्मों' का महत्त्व है

१. आमगन्ध नाम का एक ब्राह्मण तपस्वी अपने शिष्यों के साथ हिमालय में रहता था।

२. वे मत्स्य-मांस नहीं खाते थे। प्रति वर्ष वे कुछ नमक-खटाई खाने के लिये अपने आश्रम से नीचे उतर कर बस्ती में आते थे। गांव के लोग उनका बड़ा स्वागत करते और चार महीने तक लगातार उनका आतिथ्य करते थे।

३. तब भिक्षु-संग सहित भगवान बुद्ध भी वहाँ आये। लोगों ने तथामत का धर्मोपदेश सुना तो उनके आश्चर्य बन गये।

४. सदाचार की भांति तपस्वी 'आमगन्ध' और उनके शिष्य भी उस गांव में आये, लेकिन लोगों ने उसी उत्साह से उनका स्वागत नहीं किया।

५. आमगन्ध को यह ज्ञान कर निराशा हुई कि तथामत ने मत्स्य-मांस के भोजन का निषेध नहीं किया। इस बारे में वचार्थ जानकारी प्राप्त करने के लिये वह आवस्ती के जेतवन विहार पहुँचा, जहाँ तथामत ठहरे हुए थे। वह बोला:—

६. "ओ, फलियाँ और फल, खाने लायक पत्ते और जड़ें, किसी भी जगह पर लगने वाली सब्जियाँ—इन सबको न्यायतः प्राप्त कर जो भी कोई खाने वाला खाता है, वह सुख भोग के लिये झूठ नहीं बोलता।

७. "आप दूसरों के दिये हुए दूसरों के द्वारा तैयार किये गये बड़िया-बड़िया सामान्य भोजन ग्रहण करते हैं। जो इस प्रकार का चावल (मांस) का पुलाव खाता है, वह आम-गन्ध खाता है। आप पक्षी के मांस के साथ पका हुआ बड़िया चावल खाते हैं और कहते हैं कि मुझ पर 'आम-गन्ध' का दोष लागू नहीं होता।

८. "मैं आप से इस का अर्थ जानना चाहता हूँ। यह आपका 'आम-गन्ध' किस तरह का है?"

९. तथागत ने उत्तर दिया—“जीव हिंसा करना, पीटना, काटना, बाँधना चुराना, झूठ बोलना, ठगना, बचन करना, अनुपयोगी जानकारी तथा व्यभिचार—यह आम-गन्ध है; मांस का खाना नहीं।

१०. “इन्द्रिय-विषयों में असंयत होना, मधुर वस्तुओं के प्रति लोभी होना, अपवित्र कार्यों से सम्बन्धित होना, मिथ्या-दृष्टि होना, सौधा-सरस न होना, अननुकरणयोग्य होना—यह आम-गन्ध है; मांस का खाना नहीं।

११. “कटु होना, कठोर होना, भुगल-खोर होना, विश्वासघाती होना, निर्दयी होना, अहंकारी होना, अनुदार होना तथा किसी को कुछ भी देने वाला न होना—यह आम-गन्ध है; मांस का खाना नहीं।

१२. “क्रोध, अभिमान, उजड़वपन, विरोधी-भाव, ठगो, ईर्ष्या, खेची मारना, अधिक अहंकार, कुसंगति—यह आम-गन्ध है, मांस का खाना नहीं।

१३. “दुष्कृत्योक्तता लिये कर्ज का न देना, दूसरे का झूठा अपमण फैलाना, वंचक होना, बहानेबाज होना—इस संसार में निकृष्टतम लोगों का इस प्रकार के कुकर्म करना—यह आम-गन्ध है, मांस भोजन नहीं।

१४. “प्राणियों (की जान लेने) के विषय में असंयत होना, दूसरों को कष्ट पहुंचाने पर तुला होना, दूसरों की वस्तुएँ छीन लेना, दुष्कृत्योक्त होना, निर्दयी होना, कठोर होना तथा आदर की भावना-रहित होना—यह आम-गन्ध है, मांस भोजन नहीं।

१५. “लोक या देव से प्राणियों पर आक्रमण करना तथा सर्वत्र कुकर्म करने के लिये उत्सव रहना—मरणान्तर आदमियों को अन्धकार से ले जाकर नरक में पहुंचा देता है—यह आम-गन्ध है, मांस भोजन नहीं।

१६. “न मत्स्य-मांस से विरत रहने से, न नंगे रहने से, न सिर मुड़ाने से, न जटाएँ रखने से, न भभूत रमाने से, न मृग-छाव धारण करने से, न अग्नि-पूजा करने से, न अमृत-प्राप्ति के निमित्त तमाम तरह को तपस्वार्थ करने से, न मन्त्र-जाप से, न बलि चढ़ाने से और अश्व के अनुसार भिन्न गज वादि करने से ही वह आदमी शुद्ध हो सकता है, जिसके सन्देह दूर नहीं हुए।”^{११}

१७. जो संयतोन्द्रिय है, जो धर्म में स्थित है, जिसे जीवपालन में आनन्द का अनुभव होता है, जिसने आसक्ति को त्याग दिया है और दुःख का जप कर चुका है, वह आदमी देखे-सुने के साथ आसक्त नहीं होता।

१८. यह अकुलत-कर्म ही है, जो आम-गन्ध है। मांस-भोजन नहीं।

६. बाह्य-शुद्धि अपर्याप्त है

१. एक बार भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में विहार कर रहे थे। उस समय सङ्गारव

ब्राह्मण भी वहीं रहता था। वह पानी से शुद्धि मानने वाला था और पानी से शुद्धि की क्रिया करता था। रात-दिन वह प्रायः स्नान करने में ही लगा रहता।^{२०}

२. अब आनन्द महास्थविर चौबर धारण कर, अपना पात्र चौबर साथ ले, आवस्ती में भिक्षाटन के लिये निकले। भिक्षाटन से लौटकर, भिक्षा ग्रहण कर चुकने पर, आनन्द महास्थविर तथामत के पास पहुँचे, अभिवादन किया और एक ओर बैठे गये। इस प्रकार बैठे हुए आनन्द महास्थविर ने कहा:—

३. “भगवान् ! यहाँ आवस्ती में सज्जारब नाम का एक ब्राह्मण रहता है। वह पानी से शुद्धि में विश्वास रखता है और पानी से शुद्धि ही करता रहता है। रात-दिन उसका अधिकांश समय स्नान करने में ही खर्च होता है। भगवान् ! यह अच्छा होगा यदि आप सज्जारब ब्राह्मण पर दया कर उससे भेंट करने चर्चें।”

४. तथामत ने मीन रहकर स्वीकार किया।

५. दूसरे दिन प्रातःकाल तथामत अपना चौबर पहन, पात्र-चौबर साथ ले, सज्जारब ब्राह्मण के घर जा पहुँचे। वहाँ जाकर बिछे आसन पर बैठे।

६. तब सज्जारब ब्राह्मण जहाँ तथामत थे, वहाँ आया और कुन्तल-धोम पूछ एक ओर बैठ गया।

७. उस के बैठ जाने पर सज्जारब ब्राह्मण से तथामत ने पूछा:—“ब्राह्मण! जैसा लोग कहते हैं, क्या यह सच है कि तुम जल से शुद्धि में विश्वास रखते हो, पानी से शुद्धि ही करते रहते हो ? तुम्हारा रात-दिन का अधिकांश समय स्नान करने में ही खर्च होता है।”

८. “श्रमण गौतम ! यह सच है।”

९. ब्राह्मण ! इस प्रकार रात-दिन स्नान आदि करते रहने में ही तुम क्या लाभ देखते हो ?”

१०. “श्रमण गौतम ! यह इस तरह है कि दिन में मुझसे जो कुछ भी पाप-कर्म होता है, मैं उसे उसी दिन शाम को धो डालता हूँ। और रात को मुझसे जो कर्म होता है, वह मैं प्रातःकाल उठते ही स्नान करके धो डालता हूँ। इस प्रकार पाप-रात-दिन स्नान आदि करते रहने में मुझे यही लाभ दिखाई देता है।

११. तब तथामत ने कहा—

१२. “धर्म ही वह जल स्रोत है, जो स्वच्छ है, जो निर्मल है।

१३. “यहाँ जब शास्त्रों के ज्ञाता स्नान करने आते हैं, तो उनका प्रत्येक अंग शुद्ध हो जाता है तथा वे दूसरे तट पर चले जाते हैं।

१४. तथामत के ऐसा कहने पर सज्जारब ब्राह्मण बोला—“श्रमण गौतम ! यह अद्भुत है। आज से जीवनपर्यन्त आप मुझे अपना गुरुनाम उपासक दानें।”

७. पवित्र जीवन क्या है ?

१. एक बार भगवान् बुद्ध ने चारिका करते समय भिक्षुओं को निम्न-लिखित प्रवचन दिया:—

२. "भिक्षुओ ! यह पवित्र जीवन न लोगों को ठगने के लिये है, न उनसे कुछ प्राप्त करने के लिये है, न लाभ-पक्ष की प्राप्ति के लिये है, न शास्त्रार्थ करना सीखने के लिये है, न इसलिये है कि लोग जान जायें कि यह अमुक है। निश्चय से भिक्षुओ ! इस पवित्र जीवन का अभ्यास किया जाता है। शरीर और वाणी को संयत रखने के लिए, आसनों को दूर करने के लिये तथा चित्त की विमुक्ति और सुखा का क्षम प्राप्त करने के लिये।" ३१

सामाजिक-राजनीतिक प्रश्नों पर प्रवचन

१. राजाओं की कृपा के भरोसे मत रहो

१. एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह में वेसुवनाराम में कलन्दक-निवाप में ठहरे हुए थे।

२. उस समय राजकुमार अजातशत्रु देवदत्त का सहायक बना हुआ था, जो भगवान् बुद्ध का विरोधी बन गया था।

३. वह पाँच सौ गाड़ियों में भोजन भरे पाँच सौ बर्तन लाद कर देवदत्त के समर्थकों तक सुवह-शाम पहुंचता था। ३२

४. तब कुछ भिक्षु तपागत के पास आये, अभिवादन किया और एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे भिक्षुओं ने ये सभी बातें तपागत को सुनाईं।

५. तब तपागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा—“भिक्षुओ ! राजाओं से लाभ-सत्कार की, खुशामद की इच्छा न करो। जब तक भिक्षुओ ! अजातशत्रु पाँच सौ गाड़ियों में, भोजन भरे पाँच सौ बर्तन लाद कर देवदत्त के समर्थकों तक सुवह-शाम पहुंचता है, तब तक इसमें देवदत्त की हानि ही है, लाभ नहीं है।

६. भिक्षुओ ! यदि कोई किसी पगले कुत्ते की नाक तक किसी की कलेजी ने जाता है तो वह उस कुत्ते को और भी अधिक पागल ही बनायेगी, इसी प्रकार जब तब भिक्षुओ ! अजातशत्रु पाँच सौ गाड़ियों में, भोजन भरे पाँच सौ बर्तन लादकर देवदत्त के समर्थकों तक सुवह-शाम पहुंचता है, तब तक इसमें देवदत्त की हानि ही है, लाभ नहीं। भिक्षुओ ! राजाओं से मिलने वाले लाभ-सत्कार-खुशामद और भेंट आदि इतने भयानक होते हैं।

७. "ये शक्ति-प्राप्ति के मार्ग की बड़ी ही कटु दुःख-बाधाएँ हैं।

८. "इसलिये भिक्षुओ ! ऐसा अभ्यास डालना चाहिये कि जब हमें राजाओं

से लाभ-भरकार, धुशामद और बेंटे आदि मिलेंगी, हम उन्हें अस्वीकार करेंगे और जब वह सिर पर जा ही पड़े तो वे हमें जकड़ नहीं पायेंगी, हमारे हृदय में उनका कोई स्थान नहीं होगा और वे हमें राजकुमारों का सुलाम नहीं बना सकेंगी।"

२. राजा धार्मिक होगा, तो प्रजा भी धार्मिक होगी

१. एक बार भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहा—

२. "भिक्षुओ! ऐसे समय में जब राजा अधार्मिक हो जाते हैं तो उनके मन्त्रीगण और अफसर भी अधार्मिक हो जाते हैं। जब मन्त्री-गण और अफसर अधार्मिक हो जाते हैं तो ब्राह्मण और गृहपति भी अधार्मिक हो जाते हैं। जब ब्राह्मण और गृहपति अधार्मिक हो जाते हैं, तो नगरों के नागरिक और ग्रामों के ग्रामीण भी अधार्मिक हो जाते हैं।

३. "लेकिन भिक्षुओ! ऐसे समय जब राजा धार्मिक होते हैं तो उनके मन्त्री गण और अफसर भी धार्मिक होते रहते हैं, जब मन्त्री-गण और अफसर धार्मिक रहते हैं तो ब्राह्मण और गृहपति भी धार्मिक हो जाते हैं। जब ब्राह्मण और गृहपति धार्मिक रहते हैं, तो नगरों के नागरिक और ग्रामों के ग्रामीण भी धार्मिक हो जाते हैं।

४. "जब गौर्व नदी पार करती होती है, तब यदि सूझा बैल गलत रास्ते पर जाता है तो उसका अनुकरण करती हुई वे भी सब गलत पथ का अनुकरण करती हैं। इस प्रकार आवमियों में जो मुखिया होता है यदि वह कुमार्गी बनता है तो दूसरे भी कुमार्गी बनते हैं।

५. "इसी प्रकार जब राजा पथ भ्रष्ट होता है, तो समस्त राज्य दुःखी होता है। जब गौर्व नदी पार करती है, तब यदि वृषभ सीधा जाता है, तो सभी गौर्व भी उसका अनुकरण कर सीधी जाती हैं। इस प्रकार आवमियों में जो मुखिया होता है यदि वह सम्मार्गी होता है तो दूसरे भी सम्मार्गी होते हैं। जब राजा धार्मिक होता है तो सारा राज्य सुखी रहता है।" २३

३. राजनीतिक तथा सामरिक शक्ति सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर करती है

१. एक समय भगवान् बुद्ध राजगृह में मृगकुट पर्वत पर ठहरे हुए थे। २४

२. उस समय मगध-नरेश, वैदेही-पुत्र अजातशत्रु बज्जियों पर आक्रमण करना चाहता था। उसने अपने मन में कहा—'चाहे ये कितने ही शक्तिशाली क्यों न हों, मैं इन बज्जियों की जड़ खोद डालूंगा, मैं इन बज्जियों को नष्ट कर डालूंगा, मैं इन बज्जियों का सर्वथा विनाश कर डालूंगा।'

३. तब उसने मगध के प्रधान मन्त्री वर्षकार ब्राह्मण को बुलाया और कहा—

४. ब्राह्मण ! तुम आज और भगवान् बुद्ध के पास जाओ, मेरी ओर से उनके चरणों में नमस्कार करो, तब उनका कुशल समाचार पूछो कि वे निरोग और स्वस्थ हैं या नहीं ?

५. "और तब उनसे कहो कि मगध-नरेश वैदेही-पुत्र अजातशत्रु वज्रिणों पर आक्रमण करना चाहता है। उसका कहना है कि चाहें वे कितने ही शक्तिशाली हों, वह उनकी जड़ उखाड़ देगा, वह उनकी नष्ट कर डालेगा, वह उनका सर्वथा विनाश कर देगा।

६. "ऐसा कहने पर जो कुछ तत्काल कहें उसे ध्यानपूर्वक सुनता और आकर मुझे बताना। क्योंकि बुद्धों का कथन कभी अन्वया नहीं होता।"

७. तब वर्षकार ब्राह्मण ने राजा के वचनों को सुना और कहा—"जैसा आप चाहते हैं, वैसा होगा।" और बहुत से सुन्दर-सुन्दर रथ जुतवाकर वह मृग-कूट पर्वत पर पहुंचा।

८. तब वही पहुंच कर वर्षकार ब्राह्मण ने तत्काल को अभिवादन किया, उनका कुशल-समाचार पूछा और राजा की आज्ञा के अनुसार मगध-नरेश का संदेश तत्काल के सामने निवेदन कर दिया।

९. उस समय आनन्द स्वविर तत्काल के पास खड़े थे। तत्काल ने आनन्द को सम्बोधित करके पूछा—"आनन्द ! क्या तुमने सुना कि वज्रिजगण के लोग प्रायः अपनी सार्वजनिक समितियों की बैठकें करते रहते हैं ?"

१०. आनन्द स्वविर ने उत्तर दिया—"हां भगवान् ! मैंने ऐसा सुना है।"

११. तत्काल ने कहा—"आनन्द ! जब तक वज्जी अपनी सार्वजनिक समितियों की बैठकें करते रहेंगे, तब तक वज्रिजगणों की वृद्धि ही होती रहेगी, उनका ह्रास नहीं होगा।

१२. "आनन्द ! जब तक वज्जी मिल-जुलकर बैठने, मिल-जुलकर उठने और मिल-जुलकर अपने निश्चयों को कार्यरूप में परिणत करेंगे तब तक..... होगा।"

१३. "आनन्द ! जब तक वह बिना नियम बनाये कोई कार्रवाई नहीं करेंगे जो नियम बन चुका है उसका उल्लंघन नहो करेंगे, और पुराने समय से चली आई वज्रिजगणों की परम्परा के अनुसार कार्य करेंगे तब तक..... होगा।

१४. "जब तक वे अपने श्रेष्ठ वज्रिजगणों का आदर-सत्कार करते रहेंगे, उनकी आवश्यकतायें पूरी करते रहेंगे और उनकी बातों को महत्त्व देते रहेंगे तब तक..... होगा।

१५. "जब तक वे किसी वज्जी लड़की या स्त्री को जबरदस्ती अपने यहाँ लाकर नहीं रखेंगे तब तक..... होगा।

१६. "जब तक वज्रवीर्य के लोग धर्म का पालन करते रहेंगे तब तक...
..... होगा।"

१७. "जब तक वे ये बातें करते रहेंगे तब तक वज्रियों की वृद्धि ही होती रहेगी, उनका हास नहीं होगा, और कोई उनका नाश नहीं कर सकता।"

१८. थोड़े शब्दों में भगवान् बुद्ध ने कहा कि जब तक वज्रवीर्य प्रजातन्त्र में विश्वास करते हैं और प्रजातन्त्रात्मक ढंग से रहते हैं तब तक उनके गणराज्य की कोई खतरा नहीं।

१९. तब तत्प्रागत ने बर्षकार को सम्बोधित किया—

२०. "हे ब्राह्मण ! जब मैं वैशाखी में ठहरा हुआ था, तब मैंने वज्रियों को ये बातें सिखाई थीं।"

२१. ब्राह्मण बोला—"तो हम वज्रियों की उन्नति की ही आशा कर सकते हैं, अवनति की नहीं। हे गोतम ! मगध-नरेश वज्रियों को नहीं जीत सकता।"

२२. इस प्रकार बर्षकार ब्राह्मण ने तत्प्रागत के चर्चन सुने, वह अपने आसन से उठा और राजगृह वापस लौट कर उसने मगध-नरेश को वह सब कह सुनाया जो उसने तत्प्रागत से सुना था।

४. युद्ध निषिद्ध है

१. ऐसा हुआ कि मगध-नरेश अजातशत्रु ने धुइसवार और पैदल सेना इकट्ठी कर कोशल-नरेश प्रसेनजित के राज्य के एक हिस्से काशी-जनपद पर आक्रमण कर दिया।

२. दोनों लड़ें। अजातशत्रु ने प्रसेनजित को हरा दिया। प्रसेनजित वापस थावस्ती चला गया।

३. जो मित्र थावस्ती से मिथाटन कर लौट रहे थे, उन्होंने आकर भगवान् बुद्ध को लड़ाई का तथा प्रसेनजित के हार कर वापस लौट आने का समाचार कहा।

४. "मिश्रकों ! मगध-नरेश अजातशत्रु अकुशल का पत्र लेने वाला है। कोशल-नरेश प्रसेनजित कुशलधर्मी है। अभी प्रसेनजित राजा पराजित हो जाने के कारण दुःखी रहेगा।

५. "जय से बर पैदा होता है। पराजित दुःखी रहता है। लेकिन जो उपशान्त है, जिसे जय-पराजय की चिन्ता नहीं, वह सुखपूर्वक होता है।"

६. फिर ऐसा हुआ कि वे दोनों राजा दूसरी बार युद्ध-भूमि में मिले। लेकिन इस बार कोशल-नरेश प्रसेनजित ने अजातशत्रु को हरा दिया और जीवित पकड़ लिया। तब प्रसेनजित ने सोचा—"यद्यपि अजातशत्रु ने—जिसे मैं कुछ हानि नहीं पहुंचा रहा था, मुझे कष्ट दिया है, तो भी वह मेरा भानवा है। कैसा हो

यदि मैं उसे जीता छोड़ दूँ, किन्तु उसकी सारी सेना, हाथी, घोड़े, रथ और पैदल ले लूँ।" उसने वैसे ही किया।

७. श्वावस्ती में भिजाटन करके लौटने पर भिक्षुओं ने आकर तयागत को यह समाचार सुनाया। तब तयागत ने कहा—“एक आदमी दूसरे को यथेच्छ हानि कर सकता है, लेकिन जिसकी हानि होती है वह भी फिर दूसरे को हानि पहुंचाता ही है।

८. “जब तक पाप-कर्म फल देना आरम्भ नहीं करता तब तक मूर्ख आदमी आनन्द मना सकता है। लेकिन जब पाप-कर्म फल देता है, तब मूर्ख आदमी दुःखी होता है।

९. हथियारों को हथियारों मिलता है, जो दूसरों को सड़ाई में हराते हैं उन्हें हराने वाले मिल जाते हैं, जो दूसरों को माली देता है, उसे माली देने वाले मिल जाते हैं।

१०. “इस प्रकार कर्म के विकास के फलस्वरूप जो आदमी दूसरे को कष्ट देता है, वह कष्ट पाता है।”

५. युद्ध-विजेता के कर्तव्य

१. जब योग्य युद्ध-विजयी हो जाता है तो सामान्य तौर पर वह अपना अधिकार समझता है कि यदि वह पराजित को अपना दास बनाकर न रखे तो उसे कम से कम जलील तो खूब करे। भगवान् युद्ध का इस विषय में सर्वथा भिन्न दृष्टिकोण था। वे समझते थे कि यदि ‘शान्ति’ का कुछ भी अर्थ है तो उसका यही अर्थ होता चाहिये कि विजेता अपनी ‘विजय’ से विजित की सेवा करे। इस बारे में उन्होंने भिक्षुओं को कहा:—

२. “शान्ति स्थापित हो जाने पर (युद्ध) कुशल आदमी के लिये आवश्यक है कि वह योग्य सिद्ध हो, सीधा-सरल सिद्ध हो, मृदुभावी हो, कोमल स्वभाव हो, अभिमानी न हो, सन्तुष्ट रहने वाला हो, सुभर (= जिसके भार का अनुभव न हो) हो, अल्पकृत्य, हलकी-फुलकी वृत्ति वाला, इन्द्रिय-विजयी हो, बुद्धिमान हो, अग्रगण्य हो, योग्य व्यवहार करने वाला हो तथा कभी छोटे से छोटा भी कोई ऐसा शराब काम न करे जिसकी पश्चित्त लोग निन्दा कर सकें।

३. “सभी प्राणी सुखी रहें, सभी का कल्याण हो—सबल हों वा दुर्बल हो, बड़े हों वा छोटे हों, दुश्मन हों वा अदुश्मन हों, पास रहने वाले हों वा दूर रहने वाले हों, उत्पन्न हो चुके हों वा उत्पन्न होने वाले हों—सभी प्राणी शान्त रहें।

४. “कोई एक दूसरे का अपमान न करे, क्रोध वा घृणा के बन्धीभूत होकर कोई किसी का बुरा न चाहे।

५. “जिस प्रकार माता अपने प्राण देकर भी अपने इकलौते बच्चे से प्यार करती है वैसे ही भावना सभी प्राणियों के प्रति रखें। ऊपर, नीचे, चारों

ओर असीम मैत्री भावना रखें—जिसमें पूजा का लवलेख न हो, शत्रुता का लव-लेख न हो ।

६. "खड़े होते समय, चलते समय, बैठे रहते समय, लेटे रहते समय यही भावना रखें—यही 'ब्रह्म विहार' कहलाती है ।"

१. अंगुत्तर निकाय, चतुक्क निपात ।

२. संयुत्त निकाय ।

३. अंगुत्तर निकाय, चतुक्क निपात ।

४. पराभव सुत्त (सुत्त-निपात) ।

५. अंगुत्तर निकाय, चतुक्क निपात, तृतीय वर्ग ।

६. अंगुत्तर निकाय, चतुक्क निपात, पाँचवाँ वर्ग ।

७. अंगुत्तर निकाय, चतुक्क निपात, चक्कवग्गो ।

८. अंगुत्तर निकाय, चतुक्क निपात ।

९. अंगुत्तर निकाय—सत्तक निपात ।

१०. सारोप्य सुत्तन्त, मज्झिम निकाय (१।५।१) ।

११. धम्मपद, वण्डवग्गो (६—१२) ।

१२. धानञ्जानि सुत्तन्त, मज्झिम निकाय (२।५।७) ।

१३. संयुत्त निकाय (सुत्तपिटक) ।

पृष्ठ ३१२—१ से ४ तक; नागवग्गो (१), नागवग्गो (२), नागवग्गो (३), नागवग्गो (४) ।

पृष्ठ ३१३—१ से ४ तक; नागवग्गो (८), नागवग्गो (९), नागवग्गो (१०), नागवग्गो (११) ।

पृष्ठ ३१४—१; सुण्डवग्गो (१ से ४) ।

१४. धम्मवापाव सुत्तन्त (मज्झिम निकाय १।१।६) ।

१५. राघ संयुत्त—संयुत्त निकाय ।

१६. महासालुंघ्य सुत्तन्त, मज्झिम निकाय (२।२।४) ।

१७. कस्तप संयुत्त, संयुत्त निकाय ।

१८. तेविज्ज सुत्तन्त (दीर्घ निकाय १।१३) ।

१९. धम्मपद—वण्डवग्गो—१३ ।

२०. संगारव सुत्त (संयुत्त निकाय) ।

२१. महासारोपम सुत्त मज्झिम निकाय (१।३२) ।

२२. संयुत्त निकाय

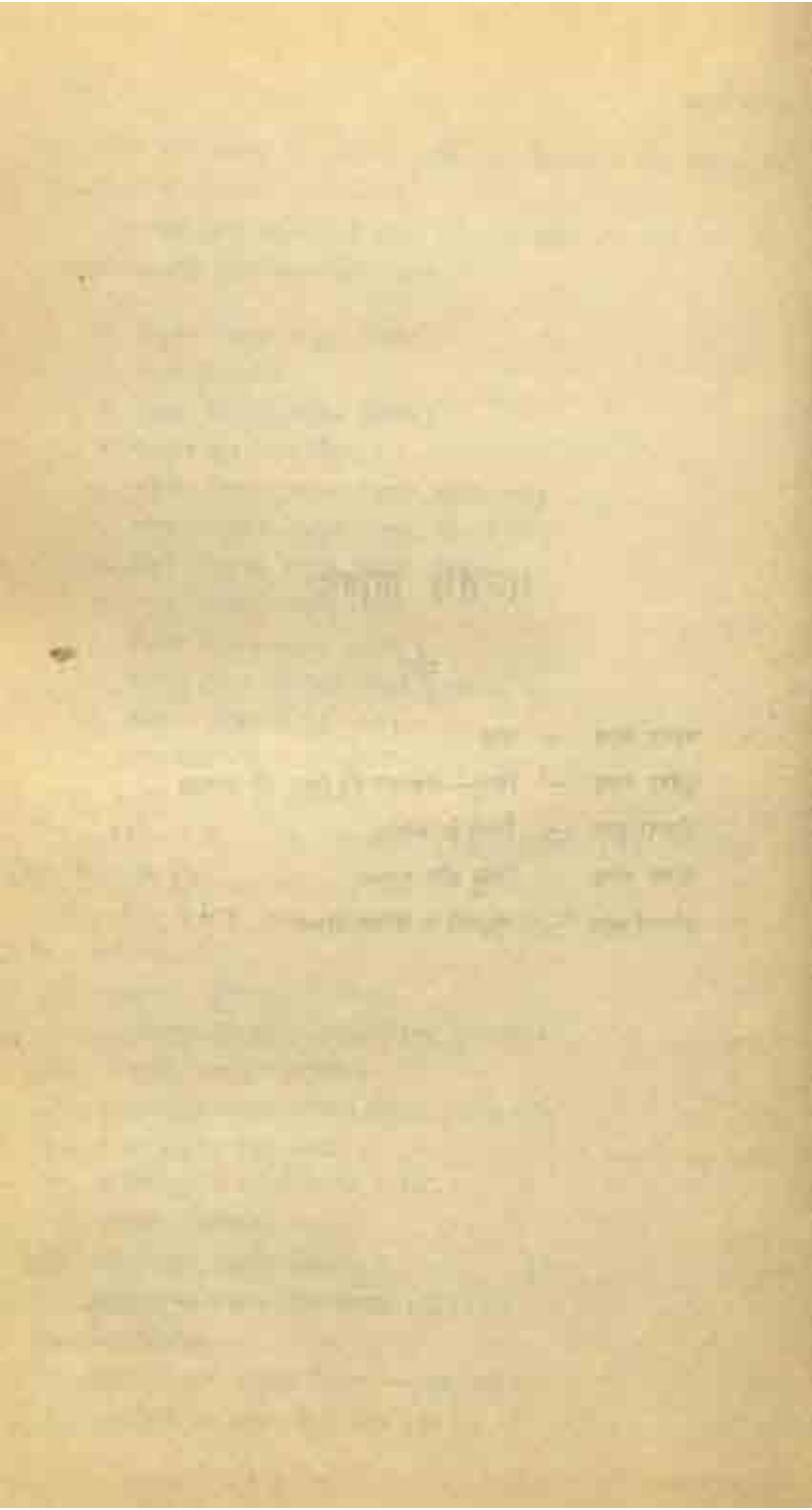
२३. चतुक्क निपात (अंगुत्तर निकाय)—द्वारा वर्ग ।

२४. महारिनिब्बाण सुत्त—दीर्घनिकाय (१६) ।

पञ्चम काण्ड

संघ

- पहला भाग - संघ
- दूसरा भाग - भिक्षु—तथागत की भिक्षु की कल्पना
- तीसरा भाग - भिक्षु के कर्तव्य
- चौथा भाग - भिक्षु और गृहस्थ
- पाँचवाँ भाग - गृहस्थों के जीवन-नियम



पहला भाग

संघ

१. संघ का संगठन

१. भगवान् बुद्ध के आचक दो हिस्सों में विभक्त थे, भिक्षु और गृहस्थ-आचक जो उपासक कहलाते थे।

२. भिक्षुओं का एक संगठित 'संघ' था, गृहस्थों का नहीं था।

३. बौद्ध भिक्षु प्रथमतः एक परिव्राजक है। यह 'परिव्राजक संस्था' बौद्ध भिक्षुओं से भी प्राचीन है।

४. पुराने 'परिव्राजक' ऐसे लोग थे, जिन्होंने पारिवारिक जीवन छोड़ दिया था और इधर से उधर घूमते रहते थे।

५. उनके एक जगह से दूसरी जगह जाने का उद्देश्य था भिक्ष-भिक्ष आत्माओं तथा दार्शनिकों से मिलकर सत्य का पता लगाने का प्रयास करना, उनके प्रवचन सुनाना और नीति, दर्शन, प्रकृति तथा रहस्यवाद आदि विषयों पर उनसे चर्चा करना।

६. कुछ पुराने ढंग के ऐसे भी 'परिव्राजक' थे कि जब तक उन्हें कोई दूसरा 'गुरु' न मिले तब तक किसी एक 'गुरु' की अधीनता में रहते थे। कुछ दूसरे थे जो किसी को अपना 'गुरु' नहीं मानते थे और अकेले ही रहते थे।

७. इन पुराने ढर्रे के परिव्राजकों में कुछ स्थिरा परिव्राजकायें भी थीं। स्त्री परिव्राजकायें कभी-कभी पुरुष परिव्राजकों के साथ रहती थीं और कभी-कभी अपने ही अकेली भी।

८. इन पुराने ढंग के परिव्राजकों का कोई संघ न था, उनके कोई निश्चित नियम-उपनियम न थे। उनके सामने कोई निश्चित आदर्श भी न था।

९. इतिहास में पहली बार तथागत ने अपने भिक्षुओं का एक संघ बनाया, उसकी व्यवस्था के लिए संघ के नियम बनाये और संघ के सदस्यों के सामने एक निश्चित आदर्श उपस्थित किया।

२. संघ में प्रवेश

१. संघ का प्रवेश सभी के लिए खुला था।

२. जाति-भेद की कोई बाधा न थी।

३. स्त्री पुरुष की कोई बाधा न थी ।

४. हैसियत की कोई बाधा न थी ।

५. जाति-नाति के लिए संघ में कोई स्थान न था ।

६. सामाजिक-स्थिति का संघ में कोई स्थान न था ।

७. संघ के भीतर, सभी सदस्य समान थे ।

८. संघ के अन्दर 'छोटे-बड़े' का निर्णय सदस्य के गुणों से होता था, न कि उसके जन्म से ।

९. जैसा तथ्यागत ने कहा था कि संघ एक समुद्र के समान है, और भिन्न उन नदियों के समान है जो समुद्र में विलीन हो जाती हैं ।

१०. नदी का अपना नाम होता है और अपना पृथक् अस्तित्व रहता है ।

११. लेकिन जैसे ही नदी समुद्र में प्रवेश करती है, न उसका कोई पृथक् नाम रहता है और न पृथक् अस्तित्व ।

१२. वह सबके साथ मिलकर एक हो जाती है ।

१३. यही हाल 'संघ' का है । जब एक 'भिन्न' संघ में प्रवेश करता है, तो वह समुद्र के जल की तरह अन्य सबके साथ मिलकर एक हो जाता है ।

१४. तथ्यागत ने कहा:—उसकी कोई पृथक् जाति नहीं रही । उसकी कोई पृथक् हैसियत नहीं रही ।

१५. 'संघ' के अन्दर यदि कोई वर्गीकरण था तो पुरुष-स्त्री की दृष्टि से था । भिन्न-संगठन पृथक् था और भिन्न-संगठन पृथक् ।

१६. संघ में प्रवेश करने वालों के दो वर्ग थे : आमणेर तथा भिक्षु ।

१७. बीस वर्ष से कम आयु रहने पर कोई भी आमणेर बन सकता था ।

१८. निष्ठुरता तथा दस-बीलों को ग्रहण करने से कोई भी बालक आमणेर बन सकता है ।

१९. 'मैं बुद्ध की शरण ग्रहण करता हूँ, मैं धर्म की शरण ग्रहण करता हूँ तथा मैं संघ की शरण ग्रहण करता हूँ—ये ही तीन शरण हैं ।

२०. 'मैं प्राणी-हिंसा से विरत रहूँगा; मैं चोरी नहीं करूँगा, मैं अब्रह्मचर्य से विरत रहूँगा, मैं झूठ नहीं बोलूँगा तथा मैं नशीले पेय-पदार्थों से विरत रहूँगा ।

२१. 'मैं विलास-भोजन से विरत रहूँगा, मैं नाचना-गाना-बजाना आदि से विरत रहूँगा, मैं अपने आपको सजाने तथा अलंकृत करने से विरत रहूँगा, मैं ऊँची महान् शैल्याओं अर्थात् ऐशोव्याराम से विरत रहूँगा तथा मैं जात रूप-रजत (सोने-चाँदी) का ग्रहण करने से विरत रहूँगा ।'

२२. ये दस 'शील' हैं ।

२३. एक आमणेर जब चाहे 'संघ' छोड़ कर गृहस्थ-वेग धारण कर सकता

है। श्रामणेर एक भिक्षु से बांधा रहता है और उसका अधिकांश समय उसी की सेवा में खर्च होता है। वह एक प्रकार से 'प्रव्रजित' नहीं ही गिना जाता।

२४. दो अवस्थाओं में से गुजरने से आदमी 'भिक्षु' पद का अधिकारी बनता है—पहली अवस्था 'प्रव्रज्या' कहलाती है और दूसरी अवस्था 'उपसम्पदा'। 'उपसम्पन्न' होने पर ही कोई भिक्षु बनता है।

२५. जो प्राचीं आगे चलकर 'भिक्षु' बनने के उद्देश्य से 'प्रव्रज्या' ग्रहण करना चाहता है उसे एक उपाध्याय की खोज करनी पड़ती है। कम से कम दस वर्ष तक जो भिक्षु रहा हो, वही 'उपाध्याय' हो सकता है।

२६. इस प्रकार का प्राचीं, यदि उपाध्याय द्वारा स्वीकार कर लिया गया हो, तो 'परिखाजक' कहलाता है और उसे उपाध्याय की सेवा करते हुये, उसी के 'संरक्षण' में रहना पड़ता है।

२७. 'भिक्षु' काल समाप्त होने पर उपाध्याय को ही अपने 'परिखाजक' का नाम 'संघ' के सामने प्रस्तावित करना पड़ता है। 'संघ' की यह विशेष बैठक किसी को उपसम्पन्न करने के लिये ही बुलाई जाती है। 'उपसम्पदा' के लिए 'उपसम्पदापेक्षी' को स्वयं 'संघ' से प्रार्थना करनी पड़ती है।

२८. 'संघ' पहले इस विषय में अपना संतोष कर लेता है कि प्राचीं योग्य व्यक्ति है वा नहीं और 'भिक्षु' बनने का अधिकारी है वा नहीं है? इसके लिये कुछ निश्चित प्रश्न हैं, जिनका प्राचीं को उत्तर देना पड़ता है।

२९. 'संघ' के अनुमति देने पर ही उसे 'उपसम्पदा' मिलती है और वह 'भिक्षु' बनता है।

३०. भिक्षु-संघ में प्रवेश पाने के नियम भी बहुत कुछ वे ही वा वैसे ही हैं जो भिक्षु-संघ में प्रवेश पाने के नियम।

३. भिक्षु के व्रत

१. एक उपासक और एक श्रामणेर भी 'शील' ग्रहण करता है। उसे वे पालन करने होते हैं।

२. एक भिक्षु उन 'शीलों' को 'शील' रूप में तो ग्रहण करता ही है, किन्तु वह उन्हें 'व्रत' रूप में भी ग्रहण करता है। उसे अपने 'व्रतों' को भंग नहीं करना होता यदि वह उन्हें तोड़ता है तो वह 'अपमनीय' होता है।

३. एक भिक्षु स्त्री-सम्पर्क से विरत रहने का व्रत लेता है।

४. एक भिक्षु चोरी से विरत रहने का व्रत लेता है।

५. एक भिक्षु (किसी परा-प्राकृतिक शक्ति के सम्बन्ध) में शोबी न मारने का व्रत लेता है।

६. एक भिक्षु किसी मनुष्य की हत्या न करने का व्रत लेता है।

७. एक भिक्षु किसी भी निषम-बाह्य वस्तु को अंगीकार न करने का व्रत लेता है।

८. भिक्षु के पास इन आठ चीजों के अतिरिक्त और कुछ नहीं होना चाहिए—
तीन चीयर—(१) अन्तर-वासक (अन्दर का वस्त्र); (२) उत्तरासंग (ऊपर का वस्त्र); (३) संधाटी (= शीतादि से बचाव के लिये दोहरी चादर)।

(४) कमर पर लपेटने की एक पेटी

(५) भिक्षा-भाज

(६) उस्तरा (= छुरा-कुल्हाड़ी ?)

(७) सूई धागा

(८) पानी छानने का कपड़ा

९. एक भिक्षु अकिंचनता का व्रत लेता है। उसे मुख्य रूप से अपनी भिक्षा मांगकर खानी होती है। उसे 'भिक्षा-बीबी' होना चाहिये। उसे एकाहारी वा विकाल-भोजन-विरत होना चाहिये। जहाँ 'संघ' के लिये विहार न हों, वहाँ वृक्ष के तले भी रहना चाहिये।

१०. एक भिक्षु किसी भी व्यक्ति की हार जाना मानने का व्रत नहीं लेता। अपने व्येन्नों के प्रति बाह्य सम्मान प्रदर्शन आदि की अपेक्षा एक धामधेर से अवश्य रखी जाती है। उसकी अपनी मुक्ति और एक धर्मोपदेशक के रूप में उसकी उपयोगिता उसकी अपनी साधना पर निर्भर करती है। उसे अपने से बड़े किसी एक व्यक्ति की आज्ञा में नहीं रहना होता, बल्कि धर्म की आज्ञा में रहना होता है। उसका बड़ा न किसी परा-प्राकृतिक प्रज्ञा का ही मालिक माना जाता है और न उसके पास कोई ऐसी ही सामर्थ्य होती है जो उसे 'पाप-मुक्त' कर सके। वह यदि खड़ा रहता है तो अपने बल पर खड़ा रहता है और यदि गिरता है तो अपने से गिरता है। इसके लिये उसे सोचने की स्वतन्त्रता रहनी ही चाहिये।

११. चार विशेष-व्रत ऐसे हैं जिनका भंग होने से भिक्षु 'पाराजिका' का अपराधी बन जाता है। 'पाराजिका' का दोषी होने पर संघ-त्याग ही एक मात्र दण्ड है।

४. सांघिक नियमों सम्बन्धी दोष

१. अपने लिये किसी भी 'व्रत' का भंग भिक्षु के लिये 'धर्म' के विरुद्ध किया गया अपराध है।

२. उक्त अपराधों के अतिरिक्त कुछ और भी अपराध ये जो भिक्षु कर सकता था। वे संधादिसेस कहलाते थे—सांघिक नियमों सम्बन्धी दोष।

३. विनय-पिटक के अनुसार संधादिसेस तैरह है।

४. संधादिसेसों का नम्बर पाराजिकाओं के बाद है।

५. भिक्षु और प्रतिबन्ध

१. इन अपराधों से साफ-साफ बचे रहने की कोशिश के साथ-साथ भिक्षु को कुछ और भी प्रतिबन्ध स्वीकार करने पड़ते हैं। एक गृहस्थ के समान एक भिक्षु जो चाहे सो नहीं ही कर सकता।

२. इस प्रकार के कुछ प्रतिबन्ध 'निस्संग्गीय-पाचित्तिय' कहलाते हैं। इनकी संख्या छत्तीस है।^१

३. उनका सम्बन्ध चीवरों की स्वीकृति-अस्वीकृति से है, ऊनी बिछावन, भिक्षा पात्र तथा 'रोगी की आवश्यकताओं' की स्वीकृति-अस्वीकृति से है।

४. उनका सम्बन्ध चाँदी-सोने के लेने न लेने से भी है। भिक्षु द्वारा किये जाने वाले क्रय-विक्रय से है तथा सांघिक-वस्तु को निजी बना लेने न बना लेने से है।

५. इन दोषों का दण्ड भी निस्संग्गीय (नैसर्गिक) और पाचित्तिय (पश्चात्ताप प्रकट करना) ही है।

६. इन प्रतिबन्धों के अतिरिक्त भिक्षु जीवन के कुछ और भी प्रतिबन्ध हैं। वे केवल पाचित्तिय कहलाते हैं। उनकी संख्या दानवे हैं।

६. भिक्षु और शिष्टाचार के नियम

१. एक भिक्षु का व्यवहार बहुत अच्छा होना चाहिये। शिष्टाचार के नियम पालन करने में उसे आदर्श होना चाहिये।

२. इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए तत्काल ने बहुत से शिष्टाचार सम्बन्धी निकम बनाये।

३. ये शिष्टाचार के नियम 'शेखिय-धर्म' कहलाते थे। उनकी संख्या पचहत्तर है।

७. भिक्षु और अपराधों का विचार

१. ये नियम, ये विधान केवल 'विधान' बनाने के लिये न थे। उनकी कानूनी स्थिति थी जिसके अनुसार पहले किसी पर निश्चित 'आरोप' लगाया जाता था, तब संध उसका विचार करता था और तभी वह या तो दोष-मुक्त मान कर छोड़ दिया जाता था या दण्ड दिया जाता था।

२. बिना विधिबत् अदालती विचार के कभी किसी भिक्षु को दण्डित नहीं किया जा सकता था।

३. जिस जगह पर अपराध हुआ हो, उसी जगह के निवासी भिक्षुओं का ही न्यायालय होता था।

४. न्यायालय के लिये आवश्यक संख्या में भिक्षु उपस्थित न हों तो कोई मुकदमा नहीं चल सकता था ।

५. जब तक किसी पर कोई निश्चित 'आरोप' न लगाया जाय तब तक कोई मुकदमा कानूनी नहीं माना जाता था ।

६. कोई मुकदमा कानूनी नहीं माना जाता था जब तक उसकी सारी कार्रवाई उस व्यक्ति को उपस्थित में न हो जिस पर 'आरोप' लगाया गया हो ।

७. कोई मुकदमा कानूनी नहीं माना जाता था जब तक कि उस भिक्षु को जिस पर कोई 'आरोप' लगाया गया हो, अपनी सफाई देने का पूरा अवसर न मिला हो ।

८. एक अपराधी भिक्षु को निम्नलिखित दण्ड दिये जा सकते थे—

- (१) तर्जनीय-कर्म
- (२) नियस्स-कर्म
- (३) प्रवार्जनीय-कर्म
- (४) उत्क्षेपणीय-कर्म
- (५) प्रतिसारणीय-कर्म

९. बिहार से बाहर कर देने के कर्म (= परिवास-कर्म) के बाद जग्गान-कर्म (आवाहन-कर्म) हो सकता था । यह परिवास-कर्म के बाद संघ द्वारा क्षमा-दान दिये जाने पर हो सकता था ।

८. भिक्षु और अपराध-स्वीकृति

१. भिक्षुओं के संगठन को लेकर जो सर्वाधिक मौलिक और अनुपम संस्था वा प्रथा भगवान् बुद्ध ने आरम्भ की, वह अपराध-स्वीकृति की संस्था थी । यह उपोसथ कहलाती थी ।

२. समागत ने इस बात को समझ लिया था कि जिन बातों को उन्होंने 'अपराधों' की कोटि में रखा है उनका पालन कराया जा सकता है । लेकिन कुछ दूसरे प्रतिबन्ध भी थे जो अपराध नहीं थे । उनका कहना था कि चरित्र-निर्माण के लिये और चरित्र को सुदृढ़ बनाये रखने के लिये ऐसे प्रतिबन्धों का होना आवश्यक है और यह भी देखना आवश्यक है कि उनका पालन होता है या नहीं ?

३. लेकिन इन प्रतिबन्धों को पालन कराने का कोई प्रभावशाली ढंग खोज निकालना आसान न था । इसलिये उन्होंने खुली अपराध-स्वीकृति को भिक्षु के अन्तर्मन के संगठन करने और उसे गलत कदम उठाने से बचाये रखने का एक साधन बनाया ।

४. अपराध-स्वीकृति प्रतिबन्धों के न पालन करने को लेकर भी । भिक्षु नियमों का संग्रह 'प्रातिमोक्ष' कहलाता है ।

५. उपोसथ (= अपराध-स्वीकृति) के लिये एक 'सीमा' के भिक्षुओं का एक जगह इकट्ठा होना आवश्यक है । दोनों पक्षों की दो अष्टमियाँ कृष्ण पक्ष की

चतुर्दशी और शुक्ल-पक्ष की पंचदशी—ये चार दिन उपोसथ माने जाते हैं। इनमें से चतुर्दशी और पंचदशी को 'प्रातिमोक्ष' का पाठ और उसके हिसाब से उपोसथ-कर्म हो सकता था।

६. उपोसथ होने पर भिक्षु एक-एक करके प्रातिमोक्ष के नियमों का पाठ करता है और प्रत्येक नियम का परायण कर चुकने पर कहता है, "क्योंकि आप सब लोग चुप हैं, इसलिये मैं समझता हूँ कि आप में से किसी ने भी इनमें से किसी नियम का उल्लंघन नहीं किया।" वह यह तीन बार कहता है। उसके बाद अगले प्रतिबंधन नियम को पढ़ता है।

७. भिक्षुओं-संघ को भी ऐसी ही उपोसथ बैठक करनी होती है।

८. अपराध-स्वीकृति पर 'आरोप' और मुकद्दमा चल सकता है।

९. यदि कोई अपराध स्वीकार न करे, तो कोई भी भिक्षु किसी के 'अपराध' की रिपोर्ट कर सकता है—यदि उसने उसे नियम का उल्लंघन करते देखा हो—और तब 'आरोप' और उसके बाद मुकद्दमा आरम्भ हो सकता है।

दूसरा भाग

भिक्षु—भगवान् बुद्ध की कल्पना

१. भगवान् बुद्ध की आदर्श भिक्षु की कल्पना

१. भगवान् बुद्ध ने स्वयं ही भिक्षुओं को कह दिया था कि वे भिक्षुओं को किस रूप में देखना चाहते थे। उन्होंने कहा था:—

२. बिना संयम और सत्य के, अपने आपको वित्त-मलों (काषायों) से परिशुद्ध किये बिना जो काषाय-वस्त्र को धारण करता है, वह काषाय-वस्त्र धारण करने के योग्य नहीं है।

३. किन्तु जो संयम और सत्य से युक्त होकर, अपने आपको वित्त-मलों (= काषायों) से परिशुद्ध करके काषाय वस्त्र को धारण करता है, वह काषाय-वस्त्र धारण करने के योग्य है।

४. एक आदमी केवल इसलिए 'भिक्षु' नहीं कहला सकता क्योंकि वह दूसरों से 'भिक्षा' मांग कर खाता है। जब वह 'धर्म' को सम्यक् प्रकार से ग्रहण करता है, तभी भिक्षु कहला सकता है।

५. "जो क्षीणवान है, जो ब्रह्मचारी है, जो सावधानीपूर्वक संसार में विचरता है, वह निश्चय से 'भिक्षु' कहलाता है।

६. हे भिक्षु ! न नियमों के पालन-मात्र से, न बहुत श्रुत (= अध्ययन) होने मात्र से, न ध्यान लाभ मात्र से और न एकान्त-वास मात्र से ही कोई उस विमुक्ति को प्राप्त कर सकता है, जिसका आनन्द पृथक्-जन (जनार्थ-जन) कभी उठा ही नहीं सकते। हे भिक्षु ! जब तक आसनों का क्षय न कर ले तब तक तू विस्वस्त होकर निश्चिन्त मत बैठ।

७. जो भिक्षु वाणी को संयत रखता है, जो बुद्धिमानीपूर्वक और शान्ति-पूर्वक बोलता है, जो 'धर्म' का अर्थ समझता है, उसका बोलना 'मधुर' होता है।

८. जो 'धर्म' में निवास करता है, जो 'धर्म' में आनन्दित रहता है, जो 'धर्म' का विचार करता है, जो 'धर्म' का अनुस्मरण करता है—ऐसा भिक्षु कभी सबन्ध से पतित नहीं होता।

९. जो कुछ भी भिक्षु को प्राप्त हो, उसे उसे 'बहुत' समझना चाहिये।

उसे किसी दूसरे की ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। एक 'भिक्षु' जो दूसरे की ईर्ष्या करता है उसे कभी चित्त की शान्ति प्राप्त नहीं होती।

१०. जो भिक्षु थोड़ा भित्तने पर भी उसे 'बहुत' समझता है और जिस भिक्षु का जीवन पवित्र तथा अप्रमाद रहित है, देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं।

११. जिसकी नाम-रूपा में तनिक आसक्ति नहीं है जो किसी वस्तु या व्यक्ति के न रहने पर तनिक सोच नहीं करता—वही गणार्थ भिक्षु है।

१२. जिस भिक्षु के हृदय में ककुया (मैंची) है, जो बुद्ध के शासन में प्रसन्न है, वह निर्वाण को प्राप्त करेगा—आखूँ व क्षय से प्राप्त होने वाले सुख को।

१३. हे भिक्षु ! इस (जीवन-रूपी) नीका को हलका कर जात। हलका कर देने से इसकी गति तेज हो जायगी। राग और द्वेष के बंधन को काट देने से तू निर्वाणाभिमुख हो जायगा।

१४. पाँच (बंधनों) को काट दे, पाँच को छोड़ दे, पाँचों से ऊपर उठ जा, एक भिक्षु जिसने पाँचों बंधनों से मुक्ति प्राप्त कर ली "ओषतीर्ण" कहलाता है, अर्थात् बाढ़ से बचा हुआ।

१५. भिक्षु ! ध्यान लगा। प्रमाद मत कर। सावधान रह ताकि तेरा चित्त काम-सुखों में ही न घूमता रहे।

१६. जो प्रज्ञावान नहीं वह ध्यान नहीं लगा सकता, जो ध्यान नहीं लगाता वह प्रज्ञा नहीं प्राप्त कर सकता; जो प्रज्ञावान है और ध्यानी है वही निर्वाण के समीप है।

१७. भिक्षु जब अपने एकान्त-वास में प्रवेश करता है और जब उसका चित्त शान्त होता है और जब उसे सद्धर्म का साक्षात्कार होता है तो उसे दिव्य सुखका अनुभव होता है।

१८. और एक बुद्धिमान भिक्षु के लिये यही प्रगति-क्रम श्रेष्ठ है—इन्द्रिय-संयम, संतोष, प्राप्तिमोक्ष के नियमों का पालन, पवित्र, अप्रमादी मित्रों की संगति।

१९. जो भिक्षु भिक्षाजीवी होगा, जो अपने कर्त्तव्य-पालन में प्रमाद नहीं करेगा, वह प्रीति-प्रभुवता की बहुलता में दुःख का अन्त कर सकेगा।

२०. हे भिक्षु ! अपने से अपने को उन्नाहित कर, अपने से अपनी परीक्षा कर। जब तू आत्म-रक्षित रहेगा और सेव्याधी होगा तो सुखी रहेगा।

२१. क्योंकि अपना-आप ही अपना स्वामी है, अपना आप ही अपनी गति है, इसलिये अपने-आप को उसी तरह काम में रख जैसे व्यापारी अच्छे घोड़े को।

२२. जो भिक्षु अप्रमाद में आनन्दित रहता है और प्रसाद से डरता है वह आम की तरह अपने छोटे बड़े बंधनों को जलाता हुआ विचरता है।

२३. जो भिक्षु अप्रमाद में आनन्दित रहता है और प्रमाद से डरता है, उस का पतन नहीं हो सकता, उसे निर्वाण के समीप ही जानो।

२४. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं। उन्हें दिन-रात 'बुद्ध' का ध्यान रहता है।

२५. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं। उन्हें दिन-रात 'संघ' का ध्यान रहता है।

२६. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं। उन्हें दिन-रात धर्म का ध्यान रहता है।

२७. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं। उन्हें दिन-रात अपनी शरीर सम्बन्धी क्रियाओं का ध्यान रहता है।

२८. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं। उन्हें दिन-रात 'क्रूरणा' (अहिंसा) का ध्यान रहता है।

२९. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं। उन्हें दिन-रात योगाभ्यास (भावना) का ध्यान रहता है।

३०. संसार छोड़ना भी कठिन है, संसार में रहना भी कठिन है, विहार भी दुष्कर है, पर भी दुष्कर है। अपने समान लोगों के साथ गृहस्वी भी आसान नहीं, प्रव्रजित का जीवन भी आसान नहीं है।

३१. जो आदमी श्रदायुक्त है, जो शीलवान् है, जो यशस्वी है तथा जो ऐश्वर्यवान् है वह जहाँ जहाँ भी जाता है, हर जगह पूजित होता है।

२. भिक्षु और 'तपस्वी'

१. क्या भिक्षु 'तपस्वी' होता है? उत्तर "नहीं" ही है।

२. निग्रोध परिव्राजक से बातचीत करते हुए स्वयं तथागत ने नकारात्मक उत्तर दिया है।

३. एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह में मृध-कूट पर्वत पर ठहरे हुए थे। उस समय उदुम्बरिक रानी के उद्यान में बहुत से परिव्राजकों के साथ निग्रोध परिव्राजक रहता था। वह उद्यान परिव्राजकों के लिये ही परित्यक्त था।

४. उस समय भगवान् बुद्ध मृध-कूट से नीचे उतर कर जहाँ मोरों के झुगने की जगह थी, वहाँ आये और सुमगधा नदी के तट पर चहल-कदमी करने लग गये। तब निग्रोध ने तथागत को इस प्रकार खुले में चहल-कदमी करते देखा और उसने अपने अनुयायियों की सावधान किया—“चुप करो, शान्ति रखो। श्रमण गौतम सुमगधा के तट पर चपल-कदमी कर रहे हैं” उसके ऐसा कहने पर परिव्राजक चुप हो गये।

५. तब तथागत निग्रोध-परिव्राजक के पास पहुँचे। निग्रोध-परिव्राजक बोला—“हे भगवान्! हे सुगत! आप पधारें। भगवान् का स्वागत है। तथागत का स्वागत है।

विरकाल के बाद भगवान् ने प्रधर दर्शन देने की कृपा की है। आप रूपमा आसन ग्रहण करें। आप के लिये आसन सुसज्जित है।"

६. तथागत ने सज्जित आसन ग्रहण किया। निग्रोध भी एक नीचा आसन लेकर समीप बैठ गया। वह बोला:—

७. "क्योंकि श्रमण गौतम हमारे यहाँ आये हैं, हम श्रमण गौतम से यह प्रश्न पूछना चाहते हैं कि क्या है यह तथागत का 'धर्म-विनय' जिससे तथागत अपने श्रावकों को विनीत करते हैं और जिस धर्म-विनय को सीख कर तथागत के श्रावक संतोष प्राप्त करते हैं, उसे अपना शरण-स्थान स्वीकार करते हैं और उसे लोकोत्तर धर्म मानते हैं?"

८. "निग्रोध दूसरी दृष्टि वाले के लिये, दूसरी प्रवृत्ति वाले के लिये तथा दूसरी साम्यता वाले के लिये बिना अभ्यास और बिना शिक्षण के यह कठिन है कि वह यह समझ सके कि क्या है यह तथागत का 'धर्म-विनय' जिससे तथागत अपने श्रावकों को विनीत करते हैं और जिस धर्म-विनय को सीखकर तथागत के श्रावक संतोष प्राप्त करते हैं, उसे अपना शरण-स्थान स्वीकार करते हैं और उसे लोकोत्तर धर्म मानते हैं।

९. "लेकिन हे निग्रोध! तू मुझ से अपने ही सिद्धान्त के बारे में, इस कठोर तपस्या के ही बारे में पूछ कि इन तपस्याओं से किस बात की पूर्ति होती है और किस बात की पूर्ति नहीं होती?"

१०. तब निग्रोध ने तथागत से कहा। "भगवान्, हम आत्म-क्लेश-दायक कठोर तपस्याओं के समर्थक हैं, हम उन्हें आवश्यक मानते हैं, हम उनसे विपटे हुए हैं। इनसे किस बात की पूर्ति होती है और इन से किस बात की पूर्ति नहीं होती?"

११. "निग्रोध! उदाहरण के लिये एक तपस्वी भग्न रहता है, कुछ भड़ो बातें करता है, अपने हाथ चाटता है; यदि कोई कहे कि 'भिक्षार्थे पधारिये' तो उसकी भी नहीं सुनता, यदि कोई कहे कि 'भिक्षार्थे शकिये' तो उसकी भी नहीं सुनता, जो कुछ उसके लिये खास तौर पर लाया गया हो, उसे स्वीकार नहीं करता" जो कुछ उसके लिये खास तौर पर तैयार किया गया है, उसे स्वीकार नहीं करता; कोई निमन्त्रण स्वीकार नहीं करता वह पकाने के बरतन में से दो हुई चीज नहीं स्वीकार नहीं करता, देहली के अन्दर रखी हुई कोई चीज स्वीकार नहीं करता, न ऊखल में रखी हुई, न लकड़ियों में रखी हुई, न चक्की में पीसी हुई; न उन दो जनों द्वारा दी गई कोई चीज स्वीकार करता है जो एकठे बैठ कर खा रहे हों न एक गमिनी से, न किसी दाई से, न उस स्त्री से जो किसी आदमी के साथ सहयोग कर रही हो; न उस समय इकट्ठी की हुई भोजन-सामग्री जब सूखा पड़ा हो; न उस स्थान से कोई चीज स्वीकार करता है, जहाँ कुत्ता हो, न जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही हों; न वह मांस-मछली ही स्वीकार करता है, न वह तेज नशीले पेय पदार्थ ही स्वीकार करता

है, न वह चावल का माण्ड ही स्वीकार करता है। वह या तो एक ही घर से भोजन ग्रहण करने वाला होता है, एक कौर खाने वाला; या दो घर से भोजन ग्रहण करने वाला होता है, दो कौर खाने वाला; या सात घर से भोजन ग्रहण करने वाला होता है, सात कौर खाने वाला। वह एक, दो या सात भिक्षाओं पर गुजारा करता है। वह या तो दिन में एक बार भोजन ग्रहण करता है, या दो दिन में एक बार और या सात दिन में एक बार। इस प्रकार वह नियमानुसार भोजन ग्रहण करता है, पन्द्रह दिन में एक बार तक वह या तो गुमलों में उगाये हुए पौधों पर गुजारा करता है, या जंगली चावलों पर या नीबार-बीजों पर, या चमड़े पर या सेबाल पर, या चावल की भूसी के आटे पर, या कांजी पर, या आटे पर, या खली पर, या घासों पर या गोबर पर, या जंगल के फल-फूल पर या उन पर जो स्वयं पेड़ से गिर पड़ें। वह मोटे सन का कपड़ा पहनता है, वह मोटा-ओटा भिला-जुला कपड़ा पहनता है, वह कफन का फेंका हुआ कपड़ा पहनता है, वह फेंके हुये सोपड़े पहनता है, वह बस्त्र पहनता है, या वह मृग-छाल धारण करता है, या मृग-छाल की पट्टियों से ही बनी जाली धारण करता है, या कुत्ता-तृण धारण करता है, या छाल-बस्त्र धारण करता है, या मिट्टी धारण करता है, या आदमी के बालों का बना कम्बल धारण करता है, या घोड़े के बालों का बना कम्बल धारण करता है अथवा उल्लू के परों का बना बस्त्र धारण करता है। वह अपनी दाढ़ी और बालों का झुञ्चन करने वाला होता है, वह दोनों का झुञ्चन करने वाला होता है, वह निरन्तर खड़ा ही रहने वाला होता है, वह एड़ियों के बल चलने वाला होता है, वह बैठकर आगे आगे सरकने वाला होता है, वह कांटों की शैल्या पर सोने वाला होता है, वह अपनी शैल्या पर कांटे या लोहे की मेखें गाड़ कर उन पर सोने वाला होता है, वह तकड़ी के तख्ते पर सोने वाला होता है, वह जमीन पर सोने वाला होता है, वह एक ही पाशवं पर सोने वाला होता है, वह मिट्टी-धूल रमाने वाला होता है, वह खुली हवा में रहने वाला होता है; वह कहीं भी बैठ जाने वाला होता है, वह गन्दगी खाने का अभ्यास होता, वह पानी न पीने वाला होता है, वह (गर्म ही) पानी पीने वाला होता है और वह होता है, प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्या को स्नान करने वाला।”

१२. इतना कर चुकने पर भगवान् बुद्ध ने पूछा “हे निघोष! तुम क्या सोचते हो क्या आत्म-क्लेश-कारक कठोर-तपस्या की पूर्ति हुई या नहीं?”

“भगवान्! सचमुच, यदि ऐसा हो तो आत्म-क्लेश-कारक कठोर-तपस्या की पूर्ति हो गई।”

१३. “हे निघोष! अब मैं कहता हूँ कि इस प्रकार की आत्म-क्लेश-परक कठोर तपस्या में नाना दोष हैं।”

१४. “भगवान्! आप इसमें क्या क्या दोष देखते हैं?”

१५. 'हे निग्रोध ! जब एक तपस्वी तपस्या करता है तो उस से उसे झूठा संतोष हो जाता है कि उसका उद्देश्य पूरा हो गया है। हे निग्रोध ! यह उसका एक दोष हो जाता है।

१६. 'हे निग्रोध ! जब एक तपस्वी तपस्या करता है तो उससे वह अपने को ऊँचा और दूसरों को नीचा समझने लगता है। हे निग्रोध ! यह भी उसका एक दोष हो जाता है।

१७. 'हे निग्रोध ! जब एक तपस्वी तपस्या करता है तो उसे उसका नशा चढ़ जाता है और वह लापरवाह हो जाता है। हे निग्रोध ! यह भी उसका एक दोष हो जाता है।

१८. 'हे निग्रोध ! जब एक तपस्वी तपस्या करता है तो उसे लाभ और यज्ञ की प्राप्ति होती है। उस से उसे झूठा संतोष प्राप्त हो जाता है। वह संतुष्ट रह जाता है। यह भी उसका एक दोष हो जाता है।

१९. 'हे निग्रोध ! जब एक तपस्वी के लाभ और यज्ञ की प्राप्ति होती है, तो उस से वह अपने को ऊँचा और दूसरों को नीचा समझने लगता है। हे निग्रोध ! यह भी उसका एक दोष हो जाता है।

२०. 'हे निग्रोध ! जब एक तपस्वी के लाभ और यज्ञ की प्राप्ति होती है तो उसे उसका नशा चढ़ जाता है और वह लापरवाह हो जाता है। हे निग्रोध ! यह उसका एक दोष हो जाता है।

२१. 'हे निग्रोध ! जब एक तपस्वी तपस्या करने लगता है तो वह भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजनों में भेद करने लगता है 'यह मेरे अनुकूल पड़ता है, यह मेरे प्रतिकूल पड़ता है। निज भोजनों को वह समझता है कि उसके प्रतिकूल पड़ते हैं उन्हें वह बान-बूझकर त्यागता है। जिन्हें वह समझता है कि उसके अनुकूल पड़ते हैं, उनके प्रति वह लोभी और मस्त हो जाता है। उनमें उसकी जासूसि बड़ जाती है। इन में उसे कोई भय, कोई खतरा नहीं दिखाई देता। उन्हें वह रस ले लेकर खाता है। हे निग्रोध ! यह भी उसका एक दोष हो जाता है।

२२. 'हे निग्रोध ! एक तपस्वी अपनी लाभ और यज्ञ की कामना के कारण यह सोचने लगता है मेरी ओर राजा यण आकर्षित होंगे, उनके मन्त्री-गण आकर्षित होंगे, क्षत्रिय आकर्षित होंगे, ब्राह्मण आकर्षित होंगे, गृहपति अकपि होंगे तथा बड़े-बड़े आचार्य आकर्षित होंगे। हे निग्रोध ! यह भी उसका एक दोष हो जाता है।

२३. 'हे निग्रोध ! एक तपस्वी किसी दूसरे तपस्वी या ब्राह्मण को लेकर बड़बड़ाने लगता है—अमुक जादमी दुनिया भर की चीजें खाता है, आलू की तरह के कन्द, साखीरों पर लगने वाले फल, झाड़ियों में लगने वाले बेर आदि, जिमीकंद और ना नटरह के बीज—इन सभी चीजों को जवड़ों के बज से पीस डालता है।

और तब भी लोग उसे धर्मात्मा कहते हैं। हे निग्रोध ! यह भी तपस्वी का एक दोष हो जाता है।

२४. "हे निग्रोध ! एक तपस्वी देखता है कि किसी दूसरे भ्रमण या ब्राह्मण को बहुत लाभ-यश प्राप्त होता रहा है, बहुत सत्कार-सम्मान मिल रहा है। इसे देखकर वह सोचता है—नागरिक, इस आदमी का जो इतने ऐशो-आराम के साथ रहता है, इतना आदर-सत्कार करते हैं, इसे नागरिकों से इतना लाभ और यश प्राप्त है, लेकिन मैं जो तपस्वी हूँ, मैं जो इतनी कठोर तपस्या करता हूँ, मेरी ओर कोई ध्यान नहीं देता, मेरा कोई आदर-सत्कार नहीं करता, मुझे लाभ और यश की प्राप्ति नहीं होती। इसलिये उसे उन नागरिकों से शिकायत हो जाती है। यह भी तपस्वी का एक दोष हो जाता है।

२५. "हे निग्रोध ! एक तपस्वी 'रहस्यमय' हो जाता है। उससे यदि पूछा जाय कि आप इस बात को स्वीकार करते हैं वा नहीं तो स्वीकार करते हुए वह कहेगा कि स्वीकार नहीं करता और अस्वीकार करते हुए कहेगा कि स्वीकार करता हूँ। इस प्रकार वह जान-बूझ कर झूठ बोलता है। यह भी तपस्वी का एक दोष हो जाता है।

२६. "हे निग्रोध ! एक तपस्वी गुस्से भी हो जा सकता है। और उसके मन में द्वेष भी अपना घर बना सकता है। यह भी तपस्वी का एक दोष बन जाता है।

२७. "हे निग्रोध ! तपस्वी डोंगी बन जा सकता है, बंचक बन जा सकता है, ईर्ष्यालु बन जा सकता है, बड़बड़ाने वाला बन जा सकता है, वह बड़ा चाताक बन जा सकता है, वह बड़ा कठोर-हृदय और अभिमानी बन जा सकता है, वह मन में बुरी बुरी इच्छायें रखता है और उनका गुलाम बन जाता है, वह मिथ्या धारणायें बना लेता है और परा-प्राकृतिक बातें करने लगता है, वह अपने अनुभवों की सतत व्याख्या करता है, वह लोभी होता है और वैराग्य से पराङ्ग-मुख होता है। यह भी तपस्वी का एक दोष हो जाता है।

२८. "निग्रोध ! तुम क्या सोचते हो ? आत्म-क्लेश कर तपस्या में ये सब दोष हैं वा नहीं हैं ?"

२९. "भगवान् ! आत्म-क्लेश कर तपस्या में ये सभी दोष निश्चय से हैं। भगवान् ! यह असम्भव नहीं कि कोई तपस्वी इन दोषों में से किसी से ही नहीं सभी से भी मुक्त हो।"

३०. भिक्षुओं को इन दोषों से मुक्त रहना चाहिये।

३. भिक्षु तथा ब्राह्मण

१. क्या भिक्षु और ब्राह्मण में कोई अन्तर नहीं ? क्या दोनों एक ही हैं ? इस प्रश्न का भी उत्तर नकारात्मक ही है।

२. इस विषय की चर्चा किसी भी एक स्थल पर नहीं मिलेगी। बुद्ध-वचनों में यह जगह जगह बिखरी पड़ी है। लेकिन उन दोनों में जो अन्तर है, उसे आसानी से एक जगह एकत्र किया जा सकता है।

३. एक ब्राह्मण 'पुरोहित' होता है। उसका मुख्य काम किसी के जन्म, विवाह मरणादि के अवसर पर 'संस्कार' कराना है।

४. यह 'संस्कार' आवश्यक हो जाते हैं क्योंकि कहीं कहीं माना जाता है कि आत्मा मूलतः पाप में लिप्त है और उसे निर्मल कर लिप्पाप बनाना है, और क्योंकि 'आत्मा' तथा 'परमात्मा' का अस्तित्व भी स्वीकार किया जाता है।

५. इन सब 'संस्कारों' के करने-कराने के लिये 'पुरोहित' होना ही चाहिये। एक भिक्षु न तो किसी 'मूल पाप' में विश्वास करता है और न 'आत्मा' या 'परमात्मा' में। इसलिये उसे कोई संस्कार करने कराने नहीं है। इसलिए एक भिक्षु 'पुरोहित' नहीं होता।

६. ब्राह्मण पैदा होता है। भिक्षु बनता है।

७. ब्राह्मण की 'जाति' होती है। भिक्षु की कोई 'जाति' नहीं होती।

८. एक बार 'ब्राह्मण' के घर पैदा हो गया, जन्म भर के लिये 'ब्राह्मण'। कोई 'पाप' कोई 'जुर्म' ऐसा नहीं जो एक 'ब्राह्मण' को 'अब्राह्मण' बना सके।

९. लेकिन एक बार 'भिक्षु' बन जाने पर यह आवश्यक नहीं होता कि एक भिक्षु जन्म भर के लिये 'भिक्षु' ही बना रहे। एक 'भिक्षु' 'भिक्षु' बनता है किन्तु यदि वह कभी कोई ऐसी बात कर बैठे कि जो उसे 'भिक्षु' बने रहने देने के अपाय बना दे, तो वह 'भिक्षु' नहीं ही रह सकता।

१०. 'ब्राह्मण' बनने के लिये किसी भी प्रकार का मानसिक या नैतिक शिक्षण अनिवार्य नहीं। ब्राह्मण से जिस बात की आशा (केवल आशा) की जाती है वह है उसके अपने धार्मिक सास्त्र-ज्ञान की।

११. भिक्षु की बात इसके सर्वथा प्रतिकूल है। मानसिक तथा नैतिक शिक्षण उसका जीवन-प्राण है।

१२. एक ब्राह्मण जितनी चाहे उतनी सम्पत्ति प्राप्त कर सकता है। एक भिक्षु नहीं कर सकता।

१३. यह कोई छोटा फर्क नहीं है। आदमी की मानसिक और नैतिक स्वतन्त्रता पर—विचार के क्षेत्र में भी और कार्य के क्षेत्र में भी—सम्पत्ति कड़े से कड़े प्रतिबन्ध का काम करती है। इससे दो प्रवृत्तियों में संघर्ष पैदा होता है। इसीलिये ब्राह्मण हमेशा परिवर्तन का विरोधी रहा है, क्योंकि उसके लिये परिवर्तन का मतलब है शक्ति की हानि, धन की हानि।

१४. सम्पत्ति-विहीन भिक्षु मानसिक और नैतिक तौर पर स्वतन्त्र होता है।

कोई ऐसा व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं होता, जो उसकी ईमानदारी और सच्चाई में बाधक बन सके।

१५. ब्राह्मण होते हैं। लेकिन हर ब्राह्मण अपने में एक अकेला व्यक्ति होता है। कोई ऐसा धार्मिक संगठन नहीं, जिसके वह अधीन हो। हर ब्राह्मण अपना कानून आप है। हाँ, ब्राह्मण आपस में भौतिक स्वार्थों से अवश्य बंधे हुए हैं।

१६. दूसरी ओर एक भिक्षु हमेशा संघ का सदस्य होता है। यह कल्पना से परे की बात है कि कोई भिक्षु हो और संघ का सदस्य न हो। भिक्षु आप अपना कानून नहीं होता। वह 'संघ' के अधीन होता है। 'संघ' एक आध्यात्मिक संगठन है।

४. भिक्षु और उपासक

१. सद्धर्म ने भिक्षु के 'धर्म' और उपासक के 'धर्म' में स्पष्ट रूप से विभाजक रेखा खींची है।

२. भिक्षु को पत्नि-विहीन रहना ही होगा। उपासक को नहीं। वह शादी कर सकता है।

३. भिक्षु का कोई घर नहीं हो सकता। भिक्षु का कोई परिवार नहीं हो सकता। उपासक के लिये यह आवश्यक नहीं है। उपासक का घर हो सकता है, उपासक का परिवार हो सकता है।

४. भिक्षु की कोई सम्पत्ति नहीं हो सकती। लेकिन गृहस्थ की सम्पत्ति हो सकती है—वह सम्पत्ति रख सकता है।

५. भिक्षु के लिये प्राणि-हत्या अनिवार्य तौर पर वर्जित है। गृहस्थ के लिये नहीं। वह (अवस्था-विज्ञेय में) जीव-हत्या कर भी सकता है।

६. मृ पंचशील के नियम दोनों के लिये समान है। लेकिन भिक्षु के लिये वे बत रूप हैं। वह उन्हें तोड़ेगा तो दण्ड का भागी होगा ही। उपासक (गृहस्थ) के लिये वे अनुकरणीयशील-मात्र हैं।

७. भिक्षु के लिये पंचशील का पालन अनिवार्य विषय है। गृहस्थ के लिये उसके अपने विवेक पर निर्भर करता है।

८. तत्प्राप्त ने दोनों के 'धर्म' में ऐसा भेद क्यों रखा? इसके पीछे कोई न कोई खास कारण होना चाहिए। क्योंकि बिना विशेष कारण के तत्प्राप्त कभी भी कुछ करने वाले नहीं थे।

९. कहीं भी इसका कारण तत्प्राप्त ने स्पष्ट रूप से नहीं कहा है। यह हमारे अनुमान का विषय है। तो भी यह आवश्यक है कि इस विभाजक-रेखा का कारण स्पष्ट समझ में आ जाए।

१०. इस में कोई सन्देह नहीं कि तत्प्राप्त अपने धर्म द्वारा इस पृथ्वी पर धर्म-राज्य स्थापित करना चाहते थे। इसलिये उन्होंने सभी को अपने धर्म का उपदेश

दिया—भिखुओं को भी, गृहस्थों को भी ।

११. लेकिन तथागत यह भी जानते थे कि सर्व-सामान्य आदमियों को धर्म का उपदेश देने मात्र से वे उस आदर्श-समाज की स्थापना न कर सकेंगे जिसका आधार एकमात्र 'धर्म' होगा ।

१२. आदर्श के लिये 'व्यवहारिक' होना आवश्यक है । इतना ही नहीं लोगों को वह 'व्यवहारिक' लगना भी चाहिये । तभी लोग उस तक पहुँचने का प्रयास कर सकते हैं ।

१३. इस तरह का प्रयत्न भी तभी आरम्भ हो सकता जब लोगों के दिमाग के सामने उस आदर्श पर आधारित एक समाज का यथार्थ स्वरूप हो, जिससे सर्व-सामान्य जनता भी यह समझ सके कि 'आदर्श' कोई 'अव्यवहारिक' नहीं था, बल्कि ऐसा था कि जो साकार हो सके ।

१४. तथागत ने जिस 'धर्म' का उपदेश दिया, संघ उसी का एक साकार सामाजिक नमूना है ।

१५. यही कारण है कि भगवान् बुद्ध ने एक भिक्षु के 'धर्म' और एक उपासक (गृहस्थ) के धर्म में यह विभाजक रेखा खींची । भिक्षु तथागत के आदर्श-समाज की मिसाल भी था और उपासक को यथा सामर्थ्य उसका अनुकरण करना था ।

१६. एक प्रश्न और भी है और वह यह कि भिक्षु का जीवन-कार्य क्या है ?

१७. क्या भिक्षु-जीवन व्यक्तिगत-साधना के लिये ही है अथवा उसे लोगों की सेवा तथा उनका मार्ग-दर्शन भी करना ही है ?

१८. वे दोनों ही उसके जीवन-कार्य हैं ।

१९. बिना व्यक्तिगत-साधना के वह नेतृत्व कर नहीं सकता । इसलिये उसे अपने में एक सम्पूर्ण, सर्वश्रेष्ठ, धार्मिक और ज्ञान-सम्पन्न व्यक्ति बनना ही होगा । इसके लिए उसे व्यक्तिगत-साधना करनी ही होगी ।

२०. एक भिक्षु गृह-व्याग करता है । वह संसार-त्याग नहीं करता । वह अपने घर को इसलिये छोड़ता है ताकि उसे उन लोगों की सेवा करने का अवसर और मौका मिल सके जो अपने-अपने घर में बुरी तरह आसक्त हैं; और जो दुःख में पड़े हैं, जो चिन्ता में पड़े हैं, जिन्हें चैन नहीं है और जिन्हें सहायता की अपेक्षा है ।

२१. करुणा—जो कि धर्म का सार है—का लकावा है कि हर आदमी दूसरों से प्रेम करे और दूसरों की सेवा करे । भिक्षु भी इसका अपवाद नहीं ।

२२. व्यक्तिगत-साधना में जाहे कोई कितना ही ऊँचा क्यों न हो यदि कोई भिक्षु, पवित्र मानवता की ओर से उदासीन है, तो वह भिक्षु नहीं है । वह दूसरा और कुछ भी हो सकता है; किन्तु वह भिक्षु नहीं हो सकेगा ।

तीसरा भाग

भिक्षु के कर्तव्य

१. दूसरों को धर्म-दीक्षा देना भिक्षु का कर्तव्य है

१. यह कुल-पुत्र और उसके मित्रों के धर्म में दीक्षित हो जाने का समाचार दूर-दूर तक फैल गया। परिणाम यह हुआ कि ऊँचे-ऊँचे कुलों के कुल-पुत्र और उनके निचले वर्गों के कुलों के भी कुल-पुत्र तथागत के पास शिक्षा ग्रहण करने और 'बुद्ध तथा धर्म' की शरण ग्रहण करने के लिये आने लगे।

२. 'धर्म' की शिक्षा ग्रहण करने के लिये तथागत के पास बहुत लोग आने लगे। भगवान् बुद्ध जानते थे कि हर किसी को व्यक्तिगत शिक्षा देना उनके लिये भी आसान नहीं। उन्हें इसकी भी आवश्यकता अनुभव हुई कि रोज-रोज बढ़ती हुई प्रव्रजितों की 'जमात' को एक संघ में संगठित कर दें।

३. इसलिये उन्होंने प्रव्रजितों को 'संघ' का सदस्य बना दिया और अनुशासनक्रम या विस्तृत के अपेक्षित नियम भी बना दिये, जो 'विनय' कहलाये। संघ के सदस्यों के लिये 'विनय' के नियमों का पालन अनिवार्य था।

४. तथागत ने आगे चलकर 'भिक्षु' बनने के इच्छुक किसी भी भ्रातृक के लिये दो सीढ़ियाँ आवश्यक ठहरा दीं। पहली अवस्था में उसे 'प्रव्रजित' होना होता था और एक 'प्रव्रजित' की ही हैसियत से उसे कई वर्षों तक किसी भिक्षु की देख-रेख में रहना होता था। जब उसका 'शिक्षण' समाप्त हो जाता तो उसे 'उपसम्पन्न' होने की अनुमति मिलती थी, लेकिन यह तभी कि जब उसके 'परीक्षक' इस विषय में अपना संतोष कर लेते थे कि वह 'संघ' का सदस्य बनने के योग्य है।

५. धर्म-प्रचार की आरम्भिक अवस्था में इस तरह की व्यवस्था करने की मुंजाइश न थी। उस समय तथागत ने उन्हें 'भिक्षु' बनाया और चारों दिशाओं में 'धर्म-दूत' की हैसियत से धर्म-प्रचार करने के लिये भेजा।

६. उन्हें धर्म-प्रचारार्थ विदा करने से पूर्व तथागत ने कहा—'भिक्षुओ! मैं जितने भी दिव्य तथा मानुष बन्धन हैं, उन सभी से मुक्त हूँ। तुम भी भिक्षुओ! जितने भी दिव्य तथा मानुष-बन्धन हैं, उन सभी से मुक्त हो। भिक्षुओ, जब जाओ बहुत जनों के हित के लिए, बहुत जनों के सुख के लिए, संसार पर अनुकम्पा करने

के लिये, और देवताओं तथा मनुष्यों के हित, सुख और कल्याण के लिये विचरने करो ।

७. "तुम में से कोई दो एक दिशा में मत जाओ ! भिक्षुओं, उस धर्म की देगना करो, जो आदि में कल्याणकारक है, जो मध्य में कल्याणकारक है, जो अन्त में कल्याणकारक है । भिक्षुओं अर्थ और अग्रजन्त (= गव्दों) से युक्त ऐसे धर्म की देखना करो जो परिशुद्ध और श्रेष्ठ जीवन है ।"

८. "इसलिये प्रत्येक जनपद में विचरो, जो अभी धर्म में अदीक्षित है उन्हें दीक्षित करो, दुःख से दग्ध इस संमस्त संसार में विचरो, हर जगह गिझा दो । सभी अज्ञानियों को ज्ञान का दान दो ।

९. "जाओ, जहाँ कहीं मर्हिपि रहते हों, राजपि रहते हों, ब्रह्मपि रहते हों, वहाँ रहो और उनके अपने अपने मत के अनुसार उन्हें प्रभावित करो ।

१०. "इसलिये जाओ, अकेले अकेले जाओ । अनुकम्पा से प्रेरित होकर जाओ । लोगों को (बन्धन-) मुक्त करो और उनको दीक्षित करो ।"

११. तत्तागत ने उन भिक्षुओं को यह भी कहा—

१२. "धर्म-दान सब दानों से बड़कर है, धर्म का माधुर्य सब माधुर्यों से बड़कर है, धर्म का आनन्द सब आनन्दों से बड़कर है ।"

१३. "खेत (व्यर्थ की) घास से नष्ट हो जाते हैं । प्रजा राग के होने से नष्ट हो जाती है । इसलिये धर्म-दान का महान् फल है ।"

१४. खेत (व्यर्थ की) घास से नष्ट हो जाते हैं । प्रजा द्वेष के होने से नष्ट हो जाती है इसलिये धर्म-दान का दान महान् फल है ।"

१५. खेत (= व्यर्थ की) घास से नष्ट हो जाते हैं । प्रजा मान के होने से नष्ट हो जाती है । इसलिये धर्म-दान का महान् फल है ।"

१६. "खेत (= व्यर्थ की) घास से नष्ट हो जाते हैं । प्रजा लुब्धा के होने से नष्ट हो जाती है । इसलिये धर्म-दान का महान् फल है ।"

१७. तब वे साठ भिक्षु धर्म-प्रचारायें चारों दिशाओं में फैल गये ।

१८. तत्तागत ने उन्हें 'धर्म-दीक्षा' के विषय में और भी हिदायें दीं ।

२. चमत्कारों (= प्राति-हायों) द्वारा धर्म-दीक्षा नहीं

१. तत्तागत एक बार मत्स्यों के नगर अनुपिय में बिहार कर रहे थे ।"

२. उस समय पूरुन्द में तत्तागत ने चीवर पहना तथा पात्र और चीवर ग्रहण किया और अनुपिय नगर में भिक्षा के लिये निकले ।

३. रास्ते में उन्हें सना कि कदाचित् भिक्षाटन के लिये अभी थोड़ी देर रुकना चाहिए । तब तक वहाँ भगवत् परिषदाजक रहता है, मैं वहीं ही त्यों न बला भर्त्ता और उससे भेंट करूँ ।

४. इसलिये तथगत भगव परिब्राजक के आश्रम पर चले गये ।

५. तब भगव ने तथगत को कहा—“भगवान् ! भाग पधारें । भगवान् ! आपका स्वागत है । आपने विरकाल के बाद इधर आने की अनुकम्पा की है । आप कृपया आसन ग्रहण करें । आपके लिये आसन सज्जित है ।”

६. तब तथगत वहाँ विराजमान हुए । भगव परिब्राजक भी एक नीचा आसन लेकर पास ही बैठ गया । इस प्रकार बैठकर भगव परिब्राजक ने भगवान् बुद्ध को कहा—

७. “कुछ दिन हुए, काफी दिन हुए, हे श्रमण गौतम ! सुनस्वस्त लिच्छवी मेरे पास आया था । कहता था कि अब मैंने श्रमण गौतम का शिष्यत्व स्थापन दिया है । क्या जैसा उसने कहा, वैसा ठीक है ?”

८. “भगव ! यह ऐसा ही है जैसा सुनस्वस्त लिच्छवी ने कहा है ।”

९. “कुछ दिन हुए, काफी दिन हुए, सुनस्वस्त लिच्छवी मेरे पास आया था और कहने लगा—अब मैं तथगत के ‘शिष्यत्व’ का स्थापन करता हूँ । अब मैं तथगत का शिष्य नहीं रहूँगा ।” जब उसने मुझे यह कहा, तब मैंने उससे पूछा—‘सुनस्वस्त ! क्या मैंने तुझे कभी कहा था कि सुनस्वस्त ! तू आ और मेरा शिष्य बनकर मेरे पास रह ?’

१०. “भगवान् ! नहीं । ऐसा आपने नहीं कहा था ।”

११. “अथवा तूने ही मुझे कभी कहा था कि मैं तथगत को अपना ‘गुरु’ स्वीकार करता हूँ !”

१२. “भगवान् ! नहीं । ऐसा मैंने कभी नहीं कहा ।”

१३. “तब मैंने उस पूछा—‘जब न मैंने ही तुझे कहा और न तूने ही मुझे कहा तो क्या तो मैं हूँ और क्या तू है, जो तू स्थापने की बात कर रहा है ! भूख कहीं के, क्या इसमें तेरा अपना ही दोष नहीं है ?’

१४. सुनस्वस्त बोला—‘लेकिन भगवान् ! आप मुझे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे कोई चमत्कार प्रातिहार्य नहीं दिखाते ?’

१५. “सुनस्वस्त ! क्या मैंने कभी तुझे कहा था कि सुनस्वस्त तू आकर मेरा शिष्य बन जा, मैं तुझे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे कोई प्रातिहार्य दिखाऊँ ?”

१६. “भगवान् ! ऐसा आपने कभी नहीं कहा ।”

१७. “अथवा सुनस्वस्त ! तूने ही मुझे कभी कहा था कि मैं भगवान् का ‘शिष्यत्व’ स्वीकार करता हूँ क्योंकि भगवान् मुझे सामान्य आदमियों की शक्ति से परे कोई प्रातिहार्य दिखायेंगे ।”

१८. “भगवान् ! नहीं । मैंने ऐसा नहीं कहा था ।”

१९. “जब न मैंने ही तुझे कहा और न तूने ही मुझे कहा तो क्या तो मैं हूँ और क्या तू है, जो तू स्थापने की बात कर रहा है ?

२०. “सुनस्वस्त ! तू क्या सोचता है, चाहे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से

परे प्रातिहार्य दिखाये जायें और चाहे न दिखाये जायें, क्या मेरे धर्म का यही उद्देश्य नहीं है कि जो मेरे धर्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ?”

२१. “भगवान् ! चाहे प्रातिहार्य दिखाये जायें और चाहे न दिखाये जायें, निश्चय से तत्वागत की धर्म-देशना का यही उद्देश्य है कि जो कोई भी तत्वागत के धर्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ।”

२२. “लेकिन भगवन् ! मुनक्खत्त मुझे कहता रहा, ‘भगवान् ! मुझे सृष्टि के आरम्भ का पता नहीं देते ।’

२३. अच्छा तो मुनक्खत्त ! मैं ने तुझे कम कहा था कि आ मुनक्खत्त ! तू मेरा शिष्य बन जा, मैं तुझे सृष्टि के आरम्भ का पता बताऊंगा ?”

२४. “भगवान् ! आपने नहीं कहा था ।”

२५. “अथवा तुने ही मुझे कभी कहा था कि मैं आपका शिष्य बनूंगा क्योंकि आप मुझे सृष्टि के आरम्भ का पता देंगे ?”

२६. “भगवान् ! मैंने नहीं कहा था ।”

२७. “जब न मैंने ही तुझे कहा और न तुने ही मुझे कहा तो क्या तो मैं हूँ और क्या तू है, जो तू त्यागने की बात कर रहा है ! मुनक्खत्त ! तू क्या सोचता है, चाहे मैं सृष्टि के आरम्भ का पता बताऊँ, और चाहे न बताऊँ, क्या मेरे धर्म का यही उद्देश्य नहीं है कि जो मेरे धर्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ?”

२८. “भगवान् ! चाहे आप सृष्टि के आरम्भ का पता बतायें और चाहे न बतायें, निश्चय से तत्वागत की धर्म-देशना का यही उद्देश्य है कि जो कोई भी तत्वागत के धर्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ।”

२९. “मुनक्खत्त ! जब धर्म के उद्देश्य की दृष्टि से इसका कोई महत्व ही नहीं कि चाहे सृष्टि के आरम्भ का पता बताया जाय और चाहे न बताया जाय, तो तेरे लिये ही इसका क्या मूल्य है कि ‘सृष्टि के आरम्भ का पता बताया जाय ?”

३०. “मुनक्खत्त ! तूने नाना प्रकार से ब्रह्मियों में मेरी प्रशंसा की है ।

३१. “मुनक्खत्त ! तूने नाना प्रकार से ब्रह्मियों में ‘धर्म’ की प्रशंसा की है ।

३२. “मुनक्खत्त ! तूने नाना प्रकार से ब्रह्मियों में संघ की प्रशंसा की है ।

३३. “मुनक्खत्त ! मैं तुझे बताता हूँ । मुनक्खत्त ! मैं तुझे जताता हूँ । बहुत से लोग ऐसे होंगे जो तुम्हारे बारे में कहेंगे कि मुनक्खत्त निच्छवी तत्वागत की अधीनता में पवित्र जीवन व्यतीत करने में असमर्थ रहा । और असमर्थ होने के ही कारण उसने श्रेष्ठ-जीवन त्याग दिया और हीन-जीवन अपना लिया ।”

३४. "हे भगवन् ! इस प्रकार मेरे कहे जाने पर, मुनस्वस्त लिच्छवी इस धर्म-विनय को छोड़कर चला गया, जैसे उसका अकल्पाण सुनिश्चित हो ।"

३५. तथागत के धर्म-विनय को छोड़ कर चले जाने के कुछ ही समय बाद मुनस्वस्त लोगों को यह बताता फिरता था कि तथागत के धर्म-विनय में कुछ भी परा-प्राकृतिक नहीं है, तथागत का धर्म उनकी अपनी 'बोधि' का ही फल है, और जो कोई इस धर्म को श्रवण करता है उसे दुःख का अन्त करने के लिये केवल इस धर्म के अनुसार चलना पड़ता है ।

३६. यद्यपि मुनस्वस्त अपनी समझ में बुद्ध की निन्दा कर रहा था, लेकिन वह जो कुछ लोगों को कह रहा था, वह सच ही था । क्योंकि भगवान् ने अपने धर्म-प्रचार में किसी परा-मानुषिक बात-वा किसी चमत्कार आदि का कभी सहारा नहीं लिया ।

३. जोर-जबर्दस्ती से धर्म-परिवर्तन नहीं

१. एक बार पाँच सौ भिक्षुओं के महान् भिक्षुसंघ के साथ भगवान् बुद्ध राज-गृह और मालन्दा के बीच की सड़क पर जा रहे थे । और उसी समय अपने शिष्य ब्रह्मदत्त के साथ सुप्पिय परिव्राजक भी राजगृह और मालन्दा के बीच के महापथ पर चला आ रहा था ।

२. उस समय सुप्पिय परिव्राजक नाना प्रकार से बुद्ध की निन्दा कर रहा था, धर्म की निन्दा कर रहा था, संघ की निन्दा कर रहा था । लेकिन उसका शिष्य तरुण ब्रह्मदत्त नाना प्रकार से बुद्ध की प्रशंसा कर रहा था, धर्म की प्रशंसा कर रहा था, तथा संघ की प्रशंसा कर रहा था ।

३. इस प्रकार वे दोनों गुरु-शिष्य परस्पर विरोधी मत प्रकाशित करते हुए भिक्षुसंघ और तथागत के पीछे-पीछे चले जा रहे थे ।

४. अब भिक्षुसंघ सहित तथागत रात्रि-विश्राम के निमित्त अम्बलद्विष्ठावन के राजपोछान में ठहरे । इसी प्रकार तरुण शिष्य ब्रह्मदत्त और उसके गुरु सुप्पिय परिव्राजक ने भी वहीं निवास किया । और वहाँ उस विश्राम-स्थल पर भी गुरु-शिष्य का वह विवाद जारी ही रहा ।

५. प्रातःकाल होने पर जब भिक्षु उठे तो उनकी बातचीत का विषय सुप्पिय और ब्रह्मदत्त का परस्पर का विवाद ही था ।

६. भगवान् बुद्ध ने चर्चा के विषय का अनुमान किया और वे भी वहाँ पहुँचे तथा बिछे आसन पर बैठे । वहाँ बैठने पर उन्होंने पूछा :— "बातचीत का विषय क्या है ? चर्चा किस विषय की हो रही है ?" उन्होंने तथागत को सारी बात बता दी । तब तथागत ने कहा :—

७. "भिक्षुओ, यदि कोई मेरी निन्दा करे, धर्म की निन्दा करे जयदा संघ की

निन्दा करें तो इसका तुम्हें बुरा नहीं मानना चाहिये, इससे तुम्हारे हृदय में बलन नहीं होगी चाहिये, इससे तुम्हें क्रोध नहीं आना चाहिये ।

८. "यदि तुम इस कारण क्रोध या डेप को अपने मन में स्थान दोगे, तो इससे तुम्हारी ही हानि है । यदि जब कोई बुद्ध, धर्म या संघ की निन्दा करे और तुम उससे क्रोधित तथा उद्धिग्न हो जाओ, तो क्या तुम इसका विचार कर सकोगे कि उसने जो कुछ कहा है वह ठीक कहा है या नहीं ?"

९. "भगवान् ! हम विचार नहीं कर सकेंगे ।"

१०. "लेकिन जब दूसरे लोग मेरी निन्दा करें, धर्म की निन्दा करें, संघ की निन्दा करें तो जो बात अवधार्य हो, उसे तुम्हें अवधार्य कहना चाहिये । तुम्हें बता देना चाहिये कि अमुक कारण से, यह बात ऐसी नहीं है, यह बात हममें नहीं पाई जाती, यह बात हममें नहीं होती ।

११. "लेकिन दूसरे लोग मेरी प्रशंसा भी कर सकते हैं, धर्म की प्रशंसा भी कर सकते हैं, संघ की प्रशंसा भी कर सकते हैं । तुम पूछोगे कि वे क्या कहकर मेरी प्रशंसा कर सकते हैं ?

१२. "कोई कह सकता है कि भ्रमण-गीतम प्राणी-हिंसा का त्याग कर जीव-हिंसा से विरत रहते हैं । उन्होंने बण्ड और तलवार का सर्वथा त्याग कर दिया है । वह कठोर व्यवहार से विरत है । वह कठ्ठन की मूर्ति है । उसमें सभी प्राणियों के प्रति दया है । कोई भी सामान्य आदमी तथागत की चर्चा करते हुए इस प्रकार प्रशंसा कर सकता है ।

१३. "अथवा वह कह सकता है कि भ्रमण-गीतम अधिष्ठापन (= चोरी) से विरत हो, जो उसका नहीं है उसे लेने की इच्छा से रहित हो विहार करता है । जो दिया जाता है, उसे ही वह ग्रहण करता है । उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का विश्वास है । वह अपना जीवन हृदय को स्वच्छता और पवित्रता से ज्योतित करता है ।

१४. "अथवा वह कह सकता है कि भ्रमण-गीतम ब्रह्मचर्य्य से विरत हो, ब्रह्मचर्य्य-युक्त हो विहार करता है । वह अपने आप को मैनून-धर्म से, हीन-धर्म से बहुत दूर दूर रखता है ।

१५. "अथवा वह कह सकता है कि भ्रमण-गीतम मिथ्या-भाषण का त्याग कर मृगावाद से दूर दूर रहता है । वह सत्य ही बोलता है । वह सत्य से नहीं हटता है । वह विश्वासनीय है । वह कभी अपने वचन को भंग नहीं करता ।

१६. "अथवा वह कह सकता है कि भ्रमण-गीतम अपने आप को किसी की झूठी निन्दा से दूर दूर रखता है । वह यहाँ मुनकर, यहाँ के लोगों से झगड़ा लगाने के लिये, उस बात को यहाँ नहीं कहता, और यहाँ मुनकर, यहाँ के लोगों से झगड़ा लगाने के लिये, उस बात को यहाँ नहीं कहता । इस प्रकार वह झगड़ने वालों का

मेल कराने वाला है, मिश्रों की मंत्री बढ़ाने वाला है, शान्ति का प्रवर्धक है, शान्ति के लिये प्रयत्नशील रहता है तथा ऐसे ही शब्दों का व्यवहार करता है, जिससे शान्ति की स्थापना हो ।

१७. "अथवा वह कह सकता है कि श्रमण-मौलम कटु शब्दों का त्याग कर कठोर वाणी से दूर दूर रहता है । जो वाणी निर्दोष होती है, जो वाणी कर्ण-त्रिप्त होती है, जो वाणी अच्छी लगने वाली होती है, जो वाणी हृदय को आकषित करने वाली होती है, शिष्ट होती है, लोगों को खूष करती है, लोगों का मन हर लेती है—ऐसी ही वाणी वह बोलता है ।

१८. "अथवा वह कह सकता है कि श्रमण-मौलम स्वर्ण-वातचीत का त्याग कर बेकार वातचीत से दूर दूर रहता है । वह समयानुसार बोलता है, वह यथार्थ बात बोलता है, उसकी वाणी अर्थ-भरी होती है, धार्मिक होती है, विनयानुकूल होती है, । वह समय पर बोलता है, ऐसी वाणी बोलता है जो दिल में धर बना लेती है, उदाहरण-सहित बोलता है, जितना बोलना आवश्यक हो, उतना ही बोलता है ।

१९. "अथवा वह कह सकता है कि श्रमण-मौलम बीजों या पौधों की इज्जत करने से अपने को दूर दूर रखता है । वह केवल एक बार ही भोजन ग्रहण करता है, वह रात को भोजन ग्रहण नहीं करता, वह अपराह्न में भोजन ग्रहण करने से विरत रहता है ।

‘वह मूल्य-गीत और वदित्त युक्त खेल, तमाशों को देखने से विरत रहता है ।

‘वह माता, सुगन्धियों तथा तैलों से अपने आप को अलंकृत करने तथा सज्जाने से विरत रहता है ।

‘वह ऊँची ऊँची महान् शय्याओं का उपयोग नहीं करता ।

‘वह चाँदी-सोना स्वीकार नहीं करता ।

‘वह कच्चा अन्न स्वीकार नहीं करता ।

‘वह स्त्रियों या लड़कियों को स्वीकार नहीं करता ।

‘वह दास दासियों को स्वीकार नहीं करता ।

‘वह भेड़-बकरियों को स्वीकार नहीं करता ।

‘वह मुर्गे-मुर्गियों तथा सूअरों को स्वीकार नहीं करता ।

‘वह हाथियों, गाय-बैलों, घोड़ों तथा घोड़ियों को स्वीकार नहीं करता ।

‘वह ऊसर या थोड़ी हुई जमीन को स्वीकार नहीं करता ।

‘वह (शादी कराने आदि में) मध्यस्थ बनना स्वीकार नहीं करता ।

‘वह खरीदना-बेचना स्वीकार नहीं करता ।

‘वह तराजू या बटखोरों से किसी की ठगना स्वीकार नहीं करता ।

‘वह रिश्वत, बचना और ठगी के टेढ़े-मेढ़े रास्तों से बचता है ।

‘वह किसी का अंग-भंग करने, किसी को मार डालने, किसी को धींच डालने, किसी को लूट लेने तथा किसी की हिंसा करने से विरत रहता है।

२०. ‘भिक्षुओं ! ऐसी कुछ बातें हैं जो एक सामान्य आदमी तथागत की प्रशंसा करते हुए कह सकता है। लेकिन ऐसा होने पर भी न तुम्हें विशेष हर्ष होना चाहिये, न तुम्हारा हृदय खुशी से फूल जाना चाहिये। यदि तुम ऐसे होने लगे तो इससे भी तुम्हारी साधना में बाधा पड़ेगी। जब दूसरे लोग मेरी, वा धर्म की वा संघ की प्रशंसा करें, तो तुम्हें जो बात यथार्थ हो उसे स्वीकार करना चाहिये। तुम्हें कहना चाहिये : “इस इस कारण से यह ऐसा ही है। यह बात हमारे धीव है। यह गुण हममें है।”

४. भिक्षु को धर्म-प्रचार के लिये संघर्ष करना चाहिये—

१. भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए एक बार भगवान् बुद्ध ने कहा :—

२. ‘भिक्षुओं ! मैं संसार से नहीं जगड़ता हूँ। बल्कि संसार ही मुझसे जगड़ता है। सत्य का उपदेशक संसार में कभी किसी से नहीं जगड़ता।”

३. ‘योधा, योधा, हम अपने आन को कहते हैं। भगवान् ! हम योधा किस प्रकार हैं ?”

४. ‘भिक्षुओं, हम युद्ध करते हैं, इसलिये योधा कहलाते हैं।”

५. ‘भगवन् ! हम किस बात के लिये युद्ध करते हैं ?”

६. ‘भिक्षुओं ! हम श्रेष्ठशील के लिये युद्ध करते हैं, श्रेष्ठ अप्रमाद के लिये युद्ध करते हैं, श्रेष्ठ प्रज्ञा के लिये युद्ध करते हैं।”

७. जहाँ शील को खतरा हो, संघर्ष से सत भगवान् । ऐसे समय भीगी बिल्ली बने सत बैठे रहो।

१. संयुक्त-न० ४, १४; महावग्ग १।

२. तण्हावग्गो (धम्मपड २४।२१)।

३. तण्हावग्गो (२४—२३, २४, २५, २६)।

४. पाण्डिक सुत्त (दीघनिकाय २४)।

५. दीघनिकाय, बह्मजाल सुत्त १।

चौथा भाग

भिक्षु और गृहस्थ

१. भिक्षा का बन्धन

१. भिक्षु-संघ एक संगठित संस्था थी, जिसका दरवाजा हर किसी के लिये खुला न था।

२. केवल प्रव्रजित हो जाने से ही कोई संघ का सदस्य नहीं बन सकता था।

३. 'उपसम्पदा' प्राप्त करने से ही कोई भी आदमी संघ का सदस्य बन सकता था।

४. संघ एक स्वाधीन संस्था थी। यह अपने संस्थापक से भी स्वाधीन थी।

५. यह स्वतन्त्र थी। यह जिसे चाहे उसे अपना सदस्य बना सकती थी। यदि कोई सदस्य विनय-विरुद्ध चले तो यह उस सदस्य की सदस्यता छीन भी ले सकती थी।

६. केवल भिक्षा ही वह डोरी थी, जिससे भिक्षु और गृहस्थ परस्पर बंधे थे।

७. भिक्षु भिक्षा पर निर्भर करते थे और गृहस्थ उन्हें भिक्षा देते थे।

८. गृहस्थ संगठित न थे।

९. संघ-दीक्षा थी, जिसका मतलब था किसी को भी भिक्षु-संघ में दीक्षा।

१०. संघ-दीक्षा से आदमी 'संघ' तथा 'धर्म' दोनों में दीक्षित हो जाता था।

११. लेकिन ऐसे लोगों के लिए जो प्रव्रजित बन 'संघ' की दीक्षा तो न चाहते थे, केवल 'धर्म' की दीक्षा चाहते थे, कोई पृथक 'धर्म-दीक्षा' न थी।^१

* १२. यह एक बड़ी गम्भीर कमी रह गई। यह कमी उन कारणों में से एक थी जो अन्त में जाकर भारत से बौद्ध-धर्म के लुप्त हो जाने के कारण बने।

१३. इसी पृथक धर्म-दीक्षा के न होने के कारण गृहस्थ एक धर्म से दूसरे धर्म में भटक सकते थे और इससे भी बुरी बात यह कि बौद्ध धर्म को अपनाते रहते समय ही कोई दूसरा धर्म भी अपनावे रह सकता थे।

२. परस्पर-प्रभाव

१. लेकिन 'भिक्षा' का बन्धन भी ऐसा था कि जिससे 'कोई' भिक्षु किसी पथ-भ्रष्ट 'गृहस्थ' को फिर सही रास्ते पर ला सकता था।

२. इस सम्बन्ध में अंगुत्तर-निकाय में वर्णित नियम ध्यान देने योग्य है।

३. इन प्रतिबन्धों के अतिरिक्त किसी भी गृहस्थ का यह सामान्य अधिकार था कि वह किसी भी भिक्षु के सघोष आचरण की शिकायत दूसरे भिक्षुओं से कर सके।

४. जब भी भगवान् बुद्ध को किसी की ऐसी शिकायत सुनने को मिली उन्होंने इसकी जाँच की है कि सही है या नहीं। और बात के सही होने पर उन्होंने 'विनय' के नियमों में ऐसा परिवर्तन कर दिया है कि भविष्य के लिये वह 'घोष' संघ के नियमों के विरुद्ध किया गया एक 'अपराध' बन जाय।

५. सारा विनय-पिटक गृहस्थों द्वारा की गई शिकायतों के सार्जन का ही परिणाम है।

६. भिक्षुओं और गृहस्थों में ऐसा ही आपसी सम्बन्ध था।

३. भिक्षु का 'धर्म' तथा उपासक का 'धर्म'

१. बौद्ध-धर्म के कुछ आलोचकों का कहना है कि बौद्ध-धर्म कोई 'मज्जहव' नहीं है।

२. इस तरह की आलोचना की ओर ध्यान देने की जरूरत नहीं। लेकिन यदि कोई उत्तर देना ही हो तो कहा जा सकता है कि केवल बौद्ध-धर्म ही असली 'मज्जहव' है और जिन्हें यह बात स्वीकृत न हो उन्हें अपनी 'मज्जहव' की परिभाषा बदलनी चाहिये।

३. दूसरे आलोचक इतनी दूर तक नहीं जाते। वे इतना ही कह सकते हैं कि एक मज्जहव के रूप में बौद्ध-धर्म केवल भिक्षुओं का धर्म है। इसका सर्व-साधारण से कोई सम्बन्ध नहीं। बौद्ध-धर्म ने जन-साधारण को अपने दायरे से बाहर ही रखा है।

४. भगवान् बुद्ध के प्रवचनों में 'भिक्षु' शब्द इतनी अधिक बार आता है कि इससे आलोचकों की आलोचना का समर्थन होता है।

५. इसीलिये, यह आवश्यक है कि इस बात को स्पष्ट कर दिया जाय।

६. क्या भिक्षुओं और गृहस्थों के लिये 'धर्म' एक ही है? अथवा 'धर्म' का कोई एक ऐसा भाग भी है जो भिक्षुओं के लिए ही है और गृहस्थों के लिये नहीं?

७. क्योंकि 'प्रवचन' ग्राम्य भिक्षुओं को ही सम्बोधित करके किये गये, इसलिये इससे यह अनुमान नहीं निकालना चाहिये कि तमाम 'प्रवचन' भिक्षुओं के लिये ही थे। नहीं, भगवान् बुद्ध के उपदेश भिक्षुओं तथा गृहस्थों—दोनों के लिये थे।

८. जिस समय भगवान् बुद्ध ने पंच-शीलों, अष्टांगिक-मार्ग तथा दस पारमिताओं का उपदेश दिया, वो उनकी नज़र गृहस्थों पर ही रही होगी—यह बात इतनी अधिक स्पष्ट है कि इसके लिये किसी तर्क की अपेक्षा नहीं।

६. जिन्होंने घर-घर का स्वाग नहीं किया है, जो क्रिया-शील गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हैं, एक प्रकार से उन्हीं के लिये पंच-शील, अष्टांगिक-मार्ग तथा वस-पारमितायें आवश्यक हैं। जिस भिक्षु ने गृह-त्याग कर दिया है, उसकी अपेक्षा एक गृहस्थ से (जो क्रिया-शील गृहस्थ-जीवन व्यतीत करता है) ही इस बात की अधिक संभावना है कि वह शील भंग करेगा।

१०. इसलिये भगवान् बुद्ध ने जब धर्म-प्रचार आरम्भ किया तो यह मुख्य रूप से गृहस्थों के लिये ही रहा होगा।

११. केवल अनुमान प्रमाण पर ही निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है। इस आलोचना का खण्डन करने के लिये हमारे पास प्रत्यक्ष साक्षी है।

१२. निम्नलिखित 'प्रवचन' का भी उल्लेख किया जा सकता है।

१३. एक बार जब भगवान् बुद्ध अनापिण्डिक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे, उस समय दूसरे पांच सौ उपासकों के साथ धम्मिक नाम का उपासक वहाँ आया और तथागत को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।^१ एक ओर बैठे हुए धम्मिक उपासक ने तथागत को इस प्रकार सम्बोधन किया—

१४. "भगवान् ! भिक्षुओं और उपासकों का वा-घर से बेघर हुए लोगों का तथा गृहस्थों का क्या 'शील' है ?

१५. "भगवान् ! उपासकों सहित उपस्थित भिक्षुओं को अपने अपने 'शील' की जानकारी देने की कृपा करें।"

१६. तथागत ने कहा—' भिक्षुओं ! ध्यान देकर सुनो। बताये हुए नियमों का पालन करो।

१७. "मध्याह्नान्तर पिण्डपात (भिक्षाटन) के लिये मत जाओ। असमय भिक्षाटन करने वाले के लिये बाल बिछा रहता है।

१८. "भिक्षाटन से पहले अपने मन की रूप, शब्द, गन्ध, रस तथा स्पर्श की आसक्ति से मुक्त कर लो।

१९. "भिक्षाटन कर चुकने पर, अकेले लौटो और एकान्त में बैठ कर स्थिर चित्त से विचार करो।

२०. "सज्जनों से बातचीत करो तो धर्म के ही विषय में बातचीत करो।

२१. "भिक्षा, विहार, शयनासन और पानी से सफाई करने आदि की साधनों से अधिक और कुछ महत्व न दो।

२२. "यदि कोई भिक्षु इन सभी चीजों का अनासक्त होकर उपयोग करेगा तो वह ऐसे ही अतिष्ठ रहेगा जैसे पानी में रहने वाला केवल पानी की बुंदों से।

२३. "अब मैं गृहस्थों के 'शील' की बात करता हूँ। उनसे कुछ कहना है।

२४. "किसी प्राणी की हत्या न करो, किसी की जान न लो। नकिसी को

ज्ञान लिये ज्ञान का समर्थन करो। सबस हो वा पुर्व हो—किसी भी कोई प्राणी हो, किसी की हिंसा न करो। सभी प्राणियों से प्रेम करो।

२५. "किसी गृहस्थ को जान-बूझ कर न चोरी करनी चाहिये, न करानी चाहिये। दिया ही हुजा ग्रहण करना चाहिये।

२६. "ध्वमिचार को वह जाग का गड़ा समझो। पर-स्त्री गमन से दूर रहे।

२७. "चाहे कोई सभा हो और चाहे कचहरी हो, उसे चाहिये कि वह असत्य को प्रोत्साहन न दे, उसे असत्य का त्याग कर देना चाहिये -

२८. "इस नियम का पालन करे: शराब न पिये, किसी को शराब न पिलाये, शराब पीने का समर्थन न करे। इस बात का विचार करे कि शराब आदमी को कितना पागल बना देती है।

२९. "तथे में आकर मूर्ख लोग पाप करते हैं, तथा दूसरों को पाप में प्रवृत्त करते हैं। इसलिए इस पागल बना देने वाले व्यसन से दूर-दूर रहे—यह मूर्खों का स्वर्ग है।

३०. "प्राणी-हिंसा न करे, चोरी न करे, झूठ न बोलें, नशीले पदार्थों से बचे और अभिचार से दूर रहे।

३१. "उपोसथ-दिनों में उपोसथ-व्रत ग्रहण करे और उस दिन अष्ट-श्रीलों का पालन करे।

३२. "प्रातः काल के समय पवित्र श्रद्धा-मुक्क वित्त के साथ (आठ) शीशों को ग्रहण करे बुद्धि-पुरस्सर व्यवहार करे। भिक्षुओं को यथा सामर्थ्य-भोजन तथा पंच पदार्थों का दान करे।

३३. "अपने माता-पिता की भली प्रकार सेवा करे। जीविका कोई अच्छा साधन अपनाये।

३४. "इस प्रकार जो गृहस्थ दंडता-पूर्वक धर्म का पालन करेगा, वह दिव्य-लोक को प्राप्त होगा।

३५. इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भिक्षुओं और गृहस्थों का 'धर्म' एक ही था।

३६. हाँ, इसमें थोड़ा भेद अवश्य है कि भिक्षुओं से अधिक आशा रखी गई है और गृहस्थों से उतनी नहीं।

३७. भिक्षु के लिये पांच 'व्रत' अनिवार्य हैं।

३८. उसे प्राणी-हिंसा से विरत रहने का 'व्रत' लेना पड़ता है।

३९. उसे विन्नादान से अर्थात् जो चीज उसे नहीं दी गई है, उसके न लेने का 'व्रत' ग्रहण करना पड़ता है।

४०. उसे कभी भी झूठ न बोलने का 'व्रत' लेना पड़ता है।

४१. उसे यह 'व्रत' सेना होता है कि वह किसी भी स्त्री से काम-संघर्ष नहीं रखेगा ।

४२. उसे यह 'व्रत' सेना होता है कि वह कभी किसी नशीले पदार्थ को ग्रहण नहीं करेगा ।

४३. मैं ये सभी नियम गृहस्थ पर भी लागू होते ही हैं ।

४४. भेद इतना है कि भिक्षु के लिये वे अनुत्तरेणीय 'व्रत' हैं, किन्तु गृहस्थ के लिये वे स्वेच्छा से ग्रहण किये गये 'शील' हैं ।

४५. दो और भी ध्यान देने लायक भेद हैं ।

४६. एक भिक्षु निजी सम्पत्ति नहीं रख सकता—

एक गृहस्थ रख सकता है ।

४७. एक भिक्षु 'परिनिर्वाण' में प्रवेश पाने के लिये भी स्वतंत्र है। एक गृहस्थ के लिये 'निर्वाण' पर्याप्त है ।

४८. एक भिक्षु और गृहस्थ में ये ही समानतायें और असमानतायें हैं ।

४९. लेकिन, 'धर्म' दोनों का एक ही है ।

१. विसरण तथा भ्रंशशील ग्रहण गृहस्थों की धर्म-वीक्षा ही तो है ।

२. देखो धम्मिक सुत्त (संयुक्त निकाय) ।

३. यह 'निर्वाण' और 'परिनिर्वाण' का भेद चिन्त्य है—अनु० ।

पाँचवाँ भाग

गृहस्थों के जीवन-नियम (विनय)

१. धनियों के लिये जीवन-नियम

१. भगवान् बुद्ध ने 'हरिद्वता' को 'जीवन का सौभाग्य' कह कर उसे ऊपर उठाने का प्रयास नहीं किया।

२. न उन्होंने मरीचों को नहीं कहा कि तुम संतुष्ट रहो क्योंकि तुम ही सारी पुष्पी के उत्तराधिकारी हो।

३. बल्कि, इसके विरुद्ध उन्होंने धन का स्वागत किया। जिस बात पर उन्होंने, जोर दिया वह यह थी कि धन पर भी जीवन-मर्यादा का अंकुश लगा रहना चाहिये।

(११)

१. एक बार जहाँ भगवान् बुद्ध विराजमान थे, वही अनापविष्टिक पहुंचा। आकर उसने तमागत को अभिवादन किया और एक ओर बैठकर बोला—'क्या भगवान् ! आप कृपया बतायेंगे कि वे कौन सी बातें हैं जो गृहस्थों के अनुकूल हैं, गृहस्थ को अच्छी लगने वाली हैं, गृहस्थ के द्वारा स्वागतार्ह हैं, लेकिन धन का प्राप्त करना कठिन है।'

२. अनापविष्टिका का प्रश्न सुना तो तमागत ने उत्तर दिया—'ऐसी बातों में पहली बात है स्वागत; धन प्राप्त करना।

३. 'दूसरी बात है यह देखना कि सगे-सम्बन्धी भी न्यायतः धन प्राप्त कर सकें।

४. 'तीसरी बात है दीर्घ-जीवी होना।

५. 'इन तीन बातों की प्राप्ति से पहले, जो गृहस्थों के अनुकूल हैं, गृहस्थ को अच्छी लगने वाली हैं, गृहस्थ के द्वारा स्वागतार्ह हैं, चार बातें पूर्व-करणीय हैं। वे हैं श्रद्धास्पी सौभाग्य का होना, शीत स्पी सौभाग्य का होना, उदारता स्पी सौभाग्य का होना तथा प्रज्ञास्पी सौभाग्य का होना।

६. श्रद्धास्पी धन का मतलब है तमागत के बारे में इस पदार्थ जानकारी का होना कि वे भगवान् जर्हंत हैं। सम्यक् सम्बुद्ध हैं। विद्या तथा आचरण से मुक्त हैं। सुगत हैं। लोक (= विश्व) के जानकार हैं। अनुत्तर हैं। (पुद्गमनीय) पुरुषों का दमन करनेवाले सारथी हैं तथा वे देव-मनुष्यों के शास्ता हैं।'

७. "शीलरूपी सौभाग्य प्राणातिपात (= जीव हिंसा) अदिश्रावान (= चोरी) काम-मिथ्याचार (= व्यभिचार), मृषावाद (= असत्य) तथा नशीली वस्तुओं के त्याग में है ।

८. "उदारता रूपी सौभाग्य कंजसुषण के कलंक से दूर रहने में है, उदार बने रहने में है, खुला हाथ रखने में है, दूसरों को देने में आनन्द मनाने में है, दाता और दान-शील होने में है ।

९. "प्रज्ञा का सौभाग्य किस बात में है ? प्रज्ञा का सौभाग्य इस बात के ज्ञान लेने में है कि जिस गृहस्थ का मन लोभ के बशीभूत रहता है, लालच के बशीभूत रहता है, द्वेष के बशीभूत रहता है, आलस्य के बशीभूत रहता है, तन्त्रा के बशीभूत रहता है, तथा चित्त की व्यग्रता के बशीभूत रहता है, वह पाप-कर्म करता है, जो करना चाहिये वह नहीं करता है । इसके फलस्वरूप उसे न सुख की प्राप्ति होती है और न सम्मान की ।

१०. "लोभ, लालच, द्वेष, आलस्य, तन्त्रा, चित्त की अस्थिरता तथा संशयो-मुपन—ये सब चित्त के ध्रुव हैं । जो गृहस्थ अपने चित्त को इन ध्रुवों से मुक्त कर लेता है, वह बहुल-प्रज्ञ हो जाता है, पृथुल-प्रज्ञ हो जाता है, उसकी बुद्धि निर्मल हो जाती है, वह पूर्ण ज्ञानी हो जाता है ।

११. "इस प्रकार न्यायतः, बड़े परिश्रम से, बाहुबल से, पसीना बहाकर जो धन कमाता है वह बड़ा सौभाग्य है । ऐसा गृहस्थ अपने आप को सुखी और आनन्दित करता है तथा आनन्द-मग्न रहता है । वह अपने माता-पिता, अपने स्त्री-वच्चों अपने नौकरों और कमकरों तथा अपने पार-दोस्तों को सुखी और आनन्दित करता है तथा सभी को आनन्द-मग्न रखता है ।"

२. गृहस्थ के जीवन के लिये नियम

इस विषय में भगवान् बुद्ध के विचार उस सुत्तन्त में आ गये हैं जो 'शृगाल को दिया गया उपदेश' के नाम से प्रसिद्ध है ।^१

१. उस समय भगवान् बुद्ध राजगृह वेलुवन में कलन्दक-निवाप में बिहार करते थे ।

२. अब उस समय गृहपति-पुत्र तरुण शृगाल समय से उठा और राजगृह में बाहर जाकर गीले-केज, गीले-वस्त्र, दोनों हाथ ऊपर उठाकर जोड़े हुए पृथ्वी और आकाश की सभी दिशाओं को नमस्कार करते [तथा—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा ऊपर और नीचे ।

३. उस दिन तथागत समय रहते ही, चीवर पहन, पाल तथा बीवर ले राजगृह में भिक्षाटन के लिये निकले । उन्होंने तृष्ण शृगाल को इस प्रकार नमस्कार करते

हुए देखा। पूछा :—“तु इस प्रकार पृथ्वी और आकाश की सभी दिशाओं की पूजा क्यों कर रहा है?”

४. “मरते समय मेरे पिता ने कहा था कि तुम पृथ्वी और आकाश की सभी दिशाओं की पूजा करना। इसलिये, भगवान्! अपने पिता के बचनों के प्रति आदर होने के कारण मैं ऐसा कर रहा हूँ।”

५. तथ्यागत ने पूछा—“लेकिन यह आदमी का सच्चा धर्म कैसे हो सकता है?” श्रुगाल बोला—“तो फिर आदमी का दूसरा और सच्चा धर्म क्या होगा? यदि कोई है तो भगवान् की बड़ी कृपा होगी, यदि भगवान् बतायें।”

६. “तो तूष्ण गृहपति! मेरी बात ध्यान से सुनो। मैं बताता हूँ।” “भगवान्! बहुत अच्छा।” तब तथ्यागत ने कहा :—

७. कोई भी धर्म आदमी का सद्धर्म सभी कहला सकता है जब वह उसे बुरी बातों का त्याग करने की शिक्षा दे। प्राणियों की हिंसा करना, चोरी, ध्वनि-चार तथा झूठ—ये चार बुरी बातें हैं, जिनका परित्याग करना चाहिए।

८. “श्रुगाल! यह बात तू जान ले कि पाप-कर्म, पक्षपात, शत्रुता, सूखंता तथा भय के कारण किये जाते हैं। यदि आदमी इनसे मुक्त हो तो वह कोई पाप-कर्म न करेगा।

९. “कोई भी आदमी का धर्म सभी हो सकता है जब वह उसे अपने धन को बरबाद करने की शिक्षा न दे। आदमी का पैसा शराब पीने की आदत पड़ जाने से बरबाद होता है, अनुचित समय पर रात को बाजारों में घूमने से बरबाद होता है, मेले-तमाशे देखने-फिरने से बरबाद होता है, जुए की आदत पड़ जाने से बरबाद होता है, कुसंगति में पड़ जाने से बरबाद होता है और आतशी बन जाने से बरबाद होता है।

१०. “श्रुगाल! शराब की लत पड़ जाने से छः हानियाँ हैं—(१) धन की हानि, (२) कलह होना, (३) रोग की संभावना, (४) पुत्रवरिजता (५) भद्रो नग्नता, तथा (६) बुद्धि की हानि।

११. अनुचित समय पर रात को बाजारों में घूमने की छः हानियाँ हैं—(१) वह स्वर्ग अरक्षित होता है, (२) उसके स्त्री-बच्चे अरक्षित होते हैं, (३) उसकी सम्पत्ति अरक्षित रहती है, (४) जिन अपराधों के करने वालों का पता नहीं लगता उस पर उनका सन्देह किया जाता है, (५) उसके बारे में झूठी अफवाह फैल जाती है, तथा (६) और भी अनेक दुःख भूमतने पड़ते हैं।

१२. मेले-तमाशे देखते फिरने की आदत में छः दोष हैं—(१) वह हमेशा पही सोचता रहता है कि नाच कहाँ है? (२) गाना कहाँ है? (३) बजाना कहाँ है? (४) काष्म-नान कहाँ है? (५) थंटियों का बजाना कहाँ है? टैम-टैम बाजा कहाँ है?

१३. "जुआ खेलने की लत पड़ जाने की छः हानियाँ हैं—(१) जीतने पर धुणा का पात्र बनता है, (२) हारने पर अपनी हार से दुःखी होता है, (३) उसका गुबारा ही नष्ट हो जाता है, (४) अदालत में उसके बचन का कोई मूल्य नहीं होता, (५) वह मित्रों तथा राजकर्मचारियों की धुणा का पत्र बग जाता है, (६) कोई शादी करने वाला उससे सम्बन्ध स्थापित करना नहीं चाहता, क्योंकि उसका कहना होता है कि जुआरी कभी अपनी पत्नि का पालन-पोषण नहीं कर सकता।

१४. "कुसंगति के छः दोष हैं—(१) कोई जुआरी, (२) कोई आधारा-गदं, (३) कोई शराबी, (४) कोई ठग, (५) कोई बंचक अथवा (६) कोई भी हिंसक उसका मित्र बन जाता है।

१५. "आलसी होने में छः दोष हैं—(१) बहुत उँझ है, कहकर काम-वह नहीं करता; (२) बहुत गरमी है, कहकर वह काम नहीं करता; (३) बहुत जल्दी है, कहकर वह काम नहीं करता; (४) बहुत देर हो गई है, कहकर वह काम नहीं करता; (५) बहुत भुल-लगी है, कहकर काम नहीं करता; तथा (६) बहुत खा लिया है, कहकर काम नहीं करता। और क्यों कि जो जो उसे करना चाहिये था, वह सब बिना किया ही रहता है इस लिये वह कुछ-कुछ भी अर्जित नहीं कर सकता; जो अर्जित रहता है, वह भी नष्ट हो जाता है।

१६. "कोई भी धर्म आदमी का सख्तर्म तभी कहला सकता है जब वह आदमी को अच्छे-बुरे मित्र की पहचान करावे।

१७. "चार जनों की 'मित्र' के रूप में शत्रु समझना चाहिये—(१) जो लोभी हो, (२) जो कहता हो, लेकिन करता न हो, (३) जो खुशामदी हो, (४) जो फुजूल-खर्ची का साथी हो।

१८. "इनमें से प्रथम को इसलिए 'मित्र' के रूप में शत्रु समझना चाहिये, क्योंकि वह लोभी होता है, वह देता कम है और माँगता अधिक है। वह जो कुछ करता है, वह भय के सारे करता है। वह अपने स्वार्थ का ही ध्यान रखता है।

१९. "जो कहता है, किन्तु करता नहीं, उसे भी 'मित्र' रूप में शत्रु समझना चाहिये, क्योंकि वह अपनी भूत-काल की मित्रता की बात करता है, वह भविष्य में मैत्री-पूर्ण व्यवहार की बात करता है, वह बचन-मात्र से ही लाभ उठाना चाहता है, किन्तु जब कुछ भी करने का समय आता है, वह अपनी असमर्थता प्रकट कर देता है।

२०. "जो खुशामदी है, उसे भी 'मित्र' रूप में शत्रु ही समझना चाहिये, क्योंकि वह बुराई में साथ देने वाला बन जाता है, भलाई में साथ देने वाला नहीं बनता, वह मुँह पर प्रशंसा करता है, पीठ पीछे निन्दा करता है।

२१. "जो फुजूल-खर्ची का साथी हो, उसे भी 'मित्र' रूप में शत्रु ही समझना चाहिये, क्योंकि असमय बाजार घूमने के समय ही वह साथी होता है, जब तुम

मैले-नमामे देखते फिरते हो, उसी समय वह तुम्हारा साथी होता है; जब तुम बुद्धा खेलने में लगे होते हो, उसी समय वह तुम्हारा साथी होता है।

२२. "चार तरह के मित्रों को यथापे-मित्र जानना चाहिए—(१) जो सहायक हो, (२) जो सुख-दुःख दोनों का साथी हो, (३) जो अच्छा परामर्श देता हो तथा (४) जो सहानुभूति रखता हो।

२३. "जो सहायक हो उसे यथापे-मित्र जानना चाहिए : क्योंकि जब तुम अरक्षित अवस्था में होते हो, उस समय वह तुम्हारा संरक्षण करता है; जब तुम्हारी सम्पत्ति अरक्षित रहती है उस समय वह उसका संरक्षण करता है, तुम्हारी विपदा-वस्था में वह तुम्हारा शरण-स्थान होता है; जब तुम्हें आवाह-विवाह जैसा कोई काम करना होता है तो वह तुम्हारी आवश्यकता से दुम्नी वस्तुयें तुम्हें लाकर देता है।

२४. "जो सुख-दुःख दोनों में साथी हो उसे यथापे-मित्र जानना चाहिये क्योंकि वह तुम्हें अपने 'रहस्य' बता देता है, क्योंकि वह तुम्हारी 'रहस्य' की बातों को छिपा कर रखता है, तुम्हारी मुसीबत में वह तुम्हारा साथ नहीं छोड़ता, वह तुम्हारे लिये अपने जीवन तक का बलिदान कर देता है।

२५. "जो सद्-परामर्श देता हो उसे यथापे-मित्र जानना चाहिये; क्योंकि वह तुम्हें बुराई से रोकता है, वह तुम्हें शुभ-कर्म करने के लिये प्रेरित करता है, जो बातें तुमने पहले नहीं सुनीं, ऐसी बातें सुनाता है—वह तुम्हारे लिये स्वर्ग का मार्ग खोलता है।

२६. "जो सहानुभूति रखता हो, उसे भी 'यथापे-मित्र' जानना चाहिए, क्योंकि तुम्हें दुःखी देखकर वह सुखी नहीं होता, तुम्हें सुखी देखकर वह सुखी होता है, तुम्हारी बुराई करने वाले को वह रोकता है। तुम्हारी प्रशंसा करने वाला वह समर्थन करता है।

२७. "किसी को छः शिक्षाओं की पूजा करने की शिक्षा देने के बजाय जो धर्म आदमी का धर्म कहलाने के योग्य हो, उस धर्म की उसे शिक्षा देनी चाहिये कि वह अपने माता-पिता की सेवा और उनका सत्कार करे, अपने गुरुओं तथा आचार्यों का आदर करे, अपनी स्त्री तथा अपने बच्चों को प्यार करे, अपने मित्रों तथा अपने साधियों से स्नेहपूर्ण व्यवहार करे तथा अपने नौकरों और कमकरो को सहायता करे।"

३. बालकों के लिये जीवन-नियम

१. "एक बालक को अपने माता-पिता की सेवा करनी चाहिये। उसे सोचना चाहिए : एक समय इन्होंने मेरा पोषण किया, अब मैं इनका पोषण करूँगा। इनके प्रति जो मेरा कर्तव्य है, मैं उसे पूरा करूँगा। मैं अपनी वंश-परम्परा

को कायम रखेंगे। मैं अपने आा को उत्तराधिकार के योग्य बनाऊंगा। क्योंकि माता-पिता नाना प्रकार से सन्तान के प्रति अपना प्रेम प्रकट करते हैं, वे उसे बुराई से बचाते हैं, वे उसे भला काम करने के लिये प्रेरित करते हैं, वे उसे किसी जीविका के योग्य बनाते हैं, वे उसका यथायोग्य विवाह करते हैं और उचित समय पर वे उसे उसका उत्तराधिकार सौंप देते हैं।

४. शिष्य के लिये जीवन-नियम

१. "एक शिष्य को अपने आचार्यों के प्रति यथायोग्य बर्ताव करना चाहिये। उसे अपने स्थान से उठकर अभिवादन करना चाहिये, उसे पढ़ते-लिखते में विशेष उसाह दिखाना चाहिये, उसे अपने आचार्यों की व्यक्तिगत सेवा करनी चाहिये और शिक्षा ग्रहण करते समय विशेष ध्यान देना चाहिये। क्योंकि आचार्य अपने शिष्यों से प्रेम करते हैं। जो कुछ उन्होंने सीखा है, वह उसे सिखाते हैं; जो कुछ उन्होंने दुःखतापूर्वक ग्रहण किया है, वह उसे ग्रहण कराते हैं। वे उसे हर प्रकार के ज्ञान का अच्छी तरह ज्ञान कराते हैं। वे उसके मित्रों और साधियों में उसकी प्रशंसा करते हैं। वे हर तरह से उसकी आरक्षा की चिन्ता करते हैं।

५. पति-पत्नि के लिये जीवन नियम

१. "एक पति को अपने पत्नी का संस्कार करना चाहिये, उसके प्रति आदरभाव प्रदर्शित करना चाहिये, पत्नि-व्रत पालन करना चाहिये, उसे अधिकारी बनाना चाहिये, तथा उसे गृह में आदि बनवाकर देने चाहिये। क्योंकि स्त्री उसे प्यार करती है, उसके सभी कार्य अच्छी तरह करती है, वह उसके तथा अपने मायके के सभी सम्बन्धियों का आतिथ्य करती है, वह पति प्रता होती है, उसके लावे सामान की रक्षा करती है और अपने तमाम कर्तव्यों को सही होशियारी तथा दक्षता से पूरा करती है।

२. "एक कुलश्रुव को अपने मित्रों तथा साधियों के साथ उदारता का व्यवहार करना चाहिये, शालीनता तथा उदारगुण्यता से पेश आना चाहिये। उसे उनके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये जैसा वह अपने साथ करता है और उसे अपने वचन का पक्का होना चाहिये। क्योंकि उसके मित्र और उसके परिचित उसे प्यार करते हैं, उसकी अवस्थित-स्थिति में वह उसकी रक्षा करते हैं और ऐसे समय में उसकी सम्पत्ति की रक्षा करते हैं। खतरे के समय वे उसके शरण-स्थान होते हैं। मुसीबत पड़ने पर वे साथ नहीं छोड़ते। वे उसके परिवार का ख्याल रखते हैं।

६. मालिक और नौकर के लिये जीवन-नियम

१. "एक मालिक को चाहिये कि वह अपने नौकरों तथा कमकरो को उनकी

सामर्थ्य के अनुसार काम दे, उन्हें भोजन तथा मजदूरी दे, बीमारी में उनकी देख-भाल करे, असाधारण स्वादिष्ट चीजें बाँट कर खाए और समय-समय पर उन्हें छुट्टी भी दे। क्योंकि नौकर और कमकर अपने मातृक से प्रेम करते हैं, वे उससे पहले सोकर उठते हैं, उसके सो जाने पर सोने जाते हैं, जो कुछ मिलता है उसीसे संतुष्ट रहते हैं। वे अपना काम अच्छी तरह से करते हैं और सर्वत्र उसका पक्ष फैलाते हैं।

२. "एक कुल-पुत्र को चाहिये कि वह अपने गुरुओं की मज-बूझ तथा कर्म से प्रेमपूर्वक सेवा करे, उनके लिये सर्वत्र अपने घर के द्वार खुले रखे तथा उनकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करे। क्योंकि गुरुजन उसे बुनाई से बघाते हैं, उसे मज्जाई करने की प्रेरणा करते हैं, वे उससे मैत्री रखते हैं, जो उसने अभी तक नहीं सुना वह उसे सुनाते हैं तथा जो सुना है उसे ठीक और निर्दोष बनाते हैं।"

७. उपसंहार

१. तथ्यागत के इस प्रकार कहने पर तत्काल गृह्याति धृगाल बोला—“भगवान् अद्भुत है ! जैसे कोई उखड़े को जमा दे, अथवा डके को उधाड़ दे, अथवा किसी पथ-भ्रष्ट को रास्ता दिखा दे, अथवा अन्धरे में रास्ता दिखा दे कि ओख जाने रास्ता देख लेंगे। इसी प्रकार तथ्यागत ने मामा तरह से सत्य का प्रकाश कर दिया है।

२. “और मैं भी, बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण जाता हूँ। कृपया भगवान् आप मुझे प्राण रहने तक अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।”

८. कुमारियों के लिये जीवन नियम

१. एक बार भगवान् बुद्ध भद्रिय के पास आतीष बन में रुहरे हुए थे।^१ मेण्डक का पौत्र उम्गह वहाँ आया और अभिवादन करके एक ओर बैठ गया। उस प्रकार बैठे हुए उम्गह ने तथ्यागत से निवेदन किया:—

२. “भगवान् ! अन्य तीन भिक्षुओं के साथ कल के लिये मेरा भोजन का निमंत्रण स्वीकार करें।”

३. तथ्यागत ने अपने मीन से स्वीकार किया।

४. जब उम्गह ने देखा कि तथ्यागत ने उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया, वह अपने स्थान से उठा, अभिवादन किया और तथ्यागत की प्रदक्षिणा करके चला गया।

५. रात के बीत जाने पर, दूसरे दिन तथ्यागत ने पूर्वाह्न के समय चीवर धारण किया और पात्र तथा (दूसरा) चीवर ले, जहाँ उम्गह का घर था वहाँ गये और बिछे आसन पर बैठे। उम्गह ने तथ्यागत को अपने हाथ से माना प्रकार के भोजनों से संतुष्ट किया।

६. जब तपागत भोजन समाप्त कर चुकें, तो वह एक ओर बैठ गया। इस प्रकार बैठे हुए उसने कहा:—

७. “भगवान् ! मेरी ये लड़कियाँ अपने अपने पति के घर चली जाएँगी। भगवान् ! आप उन्हें परामर्श दें, आप उन्हें उपदेश दें, जो तिरकाल तक उनके हित तथा सुख का कारण हो।”

८. तब भगवान् ने उन लड़कियों को उपदेश दिया—“लड़कियो ! इस प्रकार का अभ्यास बालों कि हमारा हित और भलाई चाहने वाले हमारे अनुकम्पक माता-पिता जिस किसी पति को भी हमें सौंप देंगे, हम उससे पहले सोकर उठने वाली होंगी और उससे पीछे सोने वाली होंगी, हम काम करने वाली होंगी और सभी चीजों को व्यवस्थित रखने वाली तथा सधुर-भाषिणी होंगी। लड़कियो ! तुम्हें ऐसा अभ्यास बालना चाहिये।

९. “लड़कियो ! और यह भी अभ्यास डालना चाहिये कि हमारे पति के माता-पिता, सगे सम्बन्धी तथा साधुगण—जो कोई भी घर आयें, उनका आदर करने वाली होंगी, उनका स्वागत करने वाली होंगी, उनके आने पर उन्हें आसन और जल देने वाली होंगी।

१०. “लड़कियो ! और यह भी अभ्यास डालना चाहिये कि हमारे पति का जो भी काम होगा—चाहे ऊन का हो और चाहे रुई का हो—हम उसमें दल और होशियार होंगी। हम उस काम की समस्त हासिल करेंगी जिससे हम उसे स्वयं कर सकें, करा सकें।

११. “लड़कियो ! और यह भी अभ्यास डालना चाहिये कि घर के जितने नौकर-चाकर होंगे हम उन सबके काम की देख-भाल रखेंगी कि किसने क्या और कितना काम किया है और क्या और कितना काम नहीं किया है ? हम रोगियों का बलाबल जानेंगी, और जिसको जैसा भोजन देना चाहिये वैसा भोजन देंगी।

१२. “लड़कियो ! यह भी अभ्यास डालना चाहिये कि जो रुपया, जो धान, जो सोना तथा जो चाँदी पति घर लायेंगे, हम उसे सुरक्षित रखेंगी, उसकी हिकाजत करेंगी ताकि कोई चोर, कोई उल्हका, कोई डाकू उसे न ले जा सके।”

१३. यह उपदेश सुनने को मिला तो उम्ग्रह की लड़कियाँ बहुत प्रसन्न हुईं। वे तपागत की बड़ी कृतज्ञ थीं।

१. तिपालोवाद सुतन्त (दीप निकाय—३१)।

२. उम्ग्रह सुतन्त (अंगुत्तर निकाय)।

षष्ठ काण्ड

भगवान् बुद्ध और उनके समकालीन

- | | | |
|--------------|---|--------------------|
| १. पहला भाग | — | उनके समर्थक |
| २. दूसरा भाग | — | उनके विरोधी |
| ३. तीसरा भाग | — | उनके धर्म के आलोचक |
| ४. चौथा भाग | — | मित्र तथा प्रशंसक |

पहला भाग

उनके समर्थक

१. राजा बिम्बिसार का 'दान'

१. राजा बिम्बिसार तपागत का एक सामान्य अनुयायी था, वह भगवान् बुद्ध के प्रति अत्यन्त श्रद्धावान था और धर्म के कार्यों में बहुत सहायक था।

२. गृहस्थ उपासक बन जाने पर बिम्बिसार ने कहा—“भगवान् ! आदि भिक्षुसंघ सहित कल के भोजन के लिये मेरा निर्मल्लण स्वीकार करें।”

३. तपागत ने मौन रहकर स्वीकार किया।

४. राजा बिम्बिसार ने जब जाना कि उसका निर्मल्लण स्वीकृत हो गया, वह अपने स्थान से उठा और तपागत को अभिवादन किया तथा प्रदक्षिणा करके चला गया।

५. रात बीत जाने पर बिम्बिसार ने बड़िया से बड़िया भोजन तैयार कराया और समय हो जाने पर तपागत को सूचना दी, “भगवान् ! भोजन तैयार है।”

६. पूर्वाह्न में तपागत ने चीवर पहन, अपना पात्र-चीवर से पूर्व जटिल भिक्षुओं के साथ राजगृह में प्रवेश किया।

७. तपागत राजा बिम्बिसार के महल में पहुंचे और भिक्षु संघ सहित बिछे आसन पर बैठे। राजा बिम्बिसार ने बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघ को अपने हाथ से भोजन परोसा। भोजन कर चुकने के बाद तपागत ने जब अपने हाथ और पात्र धो लिये, तो बिम्बिसार उनके पास आ बैठा।

८. उनके पास बैठकर राजा बिम्बिसार ने सोचा : “मैं तपागत के लिये निवासस्थान की व्यवस्था कहाँ करूँ ? जगह ऐसी होनी चाहिये जो गाँव से बहुत दूर भी न हो, और ऐसी होनी चाहिये जो बहुत नजदीक भी न हो, जो लोग उनके पास जाना-जाना चाहें उनके लिये जाना-जाना सुगम हो, जहाँ दिन में बहुत धीरे न हो और रात में बहुत शोर न हो, जो एकान्त हो, जन-समूह से प्रच्छन्न हो और शान्ति-जीवन बिताने के लिये बहुत अच्छी हो।”

९. तब राजा बिम्बिसार को ध्यान आया : “मेरा अपना वेलुवन उद्यान है, जो न नगर से बहुत दूर है और न नगर के बहुत समीप है, जो जाने-जाने के लिये सुगम है। मैं क्यों न उसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को दान कर दूँ ?”

१०. तब राजा ने एक जलमयी स्वर्ण-शारी ली और भगवान् बुद्ध के हाथ पर जल डालते हुए कहा—“मैं यह वस्तुवन उद्यान बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को दान देता हूँ।” तथागत ने उद्यान स्वीकार कर लिया।

११. तब तथागत ने राजा बिम्बसार को अपने ‘प्रवचन’ से उत्साहित किया, आनन्दित किया और आह्लादित किया तथा अपने स्थान से उठकर चले गये।

१२. उसके बाद तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया—“भिक्षुओ ! मैं बिहार को स्वीकार करने की अनुमति देता हूँ।”

२. अनाथपिण्डिक का ‘दान’

१. उपोसकत्व ग्रहण कर चुकने के अनन्तर अनाथपिण्डिक एक बार भगवान् बुद्ध के पास गया। अभिवादन कर चुकने के अनन्तर वह एक और बैठा और बोला—

२. “भगवान् ! आप जानते हैं कि मैं ध्यावस्ती में रहता हूँ जो धन-धान्य से सम्पन्न है और जहाँ शान्ति विराजती है। वहाँ महाराज प्रसेनजित् का शासन है।

३. “मैं वहाँ एक बिहार की स्थापना करना चाहता हूँ। आप कृपया वहाँ पधारें और उस बिहार का दान स्वीकार करें।”

४. भगवान् बुद्ध ने मौन रहकर स्वीकार किया।

५. जब सेंट अनाथपिण्डिक घर लौटा तो उसने जेत राजकुमार का उद्यान देखा—हराभरा और निर्मल जल के स्रोतों से युक्त। उसने सोचा—“भगवान् बुद्ध के भिक्षु-संघ के लिये यह स्थान सब से अधिक उपयुक्त होगा।”

६. राजकुमार उद्यान बेचना नहीं चाहता था, इसीलिये उसने कीमत बहुत अधिक बताई। पहले तो उसने इनकार ही किया, लेकिन आखिर में कहा—“मेना ही हो तो सारी जमीन पर कार्पाषण (= सोने का सिक्का) बिछा दो।”

७. अनाथपिण्डिक प्रसन्न हुआ और कार्पाषण बिछाने लगा। तब राजकुमार बोला—“रहने दो, मैं बेचना ही नहीं चाहता।” लेकिन अनाथपिण्डिक का आग्रह था कि जब जब तुम एक बार उसकी कीमत लगा चुके और मैं उतनी ही कीमत देने के लिये तैयार हूँ तो तुम्हें जमीन देनी पड़ेगी। बात यहाँ तक बढ़ी कि न्यायालय तक पहुँची।

८. इस बीच लोग इस असामान्य घटना की चर्चा करने लगे और राजकुमार को भी जब यह पता लगा कि अनाथपिण्डिक धनी तो था ही, किन्तु वह बड़ा धडाधल तथा धार्मिक था, उसने अनाथपिण्डिक से जमीन लेने का उद्देश्य पूछा। जब उसे पता लगा कि जमीन तथागत के लिये बिहार बनवाने की ली जा रही है तो उसने भी उस पुण्य-कार्य में हिस्सेदार बनने की इच्छा प्रकट की। उसने जमीन की आधी ही

कोमत स्वीकार की। बोला:—'जमीन तुम्हारी। पेड़ मेरे। मैं अपनी ओर से वृक्षों का दान करता हूँ।'

६. विहार का विनाश्यास हो चुकने पर वहाँ गंध के योग्य एक विमान विहार बनवाया गया—जो बहुत ही सुन्दर लगता था।

१०. इस विहार का नाम पड़ा, 'अनाधर्षिष्ठिक का जेतवनाराम'। संक्षिप्त रूप 'जेतवन विहार' ही रह गया। अनाधर्षिष्ठिक ने तत्प्राप्त को कणितवस्तु से धावन्तो पधारने और विहार को स्वीकार करने का निमन्त्रण दिया।

११. जब तत्प्राप्त जेतवन पधारें, अनाधर्षिष्ठिक ने पुनः-वर्षों की और सुमन्विष्ट धूप जलाई। उसने एक सोने की शारी से तत्प्राप्त के हाथ पर पानी डालते हुए कहा:—'मैं संसार-भर के भिक्षुसंघ को यह विहार समर्पित करता हूँ।'^२

१२. तत्प्राप्त ने विहार स्वीकार किया और दानानुमोदन करते हुए कहा:—'सभी अमंगलों का नाश हो। यह दान 'दाता' के साथ साथ सारी मानवता की कल्याण-बुद्धि का कारण बने।'

१३. अनाधर्षिष्ठिक बुद्ध के प्रधान जिल्दों में से एक वा—दान-दाताओं में प्रमुख।

३. जीवक का 'दान'

१. जब कभी तत्प्राप्त राजगृह में होते, बैठ जीवक दिन में दो बार तत्प्राप्त के दर्शनार्थ जाता।

२. जीवक को लगा कि राजा बिम्बिसार ने तत्प्राप्त को जिस वेलुवन का दान किया है, वह बहुत दूर है।

३. राजगृह में 'आस्रवन' नाम का उसका अपना एक बगीचा था, जो कि उसके अपने स्थान से नजदीक था।

४. उसने सोचा कि वह एक अंग-सम्पूर्ण विहार बनवाने और विहार तथा बगीचा तत्प्राप्त को समर्पित कर दे।

५. अपने मन में यह विचार लेकर वह तत्प्राप्त के पास पहुंचा और उनसे प्रार्थना की कि वह उसकी कामना पूरी होने दें।

६. तत्प्राप्त से मीन रहकर स्वीकार किया।^३

४. आस्रपाली का 'दान'

१. उस समय तत्प्राप्त 'नादिका' में ठहरे हुए थे, और स्थान-परिवर्तन चाहते थे। उन्होंने आनन्द को सम्बोधित किया और कहा—'आनन्द! आ, हम वैशाखी चलें।'

२. 'बहुत अच्छा' कह आनन्द ने स्वीकार किया।

३. तब महान् भिक्षुसंघ के साथ तत्प्राप्त वैशाली पधारे । वहाँ वे वैशाली में आश्रमपाली के आश्रमन में रहे ।

४. तब आश्रमपाली गणिका ने सुना कि भगवान् बुद्ध आये हैं और उसी के आश्रमन में ठहरे हैं । उसने कई राजकीय रथ जुतवाये और उनमें से एक में स्वयं बैठकर वह वैशाली की ओर से अपने उद्यान में गई । शेष रथों में उसकी अनुचर सेविकाएँ थीं । जहाँ तक रथ से जाया जा सकता था वह रथ से गई । उसके बाद वह रथ से उतर कर जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँची और जाकर अभिवादनपूर्वक एक ओर बैठ गई । जब वह वहाँ बैठी थी, उसे भगवान् बुद्ध का कल्याणकारी 'प्रवचन' सुनने को मिला ।

५. तब आश्रमपाली गणिका ने तत्प्राप्त की दूसरे दिन के भोजन के लिये निर्भक्षित किया ।

६. तत्प्राप्त ने उसे मौन रहकर स्वीकार किया । जब आश्रमपाली को मालूम हुआ कि उसका निर्भक्षण स्वीकृत हो गया है, वह अपने स्वान से उठी और अभिवादन कर चुकने के अनन्तर प्रदक्षिणा कर चली गई ।

७. अब वैशाली के लिच्छवियों ने सुना कि भगवान् बुद्ध वैशाली आये हैं और आश्रमपाली के उद्यान में ठहरे हैं । वे भी भगवान् बुद्ध को निमन्त्रण देना चाहते थे । उन्होंने भी बहुत से राजकीय रथ जुतवाये और अपने वैशाली के सभी साधियों सहित तत्प्राप्त की सेवा में उपस्थित हुए ।

८. इधर से वे जा रहे थे और उधर से आश्रमपाली आ रही थी ।

९. और आश्रमपाली लिच्छवियों के रथों से रथ, पहिये से पहिया और घुरी से घुरी टकराती हुई पास से गुजरी । लिच्छवियों ने पूछा—“आश्रमपाली ! क्या बात है जो आज तू हमसे रथ टकराती हुई जा रही है ?”

१०. “स्वामियों ! तत्प्राप्त प्रमुख भिक्षुसंघ ने कल के लिये मेरा भोजन का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया है ।”

११. “आश्रमपाली ! हमसे एक लाख से ले, यह कल का भोजन हमें कराने दे ।”

१२. “स्वामियों ! यदि आप उप-नगरों सहित समस्त वैशाली भी मुझे दें, तब भी मैं यह कल का भोजन आपको नहीं कराने दे सकती ।”

१३. लिच्छव हाथ मसते हुए आगे बढ़े । वे कहते जा रहे थे—“इस आश्रमपाली ने हमें हरा दिया, इस आश्रमपाली ने हमें हरा दिया ।” अन्त में आश्रमपाली के उद्यान में पहुँचे ।

१४. यद्यपि वे जानते थे कि आश्रमपाली बाजी मार ले गई है, तो भी उन्होंने सोचा कि हम भगवान् बुद्ध के पास चले । हो सकता है कि वे अब भी हमारे निमन्त्रण को प्रथम स्थान दे दें ।

१५. जब भगवान् बुद्ध ने लिच्छवियों को, दूर से ही, आते देखा तो उन्होंने भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा—“जिन भिक्षुओं ने कभी देवताओं को न देखा हो, वे इन लिच्छवियों को देखें। वे इस लिच्छवि-मण्डली को देखें, वे इस लिच्छवि-मण्डली से अनुमान लगा लें—यह दिव्यलोक के देवताओं के समान है।”

१६. जहाँ तक रथों से जा सकते थे, वहाँ तक रथों से जाकर लिच्छवी उतर गये और तब जहाँ तथागत थे वहाँ पहुँचे और अभिवादन करके अपना स्थान ग्रहण किया।

१७. तब उन्होंने तथागत से प्रार्थना की—“भगवान् ! कल के लिये हमारा निमन्त्रण स्वीकार करें।”

१८. “लिच्छवियों ! कल के लिये तो मैं आसपासी का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया है।”

१९. तब लिच्छवियों को निश्चय हो गया कि आसपासी उन पर बाजी मार ले गई। उन्होंने तथागत के वचनों का अनुमोदन किया, अपने स्थान से उठे और तथागत की वन्दना की। तदनन्तर वे तथागत की प्रवर्णिता कर वहाँ से बिदा हुए।

२०. रात बीत जाने पर आसपासी ने अपने निवास स्थान पर मधुर खादनीय-भोजनीय की तैयारी कराई और समय की सूचना भिजवाई, “समय हो गया, और भोजन तैयार है।”

२१. तथागत ने चीवर पहना तथा पात्र-चीवर से भिक्षुसंघ सहित जहाँ आसपासी का निवास-स्थान था, वहाँ पधारे। वहाँ पहुँचकर वे अपने लिये तैयार किये गये आसन पर विराजमान हुए। तब आसपासी ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघ की मधुर खादनीय-भोजन से संतुष्ट किया। वह अन्त तक स्वयं आपह्नुवक परोसती रही।

२२. भोजन समाप्त हो चुकने पर जब तथागत अपना पात्र और हाथ धो चुके, आसपासी एक नीचा आसन लेकर बैठ गई। तब उसने तथागत से निवेदन किया:—

२३. “भगवान् ! मैं अपना उद्यान बुद्ध-प्रमुख भिक्षु संघ को अर्पित करती हूँ।” तथागत ने मौन रहकर स्वीकार किया। तदनन्तर भगवान् बुद्ध ने पानातु-भोजन करते हुए प्रवचन किया। इसके बाद तथागत आसन से उठ कर चले गये।”

५. विशाखा की दान-शीलता

१. विशाखा आवस्ती की एक बड़ी धनी महिला थी। उसके पुत्र-पौत्र बहुत थे।

२. जब तथागत आवस्ती में विहार कर रहे थे, विशाखा जहाँ तथागत थे,

वहाँ पहुँची और उन्हें अगले दिन का निमंत्रण दिया, जिसे तत्थागत ने स्वीकार कर लिया।

३. उस रात और दूसरे दिन सुबह भी भारी वर्षा हुई। भिक्षुओं ने अपने बीवरों को सूखा रखने के लिये उतार दिया और सारी वर्षा अपने नंगे बदन पर पड़ने दी।

४. जब दूसरे दिन तत्थागत भोजन समाप्त कर चुके, तो विशाखा एक भीषा आसन लेकर मञ्चदीक बैठ गई और बड़ी विनम्रतापूर्वक बोली—“भगवान् ! मैं आपसे जाठ वर चाहती हूँ।”

५. तत्थागत बोले—“विशाखा ! तत्थागत (बिना जाने) वर नहीं देते।”

६. विशाखा ने फिर निवेदन किया—“भगवान् ! ओ वर मैं मागने जा रही हूँ वे उचित है और आपत्ति-रहित है।”

७. ‘वर’ मागने की अनुमति मिल जाने पर विशाखा बोली—“भगवान् ! मैं चाहती हूँ कि वर्षा-काल में मैं भिक्षु-संघ को बीवरों का दान कर सकूँ। बाहर से आने वाले तथा बाहर जाने वाले भिक्षुओं को भोजन दे सकूँ। रोगियों को भोजन दे सकूँ। रोगियों को सेवा करने वालों को भोजन दे सकूँ। भिक्षुओं को खीर (= दूध-भात) दान कर सकूँ और भिक्षु-नियों के लिये नहाने के वस्त्र का दान कर सकूँ।”

८. “हे विशाखा ! इन जाठ वरों को मागने का तेरा क्या कारण है, क्या प्रयोजन है ?”

९. विशाखा बोली :—“भगवान् ! मैंने अपनी नौकरानी को आज्ञा दी कि वह विहार जाये और भिक्षु-संघ को भोजन के तैयार हो जाने की सूचना दे आये। मेरी नौकरानी गई। लेकिन जब वह विहार पहुँची तो उसने देखा कि पानी बरसते समय भिक्षु निर्वस्त्र थे। उसने सोचा, ‘ये भिक्षु नहीं हैं। वे नग्न तपस्वी’ हैं जो अपने शरीर पर पानी पड़ने दे रहे हैं।’ वह चली आई और मुझे यही कहा। तब मैंने उसे हुबारा भेजा।

१०. “भगवान् ! नम्रता अजुनि-पूर्ण है। भगवान् ! नम्रता से जुगुप्सा पैदा होती है। भगवान् ! यही कारण है और यही प्रयोजन है कि मैं जीवन-भर भिक्षु-संघ को वर्षा-ऋतु में पहनने के लिये वस्त्र देना चाहती हूँ।

११. “मेरी दूसरी माँग का कारण यह है कि बाहर से आने वाले भिक्षु, सीधे रास्तों से अपरिचित होने के कारण धके-बकावे आते हैं, वे नहीं जानते कि भिक्षा कहाँ मिलेगी। भगवान् ! यही कारण है और यही प्रयोजन है कि मैं जीवन-भर आगन्तुक भिक्षुओं को भिक्षा देना चाहती हूँ।

१२. “मेरी तीसरी माँग इसलिये है कि एक बाहर जाने वाला भिक्षु यदि भिक्षाटन के लिये जायगा तो वह शेष भिक्षुओं से पीछे रह जा सकता है अथवा जहाँ

वह पहुँचना चाहता है यहाँ विशेष चिन्तन से पहुँचिगा और वह अपने यहाँ से ही वका-थकाया खाना होगा।

१३. "चौथे, यदि एक बीमार भिक्षु को ठीक पथ्य न मिले तो उसका रोग बढ़ भी जा सकता है और वह मर भी जा सकता है।

१४. "पाँचवे, जो भिक्षु रोगी को सेवा-शुश्रूषा में लगा है, उसे अपने लिये भिक्षाटन का समय नहीं मिल सकता।

१५. "छठे, यदि रोगी भिक्षु को ठीक औषध न मिले तो उसका रोग बढ़ जा सकता है और वह मर भी जा सकता है।

१६. "सातवें, भगवान् ! मैंने सुना है कि तत्त्वमत ने 'धीर-पापास' (= धीर) की प्रशंसा की है क्योंकि इससे बुद्धि को स्फूर्ति मिलती है और भूख-प्यास दूर होती है। स्वस्थ आदमी के लिये यह पूरा भोजन है और रोगी के लिये यह पथ्य है, इसलिए मैं अपने जीवन-भर संघ को धीर-पापास का दान देना चाहती हूँ।

१७. "अन्तिम माँग भगवान् ! मैं ने इसीलिये की है कि भिक्षुणियों नग्न ही अनिरवती नदी के तट पर स्नान करती हैं जहाँ मणिकार्यें भगवान् ! भिक्षुणियों का यह कह कर मजाक उड़ाती है कि 'इस तरुण अवस्था में तुम्हारे 'ब्रह्मचर्य' का क्या मतलब है। जब चूड़ी हो जाना तब 'ब्रह्मचर्य' की रक्षा करना इससे तुम्हारे दोनों हाथों में लट्ठ रहेंगे। भगवान् ! स्त्री के लिये ममता बहुत बुरी बात है, वह जगुप्ता पैदा करने वाली है।

१८. "भगवान् ! ये ही कारण थे और ने ही प्रयोजन थे।"

१९. तब तत्त्वमत ने प्रश्न किया "विशाखे !। लेकिन अपने लिये तूने कौन-सा लाभ सोचकर इन आठ बातों की माँग की?"

२०. विशाखा ने उत्तर दिया—“भगवान् ! गाता स्वानों में बर्बाबास करने वाले भिक्षु तत्त्वमत के दर्शनार्थ आवस्ती आवेंगे। और तत्त्वमत के पास आकर वे सुचना देंगे और पूछेंगे 'भगवान् ! अमुक और अमुक भिक्षु का शरीरान्त हो गया है। अब उसकी क्या गति है?' तब भगवान् जैसी जिस की गति होगी वह बतायेंगे, यदि वह मोतापन आदि मार्ग-फल प्राप्त रहा है तो वह बतायेंगे और यदि वह जहंत हो गया रहा है, तो वह बतायेंगे।

२१. "और तब मैं उन भिक्षुओं के पास जाकर उनसे पूछूँगी कि क्या वह भिक्षु कभी आवस्ती में रहा है? यदि वे कहेंगे कि 'हाँ' तो मैं इस परिणाम पर पहुँच जाऊँगी कि अवश्य या तो उस भिक्षु ने बर्बाबास के लिये जीवन प्राप्त किया होगा, या आगन्तुक भिक्षुओं का आहार प्राप्त किया होगा, या जाने वाले भिक्षु का आहार प्राप्त किया होगा, या रोगी का भोजन प्राप्त किया होगा, या रोगी शुश्रूषक का भोजन प्राप्त किया होगा, अथवा रोती होने के कारण औषध प्राप्त की होगी अथवा मित्य मिलने वाली धीर प्राप्त की होगी।

२२. “तब मेरे मन में प्रसन्नता पैदा होगी, प्रसन्नता से आनन्द उपजेगा और आनन्द होने से सारा शरीर शान्ति को प्राप्त करेगा। शान्ति का अनुभव होने से दिव्य मुख का अनुभव होगा और उस मुख की अनुभूति में मुझे हृदय की शान्ति प्राप्त होगी। यह एक प्रकार से मेरे लिये अद्या-अल आदि तथा सात सम्बोधि-अंगों की प्राप्ति होगी। असकान् ! अपने लिये-मैंने यही लाभ सोचकर इन आठ बातों की माँग की।”

२३. तब तथामत ने कहा—“विशाम्भे ! यह बहुत अच्छा है। यह बहुत अच्छा है कि तूने यह लाभ सोचकर तथामत से यह आठ वर माँगे हैं। जो ‘दान’ के पात्र है उन्हें जो दान दिया जाता है वह अच्छी भूमि में फल डालने के समान है जिससे खूब फसल होती है। लेकिन जो राग-द्वेष के बसीभूत हैं उनको दिया गया दान खराब भूमि में बीज डालने के समान है। दान ग्रहण करने वाले के राग-द्वेष मानो पुष्प की बुद्धि में बाधक हो जाते हैं।”

२४. तबतत्पर तथामत ने इन शब्दों द्वारा पुनानुमोदन किया :—“शील सम्पन्न उपासिका अद्यापुक्त चित्त से, लोभरहित होकर जो कुछ भी दान देती है, उसका वह दिव्य दान, दुःख के नाश का तथा दिव्य मुख की प्राप्ति का कारण होता है।

“वह अपवित्रता और मल-रहित होकर सुखी जीवन को प्राप्त होती है।

“कुशल-कर्म करने की ही आकांक्षा वाली वह सुख को प्राप्त होती है और उसे दान देने में ही आनन्द आता है।”

२५. विशाम्भ ने पूर्वोक्त-बिहार संघ को दान कर दिया। वह दानशील-गृहस्थ उपासिकाओं में प्रथम थी।

१. महाधम्म (चतुर्थ भाष्यकार)—विनय-पिटक।
२. बुद्धधम्म (विनय पिटक)।
३. सामञ्जसकल-सुत्त (दीर्घ निकाय—अद्वैतधर्मा)।
४. महापरिनिब्बान-सुत्त (दीर्घ निकाय)।
५. विशाम्भा भाष्यकार, महाधम्म (विनय पिटक)।

दूसरा भाग

भगवान् बुद्ध के विरोधी

१. जादू-टोना करके लोगों को धर्म-दीक्षा देने का दोषारोपण

१. एक बार भगवान् बुद्ध वैशाखी के महाजन में कूटागार जाला में ठहरे हुए थे। अब भद्रिय निच्छवी तवागत के पास आया और बोला, "भगवान्! लोग कहते हैं कि श्रमण गौतम एक जादूगर है, वह जादू-टोना जानता है, और उसने दूसरे मतों के अनुयायियों का मत बदल देता है।"

२. "जो ऐसा कहते हैं, उनका कहना है कि हम किसी भी तरह कोई अन्यथा बात नहीं कहना चाहते। भगवान्! हम निच्छवी-नाग के लोग इस आरोप में विश्वास नहीं करते। लेकिन हम जानना चाहते कि तवागत का स्वयं इस विषय में क्या कहता है।"

३. "भद्रिय! सुनी। किसी बात को इसलिये मत मानो कि लोग कहते हैं किसी बात को इसलिये मत मानो कि यह परम्परा से चली आई है, किसी बात को इसलिये मत मानो कि यह सुनी-सुनाई है, किसी बात को इसलिये मत मानो कि यह (धर्म-) ग्रन्थों में लिखा हुई है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि यह तर्क (-मात्त) के अनुसार है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि यह न्याय (-जात्त) के अनुसार है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि ऊपरी तौर पर वह मान्य प्रतीत होती है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह अनुकूल दृष्टि की है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह ऊपरी तौर पर सच्ची प्रतीत होती है तथा किसी बात को केवल इसलिये भी मत मानो कि वह किसी ऐसे आदरणीय व्यक्ति की कही हुई है जिसके बारे में तुम सोचते हो कि 'उसकी बात माननी ही चाहिये।'

४. "लेकिन, भद्रिय, यदि तुम अपने ही अनुभव से यह जान लो कि अमुक कर्म पाप-कर्म है या अमुक कर्म अकुशल-कर्म है, या अमुक कर्म विज्ञ पुण्यों द्वारा निन्द्य है, और तमुक कर्म हानिकार है, तो भद्रिय, ऐसे कर्म का तुम त्याग कर दो।

५. "अब जहाँ तक तुम्हारे प्रकृत का संबंध है मैं तुम से ही पूछता हूँ कि जो

सोम मुझ पर जादूगर होने का आरोप लगाते हैं, क्या वे महत्वाकांक्षी सोम नहीं हैं ?" भद्रि बोलता—“भगवान् ! वे हैं ।”

६. “तो भद्रि ! क्या ऐसा आदमी जो महत्वाकांक्षी हो और सोम के बर्णभूत हो अपनी महत्वाकांक्षा पूरी करने के लिये झूठ नहीं बोलता या दूसरे अकुशल-कर्म नहीं करता ?” “भगवान् ! करता है ।”

७. “तो भद्रि ! जो ऐसा आदमी द्वेष और बदनाम करने की भावना के बर्णभूत हो जाता है, तो क्या वह उन लोगों के विरुद्ध किन्हीं बहु समझता है कि वह उसकी महत्वाकांक्षा के पथ के बाधक हैं; झूठे आरोप लगाने के लिये दूसरों को प्रेरित नहीं करता ?”

भद्रि बोलता—“भगवान् ! करता है ।”

८. “तो भद्रि ! मैं तो इतना ही कहता हूँ । मैं कहता हूँ कि आओ, लोभयुक्त विचारों के बर्णभूत मत होओ । यदि तुम उन पर कायूर रखोगे, तो तुम मन, बचन, कर्म से कोई काम ऐसा न करोगे, जिसके मूल में लोभ हो । द्वेष और मोह (= अविद्या) के बर्णभूत मत होओ ।”

९. “इसलिये भद्रि ! जो क्षमण-बाह्यण मुझ पर यह आरोप लगाते हैं कि ‘क्षमण सौतम एक जादूगर है, वह जादू-टोना जानता है और उससे दूसरे मर्तों के अनुयायियों का मत बदल देता है’ वे झूठे हैं, मृधावादी हैं ।”

१०. “भगवान् ! आप का यह जादू बड़े भाग्य की बात है । आप का यह जादू बड़े सौभाग्य की बात है । भगवान् ! क्या अच्छा हो कि मेरे सभी सगे-सम्बन्धियों पर आपका जादू चल जाये । निश्चय से, यह उनके हित और सुख के लिये होगा । भगवान् ! यदि सभी क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र इसी जादू के बर्णभूत हो जायें तो निश्चय से यह उनके हित और सुख के लिये होगा ।”

११. “इसमें कोई सन्देह नहीं है भद्रि ! यह बात निश्चित है भद्रि ! कि यदि इस जादू के बर्णभूत होकर सभी अकुशल-कर्मों का त्याग कर दें तो यह संसार के हित और सुख के लिये होगा ।”

२. समाज पर व्यर्थ का भार होने का दोषारोपण

१. भगवान् बुद्ध पर यह भी आरोप लगाया गया था कि वह समाज पर भारस्वरूप हैं और काम करके अपनी जीविका नहीं कमाते । आरोप और उसका उत्तर यहाँ दिया है—

२. एक बार भगवान् बुद्ध मगध जनपद के पश्चिम-गिरि प्रदेश में एकनाला नाम के ब्राह्मण ग्राम में रहते थे । उसी समय कुशिनाराज्य ब्राह्मण के पाँच की हल, खेत बोन के लिये, बीते जा रहे थे ।

३. पूर्वाह्न समय लगान्त बीबर पड़न तथा पात्र हाथ में ले-वहाँ पहुँचे जहाँ

ब्राह्मण अपना काम करने में लगा था और जहाँ थोड़ी ही देर पहले भोजन खाया गया था। वहाँ पहुँचकर तथामत एक ओर खड़े हो गये।

४. निष्ठा के निमित्त तथामत को वहाँ खड़े देखकर ब्राह्मण बोला—“श्रमण! मैं (हल) जोतता हूँ, (बीज) बीता हूँ; और तब खाता हूँ; तुम्हें भी (हल) जोतना चाहिये, (बीज) बीना चाहिये और तब खाना चाहिये।”

५. “ब्राह्मण ! मैं भी जोत-बीकर ही खाता हूँ।”

६. “मैं न कहीं श्रमण-गौतम का जूवा देखता हूँ, न हल देखता हूँ, न हल की फाँल देखता हूँ, न बीजों को हाँकने की रीति देखता हूँ और न बीजों की जोड़ी ही देखता हूँ, तब भी आप का कहना है कि आप जोत-बी कर खाते हैं।

७. “आप कुपक होने का दावा करते हैं, किन्तु हम आप के पास कुपि का एक भी साधन नहीं देखते। हमें अपनी कुपि के सम्बन्ध में समझावें कि आप कैसे कुपि करते हैं। हम उसके बारे में सुभता चाहते हैं।”

८. “मेरे पास थड़ा का बीज है, तपस्या करो वर्षा है, प्रज्ञा करी जोत और हल है, पाप-बीकता का दण्ड है, विचार करी रस्सी है, स्मृति (= निष्ठ की यागककता) करी हल की फाँल और रानी है।

९. “वचन और कर्म में संयत रहना तथा भोजन की उचित मात्रा का ज्ञान। मैं अपनी सेती को बेकार-पास से मुँकत रखता हूँ और आनन्द की फलत काट लेने तक प्रयत्नशील रहने वाला हूँ। अप्रमाण मेरा बीज है जो बाधामें देखकर भी पीछे मुँह नहीं मुड़ता—वह मुझे सीधा शान्ति-धाम तक ले जाता है, उस शान्ति खोज तक जहाँ दुःख का लक्षण नहीं है। इस प्रकार मैं अमृत की सेती करता हूँ। जो कोई, मेरी तरह सेती करता है उसके दुःखों का अन्त हो जाता है।”

१०. ऐसा कहने पर उस ब्राह्मण ने खीर-भरी कटि की घाली भगवान् बुद्ध को समर्पित करने चाही। बोला—“श्रमण गौतम ! इसे ग्रहण करें। निस्सन्देह आप भी कुपक हो रहे; क्योंकि आप अमृत की सेती करते हैं।”

११. तथामत का उत्तर था—“धावा (= उपदेश) कहते से जो प्राप्य है, वह मेरे लिये अवाध है। बुद्धिमान इसका समर्पण नहीं करते। तथामतों की यह सर्वथा अस्वीकृत है। जब तक यह धर्म-वित्त विद्यमान है, तब तक वही प्रथा बनी रहनी चाहिये। दूसरे श्रमण ब्राह्मण हैं जो संयत हैं, जो ज्ञान हैं, जिनका सम्पक् अवचरण है; जो निर्वोध हैं—ऐसे जो पुण्य धोज हैं, तू उन्हीं को यह दे।”

१२. यह बात सुनी तो ब्राह्मण ने तथामत के चरणों में सिर रखकर कहा—“अद्भुत है श्रमण गौतम ! सर्वथा अद्भुत है। जैसे कोई आदमी गिरे को उठा दे, या छिने को उपाड़ दे, या मार्ग-अष्ट को रास्ता दिखा दे; या जन्मेरे में प्रदीप जला दे ताकि आँध्र रातें चारों ओर की भीजें देख सकें—इसी प्रकार तथामत ने नाना प्रकार से अपना धर्म स्पष्ट कर दिया है।

१३. 'मैं बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण ग्रहण करता हूँ। मुझे आपके हाथों प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले।' इस प्रकार कृषि-भारद्वाज ब्राह्मण ने भी प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा ग्रहण की।"२

३. सुखी गृहस्थियों को उजाड़ने का दोषारोपण

१. यह देखकर कि मगध के बहुत से कुल-पुत्र तथागत के शिष्य होते चले जा रहे हैं; कुछ लोग असंतुष्ट और क्रोधित हो गये। कहने लगे: 'श्रमण गौतम माता-पिता की सम्पत्ति-विहीन बना रहा है, श्रमण गौतम स्त्रियों को विधवा बना रहा है, श्रमण गौतम कुलों को उजाड़ रहा है।'

२. 'उसने एक हजार जटिलों को दीक्षित किया है, उसने सञ्जय के अनुयायी इन ढाई सौ परिव्राजकों को दीक्षित किया है और मगध के यह बहुत से कुल, पूरे श्रमण गौतम की अधीनता में पवित्र जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अब आगे क्या होने वाला है? कोई नहीं कह सकता।'

३. और लोग जब भिक्षुओं का देखते तो उन्हें यह कह-कह कर बिड़ाते भी थे: 'महाश्रमण मगधों के राजगृह आया है। वह सञ्जय के सभी अनुयायियों को अपने साथ लिए फिरता है। अब क्या नहीं किसकी बारी है?'

४. भिक्षुओं ने यह आरोप सुना तो तथागत को जाकर कहा।

५. तथागत ने उत्तर दिया:—'भिक्षुओं! यह हस्ता बहुत दिन नहीं रहेगा। यह सप्ताह भर रहेगा। उसके बाद यह अपने ही आप शान्त हो जाएगा।'

६. 'और भिक्षुओं, यदि वे तुम्हें बिड़ामें तो तुम यह कहकर उनका उत्तर दे सकते हो कि जो महावीर हैं, जो तथागत हैं, वे सद्धर्म के ही रास्ते से जाते हैं। यदि बुद्धिमान तब किसी को सद्धर्म के रास्ते से जाते हैं तो उसमें किसी को भी शिकायत का कोई कारण नहीं होना चाहिये। मेरे धर्म में 'अवदंस्ती' के लिये स्थान नहीं। आदमी चाहे तो घर छोड़कर अव्रजित हो सकता है और आदमी चाहे तो घर पर ही बना रह सकता है।'

७. अब भिक्षुओं ने तथागत के आदेशानुसार आज्ञाओं को उत्तर दिया तो लोग समझ गये—'शाक्यपुत्र श्रमण गौतम लोगों को धर्म के रास्ते से जाते हैं, अधर्म के रास्ते नहीं।' उन्होंने तथागत को दोष देना बन्द कर दिया।^३

४. तैयिकों द्वारा हत्या का मिथ्यारोप

१. अन्य-सम्प्रदायों के साधुओं को ऐसा लगने लगा था कि श्रमण गौतम के कारण लोग उनका आदर-सत्कार कम करने लगे हैं, इतना ही नहीं, यह भी नहीं जानते कि वे हैं भी या नहीं?

२. "हम देखें कि किसी गन्धर्व की मदद से हम जंगल में उसका प्रभाव घटा सकते हैं या नहीं ? चायद सुन्दरी की सहायता से हम ऐसा कर सकें"—तैषिकों ने सोचा ।

३. वे सुन्दरी के पास गये और बोले—“बहन ! तुम बहुत ही सुन्दर और मनोरम हो । यदि तुम श्रमण गौतम के बारे में कुछ अन्वेषण करना चाहोगी तो हो सकता है कि लोग उसका विश्वास कर लें और श्रमण गौतम का प्रभाव घट जाय ।”

४. सुन्दरी प्रतिदिन शाम को हाथों में फूलों की मालायें तथा नाना प्रकार की सुगन्धियाँ लेकर जेतवन की ओर जाने लगी । जेतवन से लौटने वाले लोग पूछते—“सुन्दरी ! कहाँ जा रही है ?” वह उत्तर देती “मैं श्रमण गौतम के पास उसकी गन्धकुटी में रहने जा रही हूँ ।”

५. और तैषिकों के उद्योग में रात बिता कर वह प्रातः काल होने पर उधर से लौटती । यदि कोई उससे पूछता कि तु रात भर कहाँ रही, तो वह उत्तर देती—“श्रमण गौतम के पास ।”

६. कुछ दिनों के बाद तैषिकों ने हथारों की कुछ से बेकर सुन्दरी की हत्या करना ही और उसकी लाश को जेतवन के पास की कुड़े की ढेरी पर फिका दिया ।

७. तब उन तैषिकों ने सरकारी कर्मचारियों तक यह सूचना भिजवाई कि सुन्दरी रोज जेतवन आया-जाया करती थी और अब वह दिखाई नहीं देती है ।

८. सरकारी अधिकारियों को साथ लेकर उन्होंने सुन्दरी की लाश को कुड़े की ढेरी पर से खोज निकाला ।

९. तब तैषिकों ने तथागत के श्रावकों पर आरोप लगाया कि अपने तास्ता की सज्जा इकी रखने के लिए उन्होंने सुन्दरी को मार डाला ।

१०. लेकिन हथारों आपस में इस रुपये के बटवारे के बारे में जो उन्हें सुन्दरी की हत्या करने के लिये मिला था, एक तराब की दुकान पर बैठे-बैठे लड़ने लगे ।

११. अफसरों ने तुरन्त उन्हें पकड़ लिया । उन्होंने अपना अपराध स्वीकार किया और उन तैषिकों को भी संज्ञा जिनकी प्रेरणा से उन्होंने वह अपराध किया था ।

१२. इस प्रकार तैषिकों का रहा-सहा प्रभाव भी जाता रहा ।^३

५. तैषिकों द्वारा अनैतिकता का मिथ्यारोप

१. समोदय के साथ ही जैसे जुगनु अस्त हो जाते हैं, वह ही वसा तैषिकों की हुई । लोगों ने उनको भेंट-पूजा भी देनी बन्द कर दी और उनका आदर-सत्कार भी करना बन्द कर दिया ।

२. वह कीस्तों पर खड़े हो होकर बिगलाने लगे—“यदि श्रमण गौतम पूर्ण सान्नि (= बुद्ध) है तो हम भी हैं । यदि श्रमण गौतम को दान देने से पुण्य लाभ

होता है तो हमें भी धान देने से पुण्य लाभ होगा। इसलिये हमारी बेट-पुत्रा करी।”

२. लोगों ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया। सब उन्होंने छिपकर एक पड़पत्त रचने की सोची जिससे लोगों की नजर में सब को गिराया जा सके।

४. उस समय आनन्दी में विष्णु नाम की एक ब्राह्मणी (?) परिब्राजिका रहती थी। उसका रूप-रंग अत्यन्त आकर्षक था और उसकी भाव-भङ्गिमा मन को सुभाने वाली थी।

५. पड़पत्तकारियों ने एक दुष्ट ने परामर्श दिया कि विष्णु की सहायता से बुद्ध के बारे में अपवाद फैलाना और उसका लाभ-भोग भटाना आसान होगा। सब लोग सहमत हो गये।

६. एक दिन विष्णुचार्त्तिकों के उद्यान में आई और अभिवादन कर पास बैठ गई। लेकिन किसी ने उससे बातचीत नहीं की।

७. इस पर अकित होकर वह बोली—“मैं ने आप का कुछ अपराध किया है? मैंने आप को तीन बार अभिवादन किया है और आप मुझ से एक शब्द नहीं बोलते।”

८. तैत्तिक बोले—“बहन! क्या तू इतना भी नहीं जानती कि भ्रमण गीतम की जन-प्रियता हमारे लाभ-सत्कार में बड़ी बाधक हो रही है?” “मैं नहीं जानती। क्या मैं इस विषय में कुछ कर सकती हूँ?”

९. “बहन! यदि तू हमारा कुछ भला करना चाहती है, तो अपने प्रयास से भ्रमण गीतम के बारे में अपवाद फैला दे। जिससे वह जन-प्रिय न रहे।” “बहुत अच्छा, इस विषय में आप मुझ पर निर्भर रहें कह वह वहाँ से चल बी।

१०. ‘स्त्री चरित’ दिखाने में विष्णु पारंगत थी। जब लोग जेतवन से बुद्ध के प्रवचन सुनकर लौटने वाले होते, तो रक्षावरणा विष्णु हाथ में फूलों की माला और मुग्धियवा लिये जेतवन की ओर जाती दिखाई देती।

११. यदि कोई प्रश्न करता—“इस समय कहाँ जा रही है?” वह उत्तर देती, “तुम्हें इससे क्या लेना-देना?” जेतवन के समीप तीर्थिकाराम में रात बिठाकर वह सुबह के समय शहर की ओर लौटती जब शहर के लोग बुद्ध के दर्शनार्थ जेतवन की ओर जाते होते।

१२. यदि कोई उससे पूछता—“रात कहाँ बिताई?” वह उत्तर देती, “तुम्हें इस से क्या लेना-देना? मैंने जेतवन में भ्रमण गीतम के साथ (उसकी) गन्धकुटी में रात बिताई।” किसी किसी के मन में कुछ संका पैदा हो जाती।

१३. चार महीने बीतने पर उसने अपने पेट के निर्ध कुछ पुराने चीपड़े लपेट कर उसे ढँका कर लिया और कहना आरम्भ किया कि भ्रमण गीतम से उसे गर्भ टहर गया है। कोई कोई शायद विश्वास भी कर लेते थे।

१४. नीचे महीने में उसने अपने पैर पर एक लकड़ी का टुकड़ा बांध लिया और बिपैने कीड़ों से देह कटाकर हाथ-पैर धुला लिये और जिस समय तथा जिस स्थान पर भगवान् बुद्ध भिक्षुओं और गृहस्थों को प्रवचन दे रहे थे वही पहुंचकर कहने लगी : "हे महान् उपदेशक ! तुम लोगों को बहुत उपदेश देते हो । तुम्हारी वाणी बड़ी मधुर है और तुम्हारे होंठ बड़े कोमल हैं । तुम्हारे संसर्ग से मुझे गर्म ठहर गया है और मेरा समय नजदीक आ गया है ।

१५. "तुमने मेरी प्रसूति की कोई व्यवस्था नहीं की । उस अवस्था के योग्य पम्प आदि भी मुझे नहीं दिखाई नहीं देता । यदि तुम स्वयं इसकी व्यवस्था नहीं कर सकते, तो अपने शिष्यों में से किसी को—चाहे कोसल नरेश को, चाहे अनाप-पितृक को अपना चाहे विजाघा को—कहकर इसकी व्यवस्था क्यों नहीं कराते ?

१६. "लगता है कि तुम किसी कुमारी को अनीकार करना ही जानते हो, लेकिन उनके परिणाम-स्वरूप जो मन्त्रात्मक जन्म ग्रहण कर ले उसकी पातल-विधि से अपरन्त है ।" उपस्थित जनता मूक बनी बैठी रही ।

१७. भगवान् बुद्ध ने अपना प्रवचन बीच में रोक कर बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया—"बहन सुने जो कहा है उसके सत्पास्त्य का ज्ञान केवल मुझे और तुम्हें ही है ।"

१८. चिञ्चा जोर जोर से खांसते हुए बोली—"हां हाँ ऐसी बात का ज्ञान हम दोनों की ही हो सकता है ।"

१९. उसके खांसने से वह गाँठ जिससे उसने वह लकड़ी पैर पर बांधी हुई थी, डीली पड़ गई और वह लकड़ी खिसक कर उसके पाँव पर आ पड़ी । चिञ्चा कहीं की न रही ।

२०. लोगों ने उसे बंधे और पत्थर मार मार कर वहाँ से भगा दिया ।"

६. देवदत्त का चचेरा-भाई तथा शत्रु

१. देवदत्त भगवान् बुद्ध का चचेरा भाई था । लेकिन आरम्भ से ही उसे उत्तरे ईर्ष्या थी और वह अन्तिम दर्जे की शूना करता था ।

२. जब बुद्ध घर छोड़ कर चले गये तो देवदत्त ने यशोधरा से प्रेम बढ़ाने का प्रयास किया ।

३. एक बार जब यशोधरा के सोने का समय हो गया था, वह किसी से रोका नहीं गया और भिक्षु रूप में वह यशोधरा के अगनामार में पहुंच गया । यशोधरा ने पूछा—"अमण ! तू क्या चाहता है ? क्या तू मेरे लिये मेरे स्वामी के पास से कोई संदेश लेकर आया है ?"

४. "तुम्हारा पति, उसे तुम्हारी क्या खाक चिन्ता है । वह तुम्हें निर्दयता-पूर्वक तुम्हारे सुख-निवास में छोड़ कर चला गया है ।"

१. यशोधरा ने उत्तर दिया—“लेकिन ऐसा उन्होंने बहुतों के कल्याण के लिये किया।”

६. “ओ भी हो, अब समय है, उससे इस तुर निर्दयता का बदला लो।”

७. “अमण ! जबान बन्द कर। तेरे विचार और वाणी दुर्भाग्य से भरी है।”

८. “यशोधरा ! क्या तूने मुझे पहचाना नहीं ? मैं तेरा प्रेमी देवदत्त हूँ।”

९. देवदत्त ! मैं तुझे झूठा और दुष्ट समझती थी। मैंने कभी यह नहीं सोचा था कि तू कोई अच्छा अमण बन सकेगा, लेकिन मुझे पता नहीं कि तू इतना कमीना है।”

१०. देवदत्त चिल्लाया—“यशोधरा ! यशोधरा ! मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। तेरे पति के मन में तो मेरे लिये घुना छोट कर और कुछ नहीं। वह तुम्हारे प्रति निर्दयी रहा है। मुझसे प्रेम कर और उससे बदला ले।”

११. यशोधरा का धिक्का हुआ पीला चेहरा रक्त रंजित हो उठा। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

१२. “देवदत्त ! तू तुम हो। यदि तुम्हारे प्रेम में कुछ सच्चाई भी होती तो भी यह मेरा अपमान होता। तुम्हारा यह कहना कि तुम मुझसे प्रेम करते हो तो महज तुम्हारा मूढाकाद है।

१३. “जब मैं तरुण और सुन्दर थी, तब तो तुमने मेरी ओर आँख उठा कर देखा नहीं। अब मैं जरा बौढ़ हो चली हूँ, रंज से दुखी हूँ, और तू रात के समय अपने पाप-पूर्ण प्रेम की बात करने आया है ! तू नीच है। तू कायर है।”

१४. और वह जोर से चिल्लाई—“देवदत्त ! निकल यहाँ से।” देवदत्त चला गया।

१५. देवदत्त भगवान् बुद्ध से बड़ा अप्रसन्न था क्योंकि उन्होंने संघ में उसे प्रधान पद न देकर सारिपुत्त की प्रधान बना दिया था। देवदत्त ने तीन बार तपागत के प्राणों का अन्त कर देने का प्रयास किया। लेकिन सफल नहीं हुआ।

१६. एक बार भगवान् बुद्ध वृद्धकूट पर्वत की छाया में ऊपर-नीचे बहुत-कदमी कर रहे थे।

१७. देवदत्त ऊपर चला और जाकर एक बड़ा भारी पत्थर नीचे गड़का दिया ताकि तपागत का प्राणांत ही हो जाय। लेकिन वह पत्थर जाकर एक दूसरी चट्टान पर गिरा और वहीं गड़ गया। उसकी एक छोटी सी पच्चर जाकर तपागत के पाँव में लगी, जिससे रक्त बहने लग गया।”

१८. उसने भगवान् बुद्ध की जान लेने का दूसरी बार भी प्रयास किया।

१९. इस बार देवदत्त राजकुमार अजात-शत्रु के पास गया और बोला—

“मुझे कुछ चावमी दो।” और अजातशत्रु ने अपने आदमियों को आज्ञा दी कि देवदत्त का कहना करें।

२०. तब देवदत्त ने एक आदमी को आज्ञा दी—“मित्र! जाओ भ्रमण गौतम भ्रमुक जगह है। जाकर उसे जान से मार जाओ।” आदमी जाकर वापस लौट आया बोला—“मैं तब्रागत का प्राण लेने में असमर्थ हूँ।”

२१. उसने तब्रागत के प्राणों का एक तीसरा भी प्रयास किया।

२२. इस समय राजगृह में नातागिरि नाम का एक बड़ा भयानक सर-हत्यारा हाथी था।

२३. देवदत्त राजगृह पहुँचा और वहाँ हाथियों के अस्तबल में उसने हथवानों और हाथियों की देख-भात रखने वालों को कहा—“मित्रों मैं राजा का सम्बन्धी हूँ। मैं जिस आदमी को चाहूँ उसका पद बढ़ा सकता हूँ और जिस आदमी का चाहूँ उसकी बेतन वृद्धि या राजन वृद्धि करा सकता हूँ।

२४. “इसलिये मित्रों! जब भ्रमण गौतम इस सड़क से गुजरे तो नातागिरि को छोड़ दो।”

२५. देवदत्त ने भ्रमणान् बुद्ध की हत्या करने के लिए अनुप-बाण-धारियों को भी कहा। उसने मदमस्त हाथी भी छुड़वाया।

२६. लेकिन वह असफल रहा। जब लोगों को उसके इन दुष्ट प्रयासों की जानकारी हो गई तो जनता ने उसका सारा लाभ सत बंद कर दिया और राजा अजातशत्रु ने भी उससे मिलना-जुलना बंद कर दिया।

२७. अब जीवित रहने के लिये उसे घर-घर पीछ माँगनी पड़ती थी। अजात-शत्रु से देवदत्त को बहुत कुछ प्राप्त होता था। लेकिन वह लाभ सत्कार बन्द हो गया। नातागिरि की घटना के बाद देवदत्त का रहा सहा प्रभाव भी समाप्त हो गया।

२८. अपनी करतूतों से अश्रित बन जाने के कारण देवदत्त मगध छोड़कर कोशल जनपद चला गया। वहाँ उसे राजा प्रसेनजित से आज्ञा थी। लेकिन राजा प्रसेन-जित ने भी उसे घृणा की दृष्टि से देखा और वहाँ से भगा दिया।

७. ब्राह्मण तथा भगवान् बुद्ध

१. एक बार जब भगवान् बुद्ध बहुत से भिक्षुओं के साथ कोशल जनपद में चारिका कर रहे थे, वे घून नाम के ब्राह्मण-ग्राम में पहुँचे।

२. घून के ब्राह्मण गृहपतियों ने समाचार सुना। “भ्रमण गौतम हमारे गाँव के खेतों तक आ पहुँचा है।”

३. वे ब्राह्मण गृहपति अश्वजित थे, मिथ्या-दृष्टि थे और स्वभाव से लोभी थे।

४. उन्होंने सोचा:—यदि धम्मण गौतम गाँव में आ गया और दो तीन दिन यहाँ ठहर गया तो सभी लोग उपासक हो जायेंगे। तब ब्राह्मण-भग्न के लिये कोई सहारा नहीं रहेगा। हमें उसका नाश में आना ही रोक देना चाहिये।”

५. गाँव तक पहुँचने के लिये एक नदी पार करनी पड़ती थी। तथामत्त का गाँव में आना रोकने के लिये ब्राह्मणों ने नदी पार करने के सभी पत्थरों से बाँकाये हटा ली और जो मुल आदि में उन्हें गिराकर बहा दिया।

६. उन्होंने एक कुँए के अतिरिक्त शेष सभी कुओं की बाँध-दूस से भर दिया और पानी के त्वाक तथा निधाम गृहों आदि की छिटा दिया।

७. भगवान् बुद्ध ने उनकी करगुप्तों की कहानी सुनी तब भी उन पर दया कर अपने भिक्षुओं सहित उन्होंने नदी पार की। चलते-चलते वे चुन नामक ब्राह्मण ग्राम में जा पहुँचे।

८. सबक छोड़कर वे एक वृक्ष के नीचे आ बैठे। उस समय पानी लिये बहुत सी स्त्रियाँ भगवान् बुद्ध के पास से गुजर रही थीं।

९. उस गाँव में एक निश्चय हो चुका था, “यदि धम्मण गौतम इस गाँव में आ जाय तो उसका कुछ भी स्वागत-सात्कार नहीं होना चाहिये। यदि वह किसी घर पर पहुँचे तो न उसे और न उसके भिक्षुओं को ही किसी भी प्रकार का अश्र-जल दिया जाय।”

१०. एक ब्राह्मण की दासी पानी का बड़ा लिये जा रही थी। उसने तथामत्त और भिक्षुओं को देखा तथा जाना कि वे थके और त्वासे हैं। थड़ा-प्रसन्न होने के कारण उसने उन्हें पानी देना चाहा।

११. उसने अपने मन में सोचा, “यद्यपि इस गाँव के लोगों का निश्चय है, कि धम्मण गौतम को कुछ भी न दिया जाय और उसके प्रति किसी भी प्रकार से सात्कार की भावना तक न प्रदर्शित की जाय, तो भी यदि मैं इन ‘पुण्य-क्षेत्रों’ को पाकर भी, इन्हें थोड़ा पानी देकर भी अपने कल्याण की आधार-शिला न रखूँगी तो मैं इस दुःख से कब मुक्त होऊँगी?”

१२. “मात्तिको! चाहे जो हो, चाहे इस ग्राम के रहने वाले सभी लोग मिलकर मुझे मारें या बाँध डालें, तब भी मैं ऐसे ‘पुण्य-क्षेत्र’ से पानी सीखूँगी ही।”

१३. यद्यपि दूसरी स्त्रियों ने उसे रोकने की कोशिश की, किन्तु अपनी दृढ़-संकल्प के कारण अपनी जान तक की परवाह न करके, उसने अपने सिर से पानी का बड़ा उतारा, उसे एक ओर रखा और तथामत्त के पास आई। उसने उन्हें पानी दिया। तथामत्त ने पाँव धोये और पानी पिया।

१४. उसके ब्राह्मण मात्तिक ने सुना कि उसने तथामत्त को पानी दिया है। “इसने गाँव का नियम भंग कर दिया है, और लोग मुझे दोष दे रहे हैं” सोच वह गुस्से

के मारे दाँत पीसता हुआ आया और उसे जमीन पर गिरा कर मात्तो और घूसों से पीटने लगा । उस ब्राह्मण की मार से वह मर ही गई ।^९

(११)

१. दोन नामक ब्राह्मण तपायत के पास आया और उन्हें अभिषादन किया । तदनन्तर कुण्डल-समाचार पुछा और एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुए दोन ब्राह्मण ने तपायत से जिकायत की:—

२. "श्रमण गौतम ! मैंने लोगों को यह कहते सुना है कि श्रमण गौतम किसी बूढ़, बघोबूढ़ आयु-प्राप्त-ब्राह्मण के आगमन पर न उठते हैं और न उन्हें बैठने के लिये आसन देते हैं ।

३. "श्रमण गौतम ! क्या वह ऐसा ही है कि श्रमण गौतम किसी बूढ़, बघोबूढ़, आयु प्राप्त ब्राह्मण के आगमन पर न उठते हैं और न उन्हें बैठने के लिये आसन देते हैं । श्रमण गौतम ! वह तो ठीक नहीं है ।"

४. "दोन ! क्या तुम अपने आप को ब्राह्मण समझते हो ।"

५. "श्रमण गौतम ! यदि कोई किसी ब्राह्मण के बारे में ठीक-ठीक कुछ कहना चाहे तो उसे कहना चाहिये कि ब्राह्मण अपनी माता तथा पिता दोनों की ओर से मुजात होता है, सात पूर्व षोड़शों तक पवित्र होता है, जन्म की दृष्टि से सर्वथा निर्दोष अध्यामी, वेदमन्त्रज्ञ, अक्षर और प्रभेदों सहित तीनों वेदों में पारङ्गुत, शब्द-शास्त्र का ज्ञाता, इतिहास-पुराण का जानकार, काव्य और व्याकरण का पण्डित, महापुरुष-तत्त्वों का कोविद विश्व-चित्तक होता है, और श्रमण गौतम ! मेरे बारे में भी ठीक-ठीक यह कहा जा सकता है क्योंकि मैं भी माता-पिता दोनों की ओर से मुजात हूँ.....विश्व-चित्तक हूँ ।"

६. "दोन ! जो पुराने मन्त्र निर्माता, मन्त्र रचयिता, मन्त्र घर ब्राह्मण है, जिन्हें अपने मन्त्र का अक्षरशः शब्दशः ज्ञान है :—जैसे अट्ठक, वामक, यमदेव, विश्वमित्र, यमधर्मि, अज्जीरस, भारद्वाज का कहना है कि ब्राह्मण पाँच तरह के होते हैं—(१) ब्रह्म-सदृश ब्राह्मण, (२) देव-सदृश ब्राह्मण, (३) बन्धन-युक्त ब्राह्मण, (४) बन्धन भजक ब्राह्मण तथा (५) मन्त्रज्ञ ब्राह्मण । अब तुम इन पाँच प्रकार के ब्राह्मणों में से किस प्रकार के ब्राह्मण हो ?"

७. "श्रमण गौतम ! मुझे ब्राह्मणों के पाँच प्रकारों की जानकारी नहीं है । किन्तु तब भी मैं मानता हूँ कि हम ब्राह्मण हैं । आप हमें धर्म का उपदेश दें, ताकि हमें पाँच प्रकार के ब्राह्मणों की जानकारी हो ।"

८. "ब्राह्मण ! तो ध्यान देकर सुनो । कहता मैं हूँ ।"

९. "बहुत अच्छा" उसने कहा । तब तपायत बोले—

१०. "हे दोन ! अब एक ब्राह्मण ब्रह्म-सदृश कैसे होता है ?"

११. "हे दोन ! एक ब्राह्मण को जो जो माता पिता दोनों की ओर से सुजात हो, सात पूर्व-शीर्षों तक परिव्रज हो, जन्म की दृष्टि से सर्वथा निर्दोष—वह अड़ता-सीस वर्षे तक ब्रह्मचर्य-वास करता है, वह अधर्मानुसार नहीं—बल्कि धर्मानुसार आचार्य्य की दक्षिणा चुकाने में रत रहता है ।

१२. "और दोन ! धर्मानुसार का क्या मतलब है ? वह न कृषि से, न व्यापार से, न ग्वालेपन से, न धनुर्धारी बन, न राजकर्मचारी बन और न किसी दूसरे पेग से ही अपनी जीविका कमाता है । वह जीविका के लिये भिक्षाटन ही करता है, भिक्षा पात्र का आदर करता है ।

१३. "वह अपनी गुरु-दक्षिणा चुकाता है, सिर दाड़ी मुंडवाता है, काषाय-वस्त्र धारण करता है और गृह त्याग कर अनागरिक हो जाता है ।

१४. "इस प्रकार घर से बेघर हो वह एक दिना को, दूसरी दिना को, तीसरी दिना को, चौथी दिना को ऊपर, नीचे—तभी दिनाओं की मैत्री-भावना से मुक्त होकर विहार करता है—दूर तक जाने वाली, प्रसस्त, असीम, धूना वा द्वेय से सर्वथा शून्य ।

१५. "वह करुणा युक्त हो विहार करता है... ..मुद्रिता युक्त हो विहार करता है... ..उपेसा युक्त हो विहार करता है—दूर तक जाने वाली, प्रसस्त, असीम, धूना वा द्वेय से सर्वथा शून्य ।

१६. "इस प्रकार इन चारों ब्रह्म-विहारों में विहार कर, मृत्यु होने पर, शरीर के न रहने पर वह ब्रह्म-लोक गामी होता है । हे दोन ! इस प्रकार एक ब्राह्मण ब्रह्म-सद्गुण होता है ।

१७. "हे दोन ! एक ब्राह्मण देव-सद्गुण कैसे होता है ?

१८. "हे दोन ! अब एक ब्राह्मण को जो जो पहले ब्राह्मण की ही तन्ह तथा पिता दोनों की ओर से सुजात है... ..वह न कृषि से, न व्यापार से... ..अपनी जीविका कमाता है । वह जीविका के लिये भिक्षाटन... ..करता है । वह अपनी गुरु दक्षिणा चुकाता है और अधर्मानुसार नहीं बल्कि धर्मानुसार पत्नि ग्रहण करता है ।

१९. "इस विषय में धर्मानुसार का मतलब क्या है ? वह किसी ऐसी ब्राह्मणी को ग्रहण नहीं करता जो खरीदी-बेची गई हो, बल्कि ऐसी ही जिसके हाथ पर जल डाला गया हो । वह एक ब्राह्मणी के ही पास जाता है, किसी अल्पवय, किसी बहेलिये, किसी बंस-फोड़, किसी रव-कार अथवा किसी आदिवासी की लड़की के पास नहीं । वह बच्चे वाली स्त्री के पास नहीं जाता, न दूध पिलाने वाली स्त्री के पास जाता है और न उसके पास जो शत्रुनी न हो ।

२०. "दोन ! वह बच्चे वाली के पास क्यों नहीं जाता ? यदि वह जाये तो निष्पत्य से बालक या बालिका का जन्म अपरिणुद्ध होगा । और वह दूध पिलाने

बाली के पास क्यों नहीं जाता ? यदि वह जाने तो निश्चय से बालक या बालिका का दूध-पान अपरिशुद्ध होगा ।

११. "और जो ऋतुनी नहीं है उसके पास भी वह क्यों नहीं जाता ? हे दोन ! यदि एक ब्राह्मण जो ऋतुनी नहीं है उसके पाँव नहीं जाता है तो वह कभी भी उसके लिये कामान्ति की तृप्ति का साधन नहीं बनती, वह उसके लिए केवल सन्तान की जननी ही बनी रहती है ।

२२. "और जब विवाहित जीवन से उसे सन्तान की प्राप्ति हो जाती है वह सिर बाड़ी मुड़घाता है.....और गृह-त्याग अनागरिक हो जाता है.....

२३. "और इस प्रकार घर से बेघर हो वह काम-भोगों की तृष्णा को त्याग प्रथम ध्यान प्राप्त कर विचरता है, द्वितीय ध्यान—...तृतीय ध्यान...चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर विचरता है ।

२४. "इन चारों ध्यानों की प्राप्ति कर विचरने वाला वह मृत्यु होने पर, पारोर के न रहने पर देव-लोक में उत्पन्न होता है ।

२५. 'हे दोन ! इस प्रकार एक ब्राह्मण देव-सदृश होता है ।

२६. 'हे दोन ! और एक ब्राह्मण बन्धन-मुक्त ब्राह्मण कैसे होता है ?

२७. 'हे दोन ! एक ब्राह्मण को लो जो समान माता पिता की.....और वैसे ही विवाह करता है.....

२८. "और जब विवाहित-जीवन से उसे सन्तान-प्राप्ति हो जाती है, तो वह अपनी सन्तान के प्रेम के बश में हो जाता है और वह घर घर ही रहता है । वह गृह-त्याग कर अनागरिक नहीं होता ।

२९. "वह अपने परम्परा-गत ब्राह्मणी बन्धनों को तिभाटा है, उनका उत्सर्जन नहीं करता । उसके बारे में कहा जाता है कि 'वह सीमा में रहता है, सीमोत्सर्जन नहीं करता ।' इसीलिए ऐसा ब्राह्मण बन्धन-मुक्त ब्राह्मण कहलाता है ।

३०. 'दोन ! इस प्रकार ब्राह्मण बन्धन-मुक्त होता है ।

३१. "और दोन ! एक ब्राह्मण 'बन्धन-भञ्जक' कैसे होता है ?

३२. 'हे ब्राह्मण ! एक ब्राह्मण को लो जो समान माता पिता का..... वह आचार्य की शशिणा चुकाता है और एक स्त्री ग्रहण करता है, धर्मानुसार वा अधर्मानुसार; एक खरीदी गई वा बेची गई ब्राह्मणी अथवा जो जलानिषिक्त हुई ।

३३. "वह एक ब्राह्मणी के पास भी जाता है या किसी शत्रिय-कुमारी के पास या किसी नीच-जाति वा दासी स्त्री के पास; किसी अल्पवय कुमारी के पास, किसी बंसफोड़ की लड़की के पास; किसी रथकार या किसी आदिवासी की लड़की के पास, वह बन्ने वाली स्त्री के पास जाता है, वह दूध पिलाने वाली के पास जाता है और वह ऋतुनी के पास भी जाता है तथा जो ऋतुनी नहीं है उसके पास भी

जाता है; और उसके लिये ब्राह्मणी कामाग्नि को शान्त करने का, झोड़ा करने का, भोग का वा सन्तानोत्पत्ति का साधन बन जाती है।

३४. "और वह पुरानी ब्राह्मण-परम्परा के बन्धन में नहीं रहता, वह उस सीमा को लांघ जाता है। उसके बारे में कहा जाता है: 'वह सीमा में नहीं रहता, वह सीमोत्लंघन करता है।' इसलिये वह 'बंधन-भंजक' कहलाता है।

३५. "इस प्रकार दोन ! एक ब्राह्मण 'बंधन-भंजक' कहलाता है।

३६. "और दोन ! एक ब्राह्मण 'अन्त्यज-ब्राह्मण' कैसे होता है।

३७. "हे दोन ! एक ब्राह्मण को तो जो समान माता पिता का.....वह अठतालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य पालन करता है, वह (वेद्य) मन्त्रों का ज्ञाता बनता है, तब अपना विद्याध्ययन समाप्त करने के अनन्तर वह आचार्य्य-दक्षिणा खोजता है; (वह धर्मानुसार वा अधर्मानुसार जैसे भी अपनी जीविका चलाता है) कृषक बनकर, व्यापारी बनकर, म्वाला बनकर, धनुषधारी बनकर, राज-कर्मचारी बनकर अथवा किसी अन्य गिल्ड द्वारा वा भिक्षापात्र की उपेक्षा न कर भिक्षाटन द्वारा।

३८. "आचार्य्य-दक्षिणा दे चुकने के अनन्तर वह धर्मानुसार वा अधर्मानुसार एक स्त्री प्राप्त करता है, एक खरीदी या बेची गई, अथवा हाथ पर जल डालकर ली गई। वह एक ब्राह्मणी के पास जाता है अथवा किसी अन्य स्त्री के पास...बच्चे वाली स्त्री के पास, दूध पिलाने वाली स्त्री के पास और वह उसके लिये कामाग्नि शान्त करने का साधन बन जाती है...अथवा सन्तानोत्पत्ति का। वह यह सभी बातें करता हुआ जीवन व्यतीत करता है।

३९. "तब ब्राह्मण पूछते हैं—'यह कैसे है कि एक अष्ट ब्राह्मण ऐसा जीवन व्यतीत करता है?'

४०. "ता वह उत्तर देता है ! 'जैसे आग साफ या मैली सभी चीजों को जला डालती है लेकिन उससे अग्नि अशुद्ध नहीं होगी; इसी प्रकार ब्रह्मण ! यदि एक ब्राह्मण इस प्रकार की सभी बातें करता हुआ भी जीवन व्यतीत करता है, तो उससे एक ब्राह्मण मलिन नहीं होता।'१

४१. "और यह कहा जाता है: 'वह ऐसी सभी बातें करता हुआ जीवन व्यतीत करता है,' इसलिए वह अन्त्यज-ब्राह्मण कहलाता है।

४२. "हे दोन ! इस प्रकार एक ब्राह्मण अन्त्यज-ब्राह्मण हो जाता है।

४३. "निश्चय-से दोन ! जो पुराने मन्त्र-निर्माता, मन्त्र-रचयिता, मन्त्र-धर ब्राह्मण है, जिन्हें अपने मन्त्रों का अक्षरशः शब्दज्ञात जान है—उन्हीं का कहना है कि ब्राह्मण पांच प्रकार के होते हैं—(१) ब्रह्म-सदृश ब्राह्मण, (२) देवता-सदृश ब्राह्मण, (३) बंधन-मुक्त ब्राह्मण, (४) बंधन-भंजक ब्राह्मण, तथा (५) अन्त्यज-ब्राह्मण।

४४. "दोन ! इन पांच प्रकार के ब्राह्मणों से तुम्हारी गिनती किन में है ?"

४५. "श्रमण गौतम ! यदि ऐसा है तो कम से कम हम असत्यज-ब्राह्मणों में नहीं हैं।

४६. "लेकिन श्रमण गौतम ! आम का कहना अद्भुत है.....आप मुझे प्राण रहने तक बुद्ध की शरण में गया हुआ उपासक समझें।"

१. अंगुत्तर निकाय ।

२. कत्तो भारद्वाज सुत्त ।

३. धम्मपद अट्ठकथा ।

४. स० नि० १ : ४ : ८; अट्ठकथा ।

५. सुल्लवगा (संघ-भेदक-संघ) ७ ।

६. विमानवत्थु तथा विमानवत्थु अट्ठकथा ।

७. अंगुत्तर निकाय ५ : ४ : ५ : २ ।

तीसरा भाग

उनके धर्म के आलोचक

१. सभी के लिये संघ का सदस्य बन
सकने की आलोचना

१. किसी भी उपासक गृहस्थ को भिक्षु संघ अपना सदस्य बना सकता था।

२. कुछ लोग ऐसे थे जो भगवान् बुद्ध की आलोचना करते थे कि उन्होंने सभी के लिये भिक्षु संघ का द्वार खोल रखा है।

३. उनका तर्क था कि इस व्यवस्था में यह दोष है कि कुछ लोग संघ में प्रविष्ट होने के अनन्तर फिर दुबारा गृहस्थ बन जा सकते हैं और उनके इस प्रकार निकल भागने से लोगों को यह कहने का अवसर मिलेगा कि श्रमण सौतम का धर्म निकम्मा होगा, तभी तो लोगों ने इसे स्थापित दिया है।

४. यह आलोचना निराधार थी। जिस उद्देश्य से तथागत ने यह नियम बनाया था, वह उद्देश्य आलोचकों के ध्यान में आया ही न था।

५. तथागत का उत्तर था कि उन्होंने सद्धर्म की स्थापना करके अमृत भरे सरोवर का निर्माण किया है।

६. भगवान् बुद्ध की इच्छा थी कि मत्तिन चित्त वाला कोई भी हो इस सद्धर्म रूपी सरोवर में स्नान करके अपने आपको निर्मल बना सके।

७. और यदि कोई सद्धर्म रूपी सरोवर तक पहुँच कर भी उसमें स्नान नहीं करता और पूर्ववत् मत्तिन ही बना रहता है तो इसमें उसी का दोष है, सद्धर्म रूपी सरोवर का नहीं।

८. "अथवा क्या मैं," तथागत का कहना था, "ऐसा कर सकता हूँ कि सद्धर्म रूपी सरोवर का निर्माण करने के अनन्तर कहूँ कि जो पहले से ही निर्मल चित्त है वे ही इसमें स्नान करने जायें, और जो पहले से ही निर्मल नहीं हैं, वे इसमें स्नान करने न जायें?"

९. "तब मेरे इस सद्धर्म का उपयोग ही क्या होगा?"

१०. आलोचक भूल गये कि तथागत अपना धर्म चन्द लोगों तक ही सीमित

नहीं रखना चाहते थे। वे चाहते थे कि इसका द्वार सभी के लिए खुला रहे, सभी इसका परीक्षण कर सकें।

२. व्रत-ग्रहण करने की आलोचना

१. पंचशील हो पर्याप्त क्यों नहीं है ? उन्हें और दूसरे व्रतों को व्रत रूप में ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है ?

२. तर्क करने वाले तर्क करते थे कि यदि बिना औषध के रोग का वमन हो सकता है, तो फिर वमन कराने वाली औषधियों, जुसाव देने वाली औषधियों तथा अन्य ऐसी ही औषधियों का क्या प्रयोजन ?

३. इसी प्रकार यदि गृहस्थ उपासक पंचशील ग्रहण करके ही इन्द्रियों के भोग भोगता हुआ भी शान्त, अष्ट निर्वोण को प्राप्त कर सकता है तो भिक्षु को उन शीलों तथा दूसरे व्रतों को व्रतरूप में ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है ?

४. भगवान् बुद्ध ने इन्हें 'व्रतों' का स्वल्प इसलिए दिया है, क्योंकि नैतिकता की दृष्टि से इसका निश्चित मूल्य है।

५. जो जीवन व्रत-मुक्त है उसका नैतिक पथ पर अग्रसर होना निश्चित है। व्रत अपने में ही पतन के विरुद्ध एक बड़ा संरक्षण है।

६. जो 'व्रत' ग्रहण करते हैं और उनका स्वतन्त्रता से पालन करते हैं, वे उन्नत होते हैं।

७. 'व्रतों' का पालन काम-मुष्णा, ईर्ष्या, अहंकार तथा अन्य कुबिचारों का बाधक है।

८. जो 'व्रत' ग्रहण करते हैं तथा उनका पालन करते हैं वे निश्चित रूप से संरक्षित रहते हैं और उनका मन तथा कर्म निर्मल होता है।

९. मात्र शील ग्रहण करने से ऐसा नहीं होता।

१०. शील ग्रहण करना पतनोन्मुख होने से उतना नहीं बचाता, जितना व्रत बचाते हैं।

११. 'व्रतों' का जीवन ज्यादा कठिन है, मात्र शील ग्रहण करने वाले का नहीं। मानवता के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि समाज में कुछ 'व्रत' भी रहें। इसीलिए भगवान् बुद्ध ने 'शीलों' तथा 'व्रतों' दोनों की व्यवस्था की है।

३. अहिंसा के सिद्धांत की आलोचना

१. ऐसे लोग थे जो 'अहिंसा' के सिद्धान्त के समर्थक न थे। उनका कहना था कि 'अहिंसा' का मतलब है 'अन्याय' तथा 'अत्याचार' के सामने खिर झुकना।

२. भगवान् बुद्ध का 'अहिंसा' से जो आशय था, वह उसकी मूलतः गलत व्याख्या है।

३. भगवान् बुद्धने अनेक अवसरों पर अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है जिससे किसी को किसी प्रकार की अस्पष्टता वा गलत-फहमी न रहे।

४. एक तो वह ही ऐसा अवसर है जिसका उल्लेख किया जाना चाहिये जब उन्होंने एक सैनिक के संघ में प्रविष्ट होने के बारे में नियम बनाया।

५. एक बार मगध के सीमान्त-प्रदेश में उत्पात मच गया था। तब मगध-नरेश सेनिय बिम्बिसार ने अपने सेनापति को आज्ञा दी; "अब जाओ और अपने सेना-नायकों को कहो कि वे सीमा-प्रान्त में दूँद-दूँद कर अपराधियों का पता लगायें, उन्हें दण्ड दें और शान्ति स्थापित करें।" सेनापति ने आज्ञा का पालन किया।

६. सेनापति की आज्ञा पाकर सेना-नायक बड़ी दुविधा में पड़ गये। वे जानते थे कि तथ्यागत की मिला है कि जो 'युद्ध' में लड़ने जाते हैं और जिन्हें 'युद्ध' करने में आनन्द आता है वे 'पाप' करते हैं और बहुत 'अपुण्य' लाभ करते हैं। दूसरी ओर राजा की आज्ञा यह थी कि अपराधियों का पता लगाकर उन्हें मार डाला जाय। सेना-नायक अपने से पूछने लगे—हम क्या करें?

७. तब इन सेना-नायकों ने सोचा:—'यदि हम तथ्यागत के भिक्षु-संघ में प्रविष्ट हो जायें, तो हम इस दुविधा से बच जायेंगे।'।

८. तब ये सेना-नायक भिक्षुओं के पास पहुँचे और उनसे प्रश्रय की याचना की। भिक्षुओं ने उन्हें प्रव्रजित तथा उपसम्पन्न कर दिया। सेना-नायक सेना से मायब हो गये।

९. सेनापति ने जब देखा कि सेना-नायक नहीं दिखाई देते तो उसने सैनिकों से पूछा—'क्या बात है कि सेना-नायक नहीं दिखाई देते?' सैनिकों ने उत्तर दिया—'सेनापति! सेना-नायक भिक्षु-संघ में सम्मिलित हो गये हैं।'।

१०. सेनापति बहुत अप्रसन्न तथा बहुत क्रोधित हुआ, "राजकीय सेना के लोगों को भिक्षु कैसे प्रव्रजित कर सकते हैं?"

११. सेनापति ने इस बात की सूचना राजा को दी। राजा ने न्यायाधीशों से प्रश्न किया—"कृपया बतायें कि जो राजकीय-सेना के आदमियों को प्रव्रजित करे, उसे क्या दण्ड मिलना चाहिये?"

१२. "महाराज! उपाध्याय का सिर काट डालना चाहिए, कस्मावाचा पढ़ने वाले की जबान निकाल डालनी चाहिए और संघ के उन सदस्यों की—जो किसी राजकीय सैनिक को प्रव्रजित करें—आधी पसलियाँ तोड़ डालनी चाहिये।"

१३. तब राजा वहाँ पहुँचा, जहाँ तथ्यागत विराजमान थे; और अभिवादन कर चुकने के अनन्तर उसने भगवान् बुद्ध को सारी बात सुनाई।

१४. "भगवान्! आप जानते हैं कि कई राजा धर्म के विरुद्ध हैं। ये विरोधी राजा बहुत मामूली मामूली बातों के लिये भिक्षुओं को कष्ट देने के लिये

तैयार रहते हैं। यदि ये जान जायेंगे कि भिक्षु सैनिकों को बरगला कर भिक्षु-संघ में भर्ती करते हैं तो फिर इसकी कल्पना कर सकना कठिन है कि ये भिक्षुओं के विरुद्ध क्या क्या कार्रवाइयाँ कर सकते हैं। इस विपत्ति से बच रहने के लिये तत्थागत वचायोग्य करें।”

१५. तत्थागत ने उत्तर दिया—“मेरी यह कभी मंजा नहीं रही कि ‘अहिंसा’ का नाम लेकर वा ‘अहिंसा’ की आद में सैनिक अपने राजा वा देश के प्रति जो उनका कर्तव्य है, उससे विमुख हो जायें।”

१६. तदनुसार भगवान् बुद्ध ने राजकीय सैनिकों के संघ में प्रविष्ट होने के विरुद्ध एक कानून बना दिया और इसकी घोषणा कर दी—“मिक्षुओ, किसी राजकीय सैनिक को प्रवर्ज्य न मिले। यदि कोई देगा तो उसे तुष्कृत की आपत्ति (= दोष) होगी।”^१

१७. एक बार श्रमण महावीर के अनुयायी सिंह सेनापति ने ‘अहिंसा’ के ही विषय में तत्थागत से प्रश्न किया था।

१८. सिंह ने पूछा—“अभी भी एक सन्देश मेरे मन में शेष है। क्या आप कृपया मेरे मन के अन्धकार को दूर कर देंगे ताकि मैं धर्म को उसी रूप में समझ सकूँ, जिस रूप में आपने उसका प्रतिपादन किया है।”

१९. तत्थागत के स्वीकार कर लेने पर सिंह सेनापति ने पूछा—“भगवान् ! मैं सेनापति हूँ। मुझे राजा ने बुद्ध सङ्घ के लिये और अपने कानूनों का अनुराध पालन करवाने के लिये ही नियुक्त किया है। तो क्या तत्थागत जो बुद्धियों के प्रति दया और असीम करुणा की शिक्षा देते हैं, अपराधियों को दण्ड देने की अनुमति देते हैं ? और क्या तत्थागत का यह भी कहना है कि अपने घरों, अपने बीबी-बच्चों और अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिये बुद्ध करना ठीक नहीं है ? क्या तत्थागत सम्पूर्ण आत्म-समर्पण की शिक्षा देते हैं कि हम आततायी को जो वह चाहे करने दें और जो जोर-जबर्दस्ती हमारी चीज हमसे छीनना चाहे उसे वह ले लेने दें ? क्या तत्थागत का यह कहना है कि सभी प्रकार के बुद्ध-ऐसे बुद्ध भी जो न्याय की रक्षा के लिये लड़े जाते हैं—वर्जित है ?”

२०. तत्थागत का उत्तर था—“जो दण्डनीय है, उसे दण्ड मिलना ही चाहिये। जो उपहार देने योग्य है, उसे उपहार दिया ही जाना चाहिये। साथ ही किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं दिया जाना चाहिये बल्कि उसके साथ प्रेम और दया का वर्तव्य होना चाहिये। ये आदेश परस्पर विरोधी नहीं हैं। जो कोई अपने अपराध के लिये दण्ड भूयता है, वह न्यायाधीश की द्वेष-बुद्धि के कारण नहीं, बल्कि अपने ही अक्रुशल-कर्म के परिणाम-स्वरूप। न्यायाधीश द्वारा दिया गया दण्ड उसके अपने कर्म का फल है। न्यायाधीश जब दण्ड देता है तो उसके मन में दण्डनीय व्यक्ति के प्रति किसी भी प्रकार की द्वेष की भावना नहीं होनी चाहिये, और एक हथियार

को भी जब फाँसी की सजा दी जाय तो यही सोचना चाहिये कि यह उसके अपने कर्मों का फल है। जब वह समझेगा कि 'दण्ड' उसके अन्तरतम को 'शुद्ध' ही बनायेगा तो कोई भी दण्डनीय व्यक्ति अपने भाग्य को रोयेगा नहीं, बल्कि प्रसन्न ही होगा।"

२१. इन बातों पर अच्छी तरह विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिये कि भगवान् बुद्ध की देशना में 'अहिंसा' का मुख्य-स्थान है; किन्तु वह निर-पेक्ष नहीं ही है।

२२. उन्होंने सिखाया कि बुराई को भलाई से जीतो लेकिन यह कहीं नहीं सिखाया कि बुराई को ही भलाई को जीत लेने दो।

२३. वह अहिंसा के समर्थक थे और हिंसा के निन्दक। लेकिन उन्होंने इससे कहीं इन्कार नहीं किया कि बुराई से भलाई की रक्षा करने के लिये आखिरी दर्जे कहीं कहीं हिंसा का भी आश्रय लेना पड़ सकता है।

२४. भगवान् बुद्ध ने किसी खतरनाक सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया। आलोचक ही उसके वचार्थ स्वरूप और क्षेत्र को ठीक ठीक समझ नहीं पाये।

४. शील का प्रचार संसार को अन्धकारावृत करने का दोषारोपण

१. दुःख का कविल ने जो अर्थ किया था वह था चंचलता, अशान्ति, अस्थिरता।

२. आरम्भ में वह शब्द कुछ तात्त्विक अर्थ ही रखता था।

३. बाद में इसका अर्थ शरीर और मन का कष्ट हो गया।

४. दोनों अर्थ एक दूसरे से बहुत दूर दूर नहीं थे। दोनों पास पास थे।

५. अशान्ति से ही शरीर तथा मन के कष्ट उत्पन्न होते हैं।

६. अचिरकाल में ही इसका अर्थ सामाजिक तथा आर्थिक कारणों से शारीरिक और मानसिक कष्ट सहन हो गया।

७. भगवान् बुद्ध ने 'दुःख' शब्द को कितने अर्थों में प्रयुक्त किया है ?

८. भगवान् बुद्ध का एक प्रवचन है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन इस बात से अपरिचित नहीं थे कि दरिद्रता दुःख की जननी है।

९. अपने उस प्रवचन में तत्कालीन ने कहा है—“भिक्षुओ, संसारी आदमी के लिये क्या दरिद्रता दुःखद वस्तु है ?”

१०. ‘भगवान् ! निश्चित रूप से।’

११. ‘और जब आदमी गरीब होता है, उसे गरज रहती है, उसका हाथ तंग रहता है, उसे कर्म लेने की आवश्यकता आ पड़ती है, तो क्या वह अवस्था भी दुःखद है ?’

१२. "भगवान् ! निश्चित रूप से ।"

१३. "और जब उसे कर्जों की जरूरत होती है, वह उधार लेता है तो क्या यह भी दुःखद है ?"

१४. "भगवान् ! निश्चित रूप से ।"

१५. "और जब कर्जों चुकाने का समय आता है, वह कर्जों चुका नहीं सकता और लेने वाले उस पर जोर डालते हैं तो क्या यह भी दुःखद है ?"

१६. "भगवान् ! निश्चित रूप से ।"

१७. "और जब जोर डालने पर भी वह नहीं दे पाता, तो वे उसे पीटते हैं, तो क्या यह भी दुःखद है ?"

१८. "भगवान् ! निश्चित रूप से ।"

१९. "और जब पीटने पर भी नहीं दे पाता तो वे बांध डालते हैं, तो क्या यह भी दुःखद है ?"

२०. "भगवान् ! निश्चित रूप से ।"

२१. "इसलिये भिक्षुजी ! दरिद्रता, आवश्यकता, कर्जों लेना, जोर डाला जाना, पीटा जाना तथा बांधा जाना—ये सभी सांसारिक पुरुष के लिये कष्ट-प्रद हैं ।

२२. "संसार में दरिद्रता और ऋण बड़े दुःखद हैं ।"

२३. इससे स्पष्ट होता है कि भगवान् दुःख की दुःख की कल्पना भौतिक भी है ।"

(२)

‘अनित्यता’ को अन्धकार का कारण बताना

१. इस ‘अन्धकारावृत्त’ के आरोप का दूसरा कारण ‘अनित्यता’ का यह सिद्धान्त बताया जाता है कि जो कुछ भी किरहीं चीजों के मेल से बना है वह सब अनित्य है ।

२. इस सिद्धान्त की सच्चाई को सभी स्वीकार करते हैं ।

३. हर कोई मानता है कि सभी चीजें अनित्य हैं ।

४. यदि कोई सिद्धान्त ‘सत्य’ है तो उसकी घोषणा होनी ही चाहिये, जैसे स्वयं ‘सत्य’ की; भले ही वह अधिकतर ही क्यों न हो ।

५. लेकिन इससे एक निराशावादी परिणाम क्यों निकाला जाय ?

६. यदि जीवन ‘थोड़े ही दिन के लिये’ है तो यह ‘थोड़े ही दिन के लिये’ है; इस विषय में किसी को भी दुःखी होने की जरूरत नहीं ।

७. यह तो केवल अपने अपने दृष्टिकोण की बात है ।

८. बर्तमानों का दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न है ।

६. किसी की मृत्यु का उत्सव बर्मी-परिवार में ऐसे ही मनाया जाता है जैसे यह कोई बड़ी खुश होने की बात हो।

१०. जिस दिन किसी की मृत्यु होती है, गृहस्थ सभी परिचितों को एक 'भोज' देता है, और लोग नाचते-गाते मृत-देह को सम्मान भूमि तक ले जाते हैं। मृत्यु जाने ही वाली थी—इसलिये कोई इसकी परवाह नहीं करता।

११. यदि 'अनित्यता' का सिद्धान्त निराशाजनक है तो केवल इसलिये है कि 'नित्यता' को—जो वास्तव में असत्य है—सत्य मान लिया गया है।

१२. इसलिये बुद्ध की देशना पर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता कि यह आदमी को निराश बनाने वाली है।

(३)

क्या बौद्ध धर्म निराशावादी है ?

१. भगवान् बुद्ध के धर्म पर 'निराशावादी' धर्म होने का आरोप लगाया गया है।

२. इस आरोप का कारण प्रथम आर्य-सत्य है जिसका कहना है कि संसार में दुःख (= चिन्ता-कष्ट) है।

३. यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि दुःख का उल्लेख होने मात्र से बुद्ध-धर्म पर यह आरोप लगाया जाय।

४. कार्ल मार्क्स ने भी कहा था कि संसार में शोषण है, गरीब और भी अधिक गरीब होते चले जा रहे हैं, अमीर और भी अधिक अमीर होते चले जा रहे हैं।

५. लेकिन तब भी किसी ने नहीं कहा कि कार्लमार्क्स का सिद्धान्त 'निराशावादी' सिद्धान्त है।

६. तब बुद्ध-देशना के ही सम्बन्ध में एक भिन्न दृष्टि-कोण क्यों रखा जाय ?

७. इसका एक कारण यह हो सकता है कि उन्होंने अपने प्रथम-उपदेश में ही यह कहा है कि जन्म भी दुःख है, जरा भी दुःख है और मरण भी दुःख है, और इसी से भगवान् बुद्ध के धर्म को कुछ गहरी निराशावादी रंगत दे दी गई है।

८. लेकिन जो शब्द-जिन्गी है, वे जानते हैं कि यह एक कलापूर्ण अतिशयोक्ति मात्र है और जो इस साहित्यिक कला में निष्णात हैं वे प्रभाव उत्पन्न करने के लिये इसका उपयोग करते ही हैं।

९. यह कथन कि 'जन्म दुःख है' एक अतिशयोक्ति है यह भगवान् बुद्ध के ही एक दूसरे प्रवचन से सिद्ध किया जा सकता है जिसमें उन्होंने कहा है कि मनुष्य जन्म एक दुर्लभ वस्तु है।

१०. फिर यदि बुद्ध ने केवल 'दुःख' की ही बात की होती, तब भी शायद तथ्यागत पर यह आरोप लग सकता था।

११. लेकिन भगवान् बुद्ध का दूसरा आर्य सत्य इस बात पर जोर देता है कि इस दुःख का अन्त होना चाहिये। दुःख का अन्त करने की बात पर जोर देने के लिये ही तथ्यागत को दुःख के अस्तित्व की चर्चा करनी पड़ी।

१२. भगवान् बुद्ध ने दुःख को दूर करने की बात को ही सर्वाधिक महत्व दिया है। यही कारण है कि जब उन्होंने देखा कि कपिल ने दुःख के अस्तित्व की चर्चा भर की है और इससे अधिक कुछ नहीं किया, तो वे असन्तुष्ट हुए और उन्होंने आलार कालाम का आश्रम तक छोड़ दिया।

१३. तब ऐसा धर्म निराशावादी धर्म कैसे कहला सकता है?

१४. निश्चय से जो शास्ता दुःख का अन्त देखने के लिये इतने उत्सुक थे, निराशावादी नहीं कहे जा सकते।

५. 'आत्मा' तथा 'पुनर्जन्म' सम्बन्धी आलोचना

१. भगवान् बुद्ध ने कहा—'आत्मा' नहीं है। भगवान् बुद्ध ने कहा—'पुनर्जन्म' है।

२. ऐसे लोगों की कमी नहीं थी जो भगवान् बुद्ध पर यह दोष लगाते थे कि वे परस्पर विरोधी सिद्धान्तों के प्रचारक हैं।

३. उनकी शंका थी—जब 'आत्मा' ही नहीं है तो 'पुनर्जन्म' कैसे हो सकता है?

४. इसमें कहीं कुछ भी विरोध नहीं है। बिना 'आत्मा' के पुनर्जन्म हो सकता है।

५. आम का बीज है। आम के बीज से आम का पेड़ पैदा होता है। आम के पेड़ पर आम के फल लगते हैं।

६. यह 'आम' का पुनर्जन्म है।

७. लेकिन यहाँ 'आत्मा' कहीं भी नहीं है।

८. इसी प्रकार बिना 'आत्मा' के पुनर्जन्म हो सकता है।

६. 'उच्छेद-वादी' होने का दोषारोपण

१. एक बार भगवान् बुद्ध जब धावस्ती के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे, तो उन्हें सूचना मिली कि अरिद्ध राम का एक भिक्षु ऐसे मत को, जो तथ्यागत का मत नहीं है, तथ्यागत का मत समझ रहा है।

२. एक विषय जिसके बारे में अरिद्ध तथ्यागत को सतत तौर पर समझें बैठा था, वह तथ्यागत के 'उच्छेद-वादी' होने न होने का विषय था।

३. तथ्यागत ने अरिद्ध को बुला भेजा अरिद्ध आया। प्रश्न किये जाने पर उसका मुँह बन्द हो गया।

४. तब तथामत ने उसे कहा—“कुछ श्रमण-ब्राह्मण मुझ पर गलत तोर से, मिथ्या रूप से, झूठे रूप से—उच्छेदवादी होने का ‘दोषारोपण’ करते हैं। कहते हैं कि मैं प्राणियों के उच्छेद की, अस्मावात्मक विनाश की शिक्षा देता हूँ। यह वास्तविकता के सर्वथा विपक्ष है।

५. यही तो मैं नहीं हूँ, “यही तो मैं नहीं सिखाता।” १

६. पहले भी और आज भी मैं यही सिखाता हूँ कि दुःख है और दुःख का निरोध है।

चौथा भाग

समर्थक और प्रशंसक

१. धानंजानी ब्राह्मणी की श्रद्धा

१. तथ्यागत के जनमिमत समर्थक और प्रशंसक थे। उनमें से एक धानंजानी थी।

२. वह भारद्वाज ब्राह्मण की पत्नी थी। उसका पति तथ्यागत से पूजा करता था। लेकिन धानंजानी भगवान् बुद्ध की भक्त थी। उसकी श्रद्धा उल्लेख करने योग्य है।

३. एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह के समीप वेतुवन विहार के कलन्दक-निवाप नामक स्थान पर ठहरे हुए थे।

४. उसी समय भारद्वाज परिवार के एक ब्राह्मण की धानंजानी नामक पत्नी अपने पति के साथ राजगृह में रहती थी।

५. पति तो तथ्यागत का बड़ा ही विरोधी था, लेकिन धानंजानी बुद्ध धर्म और संघ के प्रति उतनी ही प्रशन्न थी। उसे त्रिरत्न की स्तुति करने में आनन्द आता था। जब कभी वह इस प्रकार मुँह खोल कर प्रशंसा करने लगती, उसका पति क्रोधित होकर उसे डाँटता था।

६. एक बार जब उसने बहुत से ब्राह्मणों को भोजन के लिये निमन्त्रित किया था, उसने ब्राह्मणी से कहा कि वह और जो चाहे करे किन्तु बुद्ध की स्तुति सुनाकर वह उसके अतिथियों को अप्रसन्न न करे।

७. धानंजानी ऐसा कोई वचन देने के लिये तैयार न थी। उसने उसे धमकाया कि तत्तबार से केले को काट डालने की तरह वह उसके टुकड़े-टुकड़े कर देगा। वह आत्म-बलिदान के लिये तैयार थी। इस प्रकार उसने अपनी बाणी की स्वतन्त्रता की रक्षा की, और उसने भगवान् बुद्ध की स्तुति में पाँच सौ गायामें कह सुनाई। ब्राह्मण ने बिना सर्त के पराजय स्वीकार की।

८. भोजन-पात्र तथा मुनहरी चम्मच रख दिये गये थे। अतिथि भोजन करने बैठे। अतिथियों को भोजन कराते समय ही उसकी खलबती भावना ने जोर मारा। वह वेतुवनाभिमुख हुई और उसने त्रिरत्न की स्तुति की।

६. अपमानित अतिथि उठ खड़े हुए । एक मास्तिका की उपस्थिति से सारा भोजन अविवक्षित हो गया था । भू भू करते हुए वे वहाँ से विदा हुए । ब्राह्मणों ने सारा 'भोज' चौपट कर देने के लिए ब्राह्मणों को बहुत मालिमाँ दी ।

१०. उसने फिर भारद्वाज ब्राह्मण को भोजन कराते समय वि-रत्न की स्तुति की 'बुद्ध को नमस्कार है, धर्म को नमस्कार है, संघ को नमस्कार है ।'

११. उसके ऐसा कहने पर भारद्वाज ब्राह्मण बहुत कोपित हुआ और बिलगाया "घण्टालिनी कहीं की, हर समय उसी स्तिर मुण्डे के पीछे पाती रहती है । हे घण्टालिनी ! मैं तेरे गुरु को जाकर सबकुछ सिखाता हूँ ।"

१२. धानञ्जयानी का उत्तर था "हे ब्राह्मण ! सदेव, समार, स-वत्स लोक में किसी श्रमण-ब्राह्मण, किसी देवता या किसी मनुष्य को भी मैं नहीं पाती जो उस अर्हत सम्यक सम्बुद्ध को इस प्रकार भला-बुरा कह सके । लेकिन तुम उनके पास जाओ, तब तुम स्वयं देखोगे ।"

१३. तब खिन्ना हुआ और अप्रसन्न ब्राह्मण तयागत की खोज में निकला । वहाँ पहुँच कर, वहाँ तयागत ठहरे थे, उसने शिष्टाचार की बातचीत की और तब एक ओर जा बैठा ।

१४. इस प्रकार बैठे हुए ब्राह्मण ने तयागत से प्रश्न पूछे—"सुखपूर्वक रहने के लिए हमें किसकी हत्या करनी चाहिए ? और रोना न पड़े, इसके लिए हमें किसकी हिंसा करनी चाहिए ? गौतम ! वह क्या है जिसकी हत्या का तुम सबसे अधिक समर्थन करते हो ।"

१५. तयागत ने उत्तर दिया :—"सुखपूर्वक रहने के लिए क्रोध की हत्या करनी चाहिए । और रोना न पड़े, इसके लिए हमें क्रोध की हिंसा करनी चाहिए । हे ब्राह्मण ! क्रोध की—जिसका विपरीत मूल है, जिसका उत्तेजनापूर्वक मिश्र है, और जिस में हत्याया माधुर्य है । अंशु जनों ने इसी प्रकार की 'हिंसा' की प्रशंसा की है । यदि भविष्य में और रोना-पीटना न हो, तो क्रोध की हिंसा कर डालनी चाहिए ।"

१६. भगवान् बुद्ध के प्रवचन के अंशुत्व को समझ भारद्वाज ब्राह्मण बोला —"भगवान् अद्भुत है । भगवान् अद्भुत है । जैसे कोई आशनी गिरी पड़ी वस्तु को स्थिर कर दे, जगवा प्रच्छन्न को प्रकट कर दे, जगवा मार्ग-भ्रष्ट को ठीक रास्ता दिखा दे, जगवा जगदरे में प्रदीप प्रज्ज्वलित कर दे ताकि आंध्रवासे बाह्य की भीर्मे देखलें—इसी प्रकार भगवान् बुद्ध ने मुझे नाना प्रकार से अपना सङ्गम प्रकट कर दिया है । भगवान् ! मैं बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण ग्रहण करता हूँ ? मैं गृहस्थी त्याग कर प्रव्रजित होता चाहता हूँ ।"

१७. इस प्रकार धानञ्जयानी ने केवल स्वयं भगवान् बुद्ध की भक्त की, किन्तु उसने औरों को भी भक्त बनाया ।'

२. विशाखा की वृद्ध थूढ़ा

१. विशाखा अङ्ग जनपद के महिष नगर में जन्मी थी ।

२. पिता का नाम धनञ्जय और माता का नाम सुमना था ।

३. एक बार सेल ब्राह्मण के निमन्त्रण पर बहुत से भिक्षुओं सहित तयागत ने महिष की यात्रा की । सेल ब्राह्मण की प्रीती विशाखा की आयु उस समय सात वर्ष की थी ।

४. पण्डित विशाखा की आयु केवल सात वर्ष की ही थी तब भी उसने भगवान् बुद्ध के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की । मेण्डक ने उसे अनुशासित की कि वह तयागत के दर्शन कर आवे । साथ के लिये उसने पांच सौ साधी पांच सौ दास और पांच सौ रथ भी दिये ।

५. रथ को कुछ दूरी पर खड़ा करके वह पैदल तयागत के पास पहुँची ।

६. भगवान् बुद्ध ने उसे धर्म का उपदेश दिया और वह उनकी गृहस्थ शिष्या (उपसिका) बन गई ।

७. इसके बाद पन्द्रह दिन तक मेण्डक भगवान् बुद्ध और उनके भिक्षुसंघ को प्रतिदिन निमन्त्रित करके भोजन कराता रहा ।

८. अन्त में जब प्रसेनजित् के कहने पर बिम्बिसार ने धनञ्जय को कोशल जनपद में रहने के लिये भेज दिया तो विशाखा भी अपने माता-पिता के साथ गई और साकेत में रहने लगी ।

९. आवस्ती का एक सेठ था । नाम था मिथार । वह अपने पुण्यवर्धन नामक पुत्र का विवाह करना चाहता था । उसने कुछ लोगों को योग्य लड़की की खोज में भेज रखा था ।

१०. लड़की की खोज करने वाली मण्डली घूमते घूमते साकेत आ पहुँची । उन्होंने देखा कि किसी त्योहार के दिन विशाखा सरोवर पर स्नान करने आ रही है ।

११. उसी समय जोर की बरषा आई । विशाखा की साँखियाँ भाग खड़ी हुई । लेकिन विशाखा नहीं भागी । वह अपनी समान गति से चलती हुई उस जगह आ पहुँची जहाँ मिथार के 'दूत' खड़े थे ।

१२. उन्होंने उससे पूछा—'तूने दीढ़ कर अपने कपड़े क्यों नहीं बचाये ?' उसने उत्तर दिया कि उसके पास कपड़ों की कमी नहीं है, किन्तु दीढ़ने से फिसल कर गिर पड़ने और अंग-भंग हो जाने तक का डर रहता है । 'अविवाहित लड़कियाँ' वह बोली 'उस सामान की तरह से हैं जो बिजली के लिये रखा है । उनकी शक्ल-सूरत दीक रहनी चाहिए ।'

१३. जिन्हें उसके सौन्दर्य ने पहले ही प्रभावित कर दिया था वे उसकी

बुद्धि से और भी प्रभावित हुए। दूतों ने उसे एक गुप्प गुप्प भेंट किया, जो विवाह के प्रस्ताव का प्रतीक था—स्वीकृत हुआ।

११. विशाखा के घर सौटने पर दूत भी पीछे पीछे पर आये। उन्होंने पुष्प-वर्धन से विवाह करने का प्रस्ताव विशाखा के पिता धनञ्जय के सम्मुख उपस्थित किया। प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और पक्षों की बदला-बदली द्वारा स्थिर हुआ।

१२. जब राजा प्रसेनजित् ने सुना तो उसने साथ साकेत चलने के लिये कहा। यह असाधारण सम्मान की बात थी। धनञ्जय ने राजा, उसके राजाधिकारियों, मिगार, पुष्पवर्धन तथा सब बारातिवों का बड़ा ही आदर-सत्कार किया। आतिथ्य में किसी तरह की कमी न होने दी।

१३. बधु के लिये गहने बनाने को पाँच सौ मुनार नियुक्त किये गये। धनञ्जय ने अपनी लड़की के दहेज में धन से भरी पाँच सौ गाड़ियाँ तथा सोने और पशुओं से भरी पाँच सौ गाड़ियाँ दीं।

१४. जब विशाखा के विदा होने का समय आया तो धनञ्जय ने उसे दस उपदेश दिये, जिन्हें मिगार ने भी साथ के कमरे में ही होने के कारण सुन लिया। ये दस उपदेश थे—(१) घर की आज्ञा बाहर नहीं जाने देना, (२) बाहर की आज्ञा घर में नहीं जाने देना, (३) जो बदले में दे उन्हें ही देना, (४) जो बदले में न दें, उन्हें नहीं देना, (५) जो दे उसे देना, (६) जो नहीं दे उसे न देना, (७) प्रसन्नता पूर्वक बैठना, (८) प्रसन्नता पूर्वक खाना पीना, (९) आज्ञा को संचालना, तथा (१०) गृह-देवताओं का सम्मान करना।

१५. दूसरे दिन धनञ्जय ने आठ गृहस्थों को अपनी लड़की के गृह-दोषों का निवेदन करने के लिये नियुक्त किया और उनका कर्तव्य था कि यदि विशाखा पर कोई आरोप लगाया जाय तो उसकी जाँच करें।

१६. मिगार आहवां था कि उसकी पुत्र-बधु को आवस्ती की जनता देखें। सोच सड़क के दोनों ओर खड़े थे और विशाखा ने रथ में खड़े खड़े आवस्ती में प्रवेश किया। जनता ने उस पर से तरह तरह की चीजें न्योछावर की, किन्तु वे सभी चीजें उसने सोपों में बाँट दीं।

१७. मिगार नियण्ठी का उपासक था। विशाखा के घर पर आने के बाद शीघ्र ही उसने उन्हें बुला भेजा। उनके आने पर मिगार ने विशाखा को उनका स्वागत करने के लिये कहा। लेकिन उनकी नम्रता देख कर ही विशाखा उद्बिग्न हो उठी। उसने प्रति सम्मान प्रदर्शित करने में इनकार कर दिया।

१८. नियण्ठी ने आवहू किया कि विशाखा को वापिस भेज दिया जाय, किन्तु मिगार ने प्रतिज्ञा करना उचित समझा।

१९. एक दिन जब मिगार खा रहा था और विशाखा पास खड़ी पंखा झल रही थी, घर के बाहर एक भिक्षु खड़ा दिखाई दिया। विशाखा एक ओर हट गई

कि मिगार की नजर उस पर पड़ जाय। लेकिन मिगार ने 'मिधु' की ओर देखा तक नहीं। वह अपना धाना खाता रहा।

२३. यह देख विशाखा ने मिधु से कहा—भन्ते ! आये बड़ जायें, मेरा स्वयंवर बासी भोजन खाता है। मिगार को बहुत क्रोध आया। उसने उसे आपित भेजना चाहा। किन्तु विशाखा के कहने पर मामला उन जाठ 'पर्वी' के सामने उपस्थित किया गया।

२४. विशाखा के विरुद्ध जितने भी आरोप लगाये गये थे, उन्होंने उन सब की जांच की। किन्तु विशाखा को निर्दोष पाया।

२५. विशाखा ने तब आज्ञा दी कि उसे उसके पिता के घर भिजवाने की तैयारी की जाय। तब मिगार और उसकी पत्नी ने क्षमा माँगी। विशाखा ने इस सर्त पर रहना स्वीकार किया कि मिगार भगवान् बुद्ध और उनके मित्रों को घर पर निमंत्रित करेगा।

२६. यह उसने किया किन्तु निगण्ठों के दबाव के कारण उसने तथागत को भोजन कराने का काम विशाखा को ही सौंपा, अपने पर्व की ओट से तथागत का 'प्रवचन' सुनता रहा।

२७. उस 'प्रवचन' का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह उपासक हो गया।

२८. यह विशाखा के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ था। इसके बाद से वह उसको अपनी माता के समान समझने लगा और उसी प्रकार आदर-सत्कार करने लगा। इसी लिये इसके बाद से विशाखा का नाम मिगार-माता पड़ गया।^२

२९. विशाखा की ऐसी ही दुःख भट्टा थी।

३. मल्लिका की श्रद्धा

१. एक बार जब भगवान् बुद्ध आबस्ती के जितवनाराम में ठहरे हुए थे, एक गृहस्थ का प्रिय-पुत्र मर गया। पिता उसके शोक से इतना सन्तुष्ट हुआ कि उसका धाना-पीना और कारोबार सब छूट गया।

२. वह हमेशा श्मशान-भूमि में जाता था और जोर-जोर से चिल्लाता था। 'पुत्र ! तुम कहाँ हो ? पुत्र ! तुम कहाँ हो ?'

३. शोक-सन्तुष्ट पिता भगवान् बुद्ध के पास आया और अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

४. यह देख कि उसका दिमाग सर्वथा खाली था, उसकी किसी भी चीज में दिलचस्पी नहीं थी, वह यह भी नहीं बताता था कि वह क्यों आया; उसकी ऐसी अवस्था देख तथागत ने कहा—'तुम अपने आप में नहीं हो। तुम्हारा चित्त स्थिर नहीं है।'

५. "मेरा चित्त स्थिर कैसे रह सकता है, जब मेरा इकलोता प्रिय-पुत्र चल बसा?"

६. "हो गृहपति ! हमारे प्रियजन शोक, संताप, कष्ट, दुःख और अनुताप का कारण होते ही हैं।"

७. गृहपति को क्रोध आ गया। बोला—“ऐसी बात कौन स्वीकार कर सकता है ! हमारे प्रिय-जन हमारे लिये आनन्द और सुख का कारण होते हैं।”

८. यह कहता हुआ असंतुष्ट गृहपति भगवान् बुद्ध के कथन को अस्वीकार कर, उठकर चला गया।

९. समीप ही कुछ जुआरी बैठे जुआ खेल रहे थे। गृहपति उनके पास पहुंचा और उन्हें अपनी सब बात कह सुनाई कि कैसे वह तयागत के पास गया, कैसे तयागत ने उसका स्वागत किया, कैसे तयागत ने उसे क्या कहा और फिर कैसे वह उठकर चला आया।

१०. जुआरी बोले—“तुम्हारा कहना एकदम ठीक है। हमारे प्रिय-जन हमारे लिये आनन्द और सुख का कारण होते हैं।” गृहपति को भया कि उसे उन जुआरियों का तो समर्थन प्राप्त है।

११. धीरे धीरे वह बात फैलती फैलती राजा के दरिवास तक पहुंच गई। वहां राजा ने मल्लिकाराम की कहा कि तुम्हारे श्रमण गौतम ने कहा है कि प्रियजन शोक, संताप, कष्ट, दुःख और अनुताप का कारण होते ही हैं।

१२. “स्वामी ! यदि तयागत ने ऐसा कहा है, तो ठीक ही कहा है।”

१३. “मल्लिका ! जैसे कोई शिष्य अपने गुरु की हर बात को ‘जो ऐसा ही है’ कहकर स्वीकार कर लेता है, उसी प्रकार तू भी जो कुछ श्रमण गौतम कहते हैं उसे ‘यदि तयागत ने ऐसा कहा है तो ठीक ही कहा है’ कहकर स्वीकार कर लेती है। जा दूर हट।”

१४. तब मल्लिका ने नली-घान ब्राह्मण को बुलाया और कहा—“भगवान् बुद्ध के पास जाओ। मेरी ओर से चरणों में सिर रखकर नमस्कार करो। तब कुशल समाचार पूछ चुकने के बाद पूछो कि क्या जो कुछ भगवान् बुद्ध के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने कहा है, वह उन्होंने सचमुच कहा है ?

१५. “और जो कुछ भी तयागत उत्तर दें, मुझे जाकर ठीक ठीक वैसे ही बताना।”

१६. मल्लिका-राम की आज्ञा मान ब्राह्मण भगवान् बुद्ध के पास पहुंचा और जाकर प्रश्न किया कि क्या उन्होंने वास्तव में वैया कहा था।

१७. “हो ब्राह्मण ! प्रियजन शोक, संताप, कष्ट, दुःख और अनुताप का कारण होते ही हैं। ये कुछ प्रमाण हैं।”

१८. “एक बार, यहीं आवस्ती में ही, एक स्त्री की मां मर गई। बेटी

होश-हवास गँबाये, पागल बनी एक बाजार से दूसरे बाजार, एक चौरास्ते से दूसरे चौरास्ते चिल्लाती घूमती थी—“क्या किसी ने मेरी माँ को देखा है ? क्या किसी ने मेरी माँ को देखा है ?”

१६. “एक दूसरा प्रमाण, आवस्ती की ही वह स्त्री है, जिसका पिता मर गया, भाई मर गया—बहन मर गई—बेटा मर गया—बेटी मर गई—पति मर गया। वह होश-हवास गँबाये, पागल बनी एक बाजार से दूसरे बाजार, एक चौरास्ते से दूसरे चौरास्ते चिल्लाती घूमती थी—“क्या किसी ने मेरे इन प्रियजनों को देखा है ?”

२०. “एक तीसरा प्रमाण, आवस्ती का ही वह आदमी है जिसकी माँ मर गयी, पिता मर गया, भाई मर गया, बहन मर गई, बेटा मर गया, बेटी मर गई—स्त्री मर गई। वह होश-हवास गँबाये, पागल बना एक बाजार से दूसरे बाजार, एक चौरास्ते से दूसरे चौरास्ते चिल्लाता हुआ घूमता था—“क्या किसी ने मेरे इन प्रियजनों को देखा है ?”

२१. एक और प्रमाण आवस्ती की वह स्त्री है जो अपने मायके गई, उसके माता-पिता उसे उसके पति से छीन कर किसी दूसरे आदमी से ब्याह देना चाहते थे, जिसे वह पसन्द नहीं करती थी।

२२. “उसने अपने पति को यह बात बता दी। उसके पति ने उसके दो टुकड़े कर दिये और उसके बाद स्वयं भी आत्म-हत्या कर लिया ताकि उन दोनों का मरण साथ साथ हो सके।”

२३. ब्राह्मण मनी-धान ने यह सब कुछ जाकर शब्दशः रानी मलिका को कह सुनाया।

२४. तब रानी मलिका राजा के पास पहुँची और बोली—“स्वामी ! क्या आपको अपनी इकलौती पुत्री बजिरा प्रिय है ?” “हाँ ! प्रिय है।”

२५. “यदि आपको बजिरा को कुछ हो जाय तो आपको कष्ट होगा या नहीं ?” “यदि बजिरा को कुछ हो जाय तो इसका मेरे जीवन पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ेगा।”

२६. “स्वामी ! क्या आपको मैं प्रिय हूँ ?” “हाँ ! प्रिय हो।”

२७. “यदि मुझे कुछ हो जाय तो आपको दुःख होगा या नहीं ?” “यदि मुझे कुछ हो जाय तो इसका मेरे जीवन पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ेगा।”

२८. “स्वामी ! क्या आपको काशी-कोशल की जनता प्रिय है ?” “हाँ प्रिय है।” “यदि उसे कुछ हो जाय तो आपको अनुताप हीगा या नहीं ?”

२९. “यदि काशी-कोशल की जनता को कुछ हो जाय तो मुझे बड़ा अनुताप हीगा; यह ही ही कैसे सकता है कि ऐसा न हो।”

३०. “तो भगवान् बुद्धने क्या इससे कोई भिन्न बात कही थी ?” राजा ने पश्चात्ताप प्रकट करते हुए उत्तर दिया—“मलिका ! नहीं, यही कहा था।”

४. एक गर्मिणी की तीव्र अभिलाषा

१. एक बार भगवान् मगध-देश के, सुसुभार-पर्वत पर भैंसकलावन के मृगदाघ में ठहरे हुए थे। 'पद्म' नाम का बोधि-राजकुमार का प्रासाद अभी बनकर समाप्त हुआ था। उसमें किसी श्रमण-ब्राह्मण वा अन्य किसी भी व्यक्ति का वास नहीं हुआ था।

२. राजकुमार ने संजिक-पुत्र नाम के एक ब्राह्मण को कहा :—“भगवान् बुद्ध के पास जाकर मेरी ओर से उनके चरणों में नमस्कार करो। उनका कुशल-समाचार पूछो, और उन्हें भिक्षु-संघ सहित कल के भोजन का निमंत्रण दो।”

३. निमंत्रण भगवान् बुद्ध तक पहुँचा, जिन्होंने उसे मौन रहकर स्वीकार किया और जिसकी सूचना राजकुमार को मिल गई।

४. रात के बीत जाने पर राजकुमार ने अपने 'पद्म' नाम के महल में श्रेष्ठ भोजन तैयार कराया और सीढ़ियों पर सफेद वस्त्र बिछवाया। इसके बाद उसने उस तरफ ब्राह्मण की जबानी भोजन की तैयारी की सूचना भिजवाई।

५. यह हो जाने पर, उस दिन पूर्वाह्न में चीवर पहन तथा पात्र (—चीवर) हाथ में ले तथागत वहाँ आये जहाँ अपने महल के दरवाजे के बाहर राजकुमार प्रतीक्षा कर रहा था।

६. तथागत को बता देखकर, राजकुमार आग बढ़ा अभिवादन किया और तथागत के पीछे पीछे महल की ओर वापस आया।

७. सीढ़ियों के नीचे भगवान् बुद्ध चुपचाप रुक गये। राजकुमार बोला—“मैं प्रार्थना करता हूँ कि बिछे धुस्से पर चरण-रत्न पड़ने दें। मैं तथागत से प्रार्थना करता हूँ कि इस धुस्से पर चरण-रत्न दें।—जो कि चिरकाल तक मेरे हित तथा सुख के लिए होगा।” लेकिन तथागत चुप रहे।

८. दूसरी बार भी राजकुमार ने प्रार्थना की। तब भी तथागत आगे नहीं बढ़े। तीसरी बार भी उसने प्रार्थना की, तब तथागत ने आनन्द की ओर देखा।

९. आनन्द समझ गये और उन्होंने कहा कि वह धुस्से लपेट दिये जायें, क्योंकि तथागत पीछे आने वाले लोगों का स्थान कर—भावी जनता का स्थान कर—उस धुस्से पर पैर नहीं रखेंगे।

१०. राजकुमार ने धुस्से इकट्ठे करवा दिये और महल में ऊपर बैठने के लिए आसन लगवाये।

११. तब भिक्षु-संघ सहित भगवान् बुद्ध ऊपर पधारे और बिछे आसनों पर विराजमान हुए।

१२. राजकुमार ने अपने हाथ से भिक्षुसंघ और तथागत को नमस्कार परोसा।

१३. भोजन की समाप्ति पर राजकुमार एक नीचा आसन ग्रहण कर एक

और बैठ गया और बोला—“भगवान् ! क्या वास्तविक कल्याण आराम के रास्ते पर चलने से प्राप्त होता है या कष्ट सहन के रास्ते पर चलने से ?”

१४. तपागत ने उत्तर दिया, “पूर्व में, बोधि-लाभ करने से पूर्व मैं भी इस बारे में विचार करता था। जिस समय, मेरे काले-काले बाल थे, तारुण्य के मध्य में था, अपने रोते माता-पिता को छोड़कर मैंने सिर के बाल और दाढ़ी मुण्डा ली थी तथा काषाय वस्त्र धारण कर प्रव्रजित हो गया था—एक परिव्राजक कल्याण-पथ का पथिक, अनुपम शान्ति की तलाश करने वाला।

१५. “अब मेरा निश्चित मत है। यदि आदमी सद्धर्म को जनता है, तो वह दुःख का अन्त कर सकता है।”

१६. राजकुमार बोला—“क्या अद्भुत सद्धर्म है ! क्या अद्भुत सद्धर्म की व्याख्या है ! यह समझने में कितना सुकर है।”

१७. तब तपस बाह्याण बोल उठा—“राजकुमार ! यद्यपि आपने इस प्रकार समर्थन किया है, किन्तु आपने बुद्ध धर्म तथा संघ की शरण नहीं ग्रहण की।”

१८. राजकुमार का उत्तर था :—“ऐसा मत कहो। ऐसा मत कहो। क्योंकि मैंने अपनी मातृश्री से सुना है कि जिस समय भगवान् बुद्ध कोसाम्बी के घोसिताराम में ठहरे हुए थे, वह गम्भीरी अवस्था में ही भगवान् बुद्ध के पास गईं और जाकर एक ओर बैठ गईं। एक ओर बैठ कर उसने कहा—‘भगवान् ! चाहे लड़का हो और चाहे लड़की हो, जिस शिशु को मैं इस समय अपने गर्भ में धारण किये हुए हूँ, वह मेरी अनुत्पन्न संतान बुद्ध धर्म, तथा संघ की शरण ग्रहण कर रही है। भगवान् ! इस शिशु को इसके जीवन भर अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।’

१९. “दूसरी बार जब भगवान् बुद्ध यहीं इस प्रमगदेश में ही तिसुभार-गिरि पर भेसकलावन में ठहरे हुए थे, मेरी दाईं मुझे तपागत के पास ले गईं और सामने खड़ी होकर बोली—‘यह बोधि राजकुमार बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण ग्रहण करता है।’

२०. “अब मैं तीसरी बार स्वयं यह शरण ग्रहण करता हूँ और तपागत से प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।”

५. केनिय द्वारा किया गया स्वागत

१. आपण में सेल नाम का एक ब्राह्मण रहता था, जो तीनों वेदों में पारंगत था, व्याख्या सहित कर्मकाण्ड का पण्डित था शब्द-शास्त्र तथा शब्दों की व्युत्पत्ति का ज्ञाता था, पांचवीं विद्या इतिहास से परिचित था। वह व्याकरण ज्ञाता था, और लोकायत-शास्त्र भी जानता था तथा महापुरुष लक्षणों की भी जानकारी रखता था। वह तीन सौ तरुण ब्राह्मणों को वेदमन्त्र सिखाता था।”

२. अग्नि-पूजक केनिय ब्राह्मण इस सेल ब्राह्मण को मानने वाला था। अपने तीन सौ शिष्यों के साथ जब वहाँ पहुँचा कि सभी अग्नि-पूजक भिन्न-भिन्न कार्यों में व्यस्त हैं और स्वयं केनिय पूजक खाने बाना रहा है।

३. यह देखा तो सेल ब्राह्मण केनिय ब्राह्मण से बोला :—“यह सब क्या है ? क्या कोई बारात जिमाई जाने को है ? या कोई यज्ञ रचा है ? अथवा उसके सब राजकर्मचारियों के साथ मगध-नरेश बिम्बिसार को ही कल के दिन भोजन के लिए निमंत्रित किया है ?”

४. “सेल ! यह कोई बारात भी नहीं जिमाई जा रही है और न मैंने सभी राजकर्मचारियों सहित मगध-नरेश बिम्बिसार को निमंत्रित किया है। लेकिन मैंने एक बड़ा यज्ञ रचा है। भ्रमण गौतम साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के साथ चारिका करते करते आपण पधारे हैं।

५. “भ्रमण गौतम के बारे में यह कीर्ति-शब्द सुना गया है कि वे अर्हंत हैं... सम्यक् सम्बुद्ध हैं।”

६. “मैंने कल उन्हीं को अपने भिक्षु-संघ सहित वहाँ भोजन के लिये निमंत्रित किया है। यह जो तैयारी हो रही है, यह सब उन्हीं के लिए है।”

७. सेल ने प्रश्न किया—“केनिय ! क्या तुने कहा कि वे सम्यक् सम्बुद्ध हैं ?”
 “हाँ, मैंने कहा कि वे सम्यक् सम्बुद्ध हैं।” “क्या तुने सबमुच कहा कि वे सम्यक्-सम्बुद्ध हैं ?” “हाँ, मैंने सबमुच कहा कि वे सम्यक्-सम्बुद्ध हैं।”

६. तथागत की राजा प्रसेनजित द्वारा की गई स्तुति

१. एक बार भगवान् बुद्ध आक्खी में अनाथ पिण्डिक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे।

२. उस समय कोशल-नरेश प्रसेनजित् उस बनावटी-गुद से लीटे ही थे, जिसमें वे बिजयी हुए थे। उद्यान में पहुँचकर वे उघर घूम गये। जहाँ तक रथ से जाया जा सकता था, वे रथ से गये। आगे जाकर रथ से उतर गये और पैदल गये।

३. उस समय कुछ भिक्षु धुले में चहल-कदमी कर रहे थे। कोशल-नरेश प्रसेनजित उनके पास गया और बोला—“भगते ! इस समय तथागत भगवान् अर्हंत सम्यक् सम्बुद्ध किस जगह विराजमान हैं ? मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ।”

४. “महाराज ! वे वहाँ हैं। द्वार बन्द है। बिना ध्वरामे आप धीरे से वहाँ चले जायें, वरामदे में प्रवेश करें, घाँसें और दरवाजों की कुण्डी खटखटायें। तथागत तुम्हारे लिए दरवाजा खोल देंगे।”

५. तब कोशल-नरेश प्रसेनजित् जैसा बताया गया था, उसी प्रकार वहाँ

पहुँचा, आँसा और दरवाजे की कुण्डी खटखटाई । तत्पश्चात् ने दरवाजा खोल दिया ।

६. तब प्रसेनजित ने तत्पश्चात् की 'गन्ध कुटी' में प्रवेश किया, तत्पश्चात् के चरणों पर अपना सिर रखा, उन चरणों को चूमा और हाथ से स्पर्श किया और अपने आगमन की सूचना दी, "भगवान् ! मैं कोसल-नरेश प्रसेनजित् हूँ ।"

७. भगवान् बुद्ध ने पूछा—'लेकिन, महाराज ! इस शरीर में ऐसी क्या विशेषता है कि आप इस शरीर के प्रति इतना भक्ति-भाव प्रदर्शित कर रहे हैं ?"

१. संयुक्त निकाय ।

२. धम्मपद अ० क० ४:८१।

३. मज्झिम निकाय ३:४:७ ।

४. मज्झिम निकाय ४:४५ ।

५. सेल सुत्त (मज्झिम निकाय)

६. मज्झिम निकाय ।

सप्तम् काण्ड

महान् परिव्राजक की अन्तिम चारिका

पहला भाग — निकटस्थ जनों से भेट

दूसरा भाग — वैशाली से बिदाई

तीसरा भाग — महापरिनिर्वाण

पहला भाग

निकटस्थ जनों से भेंट

१. धर्म-प्रचार के केन्द्र

१. धर्म-दूतों की नियुक्ति के बाद भगवान् बुद्ध स्वयं किसी एक जगह नहीं बैठ गये थे । वे भी स्वयं धर्म-दूत बने रहे ।

२. ऐसा लगता है कि भगवान् बुद्ध ने कुछ विविध स्थानों को धर्म-प्रचार का केन्द्र बना लिया था ।

३. ऐसे केन्द्रों में प्रधान वे आवस्ती और राजगृह ।

४. उन्होंने लगभग ७५ बार आवस्ती की यात्रा की होगी और कोई २४ बार राजगृह की ।

५. कुछ दूसरे स्थान धर्म-प्रचार के छोटे केन्द्र थे ।

६. जैसे कपिलवस्तु, जहाँ उन्होंने ६ बार गये, वैशाली भी छः बार गये और कम्भासवम्म ४ बार ।

२. भगवान् बुद्ध कहां कहां पधारे ?

१. अपनी चारिका करते करते उन्नत प्रधान और छोटे केन्द्रों के अतिरिक्त ऐसे और बहुत से स्थान हैं जहाँ भगवान् बुद्ध गये ।

२. वे उकट्ठा, नाविका, साता, जस्सपुर, घोषिताराम, सालाया, आपण तथा एतुमा पधारे ।

३. वे ओपसाद, इच्छा-नान्द, मण्डास-कप्प, तथा कुसीनारा गये ।

४. वे देवदह, पावा, अम्बसण्डा, सेतव्या, अनुपिया, तथा उज्ज्वा गये ।

५. जिन जिन जगहों पर ठहराया गया उनके नामों की देखने से पता लगता है कि वे शाक्य-जनपद, कुछ जनपद तथा अज्ञानपद में पधारे ।

६. मोटे क़द से यह कह सकते हैं कि उन्होंने समस्त उत्तरी-भारत की यात्रा की ।

७. इन स्थानों की संख्या बहुत अधिक प्रतित नहीं होती । लेकिन इनके बीच की भी दूरी कितनी है ? लुम्बिनी से राजगृह कोई ड़ाई सौ मील से कम दूर नहीं है । इससे स्थानों की दूरी का कुछ अन्दाजा लग जाता है ।

८. इन सभी स्थानों पर भगवान् बुद्ध पैदल ही गये हैं। उन्होंने बेलगाड़ी तक का भी उपयोग नहीं किया।

९. अब वे चारिका करते थे तो रास्ते में ठहरने के लिए भी कोई जगह नहीं थी। आगे चलकर तो उनके गृहस्थ उपासकों ने उनके रहने-ठहरने के लिए बिहार बनवा दिये थे। तथागत बहुधा सड़क के किनारे के वृक्षों की छाया में ही रात बिताते थे।

१०. जिनके मन में सन्देह थे, उनके सन्देह मिटाते हुए, जो विरोधी थे, उनके तर्कों का उत्तर देते हुए, जो बच्चों की तरह उनका विश्वास करते थे उन्हें सत्य दिखाते हुए तथागत एक जगह से दूसरी जगह, एक गाँव से दूसरे गाँव विचरते थे।

११. भगवान् बुद्ध जानते थे कि जितने लोग उनका उपदेश सुनने आते थे वे सब न समान रूप से बुद्धिमान होते थे और न ऐसे ही कि पहले से कुछ पूर्व-धारणायें न बनो हुई हों।

१२. उन्होंने भिक्षुओं को बता तक दिया था कि आतागण्य तीन प्रकार के होते हैं—

१३. "छाली दिमाग, जिस मुख को कुछ भी दिखाई नहीं देता; यद्यपि वह बार-बार भिक्षुओं के पास जाता है; यदि, मध्य और अन्त तक उनके प्रवचन सुनता है; लेकिन कुछ नहीं समझ सकता। उसे बुद्धि ही नहीं होती।

१४. "लेकिन उससे अच्छा वह आदमी होता है जिसका चित्त एकाग्र नहीं होता, वह बार-बार भिक्षुओं के पास जाता है; आदि, मध्य और अन्त तक उनके 'प्रवचन' सुनता है, और अब तक वहाँ बैठा रहता है तब तक कुछ समझता भी है; लेकिन वहाँ से उठने पर उसके दिमाग में कुछ टिका नहीं रहता। उसका दिमाग कोरा हो जाता है।

१५. "इन दोनों से प्रसन्न-प्रसन्न आदमी अच्छा है। वह भी बार-बार भिक्षुओं के पास जाता है; आदि, मध्य और अन्त तक उनके प्रवचन सुनता है; वहाँ बैठे बैठे सब कुछ ध्यान में रखता है, स्थिर-चित्त, एकाग्र-चित्त और धर्म तथा धार्मिक विषयों में दक्ष।"

१६. इन सब के बावजूद भगवान् धर्मोपदेश के उद्देश्य से एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरते ही रहे। उन्होंने कभी क्लान्ति अनुभव नहीं की।

१७. एक 'भिक्षु' की तरह ही भगवान् बुद्ध के पास तीनचीवरों से अधिक कभी नहीं रहे। वे दिन में एक बार भोजन ग्रहण करते थे। वे हर रोज घर घर से भिक्षाटन करते थे।

१८. किसी भी मानव ने इससे कड़े 'कर्तव्य' को नहीं निभाया होगा — और इतनी प्रसन्नता के साथ।

३. माता और पुत्र तथा पति और पत्नी की अन्तिम भेंट

१. मृत्यु से पहले महाप्रजापति और यशोधरा तथागत से भेंट कर सकीं ।

२. यही कदाचित् उनकी अन्तिम भेंट थी ।

३. पहले महाप्रजापति गई और उसने जाकर तथागत की पूजा की ।

४. वह उनकी श्रुती थी, क्योंकि तथागत ने उसे धर्म का पान कराया था, क्योंकि उसके (आध्यात्म-) शरीर ने तथागत के माध्यम से जन्म ग्रहण किया था, क्योंकि उसके शरीर में धर्म ने तथागत के माध्यम से हो विकास पाया था, क्योंकि उसके शरीर में धर्मरूपी दुःख का पान किया था, क्योंकि उसने उन्हीं की सहायता से संसार-सागर को तैर कर पार किया था—यह कितनी बड़ी बात थी कि वह नुछ बननी मानी गई !

५. और तब उसने अपनी बात कही—

“अब मैं इस वेद का त्याग कर मृत्यु को प्राप्त होना चाहती हूँ। हे दुःख का अन्त करने वाले भगवान् ! मुझे अब इसकी अनुमति दे ।”^२

६. यशोधरा ने भगवान् बुद्ध से बात करते हुए कहा कि अब वह अठहत्तर वर्ष की हो गई है । तथागत ने कहा कि यह उनका अस्तीर्षा वर्ष है ।

७. यशोधरा ने कहा कि आज की रात ही उसकी अन्तिम राखि है ।

महाप्रजापति को अपेक्षा उसका स्वर अधिक संयत था । उसने तथागत से न मरने की अनुमति मांगी और न महाप्रजापति की तरह उसने उन्हीं की शरण ही ग्रहण की ।

८. वस्तुतः उसके प्रति-विषय उसने कहा—“मैं अपनी शरण आप हूँ ।”

९. वह अपने जीवन के सभी बंधन काट चुकी थी ।

१०. वह अपनी कृतज्ञता प्रकट करने आई थी, क्योंकि तथागत ही उसके पय-प्रदशक थे और तथागत से ही उसने धर्म-बल प्राप्त किया था ।

४. पिता और पुत्र में अन्तिम भेंट

एक बार जब भगवान् बुद्ध राजगृह के वेलुवन में निवास कर रहे थे, उसी समय राहुल शम्बलट्टिका में ठहर थे ।

२. अपराह्न के बाद जब भगवान् बुद्ध समाधि से उठे तो वह राहुल की ओर गये । उन्हें दूर से ही आता देख राहुल ने उनके लिए आसन बिछा दिया तथा पैर धोने के लिये पानी रख दिया ।

३. राहुल द्वारा बिछाये आसन पर बैठकर तथागत ने अपने पाँव धोये, और राहुल ने भी तथागत को अभिवादन कर एक ओर स्थान ग्रहण किया ।

४. राहुल को सम्बोधित करके तथागत ने कहा—“अबसे ज्ञान-भूषण कर मृत

बोलने में लज्जा नहीं, वह कुछ भी पाप-कर्म कर सकता है, इसलिए राहुल ! वह सोचना चाहिए कि हम हसी-मजाक में भी कभी झूठ न बोलेंगे ।

५. "इसी प्रकार कोई भी काम करने लगे, पहले उसके बारे में सोचो, कोई भी शब्द मुंह से निकालने लगे, पहले उसके बारे में सोचो, कोई भी बात मन में पैदा हो, पहले उसके बारे में सोचो ।

६. "अब कोई भी काम करने लगे तो पहले उसके बारे में सोचो कि यह तुम्हारे तथा दूसरों के लिए अहितकर तो नहीं होगा, एक दुष्ट-कर्म कष्टदायी होता है । यदि तुम्हारा विचार रहे कि यह काम ऐसा ही है, तो उससे बिरत रहो ।

७. "लेकिन यदि सोचने-विचारने से लगे कि यह काम अहितकर नहीं है, हितकर है तो तुम उसे कर सकते हो ।

८. "मैत्री का अभ्यास करो; क्योंकि मैत्री-भावना के अभ्यास से द्वेष का शमन हो जायगा ।

९. "कण्ठा का अभ्यास करो; क्योंकि कण्ठा-भावना का अभ्यास करने से शीघ्र का शमन हो जायगा ।

१०. "मुद्रिता का अभ्यास करो; क्योंकि मुद्रिता-भावना का अभ्यास करने से धरति का शमन हो जायगा ।

११. "उपेक्षा का अभ्यास करो; क्योंकि उपेक्षा-भावना का अभ्यास करने से चंचलता का शमन हो जायगा ।

१२. "शरीर के अशुभ रूप का चिन्तन करो; क्योंकि ऐसा करने से काम-राग का शमन हो जायगा ।

१३. "सभी चीजों की 'अनित्यता' की भावना करो, क्योंकि ऐसा करने से अहंकार का शमन हो जायगा ।"

१४. ऐसा भगवान् बुद्ध ने कहा । राहुल ने सुना तो उसने प्रसन्न हो अभि-मन्दन किया ।

५. भगवान् बुद्ध और सारिपुत्र की अन्तिम भेंट

१. भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन विहार में गन्ध-कुटी में विराजमान थे ।

२. पाँच सौ भिक्षुओं की साथ लिए सारिपुत्र वहाँ पहुँचे ।^१

३. तपागत की अभिवादन कर सारिपुत्र ने निवेदन किया कि अब मेरा अन्तिम समय समीप आ पहुँचा है । क्या तपागत अब मुझे शरीर-त्याग की अनु-मति देते हैं ?

४. भगवान् बुद्ध ने सारिपुत्र से पूछा—“क्या तूने अपने निर्वाण के लिए कोई स्वान-विशेष चुना है ?”

५. सारिपुत्र का उत्तर था—“मैं मगध के मालक-नाम के गाँव में पैदा हुआ था। जिस घर में मैं पैदा हुआ था, वह अभी भी है। मैंने उसी को चुना है।”

६. तथागत बोले—“प्रिय सारिपुत्र ! जो अच्छा लगे सो करो।”

७. सारिपुत्र तथागत के चरणों पर गिर कर बोले—“मैंने एक हजार कल्प तक पारमिताओं का अभ्यास केवल एक ही इच्छा को लेकर किया और वह यह कि मुझे आपके चरणों की वन्दना करनी मिले। मेरी यह इच्छा पूरी हो गई। मेरी प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं।

८. “हमारी पुनरुत्पत्ति की सम्भावना नहीं है। इसलिए यही हमारी अन्तिम भेंट है। तथागत मेरे अपराधों को क्षमा करें।”

९. तथागत बोले—“सारिपुत्र ! क्षमा करने के लिए कुछ है ही नहीं।”

१०. जब सारिपुत्र चलने लगे तो तथागत भी उनके प्रति गौरव प्रकट करने के लिये गन्धकुटी के बाहर आये और बरान्दे में खड़े हो गये।

११. तब सारिपुत्र बोले—“जब मुझे प्रथम बार दर्शन हुआ, मैं अत्यधिक आनन्दित हुआ। यह इस समय का दर्शन भी मेरे लिए अत्यन्त आनन्ददायक है। क्योंकि मैं जानता हूँ कि यही अन्तिम दर्शन है।”

१२. बिना पीछे पीछे किये, सारिपुत्र हाथ जोड़े जोड़े वहाँ से विदा हुए।

१३. तब भगवान् बुद्ध ने उपस्थित भिक्षु-मण्डली को कहा—“अपने ज्येष्ठ भ्राता के पीछे-पीछे जाओ।” उस बार—और पहली बार—भिक्षुसभ तथागत को छोड़ कर सारिपुत्र के पीछे-पीछे गये।

१४. अपने गाँव पहुँच कर सारिपुत्र ने ठीक उसी कोठरी में जिसमें जन्म ग्रहण किया था, परिनिर्वाण प्राप्त किया।

१५. सारिपुत्र का दाह-संस्कार किया गया। उनकी अस्थियाँ तथागत के पास ले जाई गईं।

१६. सारिपुत्र के ‘फूल’ सामने आये तो तथागत बोले—“वह सब से अधिक बुद्धिमान था, उसमें संश्रु-वृत्ति का भेद भी न था, वह उत्साही और परियमी था। उसे ‘पाप’ से घृणा थी। भिक्षुओं ! उसके ‘फूल’ देखो। क्षमाशीलता में वह पृथ्वी के समान था। उसने क्रोध को जँत लिया था। वह कभी किसी इच्छा के बन्धन में न होता था। वह इन्द्रिय-जयी था। वह कण्ठा तथा मैत्री की मूर्ति था।”

१७. उसी समय महामोदत्तान भी राजगृह के समीप एक एकान्त-विहार में रहते थे। तथागत के शत्रुओं द्वारा नियुक्त हत्यारों ने महामोदत्तान की हत्या कर डाली।

१८. बहामोगस्तान की मृत्यु का दुःख समाचार तथागत तक पहुँचा ।
सारिपुत्र और मोगस्तान उनके दो मुख्य शिष्य थे । सारिपुत्र धर्म सेनापति कह-
लाते थे । तथागत अपनी धर्म-परम्परा चालू रखने के लिए कदाचित् उन्हीं पर
निर्भर करते थे ।

१९. उन दोनों की मृत्यु से तथागत के मन में बहुत संवेग उत्पन्न हुआ ।

२०. उसके बाद उन्हें आवस्ती में रहना अच्छा नहीं लगा । वे आवस्ती से
बिदा हुए ।

१. तिक निपात (अंगुत्तर निकाय) ।

२. चेरी-गाथा तथा चेरी-गाथा अट्ठकथा ।

३. राहुलोवाद सुस्तुत (म० नि० २ : २ : १) ।

४. सं० नि० ४५ : २ : ३; यथा अट्ठकथा ।

५. चन्दमुत्त ।

दूसरा भाग

वैशाली से विदाई

१. वैशाली को नमस्कार

१. अपनी अन्तिम चारिका के लिये निकलने से पूर्व तथामत राजगृह के मध्याह्न पर्यंत पर ठहरे हुए थे।

२. कुछ समय बहा रह चुकने के बाद तथामत ने कहा—“आजी आनन्द! अम्बलट्टिका चलें।”

३. “ओ आजा”, आनन्द ने कहा। महान् भिक्षु संघ के साथ तथामत अम्बलट्टिका के लिये चल दिये।

४. कुछ समय अम्बलट्टिका में ठहर कर तथामत नालन्दा चले गये।

५. नालन्दा से वह मगध की राजधानी पाटली ग्राम (= पाटलीपुल) गये।

६. पाटली-ग्राम से वह कोटि-ग्राम गये और कोटि-ग्राम से नादिका।

७. इनमें से हर समूह ने कुछ दिन रुके और वहां भिक्षु संघ अथवा उपासकों को प्रवचन दिये।

८. नादिका से तथामत वैशाली गये।

९. वैशाली निगण्डनाथ गुह (= महावीर) का जन्म स्थान था। ऐसीतिथे जैन मत का एक गुरु भी।

१०. लेकिन तथामत ज्ञेय ही उन लोगों को अपनी अनुयायी बनाने में सफल हो गये।

११. कहा जाता है कि अनावृष्टि के कारण वैशाली में एक ऐसा अकाल पड़ा कि बहुत से लोग मर गये।

१२. वैशाली के लोगों ने अपनी सभा में इसकी चर्चा की।

१३. बड़े बाद-विवाद के बाद सभी ने तथामत को नगर में आमन्त्रित करने का निश्चय किया।

१४. वैशाली के पुरोहित-गुह, राजा बिम्बिसार के मित्र महाली नाम के लिच्छवी को, सिद्धार्थ को निमन्त्रण देने के लिये भेजा।

१५. भगवान् गुह ने निमन्त्रण स्वीकार किया और गाँव से भिक्षुओं को

साथ ले चल दिये । जैसे ही उन्होंने बज्जियों की सीमा में प्रवेश किया, बड़ी जोर का तूफान आया, मूसलाधार वर्षा हुई और अकाल समाप्त हो गया ।

१६. वैशाली के लोगों ने जो तथागत का इतना स्वागत किया उसका भूल कारण यही था ।

१७. जब भगवान् बुद्ध ने वैशाली के लोगों के दिलों को जीत लिया था, तो उनके लिए यह स्वाभाविक था कि वे उनकी अधिक से अधिक आओ-भगत करते ।

१८. तब वर्षावास (= चातुर्मास) का समय आ गया । भगवान् बुद्ध वर्षा-वास के लिए वेलुवन चले गये और उन्होंने भिक्षुओं को वैशाली में ही वर्षावास करने को कहा ।

१९. वेलुवन (राजगृह) में वर्षावास समाप्त कर तथागत फिर वैशाली आये कि वैशाली से अपनी चारिका आरम्भ करें ।

२०. एक दिन तथागत ने पूर्वाह्न में चीवर पहना तथा पात चीवर ले भिक्षा-टन के लिए वैशाली में प्रवेश किया । भिक्षाटन के अन्तर, जब वे भिक्षा ग्रहण कर चुके तो उन्होंने एक गज-राज की तरह वैशाली की ओर देखा और आनन्द से कहा—“आनन्द! यह अन्तिम बार है कि तथागत वैशाली को देख रहे हैं ।”

२१. यह कहते हुए उन्होंने वैशाली के लोगों से विदा ली ।

२२. विदा होते समय तथागत ने वैशाली के लोगों को अपना भिक्षा-पात्र ‘स्मृति’ के रूप में दे दिया ।

२३. यह तथागत की वैशाली की अन्तिम यात्रा थी । इसके बाद तथागत वैशाली नहीं ही आये ।

२. पावा में पड़ाव

१. वैशाली से तथागत भण्ड ग्राम गये ।^१

२. भण्ड ग्राम से हट्ठी नगर और तब भोग-नगर ।

३. और भोग-नगर से पावा ।

४. पावा में भगवान् बुद्ध चुन्द नामक मुनार के आसवन में ठहरे ।

५. चुन्द ने सुना कि भगवान् बुद्ध पावा आये हैं और उसके आसवन में ठहरे हैं ।

६. चुन्द आसवन पहुंचा और जाकर तथागत के समीप बैठ गया । तथागत ने उसे ‘धर्मोपदेश’ दिया ।

७. इससे प्रसन्न होकर चुन्द ने भगवान् बुद्ध को निमन्त्रित किया—“भिक्षु, संघ सहित भगवान् बुद्ध कल मेरे घर पर भोजन करने की कृपा करें ।”

८. भगवान् बुद्ध ने ‘मौन’ द्वारा स्वीकृति दी । यह देख कि उसका निमन्त्रण स्वीकृत हुआ, चुन्द वहाँ से चला गया ।

९. दूसरे दिन चुन्द ने अपने घर पर खीर आदि स्वादिष्ट भोजनों के साथ

‘सुकर-मह्व’ भी तैयार कराया। समय होने पर उसने सूचना भिजवाई—
‘भगवान्! समय हो गया है। भोजन तैयार है।’

१०. भगवान् बुद्ध ने चीवर धारण किया, पास हाथ में लिया और बुद्ध के निवास-स्थान पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने बुद्ध का तैयार किया हुआ भोजन ग्रहण किया।

११. भोजनानन्तर भी भगवान् बुद्ध ने बुद्ध को समर्पण देना और तब वहाँ से चले गये।

१२. बुद्ध द्वारा दिया गया भोजन तथागत को अनुकूल नहीं पड़ा। उन्हें रोग ने आ घेरा। रक्त-साध होने लगा और साध मर्मन्तिक वेदना।

१३. लेकिन तथागत ने उसे ‘स्मृति-सम्प्रजग्य के साथ जैसे जैसे सहन कर लिया।

१४. आमुचन लोटकर, कुछ स्वस्थ होने पर भगवान् बुद्ध ने आनन्द को कहा—‘आओ आनन्द! कुसीनारा चलें।’ भिक्षु सध सहित भगवान् बुद्ध कुसीनारा पधारे।

३. कुसीनारा पहुंचना

१. भगवान् बुद्ध थोड़ी ही दूर चले थे कि उन्हें बिभाम की आवश्यकता अनुभव हुई।^१

२. रास्ते में ही वे सड़क से एक ओर हट कर एक वृक्ष की छाया में जा बैठे और आनन्द से कहा—“आनन्द! संधाटी की तह लगा कर बिछा दो। थका हूँ, कुछ देर बिभाम करूँगा।”

३. “बहुत अच्छा,” कह आनन्द ने तथागत की आज्ञा स्वीकार की और चीवर को चौहरा कर के बिछा दिया।

४. तथागत उस बिछे आसन पर विराजमान हुए।

५. वहाँ बैठकर तथागत ने आनन्द की सम्बोधित किया और कहा—
“आनन्द! कुछ पानी ला। प्यासा हूँ। पानी पीऊँगा।”

६. आनन्द का उत्तर था—“कुरुक्षेत्र नदी समीप ही है। इसका जल साफ और स्वच्छ है। पानी निर्मल है। आसानी से नीचे उतरा जा सकता है। वहाँ भगवान् बुद्ध चलें, पानी भी पीलें और हाथ मूँह धो भी लें। इस जलाशय का जल साफ नहीं, मन्दरा है।,,

७. तथागत का शरीर इतना दुर्बल हो गया था कि वे वहाँ तक चल न सकते थे। वह पास के जलाशय के पानी से ही संतुष्ट थे।

८. आनन्द पानी लाये और तथागत ने पिया।

९. कुछ देर बिभाम करके भिक्षु सध सहित तथागत कुरुक्षेत्र नदी पर

पहुँचे । वहाँ पहुँच कर वे पानी में उतरे तथा स्नान किया और जल-पान किया । फिर दूसरी ओर बाहर आकर वे आश्रम की ओर बढ़े ।

१०. वहाँ पहुँच कर उन्होंने आनन्द को फिर आज्ञा दी कि उनका चीवर बिछा दे । कहा—“सका हूँ, सेटूँगा ।” आज्ञानुसार चीवर बिछा दिया गया और तथागत ने उस पर विधाम किया ।

११. थोड़ी देर विधाम कर चुके तो तथागत उठे और आनन्द से कहा—“आनन्द ! हम मत्तों के शाल-वन में चलें । यह हिरण्यवती के दूसरे किनारे पर कुसीनारा का उपवन है ।”

१२. वहाँ पहुँच कर तथागत ने आनन्द को फिर कहा—“आनन्द ! इन छोड़े शाल वृक्षों के बीच मेरी संधाटी बिछा दो । मैं सका हूँ और विधाम करूँगा ।

१३. आनन्द ने संधाटी बिछा दी और तथागत ने अपने आपको उस पर बिठा दिया ।

१. महापरिनिब्बान सुत्त ।

२. महापरिनिब्बान सुत्तन्त (दीघनिकाय १६) ।

३. महापरिनिब्बान सुत्त (दीघनिकाय १६) ।

तीसरा भाग

महा-परिनिर्वाण

१. उत्तराधिकारी की नियुक्ति

१. एक समय भगवान् बुद्ध शास्त्रों में चारिका कर रहे थे । उस समय वे धनुर्धारी नामक शास्त्र परिवार के आश्रयन में ठहरे हुए थे ।^१

२. उस समय पावा में निगण्ठनाथ पुत्र (= महावीर) का देहान्त हुए थोड़ा ही समय हुआ था । उसकी मृत्यु पर निर्गन्ध (= जैन) लोगों में आपस में झगड़ा हो गया । वे दो दलों में विभक्त होकर परस्पर एक दूसरे को शब्दकपी बाणों से बीधने लगे ।

३. जब चुन्द आमणेर पावा में वर्षावास समाप्त कर आनन्द स्थविर से मिलने आया । उस ने सूचना दी । "निगण्ठनाथ पुत्र का अभी अभी पावा में शरीरान्त हो गया है । उस की मृत्यु हो जाने पर निर्गन्ध लोगों में आपस में झगड़ा हो गया है । वे दो दलों में विभक्त हो गये हैं । एक दूसरे को परस्पर शब्द कपी बाणों से बीधते हैं । इसका कारण यही है कि उनका कोई शास्ता नहीं रहा है ।"

४. तब आनन्द स्थविर ने कहा—चुन्द ! यह तयागत के ध्यान में लाने लायक एक महत्वपूर्ण विषय है । हम उनके पास चलें और यह बात बता दें "

५. "बहुत अच्छा," चुन्द ने कहा ।

६. तब आनन्द और चुन्द दोनों मिलकर तयागत के पास पहुँचे और अभिवादन कर तयागत को निगण्ठनाथ पुत्र की मृत्यु की सूचना दी और साथ ही आवश्यक निवेदन किया कि तयागत अपना कोई उत्तराधिकारी नियुक्त कर दें ।

७. चुन्द की बात सुनी तो तयागत ने उत्तर दिया ! "चुन्द ! विचार करो कि लोक में एक शास्ता उत्पन्न होता है अर्हत, सम्मक् सम्बुद्ध; यदि वह सद्धर्म की देखना करता है, जो सु-आख्यात है, जो प्रभावशाली पथ—प्रदर्शक है, जो शान्ति की ओर ले जाता है; लेकिन यदि उसके आश्रय सद्धर्म में सम्मक् प्रतिष्ठित नहीं हुए हैं, यदि वह सद्धर्म उस शास्ता के न रहने पर उनका आण नहीं कर सकता । तो

८. "तो हे चुन्द ! ऐसे शास्ता का न रहना उसके शिष्यों के लिये भी बड़े दुःख की बात है और उसके धर्म के लिए भी बड़ा क्षतरा है ।

९. "लेकिन चुन्द ! अब लोक में एक ऐसा शास्ता उत्पन्न हुआ हो जो अर्हत हो, जो सम्मक्—सम्बुद्ध हो; जिसने सद्धर्म की देखना की हो; जिसका

सद्वर्ग सु-प्राप्तवात् हो जो सद्वर्ग प्रभावशाली पथ-प्रदर्शक हो, जो शान्ति की ओर ले जाता हो, और जहाँ आवश्यक सद्वर्ग प्रभावशाली पथ-प्रदर्शक हो, जो शान्ति की ओर ले जाता हो, और जहाँ आवश्यक सद्वर्ग में सम्पत्कृप से प्रतिष्ठित हो गये हों और जब शास्ता के न रहने पर भी वह सद्वर्ग उन आवकियों को सम्पत्कृप से प्रकट रहता हो; तो—

१०. "तो चन्द्र ! ऐसे शास्ता का न रहना उसके आवकियों के लिये दुःख की बात नहीं है । तब किसी उत्तराधिकारी की क्या आवश्यकता है ?"

११. जब आनन्द ने एक दूसरे अवसर पर भी यही बात दोहराई तो तयागत ने कहा—"आनन्द ! क्या वो भिक्षु भी तुम्हें ऐसे दिखाई देते हैं, जिनका धर्म के विषय में एक मत न हो ?"

१२. "नहीं, लेकिन जो तयागत के आस-पास हैं, हो सकता है कि वे तयागत के मरने के बाद 'विनय' के सम्बन्ध में, संघ के नियमों के संबंध में विवाद खड़ा कर दें और ऐसा विवाद बहुत लोगों के दुःख के लिये होगा, बहुत लोगों के अहित के लिए होगा ।"

१३. "आनन्द ! 'विनय' सम्बन्धी विवाद, भिक्षुओं के नियमों के सम्बन्ध में विवाद बहुत महत्व के नहीं हैं, लेकिन हो सकता है कि भिक्षु संघ में 'धर्म' की लेकर भी विवाद उठ खड़ा हो—यह संघमुख चिन्ता की बात होगी ।

१४. 'लेकिन 'धर्म' सम्बन्धी विवादों के विषय में कोई 'डिक्टेटर' कुछ नहीं कर सकता । और एक उत्तराधिकारी भी यदि 'डिक्टेटर' नहीं बनता तो कर क्या सकता है ?

१५. "धर्म सम्बन्धी विवादों का निर्णय किसी डिक्टेटर का विषय नहीं है ।

१६. "किसी भी विवाद के बारे में स्वयं संघ को ही निर्णय करना होगा । संघ को इकट्ठे होकर विचार करना चाहिये और जब तक किसी निर्णय पर न पहुँचा जाये, तब तक उस सम्बन्ध में अच्छी तरह ऊँहा पोह करनी चाहिये, और बाद में उस निर्णय को स्वीकार करना चाहिये ।

१७. "विवादों का निर्णय बहुत से म होना चाहिये । उत्तराधिकारी की नियुक्ति इसका इलाज नहीं ।"

२. अन्तिम धर्म-दीक्षा

१. उस समय सुभद्र परिव्राजक कुसीनारा में ठहरा हुआ था ।^२ सुभद्र परिव्राजक ने सुना "कहा जाता है कि आज की ही रात पिछले पहर में तयागत परिनिर्वाण को प्राप्त होगे ।" तब सुभद्र परिव्राजक के मन में आया ।

२. "मैंने कुछ दूसरे बयोवृद्ध परिव्राजकों से—सूक्ष्मों तथा सिध्यों से—सुना है कि लोक में तयागत, अर्हत, सम्पत्कृ सम्बुद्ध रोज रोज जन्म ग्रहण नहीं करते

और आज ही रात के पिछले पहर को श्रमण गौतम का परिनिर्वाण हो जायगा । अब मेरे मन में एक सन्देह पैदा हुआ है । मुझे श्रमण गौतम पर विश्वास है कि वह मुझे ऐसा उपदेश दे सकते हैं जिससे मेरे सन्देह की निवृत्ति हो जाय ।”

३. तब सुमद्र परिव्राजक छोटी सड़क से मत्स्यों के जाल बन पहुँचा । वह वहाँ गया, जहाँ आनन्द स्वविर धे और बीला—‘आनन्द स्वविर ! मैं जरा देर के लिए तथागत का दर्शन कर पाता ।’

४. उसके ऐसा कहने पर आनन्द स्वविर ने सुमद्र परिव्राजक को कहा—“सुमद्र ! अब रहने दो । सुमद्र ! अब तथागत को कष्ट मत दो । सुमद्र अब तथागत विश्राम कर रहे हैं और बहुत थके हैं ।”

५. सुमद्र परिव्राजक ने दूसरी और तीसरी बार भी अपनी बात दोहराई । तीनों बार आनन्द स्वविर ने सुमद्र परिव्राजक को एक ही उत्तर दिया ।

६. आनन्द स्वविर और सुमद्र परिव्राजक के बीच की बात-चीत को तथागत ने सुन लिया । उन्होंने आनन्द स्वविर को सम्बोधित करके कहा—‘आनन्द ! सुमद्र को मत रोको । सुमद्र को तथागत का दर्शन कर लेने दो । सुमद्र जो भी प्रश्न मुझ से करेगा वह मुझ से कुछ जानने के लिए ही करेगा, मुझे कष्ट देने के लिए नहीं करेगा जो कुछ मैं उसे उत्तर में कहूँगा, उसे भी वह सौ धर ही समझ लेगा ।’

७. तब आनन्द स्वविर ने सुमद्र परिव्राजक को कहा—“सुमद्र ! भीतर जाओ । तथागत ने तुम्हें अनुमति दे दी है ।”

८. तब सुमद्र परिव्राजक तथागत के समीप पहुँचा, अभिवादन किया और स्वास्थ्य सभाचार पूछ कर एक ओर बैठ गया । इस प्रकार बैठे हुए सुमद्र परिव्राजक ने तथागत से प्रश्न किया:—

९. “श्रमण गौतम ! वे जितने भी श्रमण आहूत हैं, जिन के पीछे जमात है, जो गणाचार्य हैं, जो प्रसिद्ध हैं, जो मर्तों के संस्थापक के कप में जात हैं, जिन्हें जनता धर्मात्मा मानती है जैसे पूर्णकाश्यप, मगधली गोशाल, अजित केशकम्बली पकुध कच्छायन, सञ्जय, वेतट्ठी-पुल तथा निमुण्ड-नाम पुत्र—इन सब ने जैसा वे कहते हैं अपने आपसे सत्य ज्ञान प्राप्त किया है वा नहीं किया ? क्या उनमें से किसी ने नहीं किया ? अथवा किसी ने किया है और किसी ने नहीं किया ?”

१०. “सुमद्र ! इस बनकर मैं मत पड़ो कि किसी ने भी ज्ञान प्राप्त किया है, वा नहीं किया ? मैं तुम्हें धर्म का उपदेश देता हूँ । इसे ध्यान से सुनो । इष्टर चित्त दो । मैं कहता हूँ ।”

११. “मगवान् ! बहुत अच्छा” कह सुमद्र परिव्राजक ने तथागत की ओर ध्यान दिया । तब तथागत ने कहा :—

१२. “सुमद्र—जित धर्म-विनय (= मत) में आर्य आष्टांगिक मार्ग नहीं है,

उसमें कोई धमण भी नहीं है। जिस धर्म-विनय (= मत) में आर्य अष्टांगिक मार्ग है उसी में धमण भी है।

१३. "सुभद्र ! तथागत के धर्म-विनय (= मत) में आर्य अष्टांगिक मार्ग है। इसलिए तथागत के धर्म-विनय में धमण भी हैं ओतापन्न, सकृदागामी, अनागामी तथा अर्हत् हैं। दूसरे मत धमणों से शून्य है। लेकिन हे सुभद्र ! यदि इस धर्म-विनय में सम्यक् जीबी होंगे तो संसार कभी अर्हत्ता से शून्य न होगा।

१४. "उन्तीस वर्ष की आयु में मैं कल्याण-पक्षा का पक्षिक बना।

१५. "सुभद्र ! अब पचास वर्ष से अधिक हो गये हैं जब से मैं सद्धर्म का पक्ष ग्रहण किये हूँ।"

१६. तथागत के ऐसा कहते पर सुभद्र परिव्राजक बोला—अद्भुत है धमण गौतम ! अद्भुत है धमण गौतम !

१७. "जैसे कोई फेंके हुए को फिर प्रतिष्ठित कर दे, अथवा ठुके को उठाव दे, अथवा पय-घण्ट को मार्ग दिखा दे अथवा अन्धरे में प्रदीप प्रज्ज्वलित कर दे ताकि आँख वाले देख सकें।"

१८. "इसी प्रकार तथागत ने मुझे सत्य का ज्ञान करा दिया। इसलिए मैं बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण ग्रहण करता हूँ।"

१९. "सुभद्र ! जो कोई पहले किसी दूसरे धर्म में दीक्षित रहा हो, वह यदि संघ में प्रविष्ट होता चाहता है तो उसे चार महीने प्रतीक्षा करनी पड़ती है।"

२०. "यदि यह नियम है, तो मैं प्रतीक्षा करने के लिए तैयार हूँ।"

२१. लेकिन तथागत ने कहा—'आदमी आदमी में भेद भी होता है।' उन्होंने आनन्द को बुलाकर कहा—'आनन्द ! सुभद्र को संघ में दाखिल कर दो।'

२२. 'बहुत अच्छा', कह आनन्द ने तथागत की आज्ञा स्वीकार की।

२३. और तब सुभद्र परिव्राजक ने आनन्द स्वविर को कहा—'आनन्द ! तुम्हारा बड़ा लाभ है। आनन्द ! तुम्हारा बड़ा सुलाम है। आनन्द ! तुम बड़े भाग्यवान हो, तुम्हें तथागत ने स्वयं अपने हाथ से भिक्षु-संघ में दीक्षित किया है, धर्म-जल से अभिसिञ्चित किया है।'

२४. आनन्द स्वविर का उत्तर था—'सुभद्र ! तुम्हारे बारे में भी तो यही सत्य है।'

२५. इस प्रकार तथागत की अनुज्ञा से सुभद्र परिव्राजक भिक्षु-संघ में सम्मिलित हुआ। स्वयं तथागत द्वारा दीक्षित वह तथागत का अंमिम आवक था।

३. अन्तिम वचन

१. उस समय भगवान् बुद्ध ने आनन्द को कहा:—

२. "आनन्द! हो सकता है कि तुम यह सोचने लगे कि अब हमारे शास्ता चले गये। अब हमारा मार्ग-दर्शक नहीं रहा। लेकिन आनन्द! तुम्हें ऐसे नहीं सोचना चाहिये। मेरे बाद जो कुछ मैंने धर्म-विनय सिखाया-पढ़ाया है, वही तुम्हारा शास्ता होगा।"

३. "आनन्द! इस समय परस्पर एक दूसरे को समाप्त सम्बोधन से ही पुकारने की प्रथा है। बड़े छोटे का भेद नहीं। मेरे बाद यह प्रथा बन्द हो जानी चाहिये। बड़ा छोटे को नाम लेकर वा आमुसो (= आमुष्मान) कहकर पुकार सकता है, किन्तु छोटा जब अपने से बड़े को पुकारे तो उसे या तो उसके 'गोत्र' से पुकारना चाहिये अथवा 'मन्ते' कह कर पुकारना चाहिये।

४. "और आनन्द! यदि संघ चाहे तो मेरे मरने के बाद जो छोटे-मोटे नियम हैं उन्हें छोड़ भी सकता है।

५. "आनन्द! तुम जानते हो कि छत्र कौसा जिहो, उत्ते-मार्ग पर चलने वाला तथा 'विनय' को न मानने वाला है?"

६. "आनन्द! मेरे बाद छत्र को 'ब्रह्म-दण्ड' दिया जाय।"

७. "भगवान्! 'ब्रह्म-दण्ड' से आपका क्या अभिप्राय है?"

८. "आनन्द! छत्र चाहे कुछ भी कहे, उसे कहने दिया जाय, उसके साथ बोला न जाय, उसे कुछ कहा न जाय, उसे कुछ भी शिखा न दी जाय। हो सकता है कि इस तरह उस का कुछ सुधार हो जाय।"

९. तब तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया :-

१०. "हो सकता है कि किसी भी भिक्षु के मन में बुद्ध के विषय में, धर्म के विषय में, संघ के विषय में, कुछ भी शंका हो, संदेह हो, विचिकित्सा हो। अथवा मार्ग के ही विषय में कुछ भी शंका हो, संदेह हो, विचिकित्सा हो। यदि हो, तो भिक्षुओ! अब समय है, पूछ लो। बाद में न पछताना कि 'हमारा शास्ता हमारे सम्मुख था, हमने पूछकर अपनी शंका न मिटाई।"

११. ऐसा कहने पर भिक्षु चुप रहे।

१२. उस दूसरी बार और तीसरी बार भी तथागत ने अपनी बात दोहराई। तीसरी बार भी भिक्षु मौन ही रहे।

१३. तब तथागत ने कहा—"हो सकता है कि मेरे प्रति गौरव होने के कारण तुम मौन हो। भिक्षु के भिक्षु से पूछने की तरह पूछो।"

१४. तब भी भिक्षु चुप ही रहे।

१५. तब आनन्द स्वविर ने तथागत को कहा—"भगवान्! अद्भुत है। भगवान्! आश्चर्य है। मुझे अपने इस 'संघ' का विश्वास है। इतने भिक्षुओं में कोई एक भी नहीं है, जिसे बुद्ध के बारे में शंका हो, धर्म के बारे में शंका हो, संघ के बारे में शंका हो अथवा (आर्य-) मार्ग के बारे में शंका हो।"

१६. "आनन्द ! तुम्हें तो इस बात का विश्वास है । किन्तु तपागत को इस बात का ज्ञान है कि इन भिक्षुओं में से किसी एक को भी, किसी एक भी विषय में शका नहीं है । मेरे इन पांच सौ भिक्षुओं में से जो सब से कम उन्नत है वह भी कम से कम सोतापन्न अवस्था है, अर्थात् खेत में आ पड़ा है और उसकी बोधि-प्राप्ति सुनिश्चित है ।"

१७. तब तपागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया—

१८. "भिक्षुओं ! मैं फिर तुम्हें स्मरण करा रहा हूँ । सभी संस्कार क्षणिक हैं । अप्रमादपूर्वक अपने लक्ष्य की प्राप्ति में लगे रहो ।"

१९. तपागत के अन्तिम-शब्द ये ही थे ।

४. आनन्द का शोक

१. आमु कुछ अधिक हो चली तो भगवान् बुद्ध को किसी निजी सेवक की आवश्यकता पड़ी ।

२. उन्होंने पहले नन्द को चुना । उसके बाद आनन्द को चुना । आनन्द तपागत के अन्तिम समय तक तपागत की सेवा में ही रहे ।

३. आनन्द केवल सेवक ही न थे, बल्कि उनके दिन-रात के प्रियतम साथी भी थे ।

४. अब भगवान् बुद्ध कुशीनारा पहुँचे और दो शाल-वृक्षों के मध्य विश्राम करने लगे, तो भगवान् को लगा कि उनका अन्त समय समीप है और उन्हें यह भी लगा कि उन्हें कम से कम आनन्द को कह देना चाहिये ।

५. इसलिये उन्होंने आनन्द को सम्बोधित किया और बोले:—'हे आनन्द ! इन्हीं शाल वृक्षों के मध्य, इसी कुशीनारा के उपवन में, रात्रि के तीसरे पहर तपागत का परिनिर्वाण हो जायगा ।'

६. तपागत के ऐसा कहने पर आनन्द स्वविर ने कहा—'भगवान् ! आप बहुत जनों के हित के लिये, बहुत जनों के सुख के लिये, लोगों पर अनुकम्पा करने के लिये तथा देवताओं और मनुष्यों के कल्याण के लिये कल्प भर तक (जीवित) रहने की कृपा करें ।'

७. तीन बार आनन्द ने अत्यन्त आग्रहपूर्वक वही प्रार्थना की । तपागत का उत्तर था 'आनन्द ! अब रहने दो ! अब ऐसी प्रार्थना मत करो । ऐसी प्रार्थना करने का समय बीत चुका ।'

८. 'आनन्द ! अब मैं बुढ़ा हो गया, बय-प्राप्त हो गया, अब अन्त समय समीप है । मेरे दिन पूरे होने को आये हैं । मैं अस्सी वर्ष का हो गया हूँ । जिस प्रकार कोई पुराना छकड़ा एक न एक दिन जीर्ण-विजीर्ण हो ही जाता है वही गति तपागत के शरीर की भी है ।' यह सुना तो आनन्द स्वविर वहाँ रुके न रह सके ।

६. जब आनन्द स्थविर दिखाई नहीं दिये तो भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं से पूछा—“आनन्द कहाँ है?” भिक्षु बोले—“आनन्द स्थविर यहाँ से चले गये हैं और खड़े रो रहे हैं।”

१०. तथागत ने एक भिक्षु को बुलाकर कहा—“जाओ, और आनन्द को कहो कि तथागत बुला रहे हैं।”

११. “बहुत अच्छा” कहकर भिक्षु ने स्वीकार किया।

१२. आनन्द वापिस आये तो आकर तथागत के समीप बैठ गये।

१३. “आनन्द! रोओ मत। क्या मैंने अनेक बार पहले ही नहीं कहा कि यह चीजों का स्वभाव ही है कि अपने सभी प्रिय अनों से पृथक् होना ही पड़ता है, विदा लेनी ही पड़ती है, सम्बन्ध तोड़ना ही पड़ता है।

१४. “आनन्द! इतने दीर्घ काल तक तुम अपने मंत्री-पूर्ण वचनों तथा मंत्री-पूर्ण व्यवहार के कारण मेरे बहुत समीप रहे हो।

१५. “आनन्द! तुम बड़े कुशल रहे हो! आनन्द! प्रयास करो, तुम भी आनन्दो से पूर्ण मोक्ष प्राप्त करोगे।”

१६. तब आनन्द के ही बारे में बोलते हुए तथागत ने भिक्षुओं से कहा—“भिक्षुओं! आनन्द बुद्धिमान है। भिक्षुओं! आनन्द।

१७. “वह जानता है कि तथागत से बँट करने का ठीक समय कौन सा है? भिक्षु-भिक्षुणियों के लिये ठीक समय कौन सा है, उपासक-उपासिकाओं के लिये ठीक समय कौन सा है, राजा अथवा राजा के मन्त्रियों के लिये ठीक समय कौन सा है; तथा दूसरे आचार्यों-शिष्यों के लिये कौन सा है;

१८. “भिक्षुओं! आनन्द की ये चार विशेषताएँ हैं।

१९. “सभी आनन्द से मिलकर प्रसन्न होते हैं। सभी को आनन्द के देखने से आनन्द होता है। सभी को आनन्द का बोलना अच्छा लगता है। सभी को आनन्द का रूप रहना अच्छा नहीं लगता।”

२०. उस समय आनन्द ने तथागत के परिनिर्वाण की ही बात करते हुए कहा—“तथागत! अब इस जंगल के बीच, इस उजाड़ नगरी में ‘परिनिर्वाण’ प्राप्त न करे। चम्पा, राजगृह, भाबस्ती, साकेत, कोसाम्बी तथा वाराणसी जैसे बड़े बड़े नगर हैं। भगवान् उनमें से किसी एक नगर में परिनिर्वाण प्राप्त करें।”

२१. “आनन्द! ऐसा मत कहो! आनन्द! ऐसा मत कहो! आनन्द! यह कुसीनारा ही किसी समय महासुवर्ण राजा की राजधानी रहा है। उस समय इसका नाम केसवती रहा है।”

२२. तब तथागत ने आनन्द को दो बातें करने को कहा :—

२३. उन्होंने आनन्द को कहा कि बुद्ध अथवा अन्य किसी को यह क्याल न हो कि उसी का भोजन खाने के परिणामस्वरूप तथागत का परिनिर्वाण हो गया।

उन्होंने सोचा कि इनसे चन्द मुनीश्वर में पड़ सकता है। उन्होंने कहा कि देखना, जनता में यह क्या न फैलने पाये।

२४. दूसरी बात उन्होंने आनन्द से कही कि कुसीनारा के मल्लों को सूचित कर दें कि तथामत उनके उपवन में ठहरे हैं और रात्रि के तीसरे पहर में परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे।

२५. "ऐसा न हो कि बाद में मल्ल तुम्हें ही बोध दें, कहें कि हमारे अपने गांव में ही तथामत का परिनिर्वाण हुआ, हमें पता भी नहीं लगा। हम अन्त समय दर्शन भी नहीं कर पाये।"

२६. उसके बाद अनुवृद्ध स्पविर तथा आनन्द स्पविर ने धार्मिक चर्चा में ही दोप-रात व्यतीत की।

२७. जैसा पहले ही ज्ञात था, रात्रि के तीसरे पहर में ही तथामत परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये।

२८. जब तथामत का परिनिर्वाण हो गया तो कुछ भिक्षु और आनन्द बाहे बसर-पसार कर रोने लगे, कुछ दुःखाभिभूत होकर जमीन पर भी गिर पड़े :— 'तथामत अत्यन्त शीघ्र परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये। तथामत अत्यन्त शीघ्र बाहों से ओझल हो गये। यह भुवन-प्रदीप बहुत ही शीघ्र बुझ गया।"

२९. वैशाख-पूर्णिमा की रात्रि के तीसरे पहर में तथामत परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। उनका परिनिर्वाण ईसा पूर्व ४८३ (चार सौ तीसरी) में हुआ।

३०. पाली में कहा है—

दिवा तपति आदिब्बो
रति आभाति चन्दिमा
सप्रदो छतियो तपति
जानी तपति बाहणो
अय सज्ज अहोरत्ति
बुद्धो तपति तेजसा ॥^५

३१. 'सूर्य केवल दिन में ही चमकता है और चन्द्रमा केवल रात्रि में। शनिग्रह तभी चमकता है, जिस समय वह सख्तधारी रहता है। बाह्यण तभी चमकता है जब वह ध्यान-रत रहता है। लेकिन बुद्ध अपने तेज से दिन और रात हर समय प्रकाशित रहते हैं।'

३२. इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि बुद्ध भुवन-प्रदीप थे—समस्त लोक का प्रकाश स्तम्भ थे।

५. मल्लों का विलाप, एक भिक्षु की प्रसन्नता

१. तथामत के आदेशानुसार आनन्द ने जाकर मल्लों को सूचित कर दिया।^६

२. जब मल्लों ने यह सुना तो उन्हें दुःख हुआ, उनकी स्त्रियाँ दुःखी हुईं, उनके लक्षण दुःखी हुए तथा उनकी कुमारियाँ दुःखी हुईं—सभी के चित्त को बड़ा आघात पहुँचा।

३. कुछ अपने घाल झिड़कर कर रोने लगीं, कुछ हाथों से छाती पीट कर रोने लगीं और कुछ जमीन पर झोटेने लगीं।

४. तब अपने कुमार, कुमारियों सहित मल्ल अपने उपवन में बहो गये वहाँ शान्त-वृक्ष थे ताकि तथ्यागत के जन्म-दहन कर सकें।

५. तब आनन्द स्वधिर ने सोचा "यदि कुसीनारा के मल्ल एक एक करके तथ्यागत के मृत-शरीर की वन्दना करेंगे, तो बड़ा विलम्ब होगा।"

६. इसलिये उसने एक एक मण्डली से, एक एक परिवार से, एक साथ वन्दना कराने की व्यवस्था की। प्रत्येक परिवार एक एक साथ तथ्यागत के चरणों की वन्दना कर विदा लेने लगा।

७. उस समय बहुत से भिक्षुओं के साथ महास्वधिर महाकाश्यप पावा से कुसीनगर की ओर ही बढ़े गये आ रहे थे।

८. उसी समय एक मल्ल परिव्राजक पावा की ओर चला आ रहा था।

९. महास्वधिर महाकाश्यप ने मल्ल-परिव्राजक को दूर से आते देखा। पास आने पर पूछा—“आप निश्चय से हमारे शास्त्र से परिचित होंगे।

१०. “हां! निश्चित रूप से। आज ज्यमन भीतम का परिनिर्वाण हुए सातवां दिन है।”

११. यह समाचार सुनते ही भिक्षु-गण दुःखाभिभूत हो गये और रोने लगे।

१२. उस समय एक बूढ़ पदजित मुग्ध नाम का एक भिक्षु भी वहाँ था।

१३. वह बोला—“मत्त रोओ, मत्त बिलाप करो। हम सब ज्यमन भीतम से मुक्त हुए। हमें उसके इस कहने से बड़ी हैरानी होती थी कि ‘यह तुम कर सकते हो, और यह नहीं कर सकते’। अब हम जो चाहेंगे करेंगे और जो नहीं चाहेंगे, नहीं करेंगे। क्या यह अच्छा नहीं है कि वह चत बसा है! रोना किस लिये! बिलाप किस लिये यह तो मृतों की बात है!”

१४. तथ्यागत अपने भिक्षुओं की इतनी कठोरता पूर्वक नियमों के बन्धन में बांधने वाले थे।

६. अन्तिम संस्कार

१. तब कुसीनारा के मल्लों ने आनन्द स्वधिर से पूछा—“जब तथ्यागत के शरीर के प्रति क्या करणीय है?”

२. आनन्द स्वधिर का उत्तर था—“जैसे लोग राजाओं के राजा—महा-राजाओं—की दाह-क्रिया करते हैं, वैसे ही तथ्यागत की होनी चाहिये।”

३. "और राजाओं के राजा के मृत शरीर के प्रति क्या क्या करणीय होता है ?"

४. आनन्द स्वामि ने उत्तर दिया "महाराजाओं की देह को एक नये कपड़े से लपेटा जाता है फिर रुई—ऊन से लपेटा जाता है। फिर दूसरे नये कपड़े से लपेटा जाता है और यह कम तब तक जारी रहता है जब तक वह एक के बाद दूसरे क्रम से पाँच सौ बार नहीं लपेट लेते। तब वे शरीर को एक लोहे की तेल भरी बड़ी कढ़ाही में रख देते हैं। उसके बाद उसे एक जैसे ही दूसरे लोहे के डबकन से डक देते हैं। तब वे अनेक सामग्रियों से चिता का निर्माण करते हैं। यह वह तरीका है जिस प्रकार लोग किसी महाराजा का अन्तिम-संस्कार करते हैं।"

५. मल्ल बोले :—ऐसा ही होगा।"

६. तब मल्लों ने कहा—“आज तथामत के शरीर की दाह-क्रिया करने के लिये बहुत बिलम्ब हो गया है। हम इसे बल करें।"

७. तब कुसीनारा के मल्लों ने अपने आदमियों को आज्ञा दी—“तथामत की अन्त्येष्टि की तैयारी करो। मुगन्धियों, फूलों तथा कुसीनगर के बाजे बजाने वालों का संग्रह करो।"

८. लेकिन तथामत के शरीर के प्रति आदर, सत्कार, गौरव प्रदर्शित करते हुए तथा उसकी पूजा करते हुए नृत्यों द्वारा, गीतों द्वारा, बाजों द्वारा, फूल मालाओं द्वारा और मुगन्धियों द्वारा—तथा कपड़ों के चन्दये बनाते हुए और उन पर लटकाने के लिये फूलों की मालायें नूपते हुए उन्होंने दूसरा दिन भी गुजार दिया, इसी प्रकार तीसरा दिन, चौथा दिन, पाँचवाँ दिन और छठा दिन भी।

९. तब सातवें दिन कुसीनारा के मल्लों ने सोचा, 'आज हम तथामत के शरीर को ले चलें; आज हम उसकी अन्त्येष्टि कर लें।'

१०. तदनन्तर मल्लों के जाठ मुखियों ने सिर से स्नान किया, नये वस्त्र पहने ताकि वे तथामत की अर्धों को कण्ठा लगा सकें।

११. वे तथामत को मुकुट-बन्धन स्थान पर ले गये, वहाँ नगर के पूर्व की ओर मल्लों का चैत्य था। वहाँ तथामत के शरीर को रखकर उसे अग्नि-स्पर्श करा दिया गया।

१२. कुछ समय बाद तथामत की नश्वर देह राज में परिणत हो गई।

७. भगवान् बुद्ध के 'फूलों' के लिए कलह

१. जब तथामत का शरीर अग्नि द्वारा भस्म में परिणत कर दिया गया कुसीनारा के मल्लों ने समस्त राज और अस्थियाँ इकट्ठा कर लीं और अपने सन्ध्यागार में रखकर उन्हें भालों से घेर दिया और उन पर धनुर्धारियों का पहरा बैठा दिया ताकि कोई उनका एक हिस्सा भी चुरा कर ले जा सके।"

२. सात दिन तक मल्लों ने नृत्य, गीत, बाद्य, माता तथा सुगन्धियों द्वारा उनके प्रति आदर, सत्कार तथा गौरव प्रदर्शित किया और उनकी पूजा की।

३. अब मगध-नरेश अजातशत्रु ने समाचार सुना कि कुशीनारा में तषागत परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये।

४. इसलिये उसने मल्लों के पास अपना दूत भेजा ताकि वे उसे कृपया अबोधों में से एक हिस्सा दे दें।

५. इसी प्रकार वैशाली के लिच्छवियों ने दूत भेजा, कपिलवस्तु के शाक्यों ने भेजा, अहकण्ठ के वल्लियों ने भेजा, रामगाम के कोलियों ने भेजा तथा पावा के मल्लों ने भेजा।

६. अस्थियों का एक हिस्सा मांगने वालों में बैठ द्वीप का एक ब्राह्मण भी था।

७. जब कुशीनारा के मल्लों ने इतनी मांगों की बात सुनी तो वे बोले—“हमारी सीमा में तषागत का परिनिर्वाण हुआ है। हम किसी को कोई हिस्सा न देंगे इस पर केवल हमारा अधिकार है।”

८. परिस्थिति को बिगड़ते देखकर द्वीप नाम के एक ब्राह्मण ने मध्यस्थता की बोला—“मेरे दो शब्द सुन लें।”

९. द्वीप बोला—“तषागत ने शान्ति और सहन-शीलता की शिक्षा दी है। यह उचित नहीं है कि उन्हीं तषागत की अस्थियों के लिये—जो प्राणियों में सर्व श्रेष्ठ थे—झगड़ा हो, कलह हो, लड़ाई हो।

१०. “हम सब सहमत होकर अस्थियों को आठ बराबर-हिस्सों में बांटें और हर जनपद में उन पर स्तूप बनायें जायें ताकि हर जनपद में उन की पूजा हो सके

११. कुशीनारा के मल्ल सहमत हो गये। बोले—“अच्छा तो ब्राह्मण ! तू ही इन्हें सही आठ बराबर हिस्सों में बांट दे।”

१२. “बहुत अच्छा” कह द्वीप ने स्वीकार किया।

१३. उसने तषागत के अबोधों के बराबर बराबर आठ हिस्से कर दिये।

१४. बंटवारा कर चुकने पर उस ने कहा कि मुझे यह बर्तन मिल जायें, तो मैं इस पर एक स्तूप बनवाऊँगा।

१५. सबने मिलकर ब्राह्मण की बर्तन देना स्वीकार किया।

१६. इस प्रकार तषागत की अस्थियों के हिस्से हो गये और जिस झगड़े का अन्देश था, वह शान्ति से निपट गया।

८. बुद्ध-भक्ति

१. यह बात श्रावस्ती में ही घटी...

२. उस समय बहुत से भिक्षु यह सोचकर कि जब चौबर तैयार हो जायगा,

तीस महीने के बाद, तथ्यागत चारिका के लिये निकल पड़ेंगे, तथ्यागत के लिये एक चौबर तैयार कर रहे थे ।^१

३. उसी समय इसीदत्त तथा पूर्ण नाम के दो राज्याधिकारी किसी काम से साधुका में ठहरे हुए थे । तब उन्होंने यह समाचार सुना—“कहते हैं कि बहुत से मित्र, यह सोचकर कि जब चौबर तैयार हो जायगा, तीस महीने के बाद, तथ्यागत चारिका के लिये निकल केडेंगे, तथ्यागत के लिये एक चौबर बना रहे हैं ।”

४. तब इसीदत्त और पूर्ण ने एक आदमी को सड़क पर नियुक्त कर दिया । उसे कहा—“ज्यों ही तुम उन भगवान् अर्हत, सम्पक् सम्बुद्ध को आते देखो, तुरन्त आकर इसकी हमें सूचना दो ।”

५. दो तीस दिन तक वहाँ रहकर प्रतीक्षा करते रहने के बाद उसने कुछ दूर से ही तथ्यागत को आते देखा । वह बौद्धा बौद्धा इसीदत्त तथा पूर्ण राज्याधिकारियों के पास गया और सूचना दी । “भगवान्, अर्हत, सम्पक्-सम्बुद्ध चले आ रहे हैं । अब आप जो इच्छा हो करें ।”

६. तब इसीदत्त और पूर्ण दोनों राज्याधिकारी तथ्यागत को और आगे बढ़े । पास पहुँच कर उन्होंने तथ्यागत को अभिवादन किया और तथ्यागत के पीछे पीछे हो लिये ।

७. तब तथ्यागत सड़क से हट कर एक वृक्ष के नीचे बिछे एक आसन पर जा बैठे । तब इसीदत्त और पूर्ण राज्याधिकारी भी तथ्यागत को नमस्कार कर एक ओर बैठ गये । बैठ चुकने पर उन्होंने तथ्यागत से कहा—

८. “भगवान् ! जब हमने सुना कि तथ्यागत कोशल जनपद में चारिका करेंगे तो हम निराश हो गये और हमारा दिल छोटा हो गया कि हाय ! अब तथ्यागत हम से दूर हो जायेंगे ।

९. “भगवान् ! जब हमने सुना कि तथ्यागत कोशल जनपद में चारिका करने के लिये भावस्ती से निकल रहे हैं तो हम निराश हो गये और हमारा दिल छोटा हो गया कि हाय ! अब तथ्यागत हमसे दूर हो जायेंगे ।

१०. “भगवान् ! फिर जब हमने सुना कि तथ्यागत कोशल जनपद को छोड़ मल्ल जनपद में चारिका के लिये चले जायेंगे... कि वे चले गये हैं, तो हम निराश हो गये... हो जायेंगे ।

११. “भगवान् ! फिर जब हम ने सुना कि तथ्यागत मल्ल जनपद को छोड़ वज्जी जनपद में चले जायेंगे... कि वे वास्तव में चले गये हैं... कि वे वज्जी छोड़ काशी चले जायेंगे... कि वे वास्तव में चले गये हैं... कि वे काशी के लोगों को भी छोड़ मगध में चारिका करने के लिये चले जायेंगे... कि वे वास्तव में चले गये हैं तो हम निराश हो गये और हमारा दिल छोटा हो गया कि हाय ! तथ्यागत हम से बहुत दूर हो गये ।

१२. "लेकिन भगवान् ! जब हमने सुना कि तथगत मगध छोड़कर काशी पधारेंगे तो हम बड़े प्रसन्न हुए और हमारा दिल बल्लियों उछलने लगा कि अब तथगत हमारे नजदीक आ रहे हैं ।

१३. "और जब हमने सुना कि वे काशी आ गये हैं तो हम बड़े प्रसन्न हुए...

१४. [उन्होंने तथगत के काशी से बज्जी, बज्जी से मल्लों के जनपद में...मल्लों के जनपद से कोशल के जनपद में आने का इसी तरह वर्णन किया ।]

१५. "लेकिन भगवान् ! जब हमने सुना कि तथगत कोशल जनपद से भी भावस्ती की ओर चारिका करने के लिये चले आ रहे हैं तो हम बड़े प्रसन्न हुए और हमारा दिल बल्लियों उछलने लगा कि तथगत अब हमारे बहुत समीप आ गये ।

१६. " तब जब हमने सुना कि तथगत भावस्ती के अनाथ पिण्डिक के जेत बनाराम में ठहरे हुए हैं तो हमें असीम प्रसन्नता हुई, हमें असीम आह्लाद हुआ कि अब तथगत हमारे समीप हैं ।"

१. सामगाय सुत्त (मज्झिम निकाय १०४) में 'सामगाय' में ही बिहार करते थे आवा है ।

२. महापरिनिब्बान सुत्त (दीघनिकाय १६) ।

३. महापरिनिब्बान सुत्त (दीघनिकाय १६) ।

४. महापरिनिब्बान सुत्त (दीघनिकाय १६) ।

५. आह्वण वागी (धम्मपद २६५) ।

६. महापरिनिब्बान सुत्त (दीघ निकाय १६) ।

७. महापरिनिब्बान सुत्त (दीघनिकाय १६) ।

८. महापरिनिब्बान सुत्त (दीघनिकाय १६) ।

९. सं० नि० ५४ : १६।

The first of these is the fact that the
 of the second is the fact that the
 of the third is the fact that the
 of the fourth is the fact that the
 of the fifth is the fact that the
 of the sixth is the fact that the
 of the seventh is the fact that the
 of the eighth is the fact that the
 of the ninth is the fact that the
 of the tenth is the fact that the
 of the eleventh is the fact that the
 of the twelfth is the fact that the
 of the thirteenth is the fact that the
 of the fourteenth is the fact that the
 of the fifteenth is the fact that the
 of the sixteenth is the fact that the
 of the seventeenth is the fact that the
 of the eighteenth is the fact that the
 of the nineteenth is the fact that the
 of the twentieth is the fact that the
 of the twenty-first is the fact that the
 of the twenty-second is the fact that the
 of the twenty-third is the fact that the
 of the twenty-fourth is the fact that the
 of the twenty-fifth is the fact that the
 of the twenty-sixth is the fact that the
 of the twenty-seventh is the fact that the
 of the twenty-eighth is the fact that the
 of the twenty-ninth is the fact that the
 of the thirtieth is the fact that the
 of the thirty-first is the fact that the
 of the thirty-second is the fact that the
 of the thirty-third is the fact that the
 of the thirty-fourth is the fact that the
 of the thirty-fifth is the fact that the
 of the thirty-sixth is the fact that the
 of the thirty-seventh is the fact that the
 of the thirty-eighth is the fact that the
 of the thirty-ninth is the fact that the
 of the fortieth is the fact that the
 of the forty-first is the fact that the
 of the forty-second is the fact that the
 of the forty-third is the fact that the
 of the forty-fourth is the fact that the
 of the forty-fifth is the fact that the
 of the forty-sixth is the fact that the
 of the forty-seventh is the fact that the
 of the forty-eighth is the fact that the
 of the forty-ninth is the fact that the
 of the fiftieth is the fact that the
 of the fifty-first is the fact that the
 of the fifty-second is the fact that the
 of the fifty-third is the fact that the
 of the fifty-fourth is the fact that the
 of the fifty-fifth is the fact that the
 of the fifty-sixth is the fact that the
 of the fifty-seventh is the fact that the
 of the fifty-eighth is the fact that the
 of the fifty-ninth is the fact that the
 of the sixtieth is the fact that the
 of the sixty-first is the fact that the
 of the sixty-second is the fact that the
 of the sixty-third is the fact that the
 of the sixty-fourth is the fact that the
 of the sixty-fifth is the fact that the
 of the sixty-sixth is the fact that the
 of the sixty-seventh is the fact that the
 of the sixty-eighth is the fact that the
 of the sixty-ninth is the fact that the
 of the seventieth is the fact that the
 of the seventy-first is the fact that the
 of the seventy-second is the fact that the
 of the seventy-third is the fact that the
 of the seventy-fourth is the fact that the
 of the seventy-fifth is the fact that the
 of the seventy-sixth is the fact that the
 of the seventy-seventh is the fact that the
 of the seventy-eighth is the fact that the
 of the seventy-ninth is the fact that the
 of the eightieth is the fact that the
 of the eighty-first is the fact that the
 of the eighty-second is the fact that the
 of the eighty-third is the fact that the
 of the eighty-fourth is the fact that the
 of the eighty-fifth is the fact that the
 of the eighty-sixth is the fact that the
 of the eighty-seventh is the fact that the
 of the eighty-eighth is the fact that the
 of the eighty-ninth is the fact that the
 of the ninetieth is the fact that the
 of the ninety-first is the fact that the
 of the ninety-second is the fact that the
 of the ninety-third is the fact that the
 of the ninety-fourth is the fact that the
 of the ninety-fifth is the fact that the
 of the ninety-sixth is the fact that the
 of the ninety-seventh is the fact that the
 of the ninety-eighth is the fact that the
 of the ninety-ninth is the fact that the
 of the hundredth is the fact that the

अष्टम् काण्ड

महामानव सिद्धार्थ गौतम

पहला भाग — उनका व्यक्तित्व

दूसरा भाग — उनकी मान्यता

तीसरा भाग — उनको क्या पसन्द था और क्या नहीं ?

पहला भाग

उनका व्यक्तित्व

१. उनकी व्यक्तिगत आकृति इत्यादि

१. जिसने भी वर्णन मिलते हैं उनसे यही ज्ञात होता है कि तत्काल एक सुन्दर शरीर वाले थे ।

२. वह एक स्वर्ण-पर्वत के शिखर के समान थे । उनका कद ऊँचा था, शरीर सुहीन था, आकार-प्रकार आकर्षक था ।

३. उनकी लम्बी-लम्बी साँठें, उनकी गेर की सी चाल, उनकी वृषभ की सी आँखें, उनका सौन्दर्य, उनकी स्वर्ण समान दीप्ति, उनकी चौड़ी छाती—सभी को अपनी ओर आकर्षित करती थी ।

४. उनकी साँठें उनका साथी, उनका चेहरा और उनकी आँखें, उनका बदन उनके हाथ, उनके पाँव अथवा उनकी चाल—उनके शरीर के किसी भी हिस्से पर जिसकी भी आँखें पड़ीं वे फिर वहाँ से हिल न सकीं ।

५. जिस किसी ने उन्हें देखा, उसपर उनकी तेजस्विता, उनकी सामर्थ्य, उनके अनुपम सौन्दर्य का प्रभाव पड़ा है ।

६. उनका दर्शन होने पर कहीं जाने वाले रुक जाते, जो खड़े होते वे पीछे चल देते, जो शान्तिपूर्वक धीरे धीरे चलते होते वे तेजी से दौड़ने लगते और जो बैठा होता वह तुरन्त खड़ा हो जाता ।^१

७. जो भी उनके दर्शनार्थ आता, कोई हाथ जोड़कर नमस्कार करता, कोई सिर झुकाकर नमस्कार करता, कोई स्नेहसिक्त शब्दों से सम्बोधित करता—कोई भी बिना गौरव प्रदर्शित किये न जाता ।^२

८. वे सभी के प्रिय-पात्र थे और सभी के आदर भाजन ।

९. स्त्री-पुरुष सभी उनके वचन सुनने के लिए उत्सुक रहते थे ।

१०. उनका स्वर असाधारण रूप से मधुर था, गम्भीर था, आकर्षक था, गतिमान था और स्पष्ट था । उनकी वाणी दिव्य संगीत के समान थी ।

११. उनका स्वर ही श्रोता के मन में आप्लावन पैदा कर देता था, उनकी तेजस्विता रोबीली थी ।

१२. उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था कि न केवल वे लोगों के स्वाभाविक नेता थे, बल्कि उनके दिलों के देवता थे।

१३. उनको कभी श्रोताओं की कमी न होती थी।

१४. यह बात विशेष महत्त्व की नहीं थी कि वे क्या कहते थे, वे कुछ भी कहें, सुनने वाले की भावनायें बदल जाती थीं और उसकी इच्छा-शक्ति उनकी प्रबल इच्छाशक्ति के समाने झुकती थी।

१५. उनकी वाणी से ही उनके श्रोताओं को यह विश्वास हो जाता था कि जो कुछ वे कह रहे हैं वह अक्षरशः सत्य तो है ही, साथ ही उनकी 'मुक्ति' का एकमात्र मार्ग भी वही है।

१६. उनके श्रोताओं को उनकी वाणी में उस सत्य के दर्शन होते थे जिसमें दासों को मुक्त कर देने की सामर्थ्य थी। गुलामों की आजाद बना देने की शक्ति थी।

१७. जब भी वे स्त्री-पुरुषों से बात-चीत करते उनका गम्भीर-शान्त स्वरूप लोगों के मन में एक आदर की भावना का सञ्चार करता और उनकी मधुर वाणी लोगों को आश्चर्य और आनन्द में विभोर कर देती।

१८. बाबू अंगुलिमाल और आँलकी के आदम-खोर को कौन धर्म की दीक्षा दे सकता था? एक शब्द के द्वारा कौन राजा प्रसेनजित तथा रानी मल्लिका का मैत्र कर सकता था? जिस पर उनका मन्त्र चल जाता, वह सदा के लिए उन्हीं का हो जाता। उनका व्यक्तित्व ऐसा ही आकर्षक था।

२. आँख से देखने वालों की साक्षी

१. इस परम्परागत मत का समर्थन उन लोगों की साक्षी से भी होता है जिन्होंने भगवान् बूढ़ को उनके जीवन काल में देखा है, जिन्होंने उनसे भेंट की है।

२. एक ऐसा प्रत्यक्ष साक्षी सात नाम का ब्राह्मण था। भगवान् बूढ़ को आग्नेय सामने देखकर उसने उनकी इस प्रकार स्तुति की थी।

३. जब तवागत के सामने आया, तो उस ब्राह्मण ने बैठने तथा कुशल-समाचार पूछ लेने के अनन्तर भगवान् बूढ़ के शरीर पर बत्तीस महापुरुष सत्तियों के होने न होने की जांच की।

४. बत्तीस महापुरुष सत्तियों के विषय में असन्दिग्ध होकर भी उसका यह सन्देह बना रहा कि वह 'बूढ़' है या नहीं? लेकिन उसने पुराने बूढ़ ब्राह्मणों से, आचार्यों-प्राचायों से यह सुन रखा था जो अर्हत होते हैं, सम्मत् सम्बुद्ध होते हैं, वे अपनी स्तुति सुनने पर अपने आप को प्रकट करते हैं। इसलिए उसने निम्न-लिखित शब्दों से तवागत की स्तुति करने की ठानी।

५. "भगवान्! आपका शरीर अंग-सम्पूर्ण है, अष्ट है, समृद्ध है, आकर्षक है।

स्वर्ण-वर्ण है, दान्तों से स्वर्ण रश्मियाँ निकलती हैं, अंग अंग संशुद्ध है, पूरे बसीत महापुरुष लक्षणों से युक्त है ।

६. "स्पष्ट दृष्टि, सुन्दर, ऊँचे और सीधे हैं आप । अपने अनुयायियों में सूर्य-समान प्रज्वलित हैं । आप ऐसे प्रकाश-युक्त, ऐसे स्वर्णिम-वर्ण—अपने तात्पर्य को आप अनामिक धमन बनकर क्यों व्यर्थ रंभा रहे हैं ?

७. "आप को चक्रवर्ती नरेश बनना चाहिए और समुद्र पर्यन्त आप का राज्य होना चाहिये । अभिमानी राजाओं को आपके सम्मुख नतमस्तक होना चाहिये और आप को समस्त जगत का चक्रवर्ती-राजा होना चाहिए ।"

८. ज्ञानन्द स्थविर के अनुसार तयागत का शरीर इतना अधिक स्वच्छ और ज्योतिष्य था कि यदि उनके बदन पर किसी स्वर्णिम-वस्त्र का जोड़ा रखा जाता तो उसकी ज्योति शरीर की ज्योति के सम्मुख म्लान पड़ जाती ।

९. तब इसमें क्या आपत्तय है यदि तयागत के विरोधी तयागत को एक जादूगर समझते थे !

३. उनकी नेतृत्व की सामर्थ्य

१. भिक्षुसंघ का कोई वैधानिक अध्यक्ष आदि नहीं था । तयागत को संघ पर कोई अधिकार नहीं था । भिक्षु-संघ एक स्वायत्त पूर्ण संस्था थी ।

२. तो भी संघ और उसके सदस्यों पर तयागत को क्या अधिकार था ?

३. इस विषय में हमारे पास तयागत के समकालीन दो जनों के वक्तव्य उपलब्ध हैं ।

४. एक बार तयागत राजगृह के बेलुवन में विहार कर रहे थे ।

५. एक दिन तयागत राजगृह में भिक्षाटन के लिये चले किन्तु 'अभी कुछ जल्दी है' ऐसा समझ वह परिव्राजकाराम में सकलुदायी के पास चले गये ।"

६. उस समय सकलुदायी बहुत से परिव्राजकों से चिरा हुआ था । वे 'हे' अथवा 'महीं है' की तात्त्विक चर्चा करके बड़ा हल्ला मचा रहे थे ।

७. कुछ दूर से ही जब सकलुदायी ने तयागत को आते देखा, उसने अपने साथियों से कहा "धूप करो । हल्ला मत मचाओ । धमन गौतम आ रहे हैं । उन्हें हल्ला प्रिय नहीं है ।"

८. इस प्रकार वे चुर हो गये । तब तक तयागत आ पहुंचे सकलुदायी ने कहा—"भगवान् ! आप से यहाँ पधारने की प्रार्थना है । आपका सच्चे हृदय से स्वागत है । विरकाल से आपका इधर आगमन नहीं हुआ । आपके लिये आसन सुसज्जित है । कृपया आसन ग्रहण करें ।"

६. सभागत ने आसन ग्रहण किया और पूछा कि क्या बात-चीत चल रही थी ?

१०. सकलुदायी बोला—“इसे जाने दें, कोई महत्वपूर्ण बात नहीं। यह कभी भी जान से सकते हैं।”

११. कुछ समय पूर्व, जब नाना मतों के भ्रमण—बाह्य संधागार में इकट्ठे हुये तो उनमें इस विषय पर बर्बाबली कि मगध के लोगों के लिये यह कितनी अच्छी बात है, कितनी अधिक अच्छी बात है कि जितने गणाचार्य हैं, जितने विख्यात विख्यात भ्रमण हैं, जितने नाना मतों के संस्थापक हैं, जितने बहुत लोगों द्वारा आदृत हैं—वे सभी राजगृह में बर्बाबास करने आये हैं।

१२. उनमें पूर्ण काश्यप है, मन्त्राली-गोमाल है, अजित-केशकम्बल है, पक्षक-चामन है, संख्य वेत्ताट्टि पुत्र है, निर्गठनाथ पुत्र है—सभी विशिष्ट हैं और सभी यहाँ बर्बाबास करने आये हैं। उन में भ्रमण गौतम भी है, जो संघ के नायक हैं, शात-विख्यात धर्मानुशासक हैं, धर्म-संस्थापक हैं; अनेक लोगों के शिष्या, भावन हैं।

१३. अब इन ज्ञात विख्यात विशिष्ट पुरुषों में कौन है जो अपने शिष्यों द्वारा गणार्थ विधि से आदृत होता है, संहृत होता है तथा सम्मानित होता है ? और वे कैसे तथा कितने गौरव की भावना के साथ अपने गुरु के पास रहते हैं ?

१४. कुछ ने कहा—पूर्ण काश्यप का कोई आदर सरकार नहीं करता, उसे अपने शिष्यों से कुछ गौरव प्राप्त नहीं होता। वे अपने गुरु के प्रति तनिक भी गौरव का भाव नहीं रखते।

१५. ऐसा भी अवसर रहा है कि पूर्ण काश्यप अपने कुछ से अनुयायियों को उपदेश दे रहा है, तब तक एक शिष्य बीच में ही बोल पड़ा है—“पूर्ण काश्यप से मत पूछो। वह इस विषय में कुछ नहीं जानता। मुझे पूछो। मैं जानता हूँ। मैं आप सब को सब बातें समझा दूँगा।”

१६. तब पूर्ण काश्यप ने आँखों में आँसू भर कर और हाथ फैला कर कहा है—“बुध रहो। हस्ता मत करो।”

१. अवशेषीय कृत बुद्ध चरितः।

२. तैलमुख (मज्झिम निकाय २:५:३)।

३. अंगुत्तर निकाय।

दूसरा भाग

उनकी मानवता

१. उनकी करुणा—महाकारुणिक

१. एक बार जब तषागत थावस्ती में ठहरे हुए थे, तो कुछ भिक्षुओं ने जाकर तिकायत की कि कई देव-नग आते हैं और उन्हें हैरान करते हैं, तथा उनकी ध्यान-भावना में बिध्न उपस्थित करते हैं।

२. उनकी कष्ट-कषा सुनी तो भगवान् बुद्ध ने उन्हें निम्नलिखित उपदेश दिया :—

३. "जो परमार्थ के विषय में कुशल है, जो शान्ति-पद को प्राप्त करना चाहता है, उसे इस प्रकार बरतना चाहिए। उसे समर्थ होना चाहिए, उसे श्रु-मुञ्जु होना चाहिए, उसे सुबच होना चाहिए, उसे मृदु तथा विनम्र होना चाहिए।"

४. उसे सन्तोषी होना चाहिए, उसकी आवश्यकताये अधिक नहीं होनी चाहिए, उसपर बहुत जिम्मेदारियाँ नहीं होनी चाहिए, उसकी वृत्ति (= जीविका) हलकी होनी चाहिए, उसे संयतेन्द्रिय होना चाहिए, उसे ज्ञानी होना चाहिए, उसे अप्रमत्त होना चाहिए तथा उसे (गृहस्थ) जनों में आसक्त नहीं होना चाहिए।"

५. "उसे कोई भी छोटी से छोटी ऐसी गलती नहीं करनी चाहिए कि बिजजन उसे दोष दे सकें। उसकी यही कामना होनी चाहिए कि 'सभी प्राणियों का संयत् हो, सभी प्राणी सन्तुलन रहें, सभी प्राणी सुखी रहें।'

६. "कैसे भी प्राणी हों—दुर्बल हों वा सबल हों, ऊँचे हों वा नीचे हों, माध्यम कद के हों वा छोटे कद के हों, आकार के बड़े हों वा छोटे हों—कोई भी हों सभी—

७. "चाहे देखे गये हों और चाहे न देखे गये हों, चाहे समीप रहते हों और चाहे दूर रहते हों, चाहे पैदा हो गये हों, चाहे अभी पैदा होने वाले हों—सभी प्राणी सुखी रहें।

८. "कोई एक दूसरे को छोटा न दे। कोई किसी से घृणा न करे, कोई किसी का बुरा न चाहे, कोई किसी से द्वेष न करे।

९. "जैसे मैं अपनी जान देकर भी अपने इकलोते पुत्र को रक्षा के लिए तैयार रहती हूँ, वही भाव आवसियों का सभी प्राणियों के प्रति रहना चाहिए।

१०. "उसे समस्त लोक में अपनी असीम मंत्री का संचार करना चाहिए—
ऊपर, नीचे तिर्यक, बिना किसी बाधा के, द्वेष भाव से सर्वथा रहित ।

११. "चाहे वह खड़ा हो, चलता हो, बैठा हो, लेटा हो—जितने समय भी
वह जागता रहे—उसे अपनी सतत जागरूकता बनाये रखनी चाहिए; यही श्रेष्ठ
जीवन है ।

१२. "किसी (मिथ्या-) दृष्टि में न पड़े, शीलवान हो, ज्ञानी हो, इन्द्रिय-
सुखों में आसक्त न हो—ऐसा होने से ही उसे पुनः पुनः गर्भ में नहीं जाना पड़ता ।"

१३. थोड़े शब्दों में भगवान् बुद्ध ने उन्हें कहा:—"अपने शत्रुओं से भी प्रेम
करो ।"

२. दुःखियों का दुःख दूर करने वाले मानसिक दुःखों के महान चिकित्सक

(१)

विशाखा को दी गई सान्त्वना

१. विशाखा एक उपासिका थी । वह रोज रोज भिक्षुओं को भिखा दिया
करती थी ।

२. एक दिन उसके साथ रहने वाली उसकी पोती बीमार पड़ी और मर गई ।

३. विशाखा के लिए शोक असह्य हो गया ।

४. उसकी दाह-क्रिया के अनन्तर वह भगवान् बुद्ध के पास गई और आँखों
से आंसू गिराती हुई एक ओर बैठ गई ।

५. तत्पश्चात् ने पूछा—"विशाखे ! तू दुःखी और शोकाकुल, आँखों से
आंसू गिराती हुई क्यों बैठी है ?"

६. उसने अपनी पोती की मृत्यु की बात कही और कहा "वह बड़ी आत्मा-
कारिणी थी, और उस जैसी मिल नहीं सकती ।"

७. "विशाखे ! आवस्ती में कुल कितनी लड़कियाँ होंगी ?"

८. "भगवान् ! लोगों का कहना है कि करोड़ों !"

९. "यदि वे सभी पुन्हाही पोतियाँ हों, तो क्या तুম उन को प्यार नहीं
करोगी ?"

१०. "भगवान् ! निश्चय से ।"

११. "और प्रति दिन आवस्ती में कितनी लड़कियों की मृत्यु होती है ?"

१२. "भगवान् ! अनेकों की ।"

१३. "तब तो एक क्षण भी ऐसा न आयेगा, जब तুম किसी न किसी के
शोक से व्याकुल न होगी ।"

१४. "भगवान् ! सत्य है !"

१५. "तब क्या तुम दिन-रात रोती ही रहेगी ?"

१६. "भगवान् ! आप ने ठीक ठीक समझा दिया । मैं समझ गई ।"

१७. "तो अब फिर और शोक मत करो ।"

(ii)

किसा-गोतमी को संतोष

१. किसान गोतमी का विवाह व्यावस्ती के एक व्यापारी के पुत्र से हुआ था ।

२. विवाह के कुछ समय बाद वह पुत्रवती हुई ।

३. दुर्भाग्य से अभी उसमें चलने-फिरने की ताकत भी नहीं आई थी कि उसे साप ने डस लिया और वह चल बसा ।

४. साप के काटे का छोटा सा दाग बच्चे की मृत्यु का कारण कैसे हो सकता था ?

५. उसे यह विश्वास ही नहीं होता था कि उसका बच्चा वास्तव में मर गया है, क्योंकि इस से पहले उसने 'मृत्यु' देखी ही न थी ।

६. इसलिए उसने अपने पुत्र की मृत-देह ली और एक घर से दूसरे घर घूमने लगी । उसकी दशा ऐसी विचित्र थी कि लोगों ने समझा कि वह पागल हो गई है ।

७. अन्त में एक बूढ़ पुण्य ने उसे श्रमण गोतम के पास जाने का परामर्श दिया उसके भाग्य से तत्प्रागत् व्यावस्ती में ही थे ।

८. इसलिए वह तत्प्रागत् के पास आई और अपने मृत-पुत्र के लिए दवाई माही ।

९. तत्प्रागत् ने उसकी कष्ट-गाथा और उसका विलाप सुना ।

१०. तब तत्प्रागत् ने कहा—"नगर में जाओ और किसी ऐसे घर से जहाँ कोई मरा न हो, सरसों के कुछ दाने ले जाओ । मैं तुम्हारे बच्चे को जिला दूँगा ।"

११. उसे यह बात अत्यन्त सरल मालूम दी । अपने मृत-पुत्र की देह लिए उसने नगर में प्रवेश किया ।

१२. लेकिन उसे शीघ्र ही पता लगा कि वह कितने श्रम में थी । उसे एक भी घर ऐसा न मिला जहाँ कोई न कोई मरा न हो ।

१३. एक गृहस्थ ने उसे कहा—"जो जीते हैं वे थोड़े हैं, जो मर गये हैं वे ही अधिक हैं ?"

१४. वह तत्प्रागत् के पास वापस लौट आई—निराश और खाली हाथ ।

१५. तब तत्प्रागत् ने पूछा—"किसा गोतमी ! क्या मृत्यु सभी के लिए नहीं है, क्या केवल उसी के साप यह अप्रिय घटना घटी है ?"

१६. वह तब गई और बच्चे की अन्तिम क्रिया कर दी। किता गीतमी कह रही थी—“सभी कुछ अनित्य है। यही नियम है।”

३. रोगी शुश्रूषक तथागत

१. एक समय एक भिक्षु को अतिसार हो गया था और वह अपने ही मल-मूत्र में पड़ा था।

२. आनन्द स्वधिर को साथ लिए घूमते-घूमते भगवान् कुछ उस भिक्षु के निवास-स्थान पर पहुँचे।

३. तथागत ने उस भिक्षु को देखा कि वह अपने ही मल-मूत्र में पड़ा है। यह देख वे उसकी ओर गये और जाकर पूछा—“भिक्षु! तुझे क्या कष्ट है?”

४. “भगवान्! मैं अतिसार से पीड़ित हूँ।”

५. “भिक्षु! क्या कोई तुम्हारी सेवा नहीं कर रहा है?”

६. “भगवान्! नहीं।”

७. “भिक्षु! ऐसा क्यों है कि दूसरे भिक्षु तुम्हारी सेवा नहीं करते?”

८. “भगवान्! मैं भिक्षुओं के लिए किसी भी तरह उपयोगी नहीं हूँ, इसलिए भिक्षु मेरी सेवा नहीं करते।”

९. तब तथागत ने आनन्द स्वधिर को कहा—“आनन्द! जा पानी ले आ। मैं इस भिक्षु का मल-मूत्र साफ करूँगा।”

१०. “बहुत अच्छा” कह आनन्द स्वधिर ने स्वीकार किया। जब पानी आ गया तो तथागत ने पानी गिराया और आनन्द स्वधिर ने उस भिक्षु का शरीर मल-मल कर धोया। तब तथागत ने उसे सिर की ओर से उठाया और आनन्द स्वधिर ने पाँव की ओर से। दोनों ने मिलकर उसे उठाकर बिस्तर पर लिटा दिया।

११. तब तथागत ने इस अवसर पर सभी भिक्षुओं को इकट्ठा किया और उनसे पूछा—

१२. “भिक्षुओं, अमुक आवास (२ कमरे) में कोई बीमार भिक्षु है?”

१३. “भगवान्! है।”

१४. “उस भिक्षु को क्या कष्ट है?”

१५. भगवान्! उस भिक्षु को अतिसार है।”

१६. “लेकिन भिक्षुओं! क्या कोई भी उसकी देख-भाल कर रहा है?”

१७. “भगवान्! नहीं।”

१८. “क्यों नहीं? भिक्षु उसकी देख-भाल क्यों नहीं करते?”

१९. भगवान्! वह भिक्षुओं के किसी काम नहीं आता। इसीलिए भिक्षु उसकी देख-भाल नहीं करते।”

२०. "भिजूओ ! तुम्हारी देख-भाल करने वाले तुम्हारे माता-पिता नहीं हैं । यदि तुम आपस में ही एक दूसरे की सेवा नहीं करोगे तो कौन करेगा ? भिजूओ ! जो रोगी की सेवा करता है, वह मेरी सेवा करता है ।

२१. "यदि उपाध्याय हो तो उसे जीवन भर रोगी भिजू की सेवा करनी चाहिए और उसके स्वास्थ्य-लाभ तक प्रतीक्षा करनी चाहिए । यदि आचार्य्य हो, यदि तैवांसिक भिजू हो, यदि गिण्य हो, यदि साध रहने वाला हो, यदि गुरु-भाई हो—हर किसी को दूसरे के स्वास्थ्य-लाभ तक उसकी देख-भाल करनी चाहिये । यदि कोई रोगी की देख-भाल नहीं करता, तो वह उसका दोष माना जायगा ।"

(iii)

१. एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह के महावन में कलन्दक निवाप में ठहरे हुए थे ।

२. उस समय स्थविर वक्कली एक कुम्हार के छाये हुए स्थान पर पड़े थे, मग्न, पीड़ित, भयंकर बीमारी से ग्रस्त ।

३. तब स्थविर वक्कली ने अपने उपाध्यायों को बुलाया और कहा "भिजूओ ! यहाँ आओ । तयागत के पास जाओ । मेरा नाम लेकर उनके चरणों की वन्दना कर कहो ।—“भगवान् ! भिजू वक्कली मग्न है, पीड़ित है, भयंकर बीमारी से ग्रस्त है । वह तयागत के चरणों की वन्दना करता है ।” और तुम यह भी कहना भगवान् वह अच्छा होगा, यदि आप वक्कली पर दया करके उसे देख आने की कृपा करेंगे ।

४. भगवान् बुद्ध ने मौन रहकर स्वीकार कर लिया । तदनन्तर तयागत चीवर पहन, पात-चीवर पहन कर स्थविर वक्कली को देखने के लिए चले ।

५. स्थविर वक्कली ने तयागत को दूर से ही अति देखा । उन्हें देख स्थविर वक्कली बिस्तर पर ही हिलने-डोलने लगे ।

६. तब तयागत ने वक्कली स्थविर को कहा, “वक्कली ! हिल डोस मत ! आसन सज्जित है । मैं इस पर बैठूँगा ।” वे बिछे आसन पर बिराजमान हुए । बैठकर तयागत ने वक्कली स्थविर से कहा—

७. “वक्कली ! मैं समझता हूँ कि तुम अपने कण्ठ को सहन कर रहे हो । मैं समझता हूँ तुम वहीं सहनशीलता से काम से रहे हो । अब क्या तुम्हारी पीड़ा घट रही है, बढ़ तो नहीं रही है ? इसके घटने के लक्षण हैं, बढ़ने के तो नहीं ?”

८. “भगवान् ! नहीं मैं सह नहीं सक रहा हूँ । मैं सहनशीलता से काम नहीं ले सक रहा हूँ । मुझे तीव्र वेदना होती है । कण्ठ घट नहीं रहा । कण्ठ के घटने का कोई लक्षण नहीं । बढ़ने का ही है ।”

९. “वक्कली ! तेरे मन में किसी प्रकार का कोई सन्देह है, कोई अनुताप है ?”

१०. “भगवान् ! मेरे मन में कोई सन्देह नहीं, कोई अनुताप नहीं ।”

११. "बनकली ! कोई ऐसी बात तो नहीं जिससे तुम अपने शील की ओर देख कर स्वयं आप अपनी गद्दी करते हो ?"

१२. "भगवान् ! नहीं कोई ऐसी बात नहीं कि मैं अपने शील की ओर देख कर आप अपनी गद्दी करूँ ।"

१३. "तब भी बनकली ! तुम्हें कुछ चिन्ता अवश्य होगी । कोई न कोई अनुताप अवश्य होगा ?"

१४. "भगवान् ! मैं बहुत समय से तथ्यागत के दर्शनों की कामना कर रहा था लेकिन तथ्यागत के दर्शनार्थ आ सकने की मेरे शरीर में ताकत नहीं थी ।"

१५. "बनकली ! इस मेरे गन्दे शरीर के दर्शन करने में क्या रखा है । जो धर्म को देखता है, मुझे देखता है । जो मुझे देखता है, धर्म को देखता है । बनकली ! जो धर्म को देखता है, मुझे देखता है । जो मुझे देखता है, धर्म को देखता है ।"

(iv)

१. ऐसा मैंने सुना एक समय भगवान् कुछ भग्नी जनपद में, मृगदाय में, भेसुकला वन में सिमुभार गिरि पर विराजमान थे । तब गृहपति नकुल-पिता आया और तथ्यागत को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।^१

२. वहाँ बैठकर गृहपति नकुल-पिता ने तथ्यागत से निवेदन किया "भगवान् ! जरा जीर्ण हूँ, बय प्राप्त हूँ, जीवन की चड़ियाँ चिन रहा हूँ, मैं बीमार रहता हूँ और हर पक्षी कण्ठ में रहता हूँ । और भगवान् मुझे बड़ी मुश्किल से कुछ तथा संघ का दर्शन करना मिलता है । भगवान् ! आप कृपया मुझे साम्त्वना के ऐसे दो शब्द कहें जो मेरे आनन्द में वृद्धि करने वाले हों तथा विरकाल तक मेरे हित और सुख के लिए हों ।"

३. "यह ठीक है, यह ठीक है, गृहपति कि तुम्हारा शरीर दुर्बल है और कण्ठों से सदा हुआ है । इस तरह की शारीरिक अवस्था होने पर स्वास्थ्य की आशा नहीं ही की जा सकती । लेकिन तब भी गृहपति ! तुम्हें ऐसी भावना करनी चाहिए कि यद्यपि मेरा शरीर रोगी है, लेकिन मैं मन से निरोग रहूँगा । गृहपति ! तुम्हें ऐसा अभ्यास करना चाहिए ।"

४. गृहपति नकुलपिता ने बड़े प्रसन्न मन से तथ्यागत के वचन सुने । फिर अपने स्थान से उठ, तथ्यागत को अभिवादन किया और प्रदक्षिणा कर चला गया ।

(v)

१. एक बार तथ्यागत शाक्यों के कपिलवस्तु में अजीरों के उद्यान में ठहरे हुए थे ।

२. उस समय बहुत से भिक्षु तथ्यागत के लिए चत्वर बनाने में लगे थे । उनका

कहना था, "चीवर तैयार हो जाने पर, और तीन महीने समाप्त हो जाने पर, तपागत चारिका के लिये निकल पड़ेंगे।"

३. तब महानाम सायब ने सुना कि बहुत से भिक्षु तपागत के लिए चीवर बना रहे हैं और उन का कहना है.....और तब वह तपागत के पास पहुँच एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए महानाम सायब ने तपागत से निवेदन किया—

४. "भगवान् ! मैं सुनता हूँ कि बहुत से भिक्षु तपागत के लिए चीवर बनाने में लगे हैं और उनका कहना है चीवर तैयार हो जाने पर, और तीन महीने समाप्त हो जाने पर, तपागत चारिका के लिए निकल पड़ेंगे। अब भगवान् ! हमने आप के श्रीमुख से यह कभी नहीं सुना कि एक समझदार गृहस्थ अपने साथी रोगी, पीड़ित, दुःखी गृहस्थ को किस प्रकार सात्त्वाना दे सकता है, क्या कहकर उसका मन प्रसन्न कर सकता है?"

५. "एक समझदार गृहस्थ को अपने साथी रोगी, पीड़ित, दुःखी गृहस्थ को चार तरह से सात्त्वाना देनी चाहिए : "माई, घरे और संघ में बड़ा रखो और उस शील में जो अखण्डित रहने से परिशुद्ध रहने से, चित्त को शान्ति देता है।

६. "महानाम एक समझदार गृहस्थ दूसरे रोगी, पीड़ित दुःखी गृहस्थ को इस प्रकार सात्त्वाना दे चुके तो इससे आगे उसे इस प्रकार बोलना चाहिए :—

७. मान लो कि वह मरणासन्न रोगी अपने माता-पिता को देखने के लिए व्याकुल है, तो उसे कहना चाहिए कि 'मित्र ! चाहे तुम अपने माता-पिता को देखने के लिए व्याकुल हो और चाहे व्याकुल न हो, तुम्हारा मरण समीप है। इसलिए अच्छा होगा कि तुम अपने माता-पिता से मिलने की इच्छा छोड़ दो।

८. "यदि रोगी कहे कि मैंने माता-पिता की कामना छोड़ दी तो उससे कहना चाहिए कि मित्र ! अभी तुम्हारे मन में बच्चों को देखने की कामना है। क्योंकि हर हालत में तुम मरणासन्न हो, इसलिए यह भी अच्छा ही होगा यदि तुम बच्चों की कामना को भी त्याग दो।

९. "इसी प्रकार उसे पाँचों इन्द्रियों के सुख-भोगों के बारे में भी कहना चाहिए। मान लो कि रोगी कहता है, मुझे पाँचों इन्द्रियों के सुखों की कामना है। तो उसे कहना चाहिए कि 'मित्र ! इन पाँच इन्द्रियों के सुखों की अपेक्षा दिव्य-लोक के सुख अधिक प्रणीत है। यह भी अच्छा ही होगा कि इन पाँच इन्द्रियों के सुखों का त्याग कर आप दिव्यलोक के सुखों पर मन लगायें।'

१०. 'तब यदि रोगी कहे कि मेरा ध्यान दिव्य-लोक के सुखों पर ही केन्द्रित है, तो उससे कहना चाहिए कि अच्छा होगा कि तुम अपना ध्यान ब्रह्म-लोक के सुखों पर केन्द्रित करो। और तब यदि रोगी का मन वहीं केन्द्रित है, तब उससे कहना चाहिए—

११. "मित्र ! बड़ा लोक भी अमित्र है, परिवर्तनशील है, उसमें भी समत्व हो सकता है। मित्र ! यह अच्छा होगा कि तुम बड़ा लोक की आज्ञा का भी स्थाप्य कर दो और समत्व का सुलोच्छेद करने की ओर स्वात दो।

१२. "और यदि उस रोगी ने ऐसा कर लिया है, तो जहाँ तक आज्ञाओं से मुक्ति की बात है, तो जो सद्गृहस्थ इस प्रकार समत्व से मुक्त हो सकता है उसमें और जिस आज्ञा ने आज्ञा अवश्य किया है उसमें—दोनों में कोई अन्तर नहीं।"

४. असहनशीलों के प्रति सहनशीलता

१. एक बार जावान् कुछ आलस्यक यज्ञ की राज्य-सीमा में आलसी में रहते थे।^१ तब आलस्यक यज्ञ तपागत के पास आया और बोला—

"श्रमण ! यहाँ से निकल।"

२. तपागत का उत्तर था "मित्र ! बहुत अच्छा।" इतना कहा और वे बाहर चले गये।

३. तब यज्ञ ने आज्ञा दी, "श्रमण ! भीतर आओ।"

४. तपागत भीतर चले आये। बोले: "मित्र ! बहुत अच्छा।"

५. दूसरी बार भी आलस्यक यज्ञ ने तपागत को कहा—"श्रमण ! निकल यहाँ से।"

६. तपागत बाहर चले गये। बोले:—"मित्र ! बहुत अच्छा।"

७. दूसरी बार भी यज्ञ ने आज्ञा दी:—"श्रमण ! भीतर आओ।"

८. तपागत भीतर चले आये बोले:—"मित्र ! बहुत अच्छा।"

९. तीसरी बार भी आलस्यक यज्ञ ने तपागत को कहा:—

"श्रमण ! निकल यहाँ से।"

१०. तपागत बाहर चले गये। बोले:—"मित्र ! बहुत अच्छा।"

११. तीसरी बार फिर यज्ञ ने आज्ञा दी:—"श्रमण ! भीतर चले आओ।"

१२. तपागत भीतर चले आये। बोले:—"मित्र ! बहुत अच्छा।"

१३. चौथी बार भी आलस्यक यज्ञ ने कहा—"श्रमण ! निकल यहाँ से।"

१४. इस बार तपागत ने कहा—"मित्र ! मैं नहीं निकलूँगा। तुझे जो करना हो कर।"

१५. यज्ञ की क्रोध आ गया। बोला—"मैं एक अन्न-पुत्रूँगा श्रमण ! यदि मेरे ज्ञान का उत्तर न दे सके तो या तो मैं तुझे पागल बना दूँगा, या हृदय फाड़ डालूँगा और नहीं तो पाँव से पकड़ कर नदी के उस पार फेंक दूँगा।"

१६. "मित्र ! मुझे इस लोक में कोई ऐसा नहीं दिखाई देता जो या तो मुझे

पागल बना दे, या मेरा हृदय फाड़ डाले और या मुझे पांव से पकड़कर नदी के उस पार फेंक दे। लेकिन तब भी तुझे जो प्रश्न पूछना हो पूछ।"

१७. तब आलबक यश ने तथ्यागत से निर्मलचित्त प्रश्न पूछा—

१८. "इस संसार में आदमी के लिये सर्व श्रेष्ठ धन कौन सा है? कौन सा कुशल, कर्म सुखदायक है? रसों में मधुरतम रस कौन सा है? किस तरह का जीवन सर्व श्रेष्ठ जीवन कहा जाता है?"

१९. तथ्यागत ने उत्तर दिया—"शुद्धा सर्व-श्रेष्ठ धन है। समानुसार रहने से सुख मिलता है। सत्यका रस सभी रसों से मधुरतम है। प्रज्ञामूलक जीवन से बड़ कर कुछ नहीं।"

२०. आलबक यश ने पूछा—"आदमी बाढ़ को कैसे पार करता है? आदमी समुद्र को कैसे लांघता है? आदमी दुःख का अन्त कैसे करता है?"

२१. तथ्यागत ने उत्तर दिया—"आदमी बाढ़ से बाढ़ को पार करता है। आदमी अप्रमाद से (ध्व) सागर को लांघ जाता है। आदमी प्रवृत्त से दुःख का नाश करता है। आदमी प्रज्ञा से परिशुद्ध होता है।"

२२. तब आलबक यश ने पूछा—"आदमी ज्ञान कैसे प्राप्त करता है? आदमी धन कैसे प्राप्त करता है? आदमी वश कैसे प्राप्त करता है? आदमी मित्र कैसे प्राप्त करता है? इस लोक से परलोक की जाने पर आदमी की अनुत्ताप कैसे नहीं होता?"

२३. तथ्यागत ने उत्तर दिया—"निर्वाण-प्राप्ति के लिये अहंता तथा धर्म से श्रद्धा रखने से, बाझाकारी होने से अप्रमादी होने से, स्वप्न लगाकर सुनने वाला होने से आदमी ज्ञान प्राप्त करता है।"

२४. "जो उचित ही करता है, जो दृढ़ निश्चयी है, जो तपस्वक है, वह धन प्राप्त करता है। जो देता है वह मित्र प्राप्त करता है।"

२५. "जिस श्रद्धावान् उपासक ने सत्य, सदाचार, सत्त्व और सदाशयता तथा उदारता होती है, उसे मरने पर अनुत्ताप नहीं होता।"

२६. "आओ! जो दूसरे बहुत से भ्रमण-ब्राह्मण हैं, उनसे भी पूछ लो कि क्या सत्य, संयम, दान-शीलता तथा सत्त्व से भी बचकर कुछ है?"

२७. आलबक यश बोला—"अब मैं किसी दूसरे भ्रमण ब्राह्मण से भी क्यों पूछूँ? आज मैं अपने मावी ऐश्वर्य से परिचित हो गया हूँ।"

२८. "निश्चय से, तथ्यागत मेरे ही कल्याण के लिये आलबी पधारे हैं। आज मैं जानता हूँ कि किन्हे (दान) देने से अधिक से अधिक फल मिलता है।"

२९. "आज से मैं तथ्यागत तथा उनके धर्म को नमस्कार करता हुआ, एक गांव से दूसरे गांव, एक नगर से दूसरे नगर विचरूंगा।"

५. समानता तथा समान-व्यवहार के समर्थक

१. तथागत ने जितने भी नियम भिक्षु संघ के लिये बनाये, स्वेच्छा से उन सभी नियमों को उन्होंने अपने ऊपर भी लागू किया ।

२. इसीलिये कि वे ही 'संघ' के मूल हैं, वा वे ही संघ के नायक हैं, उन्होंने अपने लिये कभी किसी नियम में भी अपवाद नहीं चाहा । यदि वे चाहते तो उस असीम आदर और प्रेम की भावना के कारण जो संघ के सदस्यों के मन में उनके लिये थी, वे तथागत को बड़ी प्रसन्नता से उन नियमों से मुक्त करते ।

३. भिक्षु एक ही बार भोजन ग्रहण कर सकते हैं—यह नियम अन्य सभी भिक्षुओं के साथ-साथ तथागत को भी स्वीकृत था ।

४. भिक्षु के पास कोई निजी सम्पत्ति नहीं रहनी चाहिये—यह नियम अन्य सभी भिक्षुओं के साथ-साथ तथागत को भी स्वीकृत था ।

५. भिक्षु के पास केवल तीन चीवर ही होने चाहिये—यह नियम सभी भिक्षुओं के साथ-साथ तथागत को भी स्वीकृत था ।

६. एक बार जब भगवान् बुद्ध शाक्य जन पद के कपिलवस्तु नगर में ग्या-प्रोघाराम में रहते थे, तो भगवान् बुद्ध की मौसी प्रजापति गौतमी अपने हाथ का कटा, हात का बुना धुस्सा जोड़ा साई और तथागत से उसे स्वीकार करने की प्रार्थना की ।^९

७. तथागत ने उसे उत्तर दिया, "प्रजापति! उसे संघ को दे ।"

८. दूसरी और तीसरी बार भी प्रजापति गौतमी ने अपना प्रार्थना दोहराई । उसे हर बार वही उत्तर मिला ।

९. तब आनन्द ने आग्रह किया—"भगवान् । प्रजापति गौतमी आप की मौसी हैं । प्रजापति गौतमी ने आप को दुध पिलाया है । आप उसका दिया धुस्सा जोड़ा स्वीकार कर लें ।" लेकिन तथागत का यही आग्रह रहा कि धुस्सा जोड़ा संघ को ही दिया जाय ।

१०. आरम्भ में भिक्षुसंघ का यही नियम था कि कुड़ों की डेरियों पर पड़े मिले चीवड़ों से ही भिक्षु-संघ के वस्त्र बनाये जायें । यह नियम इसी लिये बना था कि जिसमें छनी-बर्मी के लोग ही संघ में आकर न भर जायें ।

११. लेकिन एक बार अचक तथागत को नये वस्त्र का बना चीवर देने में सफल हो गया । जब तथागत ने वह चीवर स्वीकार किया, उन्होंने सभी समय सभी भिक्षुओं के लिये भी चीवड़ों के बने चीवर ही पहनने का नियम प्रीता कर दिया ।^१

१. करणीयमेस सुत्त, खुदकवाठो (खुदकनिकायो) ।

२. बिसाखा सुत्तान्त (उदान ८ : ८) । इस सुत्त में 'पोती' के स्थान पर नाती है—अनुवादक ।

३. धेरी—अपादान, तृतीय भाष्यवार ।

४. महावग्ग (विनय पिटक) ।

५. संघुत्त निकाय ।

६. नकुल पिता सुत्त (संघुत्त निकाय) ।

७. सुत्त निपात अट्ठकथा ।

८. म० निकाय का बज्झिणा विभंग सुत्तान्त (३ : ४ : १२) ।

९. महावग्गो (विनय पिटक) ।

तीसरा भाग

उन्हें क्या नापसन्द था और क्या पसन्द ?

१. उन्हें दरिद्रता नापसन्द थी

१. एक बार भगवान् बुद्ध धावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में बिहार कर रहे थे। उस समय अनाथपिण्डिक गृहपति तथागत के दर्शनार्थ आया। आकर, अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। बैठकर उसने तथागत से प्रश्न किया—“आदमी को धनार्जन क्यों करना चाहिये ?”

२. “तुम पूछ रहे हो, तो मैं तुम्हें बताता हूँ।

३. “किसी एक आर्मे-आवक को जो, जिसने मेहनत करके धन कमाया है, जिसने हाथों से परिश्रम करके धन कमाया है, जिसने पसीना बहा कर धन कमाया है तथा जिसने व्यापार धन कमाया है, वह उस धन से अपने आप को प्रसन्न बनाता है, आनन्दित बनाता है, उस प्रसन्नता तथा आनन्द को बनाये रखता है; वह अपने माता-पिता को सुख और आनन्द देता है तथा उन्हें सुखी और आनन्दित बनाये रखता है; इसी प्रकार अपने स्त्री-वर्षों को, अपने दातों को तथा अपने कमकरो को। धनार्जन करने का पहला उद्देश्य यही है।

४. “जब इस प्रकार धन प्राप्त होता है, वह अपने मित्रों, अपने साधियों को सुख और आनन्द देता है तथा उन्हें सुखी और आनन्दित बनाये रखता है। यह दूसरा उद्देश्य है।

५. “जब इस प्रकार धन प्राप्त हो जाता है, तो वह अग्नि या पानी से अपनी हानि नहीं होने देता, राजाओं या भोरों से अपनी हानि नहीं होने देता, शत्रुओं या उत्पत्ताधिकारियों से अपनी हानि नहीं होने देता—वह अपने माल को सुरक्षित रखता है। यह तीसरा उद्देश्य है।

६. “जब इस प्रकार धन प्राप्त होता है, तो वह अतिधि-यज्ञ कर सकता है, पितृ-यज्ञ कर सकता है, राज-यज्ञ कर सकता है तथा देव-यज्ञ कर सकता है, यह चौथा उद्देश्य है।

७. “जब इस प्रकार धन प्राप्त होता है, तो गृहपति उन सब धर्मों तथा सन्त-पुरुषों को दान देता है जो अहंकार तथा प्रमाद से बचते हैं, जो सभी बातों को

विनम्रता-पूर्वक सहन कर लेते हैं, जो संयत हैं, जो शांत हैं तथा जो आत्म-विकास में लगे हैं। उसका वह ज्ञान उनके अनुद्देश्य सहित होता है, मुख देने वाला और स्वर्ग की ओर ले जाने वाला। यह धर्माध्यन का पांथवा उद्देश्य है।”

८. अनाथपिण्डिक समझ गया कि भगवान् कुछ दरिद्रों की दरिद्रता की प्रशंसा करके उन्हें मान्यता नहीं देते। वे ‘दरिद्रता’ को ऊँचा उठाकर उसके बारे में वह भी नहीं कहते कि दरिद्रता का जीवन सुखी जीवन होता है।

२. उन्हें संग्रह-वृत्ति नापसन्द थी

१. भगवान् कुछ एक बार कुछ जलपद के कम्मासदम्भ नामक नगर में ठहरे हुए थे।^१

२. आनन्द स्थविर, जहाँ भगवान् कुछ थे, वहाँ पहुंचने और अधिवादन कर एक ओर बैठ गये।

३. इस प्रकार बैठे हुए आनन्द स्थविर ने कहा—“तथागत द्वारा उपदिष्ट प्रतीत्य-समुत्पाद का नियम अद्भुत है। यह अत्यन्त गम्भीर है। किन्तु मुझे यह स्पष्ट दिखाई देता है।”

४. “आनन्द ! ऐसा मत कहो। आनन्द ! ऐसा मत कहो। यह प्रतीत्य-समुत्पाद का नियम बहुत गम्भीर है। इसी प्रतीत्य-समुत्पाद के नियम को ही न समझ सकने के कारण, इसी प्रतीत्य-समुत्पाद के नियम के भीतर ही प्रवेश न कर सकने के कारण यह संसार उत्पन्न में पड़ गया है, यह दुःख का अन्त नहीं कर सकता है।

५. “मैंने कहा है कि तृष्णा होने से उपादान होता है। जहाँ किसी के मन में किसी भी चीज के लिए कोई तृष्णा न हो तो क्या किसी प्रकार का भी उपादान होगा ?”

६. “भगवान् ! नहीं होगा।”

७. “तृष्णा होने से ही आदमी लाभ के पीछे जाता है।

८. “लाभ के पीछे भागने से काम और राग उत्पन्न होते हैं।

९. “काम और राग होने से वस्तुओं के लिये आग्रह हो जाता है।

१०. “आग्रह होने से अधिकार (= मलकीयत) हो जाता है।

११. “मलकीयत होने से लोभ तथा और भी अधिक सम्पत्ति का स्वामित्व पैदा होता है।

१२. “मलकीयत होने से सम्पत्ति की देख-भाल करनी होती।

१३. “सम्पत्ति की देख-भाल में से ही बहुत से अकुशल-घर्म पैदा हो जाते हैं जैसे मुक के तथा जलम, जगहे, कलह, बबनामी और मृद।

१४. “आनन्द ! यह प्रतीत्य-समुत्पाद का नियम है। आनन्द ! यदि तृष्णा

न हो तो क्या लाभ के पीछे भागना होगा ? यदि लाभ के पीछे भागना न हो तो क्या कामना उत्पन्न होगी ? यदि कामना न हो तो क्या आग्रह होगा ? यदि सम्पत्ति के लिये आग्रह न हो तो क्या व्यक्तिगत सम्पत्ति के लिये प्रेम होगा ? यदि सम्पत्ति ही न हो तो क्या अधिक सम्पत्ति के लिये लोभ होगा ?”

१५. “भगवान् ! नहीं होगा।”

१६. “यदि निजी सम्पत्ति के लिये आसक्ति न हो तो क्या संसार में शान्ति नहीं होगी ?”

१७. “भगवान् ! होगी।”

१८. तब तपागत ने कहा—“मैं पृथ्वी को पृथ्वी मानता हूँ। लेकिन मेरे मन में इसके लिये तृष्णा नहीं है।

१९. “इसीलिये मैं कहता हूँ कि तमाम तृष्णाओं का भूलोच्छेद कर देने से, उनके पीछे न भागने से, बल्कि उनका नाश कर देने से, उनका त्याग कर देने से, उनका परिहारा कर देने से ही मैंने ‘बुद्धत्व’ लाभ किया है।

२०. “भिक्षुओं, भौतिक वस्तुओं के नहीं, किन्तु मेरे धर्म के उत्तराधिकारी बनो। क्योंकि तृष्णा से आसक्ति पैदा होती है और आसक्ति से मानसिक दासता।”

२१. इन शब्दों में भगवान् बुद्ध ने आनन्द स्वविर तथा अन्य भिक्षुओं को संग्रह करने की प्रवृत्ति के दुष्परिणाम समझाये।

३. उन्हें सुसंगति पसन्द थी

१. भगवान् बुद्ध को सुसंगति इतनी अधिक प्रिय थी कि उनको सुसंगति-प्रिय बुद्ध का नाम ही दिया जा सकता है।

२. इसीलिये उन्होंने अपने अनुयायियों को कहा—“कल्याण मित्रों की संगति करो।”

३. भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा :—

४. “भिक्षुओं ! मैं कोई दूसरी ऐसी बात नहीं जानता जो अनुत्पन्न कुशल धर्मों में वृद्धि कर दे अथवा उत्पन्न अकुशल धर्मों में ह्रास पैदा कर दे, जैसी कि यह कल्याण-मित्रता।”

५. “जो सुसंगति में रहता है, उसमें अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल धर्मों का ह्रास हो जाता है। अकुशल धर्म तथा अकुशल-प्रवृत्ति का ह्रास हो जाता है, कुशल-धर्मों के प्रति प्रवृत्ति की कमी का ह्रास हो जाता है, कुशल-धर्म तथा कुशल धर्मों के प्रति प्रवृत्ति बढ़ जाती है तथा अकुशल-धर्मों के प्रति प्रवृत्ति की कमी में वृद्धि होती है।

६. “भिक्षुओं, मैं दूसरी कोई ऐसी बात नहीं जानता जो अनुत्पन्न बोधि अंगों

को उत्पन्न न होने दे अथवा उत्पन्न बोधि अंगों को पूर्णता तक न पहुँचने दे, जैसे कि यह बे-डंगा विचार ।

७. "भिक्षुओ, जो वेदने-इंग से विचार करता है उसमें अनुत्पन्न बोधि-अंग उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न बोधि-अंग परिपूर्णता को प्राप्त नहीं होते ।

८. "भिक्षुओ, सगे-सम्बन्धियों की हानि कोई बड़ी हानि नहीं है । प्रजा की हानि बड़ी हानि है ।

९. "भिक्षुओ, सगे सम्बन्धियों की वृद्धि कोई बड़ी अभिवृद्धि नहीं है । प्रजा की वृद्धि बड़ी अभिवृद्धि है ।

१०. "इसलिए भिक्षुओं ! तुम्हें यही अभ्यास करना चाहिये कि हम प्रजा का लाभ करेंगे । तुम्हें प्रजावान बनना चाहिये ।

११. "भिक्षुओ ! धन की वृद्धि कोई बड़ी अभिवृद्धि नहीं है । सभी अभिवृद्धियों में श्रेष्ठ है प्रजा की अभिवृद्धि । इसलिए भिक्षुओं ! तुम्हें यही अभ्यास करना चाहिये कि हम प्रजा का लाभ करेंगे । तुम्हें प्रजावान बनना चाहिये ।

१२. "भिक्षुओ ! पश की हानि कोई बड़ी हानि नहीं है, प्रजा की हानि बड़ी हानि है ।"

४. वे सुसंगति से प्रेम करते थे

१. एक बार तथागत शाक्य जनपद में शाक्यों के एक नगर सक्कर में ठहरे हुए थे ।^३

२. तब स्थविर आनन्द तथागत के पास आये, अभिवादन किया और एक ओर बैठ गये । इस प्रकार बैठे हुये आनन्द स्थविर ने कहा :—

३. "भगवान् ! सत्संगति आधा श्रेष्ठ-जीवन है, कल्याण-मित्रता आधा श्रेष्ठ-जीवन है, भलों की संगति आधा श्रेष्ठ-जीवन है ।"

४. "आनन्द ! ऐसा मत कहो । सत्संगति आधा नहीं पूरा श्रेष्ठ-जीवन है । कल्याण-मित्रता आधा नहीं पूरा श्रेष्ठ-जीवन है । भलों की संगति आधा नहीं पूरा-श्रेष्ठ जीवन है ।

५. "भिक्षुओ, जो भिक्षु सत्संगति में रहता है, जिनके कल्याण-मित्र हैं और जो भलों की संगति में रहता है—उससे हम यह आशा कर सकते हैं कि वह आर्य अष्टांगिक-मार्ग पर अधिक से अधिक प्रगति करेगा ।

६. "आनन्द ! ऐसा भिक्षु आर्य अष्टांगिक-मार्ग पर अधिक से अधिक प्रगति कैसे करता है ?

७. "आनन्द ! वह सम्यक्-दृष्टि का अभ्यास करता है, जो त्यागाश्रित है, जो विरागाश्रित है, जो निरोधाश्रित है, वह सम्यक्-संकल्प का अभ्यास करता है । वह सम्यक्-वाणी का अभ्यास करता है । वह सम्यक्-कर्मन्त का अभ्यास

करता है। वह सम्बन्ध आजीविका का अभ्यास करता है। वह सम्बन्ध व्यायाम का अभ्यास करता है। वह सम्बन्ध-स्मृति का अभ्यास करता है तथा वह सम्बन्ध समाधि का अभ्यास करता है—ये सभी त्यागाश्रित हैं, विरागाश्रित हैं तथा निरोद्धाश्रित हैं।

८. "आनन्द ! जो भिक्षु सत्संगति में रहता है, जिसके कल्याण-मित्र है और जो भलों की संगति में रहता है, वह आर्य अष्टांगिक-मार्ग पर अधिक से अधिक प्रगति करता है।

९. "इस तरह से आनन्द ! तुम्हें यह समझना चाहिये कि यह जो सत्संगति में रहना है, यह जो कल्याण मित्रता है, यह जो भलों की संगति में रहना है, यह पूरा अष्ट-जीवन है।

१०. "निश्चय से आनन्द ! जो जरा-धर्म प्राणी है, जो मरण-धर्म प्राणी है, जो दुःख शोक, रोने पीटने वाले है, वे कल्याण-मित्रता के परिणाम-स्वरूप इन सब से मुक्त हो जाते हैं।

११. "इस तरह से आनन्द ! तुम्हें यह समझना चाहिये कि यह जो सत्संगति में रहना है, यह जो कल्याण-मित्रता है, यह जो भलों की संगति में रहना है—यह पूरा अष्ट-जीवन है।"

१. अंगुस्तर-निकाय (पञ्चक निपात) ।

२. आनन्द-सत्पाद-मुत्तम (मज्झिम निकाय १०६) ।

३. अंगुस्तर-निकाय (एकक निपात) ।

समाप्ति

१. भगवान् बुद्ध की प्रशस्ति

१. भगवान् बुद्ध का जन्म पच्चीस शी वर्ष हुए हुआ था ।

२. आधुनिक विचारक और वैज्ञानिक उनके तथा उनके धर्म के बारे में क्या कहते हैं ? उनके विचारों का यह संग्रह उपयोगी होगा ।

३. प्रो० एस० एस० राघवाचार्य कहते हैं—

४. "भगवान् बुद्ध के आविर्भाव से ठीक पहले का समय भारतीय इतिहास का सर्वाधिक अन्धकारमय युग था ।

५. "चिन्तन की दृष्टि से यह पिछड़ा हुआ युग था । उस समय का विचार धर्म-ग्रन्थों के प्रति अन्धविश्वास से जकड़ा हुआ था ।

६. "नैतिकता की दृष्टि से भी अन्धकारपूर्ण युग था ।

७. "विश्वासी हिन्दुओं के लिये नैतिकता का मडलब इतना ही था कि धर्म-ग्रन्थों के अनुसार गजादिकों को ठोक ठोक कर सकता ।

८. "आत्म-त्याग या चित्त की पवित्रता आदि जैसे पथार्थ नैतिक विचारों को उस समय के नैतिक-चिन्तन में कोई उपयुक्त स्थान प्राप्त न था ।"

९. श्री० आर० जे० जैक्सन का कहना है :—

१०. "भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं का अनुरम रूप भारतीय धार्मिक विचार-धारा के अध्ययन से ही स्पष्ट होता है ।

११. "ऋग्वेद की ऋचाओं में हम पाते हैं कि आदमी बहिर्मुख है—उसका सारा चिन्तन देवताओं की ओर अभिमुख है ।

१२. बौद्ध धर्म ने सन्दर जो सामर्थ्य छिपी हुई है, उसकी ओर ध्यान आकषिप्त किया ।

१३. "वेदों में हवन प्रार्थना, प्रणसा और पूजा ही मिलती है ।

१४. "बौद्ध धर्म में ही हमें प्रथम बार चित्त को सही रास्ते पर चलाने के शिक्षा-क्रम की शिक्षा मिलती है ।"

१५. श्री० विनवुड रीड का कहना है :—

१६. "जब हम प्रकृति की पुस्तक खोलकर देखते हैं, जब हम साधु-करोड़ों वर्षों का खून तथा आँसुओं में लिखा हुआ 'विकास' का इतिहास पढ़ते

है, जब हम जीवन का नियंत्रण करने वाले नियमों को पढ़ते हैं और उन नियमों को जो विकास को जन्म को देते हैं, तो हमें यह स्पष्ट दिखाई देता है कि यह विद्वान्त की परमात्मा प्रेम-रूप है, कितना भ्रामक है।

१०. "हर चीज में बदमाशी भरी पड़ी है और अपभ्रम का कहीं कोई ठिकाना नहीं है। जितने भी प्राणी पैदा होते हैं उनमें बचने वालों की संख्या बहुत ही थोड़ी है।

११. "चाहे समुद्र में देखो, चाहे हवा में देखो और चाहे जंगल में देखो—हर जगह यही नियम है, दूसरों को खाओ तथा दूसरों के द्वारा खाये जाने के लिए तैयार रहो। हवा ही विकास-क्रम का कानून है।"

१२. श्री० रीड ने यह बात अपनी 'मार्टायरडम आफ मैन' (Martyrdom of Man) नाम की पुस्तक में कही है। भगवान् बुद्ध का धर्म इससे कितना भिन्न है!

२०. डा० रंजन राम का कहना है :—

२१. 'उत्तरीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध में तीन कानूनों की तूती बोलती थी। किसी ने उन्हें अस्वीकार करने का साहस नहीं किया।

२२. "ये कानून थे—(१) अड़-पदार्थ का कानून, (२) जड़ पदार्थ के समूह का कानून, (३) जिवित का कानून।

२३. यह उन आदर्श-वादी चिन्तकों के जयघोष थे, जो समझते थे कि ये तीनों अविनाशी हैं।

२४. 'उत्तरीसवी शताब्दी के वैज्ञानिकों के अनुसार ये तीन कानून ही सृष्टि के संचालक थे।

२५. 'उत्तरीसवी शताब्दी के वैज्ञानिकों के अनुसार ये तीन कानून ही सृष्टि के मूल तत्व थे।

२६. "उनकी कल्पना थी कि विश्व अविनाशी अणुओं (Atoms) का समूह है।

२७. उत्तरीसवी शताब्दी समाप्त होने को आई श्री० जे० जे० थॉमसन और उनके अनुयायियों ने अणुओं पर हथौड़े चलाने आरम्भ किये।

२८. "आश्चर्य की बात हुई—अणुओं के भी टुकड़े टुकड़े होने लगे।

२९. "इन टुकड़ों को परमाणु कहा जाने लगा—सभी समान और सभी में अणुात्मक विद्युत्।

३०. "जित अणुओं की मौसमवैत विश्व के जगत्वा वास्तविकता के अविनाशी आधार-स्तम्भ मानता था, वे खण्ड—खण्ड हो गये।

३१. "उनके बहुत छोटे-छोटे खण्ड हुए—प्रोटोन तथा एलेक्ट्रॉन (Protons & Electrons); धनात्मक तथा ऋणात्मक विद्युत् लिये हुये।

३२. "एक निश्चित अविवर्णी बहुत पदार्थ-समूह को कल्पना-विज्ञान से विदा हुई। इस सताब्दी में सभी का विश्वास है कि बहुत-तक का प्रतिक्षण निरोध हो रहा है।

३३. "भगवान् बुद्ध के अतिरिक्त के सिद्धान्त की समर्पण प्राप्त हुआ है।

३४. "विज्ञान ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि विद्वत् की मति (थीओ के) में से किसी चीज के बनने, उनके खण्ड खण्ड हो जाने तथा फिर मिलने के नियमों पर ही आश्रित है।

३५. "आधुनिक विज्ञान के अनुसार अन्तिम तत्व अनेक होकर एक भासित होनेवाला है।

३६. "आधुनिक विज्ञान भगवान् बुद्ध के अतिरिक्त तथा अवतारवाद्य के सिद्धान्त की प्रतिध्वनि है।"

३७. श्री ई० बी० टेलर ने अपने 'बुद्धिवाद एवं भावर्तन' (Buddhism and modern thought) में लिखा है :-

३८. "काफी समय से आदमी बाह्यी ताकतों के प्रभाव में रहा है। यदि उसे 'सम्ब' शब्द के वास्तविक अर्थों में सम्ब समना है तो उसे अपने ही नियमों द्वारा अनुशासित रहना सीखना हीमा। बीडधर्म ही वह प्राचीनतम नैतिक विचारधारा है जिसमें आदमी को स्वयं अपना आप अनुशासक बनने की शिक्षा दी गई है।

३९. "इसलिये इस प्रगतिशील संसार को बीडधर्म की आवश्यकता है ताकि वह इससे यह जैसी शिक्षा हासिल कर सके।"

४०. श्री लेस्ली बोल्टन (The Rev. Leslie Bolton) नाम के ईसाईधर्म के यूनिटेरियन सम्प्रदाय के पुरोहित का कहना है :-

४१. "बोडों की तरह हम यूनिटेरियन सम्प्रदाय के मानने वाले भी परम्परा, पुस्तकों या मतों के बाह्य अधिकार को प्रमाण नहीं मानते। हम आदमी के अपने भीतर ही उसका मार्ग दर्शक प्रदीप देखते हैं।

४२. "यूनिटेरियन मत के अनुयायियों को ईसा और बुद्ध दोनों ही श्रेष्ठ जीवन के श्रेष्ठ व्याख्याकार प्रतीत होते हैं।"

४३. प्रो० डेविड गोडन का कथन है :-

४४. "संसार में बितने भी धर्म संस्थापक हुए हैं, उनमें भगवान् बुद्ध की ही यह खोदक प्राप्त है कि उन्होंने आदमी में नूनतः विद्यमान उस निहित शक्ति को पहचाना जो बिना किसी बाह्य नियंत्रण के उसे मोक्ष पथ पर अग्रसर कर सकती है।

४५. "यदि किसी वास्तविक महान् पुरुष का महात्म्य इसी बात में है कि वह मानवता को किसी मात्रा में महावता की ओर अग्रसर करता है, तो तत्काल से बढ़कर दूसरा कौन सा आदमी महान् हो सकता है ?

४६. "भगवान् बुद्ध ने किसी 'बाह्य शक्ति' को आदमी के ऊपर बिठाकर

उसका बजा नहीं घटाया, बल्कि उसे प्रता और मैत्री के मिश्रण पर ले जाकर बिठा दिया है।”

४७. “बुद्धिधर्म” ग्रन्थ के लेखक श्री ई० जे० मित्रर का कहना है :—

४८. “किसी दूसरे धर्म में ‘विद्या’ की इतना महत्त्व नहीं दिया गया और ‘अविद्या’ की इतनी गहरी नहीं की गई, जितनी बुद्ध-धर्म में।

४९. “कोई दूसरा धर्म अपनी आँख खुली रखने पर इतना जोर नहीं देता।

५०. “किसी दूसरे धर्म ने आत्म-विकास की इतनी विस्तृत, इतनी गहरी तथा इतनी व्यवस्थित योजना पैदा नहीं की।”

५१. अपने ‘बुद्धिस्ट एपिग्रेस’ नामक ग्रन्थ में श्री० डब्ल्यू० टी० स्ट्रास ने लिखा है :—

५२. “बौद्ध धर्म का नैतिक आदर्श-पुरुष—अर्हत—न केवल सदाचार की दृष्टि से बल्कि मानसिक विकास की दृष्टि से भी महान होना चाहिये।

५३. उसे दार्शनिक तथा वैश्व आचारवान्—दोनों एक साथ होना चाहिये।

५४. “बौद्धधर्म ने ‘विद्या’ को हमेशा मुक्ति के लिये अनिवार्य माना है और ‘अविद्या’ तथा ‘तृष्णा’ को मोक्ष के प्रदान बाधक कारण स्वीकार किया है।

५५. “इसके विरुद्ध ईसाई आदर्श पुरुष के लिये जानी होना कभी आवश्यक नहीं माना गया है।

५६. “क्योंकि संस्थापक का अपना स्वरूप ही अदार्शनिक था। इसलिये ईसाइयत में दार्शनिकता का आदमी की नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं माना गया है।

५७. “संसार के दुखों के मूल में सरारत से कहीं अधिक अज्ञान और अविद्या ही है।

५८. “भगवान् बुद्ध ने इनके लिये जगह नहीं रखी।”

५९. यह दिखाने के लिये कि भगवान् बुद्ध और उनका धर्म कितना महान् है और कितना अनुपम है—इतना पर्याप्त है।

६०. कौन है जो ऐसे भगवान् बुद्ध को अपना वास्ता स्वीकार न करना चाहिये ?

२. उनके धर्म के प्रचार की शपथ

१. अनन्त प्राणी है,

इस शपथ ग्रहण करें कि हम सभी को भवसागर के पार उतारेंगे।

२. हम में अनन्त कमजोरियाँ हैं,

इस शपथ ग्रहण करें कि हम एक-एक करके सबको दूर करेंगे।

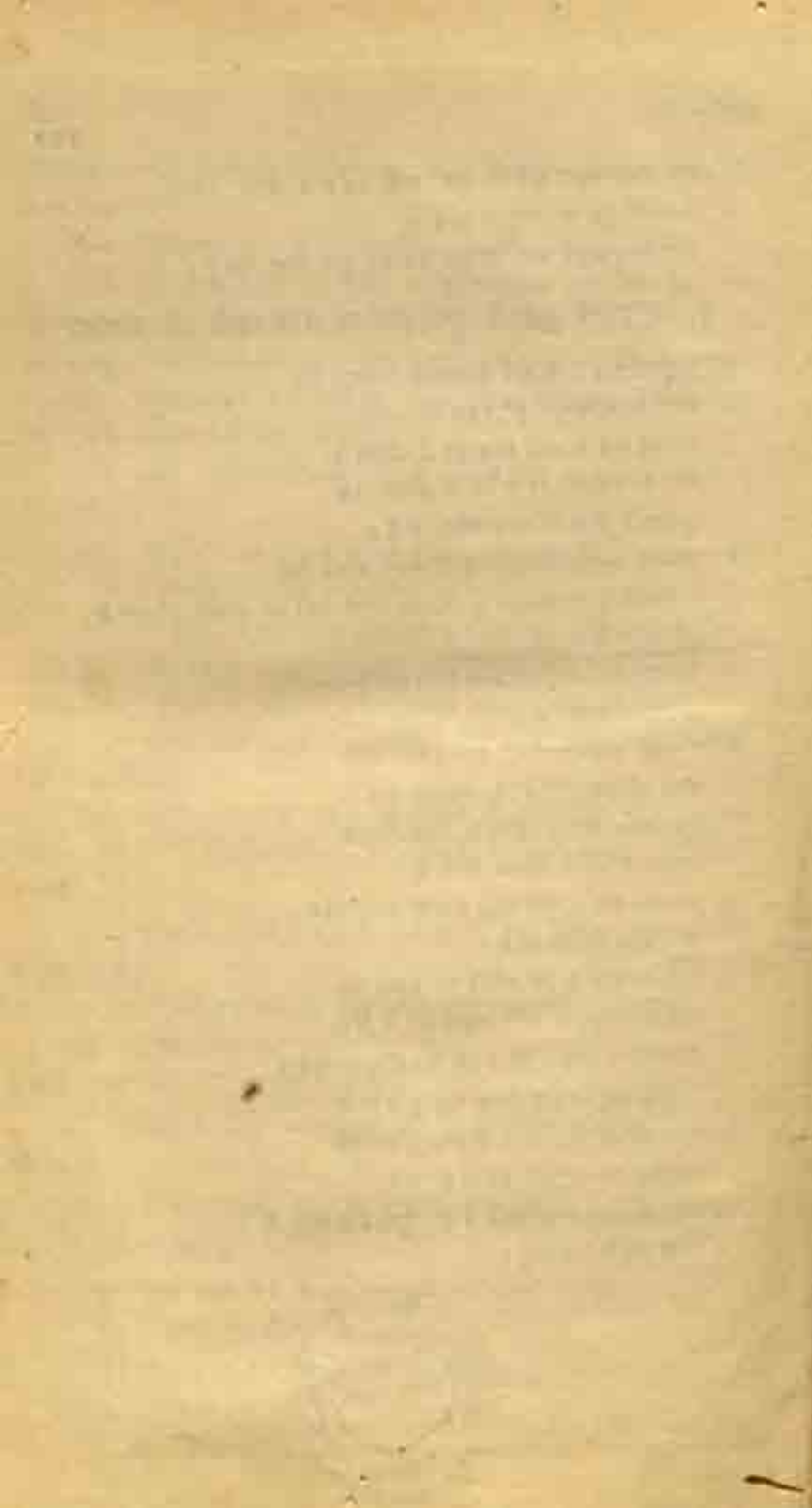
३. अविनाशित सत्य है;

- हम शपथ ग्रहण करें कि हम सभी का बोध प्राप्त करने
 ४. भगवान् बुद्ध का अनुपम मार्ग है,
 हम शपथ ग्रहण करें कि हम उस पर पूरी तरह चलेंगे ।

३. भगवान् बुद्ध के पुनः स्वदेश लौट आने की प्रार्थना

१. हे पुरुषोत्तम ! मैं सर्व भावना से तथागत की
 शरण ग्रहण करता हूँ, जिन की ज्योतिः
 निर्वाण रूप से दसों दिशाओं में व्याप्त है;
 धीर कामना करता हूँ कि मैं आपके उस
 सुखावति लोक में जन्म ग्रहण करूँ ।
२. आप के उस लोक की जब मैं अपने मानव चक्षु
 से देखता हूँ तो जानता हूँ कि यह तीनों भवों की समस्त भूमियों से
 प्रकृष्टतर है ।
३. कि यह आकाश के समान सर्वव्यापी है—
 अनन्त और असीम ।
४. आपकी भर्मानुसारिणी करुणा तथा मैत्री
 सभी भौतिक-वस्तुओं से श्रेष्ठतर उस
 पुण्य-राशि का परिणाम है, जिसे आपने
 अनन्त जन्मों में संचित किया है ।
५. आपका प्रकाश सूर्य तथा चन्द्रमा रूपी दर्पण
 के समान सर्वव्याप्त है ।
६. मेरी कामना है कि जितने भी प्राणी उस
 सुखावति-धूह में जन्म ग्रहण करें वे सभी
 तथागत के समान ही सद्धर्म की घोषणा करें ।
७. यहाँ मैं वह निबन्ध लिख रहा हूँ और वे
 पुण्य लोक भी; मेरी प्रार्थना है कि मुझे
 तथागत का साक्षात् दर्शन ही सके,
८. और मैं समस्त प्राणियों सहित सुखावति-धूह में
 जन्म ग्रहण कर सकूँ ।







Kal
20.3.74.

